नाम सुमिर मन बावरे

अनुक्रम

1. तुमसों मन लागो है मोरा...2
2. कीचड़ में खिले कमल..21
3. पंडित, काह करै पंडिताई...41
4. धर्म एक क्रांतिकारी उद्घोष है..60
5. बौरे, जामा पहिरि न जाना..82
6. जीवन सृजन का अवसर है...100
7. नाम बिनु नहिं कोउकै निस्तारा..122
8. संन्यास परम भोग है..143
9. तीरथ-ब्रत की तजि दे आसा..163 10...प्रार्थना को गजल बनाओ 184

नाम सुमिर मन बावरे
पहला प्रवचन

तुमसों मन लागो है मोरा

तुमसों मन लागो है मोरा।
हम तुम बैठे रही अटरिया, भला बना है जोरा।।
सत की सेज बिछाय सूति रहि, सुख आनंद घनेरा।
करता हरता तुमहीं आहहु, करौं मैं कौन निहोरा।।
रह्यो अजान अब जानि परयो है, जब चितयो एक कोरा।
आवागमन निवारहु सांईं, आदि-अंत का आहिऊं चोरा।
जगजीवन बिनती करि मांगे, देखत दरस सदा रहों तोरा।।
अब निर्वाह किए बनि आइहि लाय प्रीति नहिं तोरिय डोरा।।

मन महं जाइ फकीरी करना।
रहे एकंत तंत तें लागा, राग निर्त नहिं सुनना।।
कथा चारचा पढ़ै-सुनै नहिं, नाहिं बहुत बक बोलना।
ना थिर रहै जहां तहं धावै, यह मन अहै हिंडोलना।।
मैं तौं गर्व गुमान बिबादंहिं, सबै दूर यह करना।
सीतल दीन रहै मरि अंतर, गहै नाम की सरना।।
जल पषान की करै आस नहिं, आहै सकल भरमना।
जगजीवनदास निहारि निरखिकै, गहि रहु गुरु की सरना।।

भूलु फूलु सुख पर नहीं, अबहूं होहु सचेत।
सांईं पठवा तोहि कां, लावो तेहि ते हेत।।
तजु आसा सब झूंठ ही, संग साथी नहिं कोय।
केउ केहू न उबारिही, जेहि पर होय सो होय।।
कहंवां तें चलि आयहू, कहां रहा अस्थान।
सो सुधि बिसरि गई तोहिं, अब कस भयसि हेवान।।
काया-नगर सोहावना, सुख तबहीं पै होय।
रमत रहै तेहिं भीतरे, दुःख नहीं व्यापै कोय।।
मृत-मंडल कोउ थिर नहीं, आवा सो चलि जाय।
गाफिल ह्वै फंदा परयौ, जहं-तहं गयो बिलाय।।

एक नई यात्रा पर निकलते हैं आज!
बुद्ध का, कृष्ण का, क्राइस्ट का मार्ग तो राज-पथ है।
राजपथ का अपना सौंदर्य है, अपनी सुविधा, अपनी सुरक्षा। सुंदरदास, दादूदयाल या अब जिस यात्रा पर हम चल रहे हैं--जगजीवन साहब--इनके रास्ते पगडंडियां हैं। पगडंडियों का अपना सौंदर्य है। पहुंचाते तो राज-पथ भी उसी शिखर पर हैं जहां पगडंडियां पहुंचाती हैं। राजपथों पर भीड़ चलती है; बहुत लोग चलते हैं--हजारों, लाखों, करोड़ों। पगडंडियों पर इक्के-दुक्के लोग चलते हैं। पगडंडियों के कष्ट भी हैं, चुनौतियां भी हैं। पगडंडियां छोटे-छोटे मार्ग हैं।
पहाड़ की चढ़ाई करनी हो, दोनों तरह से हो सकती है। लेकिन जिसे पगडंडी पर चढ़ने का मजा आ गया वह राजपथ से बचेगा। अकेले होने का सौंदर्य--वृक्षों के साथ, पक्षियों के साथ, चांद-तारों के साथ, झरनों के साथ!
राज-पथ उन्होंने निर्माण किए हैं जो बड़े विचारशील लोग थे। राज-पथ निर्माण करना हो तो अत्यंत सुविचारित ढंग से ही हो सकता है। पगडंडियां उन्होंने निर्मित की हैं, जो न तो पढ़े-लिखे थे, न जिनके पास विचार की कोई व्यवस्था थी--अपढ़; जिन्हें हम कहें गंवार; जिन्हें काला अक्षर भैंस बराबर था।
लेकिन यह स्मरण रखना कि परमात्मा को पाने के लिए ज्ञानी को ज्यादा कठिनाई पड़ती है। बुद्ध को ज्यादा कठिनाई पड़ी। सुशिक्षित थे, सुसंस्कृत थे। शास्त्र की छाया थी ऊपर बहुत। सम्राट के बेटे थे। जो श्रेष्ठतम

शिक्षा उपलब्ध हो सकती थी, उपलब्ध हुई थी। उसी शिक्षा को काटने में वर्षो लग गए। उसी शिक्षा से मुक्त होने में बड़ा श्रम उठाना पड़ा।
बुद्ध छह वर्ष तक जो तपश्चर्या किए, उस तपश्चर्या में शिक्षा के द्वारा डाले गए संस्कारों को काटने की ही योजना थी। महावीर बारह वर्ष तक मौन रहे। उस मौन में जो शब्द सीखे थे, सिखाए गए थे उन्हें भुलाने का प्रयास था। बारह वर्षो के सतत मौन के बाद इस योग्य हुए कि शब्द से छुटकारा हो सका। और जहां शब्द से छुटकारा है वहीं निःशब्द से मिलन है। और जहां चित्त शास्त्र के भार से मुक्त है वहीं निर्भार होकर उड़ने में समर्थ है। जब तक छाती पर शास्त्रों का बोझ है, तुम उड़ न सकोगे; तुम्हारे पंख फैल न सकेंगे आकाश में। परमात्मा की तरफ जाना हो तो निर्भार होना जरूरी है।
जैसे कोई पहाड़ चढ़ता है तो जैसे-जैसे चढ़ाई बढ़ने लगती है वैसे-वैसे भार भारी मालूम होने लगता है। सारा भार छोड़ देना पड़ता है। अंततः तो आदमी जब पहुंचता है शिखर पर तो बिल्कुल निर्भार हो जाता है। और जितना ऊंचा शिखर हो उतना ही निर्भार होने की शर्त पूरी करनी पड़ती है।
महावीर पर बड़ा बोझ रहा होगा। किसी ने भी इस तरह से बात देखी नहीं है। बारह वर्ष मौन होने में लग जाएं, इसका अर्थ क्या होता है? इसका अर्थ होता है कि भीतर चित्त बड़ा मुखर रहा होगा। शब्दों की धूम मची होगी। शास्त्र पंक्तिबद्ध खड़े होंगे। सिद्धांतों का जंगल होगा। तब तो बारह वर्ष लगे इस जंगल को काटने में। बारह वर्ष जलाया तब यह जंगल जला; तब सन्नाटा आया; तब शून्य उतरा; तब सत्य का साक्षात्कार हुआ।
पंडित सत्य की खोज में निकले तो देर लगनी स्वाभाविक है। अक्सर तो पंडित निकलता नहीं सत्य की खोज में। क्योंकि पंडित को यह भ्रांति होती है कि मुझे तो मालूम ही है, खोज क्या करनी है? वे थोड़े से पंडित सत्य की खोज में निकलते हैं जो ईमानदार हैं; जो जानते हैं कि जो मैं जानता हूं वह सब उधार है। और जो मुझे जानना है, अभी मैंने जाना नहीं। हां, उपनिषद मुझे याद हैं लेकिन वे मेरे उपनिषद नहीं हैं; वे मेरे भीतर उमगे नहीं हैं।
जैसे किसी मां ने किसी दूसरे के बेटे को गोद ले लिया हो ऐसे ही तुम शब्दों को, सिद्धांतों को गोद ले सकते हो, मगर अपने गर्भ में बेटे को जन्म देना, अपने गर्भ में बड़ा करना, नौ महीने तक अपने जीवन में उसे ढालना बात और है। गोद लिए बच्चे बात और हैं। लाख मान लो कि अपने हैं, अपने नहीं हैं। समझा लो कि अपने हैं; मगर किसी तल पर, किसी गहराई में तो तुम जानते ही रहोगे कि अपने नहीं हैं। उसे भुलाया नहीं जा सकता, उसे मिटाया नहीं जा सकता। उपनिषद कंठस्थ हो सकते हैं--मगर गोद लिया तुमने ज्ञान; तुम्हारे गर्भ में पका नहीं। तुम उसे जन्म देने की प्रसव-पीड़ा से नहीं गुजरे। तुमने कीमत नहीं चुकाई। और बिना कीमत जो मिल जाए, दो कौड़ी का है। जितनी कीमत चुकाओगे उतना ही मूल्य होता है।
पंडित एक तो सत्य की खोज में जाता नहीं और जाए तो सबसे बड़ी अड़चन यही होती है कि ज्ञान से कैसे छुटकारा हो--तथाकथित ज्ञान से कैसे छुटकारा हो? अज्ञान से छूटना इतना कठिन नहीं है क्योंकि अज्ञान निर्दोष है। सभी बच्चे अज्ञानी हैं। लेकिन बच्चों की निर्दोषता देखते हो! सरलता देखते हो, सहजता देखते हो!
अज्ञानी और ज्ञान के बीच ज्यादा फासला नहीं है। क्योंकि अज्ञानी के पास कुछ बातें हैं जो ज्ञान को पाने की अनिवार्य शर्ते हैं: जैसे सरलता है, जैसे निर्दोषता है, जैसे सीखने की क्षमता है, झुकने का भाव है, समर्पण की प्रक्रिया है। अज्ञानी की सबसे बड़ी संपदा यही है कि उसे अभी जानने की भ्रांति नहीं है। उसे साफ है, स्पष्ट है कि मुझे पता नहीं है। जिसको यह पता है कि मुझे पता नहीं है, वह तलाश में निकल सकता है। या कोई अगर जला हुआ दीया मिल जाए तो वह उसके पास बैठ सकता है। सत्संग की सुविधा है।
इसलिए तो जीसस ने कहा: "धन्य हैं वे जो छोटे बच्चों की भांति हैं क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है।"
पंडित की बड़ी से बड़ी कठिनाई यही है कि बिना जाने उसे पता चलता है कि मैं जानता हूं। न ही उसे एक भी उत्तर मिला है जीवन से, लेकिन किताबों ने सब उत्तर दे दिए हैं उधार, बासे, पिटे-पिटाए, परंपरा से।

महावीर को बारह वर्ष लगे मौन साधने में! कोई जैनशास्त्र यह नहीं कहता
कि बारह वर्ष लगने का अर्थ क्या होता है? इसका अर्थ यही होता है कि मन में खूब धूम रही होगी विचारों की। होना स्वाभाविक भी है। राजपुत्र थे, सुशिक्षित थे, बड़े-बड़े पंडितों के पास बैठ कर सब सीखा होगा, जो सीखा जा सकता था। सब कलाओं में पारंगत थे। वही पारंगतता, वही कुशलता, वही ज्ञान बन गई चट्टान। उसी को तोड़ने में बारह वर्ष सतत श्रम करना पड़ा, तब कहीं मौन हुए; तब कहीं चुप्पी आई; तब कहीं फिर से अज्ञानी हुए। झूठे ज्ञान से छुटकारा हुआ। कागज फिर कोरा हुआ।
और जब कागज कोरा हो तो परमात्मा कुछ लिखे। और जब अपना उपद्रव शांत हो, अपनी भीड़-भाड़ छंटे, अपना शोरगुल बंद हो तो परमात्मा की वाणी सुनाई पड़े, उपनिषद का जन्म हो, ऋचाएं गूंजें तुम्हारे हृदय से। तुम्हारी श्वासें सुवासित हों ऋचाओं से। तुम जो बोलो सो शास्त्र हो जाए। तुम उठो-बैठो, तुम आंख खोलो, आंख बंद करो और शास्त्र झरें। तुम्हारे चारों तरफ वेद की हवाएं उठें।
कुरान का संगीत पैदा होता है तभी, जब तुम्हारे भीतर शून्य गहन होता है। जैसे बादल जब भर जाते हैं वर्षा के जल से तो बरसते हैं। और जब आत्मा शून्य के जल से भर जाती है तो बरसती है।
मोहम्मद, कबीर, जगजीवन ये बे-पढ़े लिखे लोग हैं। ये निपट गंवार हैं, ग्रामीण हैं। सयता का, शिक्षा का, संस्कार का, इन्हें कुछ पता नहीं है। बड़ी सरलता से इनके जीवन में क्रांति घटी है। इन्हें बारह बारह वर्ष महावीर की भांति, या बुद्ध की भांति मौन को साधना नहीं पड़ा है। इनके भीतर कूड़ा-करकट ही न था। विद्यापीठ ही नहीं गए थे। विश्वविद्यालयों में कचरा इन पर डाला नहीं गया था। ये कोरे ही थे। संसार में तो मूढ़ समझे जाते।
लेकिन ध्यान रखना, संसार का और परमात्मा का गणित विपरीत है। जो संसार में मूढ़ है उसकी वहां बड़ी कद्र है। फिर जीसस को दोहराता हूं। जीसस ने कहा हैः "जो यहां प्रथम हैं वहां अंतिम, और जो यहां अंतिम हैं वहां प्रथम हैं।" यहां जिनको तुम मूढ़ समझ लेते हो... और मूढ़ हैं; क्योंकि धन कमाने में हार जाएंगे, पद की दौड़ में हार जाएंगे। न चालबाज हैं न चतुर हैं। कोई भी धोखा दे देगा। कहीं भी धोखा खा जाएंगे। खुद धोखा दे सकें, यह तो सवाल ही नहीं; अपने को धोखे से बचा भी न सकेंगे। इस जगत में तो उनकी दशा दुर्दशा की होगी। लेकिन यही हैं वे लोग जो परमात्मा के करीब पहुंच जाते हैं--सरलता से पहुंच जाते हैं।
ऐसे लोग राज-पथ नहीं बना सकते। पतंजलि राजपथ बना सकते हैं। सुविचारित, नियमबद्ध, धर्म का विज्ञान निर्मित कर सकते हैं। जगजीवन जैसे लोग तो छोटी सी पगडंडी बनाते हैं। इस ख्याल से भी नहीं बनाते कि कोई मेरे पीछे आएगा। खुद चलते हैं, उस चलने से ही घास-पात टूट जाता है, पगडंडी बन जाती है। कोई आ जाए पीछे, आ जाए।
आ जाते हैं लोग। क्योंकि सत्य का जब अवतरण होता है तो वह चाहे राजपुत्रों में हो और चाहे दीन-दरिद्रों में हो, सत्य का जब अवतरण होता है तो उसकी गंध ऐसी है, उसका प्रकाश ऐसा है, जैसे बिजली कौंध जाए! फिर किस में कौंधी, इससे फर्क नहीं पड़ता। राजमहल पर कौंधी कि गरीब के झोपड़े पर कौंधी, महानगरी में कौंधी कि किसी छोटे-मोटे गांव में कौंधी--बिजली कौंधती है तो प्रकाश हो जाता है। सोए जग जाते हैं। बंद जिनकी आंखें थीं, खुल जाती हैं। मेंजोाड़े थे उन्हें होश आ जाता है।
कुछ लोग चल पड़ते हैं। ज्यादा लोग नहीं चल सकते क्योंकि जगजीवन को समझाने की क्षमता नहीं होती। हां, जो लोग प्रेम करने में समर्थ हैं, समझने के मार्ग से नहीं चलते बल्कि प्रेम के मार्ग से चलते हैं, वे लोग पहचान लेते हैं।
जगजीवन प्रमाण नहीं दे सकते, गीत गा सकते हैं और गीत भी काव्य के नियमों के अनुसार नहीं होगा, छंदबद्ध नहीं होगा। गीत भी ऐसा ही होगा जैसे गांव के लोग गा लेते हैं, बना लेते हैं। इसलिए जगजीवन के वचनों में तुम मात्रा और छंद खोजने मत बैठ जाना। जैसे गांव के लोग गीत गाते हैं, ऐसे ये गीत हैं।

जगजीवन का काम था गाय-बैल चराना। गरीब के बेटे थे। बाप किसान थे--छोटी- मोटी किसानी। और बेटे का काम था कि गाय-बैल चरा लाना। न पढ़ने का मौका मिला, न पढ़ने का सवाल उठा। तो जैसे गाय-बैल चराने वाले लोग भी गीत गाते हैं... गीत तो सबका है। कोई विश्वविद्यालय से शोध के ऊपर उपाधि लेकर आने पर ही गीत गाने का हक नहीं होता।
और सच तो यह है कि जो लोग विश्वविद्यालय से सब भांति मात्रा, छंद और काव्यशास्त्र में कुशल होकर आते हैं, जो भरत के नाट्यशास्त्र से लेकर अरस्तू के काव्यशास्त्र तक को समझते हैं उनसे कभी कविता पैदा नहीं होती। यह तुमने मजे की बात देखी कि विश्वविद्यालय में जो लोग काव्य पढ़ाते हैं उनसे कविता पैदा नहीं होती। कविता उनसे बच कर निकल जाती है। शेक्सपियर को पढ़ाते हैं और कालिदास को पढ़ाते हैं और भवभूति को पढ़ाते हैं, मगर कविता उनसे बच कर निकल जाती है। कविता कभी प्रोफेसरों के गले में वरमाला पहनाती ही नहीं। काव्यशास्त्र को ज्यादा जान लेना--और कविता के प्राण निकल जाते हैं। कविता तो फलती है--फूलती है--जंगलों में, पहाड़ों में, प्रकृति में और प्राकृतिक जो मनुष्य हैं, उनमें।
जगजीवन के जीवन का प्रारंभ वृक्षों से होता है, झरनों से, नदियों से, गायों से, बैलों से। चारों तरफ प्रकृति छाई रही होगी। और जो प्रकृति के निकट है वह परमात्मा के निकट है। जो प्रकृति से दूर है वह परमात्मा से भी दूर हो जाता है।
अगर आधुनिक मनुष्य परमात्मा से दूर पड़ रहा है, रोज-रोज दूर पड़ रहा है,
तो उसका कारण यह नहीं है कि नास्तिकता बढ़ गई है। जरा भी नहीं नास्तिकता बढ़ी है। आदमी जैसा है ऐसा ही है। पहले भी नास्तिक हुए हैं, और ऐसे नास्तिक हुए हैं कि उनकी नास्तिकता के ऊपर और कुछ जोड़ा नहीं जा सकता। चार्वाक ने जो कहा है तीन हजार साल पहले, इन तीन हजार साल में एक भी तर्क ज्यादा जोड़ा नहीं जा सका है। चार्वाक सब कह ही गया जो ईश्वर के खिलाफ कहा जा सकता है। न तो दिदरो ने कुछ जोड़ा है, न मार्क्स ने कुछ जोड़ा है, न माओ ने कुछ जोड़ा है। चार्वाक तो दे गया नास्तिकता का पूरा शास्त्र; उसमें कुछ जोड़ने का उपाय नहीं है। या यूनान में एपिकुरस दे गया है, नास्तिकता का पूरा शास्त्र। सदियां बीत गई हैं, एक नया तर्क नहीं जोड़ा जा सका है।
यह सदी कुछ नास्तिक हो गई है, ऐसा नहीं है। फिर क्या हो गया है? एक और
ही बात हो गई है जो हमारी नजर में नहीं आ रही है; प्रकृति और मनुष्य के बीच संबंध टूट गया है। आज आदमी आदमी की बनाई हुई चीजों से घिरा है; परमात्मा की याद भी आए तो कैसे आए? हजारों-हजारों मील तक फैले हुए सीमेंट के राज-पथ हैं, जिन पर घास भी नहीं उगती। आकाश को छूते हुए सीमेंट के गगनचुंबी महल हैं। लोहा और सीमेंट--उसमें आदमी घिरा है। उसमें फूल नहीं खिलते।
और आदमी जो भी बनाता है उसमें कुछ भी विकसित नहीं होता। वह जैसा है वैसे ही का वैसा होता है। आदमी जो बनाता है वह मुर्दा होता है। और जब हम मुर्दे से घिर जाएंगे तो हमें जीवन की याद कैसे आए?
महीनों बीत जाते हैं, न्यूयार्क या बंबई में रहनेवाले लोगों को, कि सूरज के दर्शन नहीं होते। फुरसत कहां है! भागदौड़ इतनी है। जमीन से आंख हटाने का अवसर कहां है! अगर ऐसे आकाश की तरफ देखकर चलो बंबई की सड़कों पर तो घर नहीं लौटोगे, अस्पताल में पाए जाओगे। रास्ता पार करना है, भागती कारों की दौड़ है, संभलकर चलना है। गए वे दिन जब कोई आकाश की तरफ देखता। अब तो जमीन पर देखकर भी बचे हुए घर लौट आओ वापस तो बहुत है।
वर्षो बीत जाते हैं, लोग पूर्णिमा के चांद को नहीं देख पाते। कब पूर्णिमा आती है, चली जाती है, पता कहां चलता है! और पता भी चलता है तो कैलेंडर में चलता है। अब कैलेंडर में पूर्णिमा होती है कहीं? पूर्णिमा आकाश में होती है। लोग चांद को पहचानते भी हैं तो फिल्मों में देख कर पहचानते हैं कि अरे, चांद है! कहानियां रह गई हैं।
लंदन में कुछ वर्षो पहले बच्चों का एक सर्वे किया गया। दस लाख बच्चों
ने एक अजीब बात कही कि उन्होंने गाय-बैल नहीं देखे हैं। लंदन में कहां गाय-बैल! मगर अभागा है वह आदमी जिसने गाय की आंखों में नहीं झांका। क्योंकि आंखों में अब भी एक शाश्वतता है, एक सरलता है, एक गहराई है--जो आदमी की

आंखों ने खो दी है! आदमी की आंखों में वैसी गहराई पानी हो तो कोई बुद्ध मिले तब; मगर गाय की आंख में तो है ही।
अभागे हैं वे बच्चे जिन्होंने गाय नहीं देखी। अभागे हैं वे बच्चे जिन्होंने खेत नहीं देखे। लंदन के बहुत से बच्चों ने, लाखों बच्चों ने बताया कि उन्होंने अभी तक खेत नहीं देखे। और जिसने खेत नहीं देखा उसे परमात्मा की याद आएगी? जिसने बढ़ती हुई फसलें नहीं देखीं, जिसने बढ़ती हुई फसलों का चमत्कार नहीं देखा। जहां जीवन बढ़ता है, फलता है, फूलता है, वहीं तो रहस्य का पदार्पण होता है।
मनुष्य नास्तिक हुआ है, नास्तिकता के कारण नहीं; मनुष्य नास्तिक हुआ है, आदमी के ही द्वारा बनाई चीजों में घिर गया है बहुत। हमारी हालत वैसी है जैसे कभी छोटे-छोटे बच्चे कहीं कोई मकान बन रहा हो... मैंने देखा, एक दिन मैं रास्ते से गुजरता था। एक मकान बन रहा था। रेत के और ईंटों के ढेर लगे थे। एक छोटे बच्चे ने खेल-खेल में अपने चारों तरफ ईंटें जमानी शुरू कीं। फिर ईंटें इतनी जमा लीं उसने कि वह उसके नीचे पड़ गया।
फिर वह घबड़ाया, अब निकले कैसे बाहर? चिल्लायाः "बचाओ!" खुद ही जमा ली हैं ईंटें अपने चारों तरफ। अब ईंटों की कतार ऊंची हो गई है। अब वह घबड़ा रहा है कि मैं फंस गया।
उस दिन उस बच्चे को अपनी ही जमाई हुई ईंटों में फंसा हुआ देख कर मुझे आदमी की याद आई। ऐसा ही आदमी फंस गया है। अपनी ही ईंटें हैं जमाई हुई, लेकिन परमात्मा और स्वयं के बीच एक चीन की दीवाल खड़ी हो गई है।
जगजीवन का जीवन प्रारंभ हुआ प्रकृति के साथ। कोयल के गीत सुने होंगे, पपीहे की पुकार सुनी होगी, चातक को टकटकी लगाए चांद को देखते देखा होगा। चमत्कार देखे होंगे कि वर्षा आती है और सूखी पड़ी हुई पहाड़ियां हरी हो जाती हैं। घास में फूल खिलते देखे होंगे। और गायों-बैलों के साथ रहना! न बातचीत, न अखबार। गाय-बैलों को पड़ी क्या अखबार की! न दिल्ली की खबर। गाय-बैलों को लेना-देना क्या है तुम्हारे प्रधानमंत्री क्या कर रहे हैं, क्या नहीं कर रहे हैं। कौन किसकी टांग खींच रहा है, कौन किसको गिरा रहा है--गाय-बैलों को लेना-देना क्या? गाय-बैल इस तरह की व्यर्थ बातों में पड़ते ही नहीं। गाय-बैलों के साथ रहते-रहते गाय-बैलों जैसे हो गए होंगे--सरल, निर्दोष, गैर-महत्वाकांक्षी। गाय को तो भूख लगती है तो घास चर लेती है। थक जाती है तो झाड़ के नीचे विश्राम कर लेती है। बजाते होंगे बांसुरी। जब गाय-बैल चरती होंगी तो जगजीवन बांसुरी बजाते होंगे।
चरवाहे अक्सर बांसुरी बजाते हैं। चरवाहे ही बांसुरी बजा सकते हैं, और कौन बजाएगा? जिसको बांसुरी बजाना आता है उससे परमात्मा बहुत दूर नहीं। और जो वृक्षों की छाया में बैठ कर बांसुरी बजा सकता है, उससे परमात्मा कितनी देर छिपा रहेगा? कैसे छिपा रहेगा? खुद ही बाहर निकल आएगा। अपने से प्रकट उसे होना पड़ेगा।
इसलिए कहता हूं, एक नई यात्रा पर चलते है। एक बे-पढ़े-लिखे आदमी के वचन हैं ये। प्रकृति के साथ-साथ बैठे-बैठे सत्संग की सूझ उठी जगजीवन को। छोटे ही थे, बच्चे ही थे, मगर सत्संग की सूझ उठी।
लोग सोचते हैं, शास्त्र पढ़ेंगे तो सत्संग की सूझ उठती है। नहीं, शास्त्र तो सत्संग से बचा देता है। शास्त्र तो स्वयं ही सत्संग का काम पूरा कर देता है। फिर सत्संग की कोई जरूरत नहीं रह जाती। सब तो लिखा है किताब में, सत्संग करने कहां जाते हो? पुस्तकालय की तरफ चले जाओ। सत्संग तो एक का करोगे, पुस्तकालय में तो सभी भरा पड़ा है। सारे जगत के ज्ञानी वहां मौजूद हैं। डूबो किताबों में; वहीं सब मिल जाएगा।
किताबों में कहीं डुबकी लगी है? किताबों के पहाड़ झूठे, किताबों के सागर झूठे, किताबों का परमात्मा झूठा। किताबों में तो नक्शे हैं, तस्वीरें हैं; असलियत कहां है? लेकिन किताबों में आदमी बड़ी बुरी तरह खो जाते हैं। शास्त्र में जो उलझ गया वह शास्ता की खोज पर नहीं निकलता। बैठे-बैठे झाड़ों के नीचे जगजीवन को गायों-बैलों को चराते, बांसुरी बजाते कुछ-कुछ रहस्य अनुभव होने लगा होगा। क्या है यह सब--यह विराट! जब तक तुम खुली रात आकाश के नीचे, घास पर लेट कर तारों को न देखो, तुम्हें

परमात्मा की याद आएगी ही नहीं। जब तक तुम पतझड़ में खड़े सूखे वृक्षों को फिर से हरा होते बसंत में न देखो, फिर नये अंकुर आते न देखो, जीवन के आगमन के ये पदचाप तुम्हें सुनाई न पड़े, तब तक तुम परमात्मा की याद न करोगे। या तुम्हारा परमात्मा शाब्दिक होगा, झूठा होगा। परमात्मा शब्द में परमात्मा नहीं है, रहस्य की अनुभूति में परमात्मा है।
यह रहस्य जगने लगा होगा: क्या है यह सारा विस्तार! मैं कौन हूं? मैं क्या हूं? इस हरी-भरी सुंदर दुनिया में मेरे होने का प्रयोजन क्या है? ऐसे कुछ प्रश्न--अनपढ़, बेबूझ जगजीवन के हृदय को आंदोलित करने लगे होंगे। साधुओं की तलाश शुरू हो गई। जब फुरसत मिल जाती तो साधुओं के पास पहुंच जाते। सुनते। जिसने प्रकृति को सुना है वह सदगुरुओं को भी समझ सकता है। क्योंकि सदगुरु महाप्रकृति की बातें कर रहे हैं। जो प्रकृति की पाठशाला में बैठा है वह महाप्रकृति के समझने में तैयारी कर रहा है, तैयार हो रहा है।
परमात्मा क्या है? इस प्रकृति के भीतर छिपे हुए अदृश्य हाथों का नामः
जो सूखे वृक्षों पर पत्तियां ले आता है; प्यासी धरती के पास जल से भरे हुए मेघ ले आता है; जो पशुओं की और पक्षियों की भी चिंता कर रहा है; जिसके बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता। अगोचर, अदृश्य, फिर भी उसकी छाप हर जगह है। दिखाई तो नहीं पड़ता पर उसके हाथों को इनकार कैसे करोगे? इतना विराट आयोजन चलता है, इस सब व्यवस्था से इनकार कैसे करोगे? फिर उस व्यवस्था को तुम प्रकृति का नियम कहो कि परमात्मा कहो, यह केवल शब्द की बात है।
सत्संग चलने लगा। और एक दिन अनूठी घटना घटी। चराने गए थे गाय-बैल को,
दो फकीर--दो मस्त फकीर वहां से गुजरे। उनकी मस्ती ऐसी थी कि कोयलों की कुहू-कुहू ओछी पड़ गई। पपीहों की पुकार में कुछ खास न रहा। झीलें देखी थीं, गहरी थीं, मगर इन आंखों के सामने कुछ भी नहीं। झीलें देखी थीं, शांत थीं, मगर यह शांति कुछ बात ही और थी। यह किसी और ही लोक की शांति थी। यह पारलौकिक थी।
बैठ गए उनके पास, वृक्ष के नीचे महात्मा सुस्ताते थे। उनमें एक था बुल्लेशाह--एक अदभुत फकीर, जिसके पीछे दीवानों का एक पंथ चलाः बावरी। दीवाना था, पागल ही था। थोड़े से पागल संत हुए हैं। इतने प्रेम में थे कि पागल हो गए। ऐसे मस्त थे कि डगमगा कर चलने लगे। जैसे शराब पी हो--शराब जो ऊपर से उतरती है; शराब जो अनंस से आती है!
एक तो उनमें बुल्लेशाह था, जिसे देख कर जगजीवन दीवाने हो गए। कहते हैं बुल्लेशाह को जो देखता था वही दीवाना हो जाता था। मां-बाप अपने बच्चों को बुल्लेशाह के पास भेजते नहीं थे। जिस गांव में बुल्लेशाह आ जाता, लोग अपने बच्चों को भीतर कर लेते थे। खबरें थीं कि वह दीवाना ही नहीं है, उसकी दीवानगी संक्रामक है। उसके पीछे बावरी पंथ चला, पागलों का पंथ चला।
पागल से कम में परमात्मा मिलता भी नहीं। उतनी हिम्मत तो चाहिए ही। तोड़ कर सारा तर्कजाल, छोड़ कर सारी बुद्धि-बुद्धिमत्ता, डुबा कर सब चतुराई-चालाकी जो चलते हैं वे ही पहुंचते हैं; उन्हीं का नाम पागल है।
एक तो उसमें बुल्लेशाह था और दूसरे थे गोविंदशाहः बुल्लेशाह के ही एक संगी-साथी। दोनों मस्त बैठे थे। जगजीवन भी बैठ गया--छोटा बच्चा। बुल्लेशाह ने कहा: "बेटे, आग की जरूरत है, थोड़ी आग ले आओ।"
वह भागा। इसकी ही प्रतीक्षा करता था कि कोई आज्ञा मिल जाए, कोई सेवा
का मौका मिल जाए।
सदगुरु के पास वे ही पहुंच सकते हैं जो सेवा की प्रतीक्षा करते हैं-- कोई मौका मिल जाए। सेवा का कोई मौका मिल जाए। और जुड़ने का नाता, और कोई उपाय भी तो नहीं है।
आग ही नहीं लाया जगजीवन, साथ में दूध की एक मटकी भी भर लाया। भूखे होंगे, प्यासे होंगे। आग ले आया तो दोनों ने अपने हुक्के जलाए। दूध ले आया तो दूध पीया। लेकिन बुल्लेशाह ने जगजीवन को कहा कि दूध तो तू ले आया, लेकिन मुझे ऐसा लगता है, किसी को घर में बता कर नहीं आया।
बात सच थी। जगजीवन चुपचाप दूध ले आया था, पिता को कह नहीं आया था। थोड़ा ग्लानि भी अनुभव कर रहा था, थोड़ा अपराध भी अनुभव कर रहा था कि लौट कर पिता

को क्या कहूंगा? पर बुल्लेशाह ने कहाः "घबड़ा मत। जरा भी चिंता न कर। जो उसे देता है उसे बहुत मिलता है।"
वे तो दोनों फकीर कह कर और चल भी दिए। जगजीवन सोचता घर चला आया कि "जो उसे देता है उसे बहुत मिलता है, इसका मतलब क्या?" घर पहुंचा, जाकर मटकी उघाड़ कर देखी, जिसमें से दूध ले गया था। आधा दूध तो ले गया था, मटकी आधी खाली छोड़ गया था, लेकिन मटकी भरी थी।
यह तो प्रतीक कथा है, सांकेतिक है। यह कहती है, जो उसके नाम में देते हैं, उन्हें बहुत मिलता है। देने वाले पाते हैं, बचाने वाले खो देते हैं। हसीद फकीर झुसिया ने कहा है: "जो मैंने दिया, बचा। जो मैंने बचाया, खो गया।" ये उसके आखिरी वचन थे अपने शिष्यों के लिए कि देना। जितना दे सको देना। जो हो वही देना। देने में कभी कंजूसी मत करना क्योंकि मैंने जो दिया, वह बचा। आज मैं अपने साथ वही ले जा रहा हूं जो मैंने दिया। और जो मैंने बचाया था वह सब खो गया है, आज मेरे पास नहीं है। मेरे हाथ खाली हैं। इस जगत का एक गणित है, एक अर्थशास्त्र हैः बचाओ तो बचेगा, दोगे तो खो जाएगा। उस जगत का अर्थशास्त्र बिल्कुल उलटा है। वहां तो दोगे तो बचेगा, बचाओगे तो खो जाएगा।
भरी देखेकर जगजीवन को होश आया कि किन अपूर्व लोगों को मैं छोड़ कर चला
आया हूं। भागा। फकीर तो जा चुके थे मगर फिर अब रुकने की कोई बात न थी। भागता ही रहा, खोजता ही रहा। मीलों दूर जाकर फकीरों को पकड़ा। जानते हो, क्या मांगा? बुल्लेशाह से कहा, मेरे सिर पर हाथ रख दें। सिर्फ मेरे सिर पर हाथ रख दें। जैसे मटकी भर गई खाली, ऐसा आशीर्वाद दे दें कि मैं भी भर जाऊं। मुझे चेला बना लें।
छोटा बच्चा! बहुत समझाने की कोशिश की बुल्लेशाह ने कि तू लौट जा। अभी उम्र नहीं तेरी। अभी समय नहीं आया। लेकिन जगजीवन जिद पकड़ गया। उसने कहा, मैं छोड़ूंगा नहीं पीछा। हाथ रखना पड़ा बुल्लेशाह को।
गुरु हाथ रखता ही तब है जब तुम पीछा छोड़ते ही नहीं। तो ही हाथ रखने का मूल्य होता है। और कहते हैं, क्रांति घट गई। जो महावीर को बारह साल मौन की साधना करने से घटी थी, वह बुल्लेशाह के हाथ रखते जगजीवन को घट गई। अंतर बदल गया। काया पलट गई। चोला कुछ से कुछ हो गया। उस हाथ का रखा जाना--जैसे एक लफट उतरी। जला गई जो व्यर्थ था। सोना कुंदन हो गया। एक क्षण में हुआ।
ऐसी क्रांति तब हो सकती है जब मांगनेवाले ने सच में मांगा हो। यूं ही औपचारिक बात न रही हो कि मेरे सिर पर हाथ रख दें। हार्दिकता से मांगा हो, समग्रता से मांगा हो, परिपूर्णता से मांगा हो, रोएं-रोएं से मांगा हो। मांग ही हो, प्यास ही हो और भीतर कोई दूसरा विवाद न हो; शक न हो, संदेह न हो। निस्संदिग्ध मांगा हो कि मेरे सिर पर हाथ रख दें। मुझे भर दें जैसे मटकी भर गई!
छोटा बच्चा था; न पढ़ा न लिखा। गांव का गंवार चरवाहा। मगर मैं तुमसे फिर कहता हूं कि अक्सर सीधे-सरल लोगों को जो बात सुगमता से घट जाती है वही बात जो बुद्धि से बहुत भर गए हैं और इरछे-तिरछे हो गए हैं, उनको बड़ी कठिनाई से घटती है। युगपत क्रांति हो गई। जिसको झेन फकीर "सडन इनलाइटमेंट" कहते हैं, एक क्षण में बात हो गई--ऐसी जगजीवन को हुई।
प्यास, त्वरा, तीव्रता, अभीप्सा--इन शब्दों को याद रखो। कुतूहल से नहीं होगा कि चलो देखें, क्या होता है अगर गुरु सिर पर हाथ रखे। कुछ भी नहीं होगा। और जब कुछ भी नहीं होगा तो तुम कहोगे कि जब फिजूल की बात है। जिज्ञासा से रखें कि शायद कुछ हो, तो भी नहीं होगा। जब तक कि अभीप्सा से न रखो। होना ही है, हुआ ही है, इधर हाथ छुआ कि वहां हो जाना है--ऐसी श्रद्धा से मांगो तो जरूर हो जाता है; निश्चित हो जाता है। सदा हुआ है। इस जगत के शाश्वत नियमों में से एक नियम है कि जो पूर्णता से यासा होगा उसकी प्रार्थना सुन ली जाती है। उसकी प्रार्थना पहुंच जाती है।
उस दिन बुल्लेशाह ने ही हाथ नहीं रखा जगजीवन पर, बुल्लेशाह के माध्यम
से परमात्मा का हाथ जगजीवन के सिर पर आ गया। टटोल तो रहा था, तलाश तो रहा था। बच्चे की ही तलाश थी--निर्बोध थी, अबोध थी। लेकिन प्रकृति से झलकें

मिलनी शुरू हो गई थीं। कोई रहस्य आवेष्टित किए है सब तरफ से इसकी प्रतीति होने लगी थी, इसके आभास शुरू हो गए थे।
आज जो अचेतन में जगी हुई बात थी, चेतन हो गई। जो भीतर पक रही थी, आज उभर आई। जो कल तक कली थी, बुल्लेशाह के हाथ रखते ही फूल हो गई। रूपांतरण क्षण में हो गया। जगजीवन ने फिर कोई साधना इत्यादि नहीं की। बुल्लेशाह से इतनी ही प्रार्थना कीः कुछ प्रतीक दे जाएं। याद आएगी बहुत, स्मरण होगा बहुत। कुछ और तो न था, बुल्लेशाह ने अपने हुक्के में से एक सूत का धागा खोल लिया-- काला धागा; वह दाएं हाथ पर बांध दिया जगजीवन के। और गोविंदशाह ने भी अपने हुक्के में से एक धागा खोला--सफेद धागा, और वह भी दाएं हाथ पर बांध दिया। जगजीवन को मानने वाले लोग जो सत्यनामी कहलाते हैं--थोड़े से लोग हैं--
वे अभी भी अपने दाएं हाथ पर काला और सफेद धागा बांधते हैं। मगर उसमें अब कुछ सार नहीं है। वह तो बुल्लेशाह ने बांधा था तो सार था। कुछ काले-सफेद धागे में रखा है क्या? कितने ही बांध लो, उनसे कुछ होने वाला नहीं है। वह तो जगजीवन ने मांगा था, उसमें कुछ था। और बुल्लेशाह ने बांधा था, उसमें कुछ था। न तो तुम जगजीवन हो, न बांधने वाला बुल्लेशाह है। बांधते रहो।
इस तरह मुर्दा प्रतीक हाथ में रह जाते हैं। कुछ और नहीं था तो धागा ही बांध दिया। और कुछ पास था भी नहीं। हुक्का ही रखते थे बुल्लेशाह, और कुछ पास रखते भी नहीं थे। लेकिन बुल्लेशाह जैसा आदमी अगर हुक्के का धागा भी बांध दे तो रक्षाबंधन हो गया। उसके हाथ से छूकर साधारण धागा भी असाधारण हो जाता है।
और प्रतीक भी था। गोविंदशाह ने सफेद धागा बांध दिया, बुल्लेशाह ने काला धागा बांध दिया। मतलब? मतलब कि काले और सफेद दोनों ही बंधन हैं। पाप भी बंधन है, पुण्य भी बंधन है। शुभ भी बंधन है, अशुभ भी बंधन है। यह बुल्लेशाह की देशना थी। यह उनका मौलिक जीवन-मंत्र था।
अच्छा तो बांध लेता है, जैसे बुरा बांधता है। नरक भी बांधता है, स्वर्ग भी बांधता है। इसलिए तुम बुरे से तो छूट ही जाना, अच्छे से भी छूट जाना। न तो बुरे के साथ तादात्म्य करना, न अच्छे के साथ तादात्म्य करना। तादात्म्य ही न करना। तुम तो साक्षी मानना अपने को कि मैं दोनों का द्रष्टा हूं। लोहे की जंजीरें बांधती हैं, सोने की जंजीरें भी बांध लेती हैं। जिसको तुम पापी कहते हो वह भी कारागृह में है, जिसको तुम पुण्यात्मा कहते हो वह भी कारागृह में है। चौंकोगे तुम।
चोरी तो बांधती ही है, दान भी बांध लेता है। अगर दान में दान की अकड़ है
कि मैंने दिया--अगर यह भाव है तो तुम बंध गए। जहां मैं है वहां बंधन है। अगर दान में यह अकड़ नहीं है कि मैंने दिया, परमात्मा का था, उसी ने दिया, उसी ने लिया, तुम बीच में आए ही नहीं; तो दान की तो बात ही छोड़ो, चोरी भी नहीं बंधती। अगर तुम अपने सारे कर्ता-भाव को परमात्मा पर छोड़ दो, फिर कुछ भी नहीं बांधता। फिर तुम नरक में भी रहो, तो मोक्ष में हो। कारागृह में भी स्वतंत्र हो। शरीर में भी जीवनमुक्त हो। लेकिन दोनों के साक्षी बनना। ऐसा सूक्ष्म संदेश था उसमें। यह कुछ कहा नहीं गया। कहने की जरूरत न थी। वह जो हाथ रखा था गुरु ने और वह जो जीवन-ऊर्जा प्रवाहित हुई थी और भीतर जो स्वच्छ स्थिति पैदा हुई थी, उस स्वच्छ स्थिति को कुछ कहने की जरूरत न थी। ये प्रतीक पर्याप्त थे।
उसी दिन से जगजीवन शुभ-अशुभ से मुक्त हो गए। उन्होंने घर भी नहीं छोड़ा। बड़े हुए, पिता ने कहा शादी कर लो, तो शादी भी कर ली। गृहस्थ ही रहे। कहां जाना है? भीतर जाना है! बाहर कोई यात्रा नहीं है। काम-धाम में लगे रहे और सबसे पार और अछूते--जल में कमलवत।
ऐसे इस गैर-पढ़े-लिखे लेकिन असाधारण दिव्य पुरुष के वचनों में हम प्रवेश करें।
फिर नजर में फूल महके दिल में फिर शम्एं जलीं
फिर तसब्बुर ने लिया उस बज्म में जाने का नाम
जिनके भीतर प्यास है, उन्हें तो इस तरह की यात्राओं की बात ही बस पर्याप्त होती है। फिर नजर में फूल महके... उनकी आंखें फूलों से भर जाती हैं।

दिल में फिर शम्एं जलीं... फिर उनके हृदय में दीये जगमगाने लगते हैं, दीवाली हो जाती है।
फिर तसब्बुर ले लिया उस बज्म में जाने का नाम
उस प्यारे की महफिल में जाने की बात हो किसी बहाने--फिर बहाना कबीर हों कि नानक, कि बहाना जगजीवन हों कि दादू, भेद नहीं पड़ता। उसकी बज्म, उसकी महफिल में जाने की बात! फिर राजपथ से गए कि पगडंडियों से गए, कि बुद्धों का हाथ पकड़ कर गए कि कृष्ण का हाथ पकड़ कर गए, कोई फर्क नहीं पड़ता। असली बात उसकी महफिल में जाने की बात। उसकी बात ही उठते आंखों में फूल उठ आते हैं। हृदय रंग से भर जाता है, रोशनी जग जाती है।
तुमसे मन लागो है मोरा।
जगजीवन कहते हैंः मेरा मन तुमसे लग गया।
और जब मन उससे लग जाता है तो मन मिट जाता है। मन का उससे लग जाना मन का मिट जाना है। जब तक मन और-और चीजों से लगा होता है तब तक बचता है। धन से लगाओ, बचेगा। पद से लगाओ, बचेगा। जब तक मन को तुम किसी और चीज से लगाओगे संसार में, बचता रहेगा। जैसे ही परमात्मा से लगाओगे कि तुम चकित हो जाओगे। उससे लगा नहीं कि गया नहीं। उसके साथ बच ही नहीं सकता, उसमें डूब जाता है, उसमें लीन हो जाता है। उस निराकार के साथ कोई आकार बच नहीं सकता। मन आकार है। उस अरूप के साथ कोई रूप टिक नहीं सकता। मन एक रूप है। निराकार से जुड़ो कि निराकार हुए।
तुमसों मन लागो है मोरा।
जिंदगी में अगर लगाना ही हो मन तो परमात्मा से लगाना, अन्यथा तुम हारे
ही जियोगे, हारे ही मरोगे। तुम्हारी जिंदगी की सारी कथा हारने की एक कथा होगी। और ऐसा नहीं है कि जिंदगी में जीत नहीं थी। जीत हो सकती थी लेकिन आदमी अकेला कभी नहीं जीतता। अकेला तो सदा हारता है। जब भी जीत होगी, परमात्मा के साथ होती है। उसके साथ हो जाओ, असंभव संभव हो जाता है। उससे अलग खड़े हो जाआ, संभव भी असंभव हो जाता है।
सुनता हूं बड़े गौर से अ.फसाना-ए-हस्ती
कुछ ख्वाब है, कुछ अस्ल है, कुछ त.र्जे-अदा है
इस जिंदगी में सब कुछ है लेकिन अगर गौर से देखोगे--
सुनता हूं बड़े गौर से अ.फसाना-ए-हस्ती
अगर इस जिंदगी की कथा को, कहानी को गौर से परखोगे, जांचोगे, कसौटी पर कसोगे तो पाओगे--कुछ ख्वाब है। इसमें कुछ तो बिल्कुल सपना है--तुम्हारा ही निर्मित, तुम्हारा आरोपित।
कुछ ख्वाब है, कुछ अस्ल है--लेकिन सभी कुछ सपना भी नहीं है, इसमें कुछ अस्ल भी है।
... कुछ तर्जे-अदा है। और कुछ तो इस कथा में सिर्फ कहने की शैली है और कुछ भी नहीं।
लेकिन ध्यान रखना, अगर निन्यानबे प्रतिशत भी यहां स्वप्न है, माया है
तो भी एक प्रतिशत ब्रह्म मौजूद है। उस एक प्रतिशत को ही पकड़ लो तो जो निन्यानबे प्रतिशत स्वप्न हैं, अपने आप तिरोहित हो जाएंगे। छोटा सा दीया भी गहन से गहन अंधकार को तोड़ देता है। फिर अंधकार हजारों साल पुराना हो तो भी तोड़ देता है। अंधकार यह नहीं कह सकता कि मैं बहुत पुराना हूं, तू अभी आज का छोकरा है। ऐ दीये, तू मुझे न तोड़ सकेगा। मैं अति प्राचीन हूं, समय लगेगा। दीया जला कि अंधकार गया--एक दिन का हो कि करोड़ वर्ष का हो। तुम्हारे सपने कितने ही पुराने हों... और पुराने हैं। जन्मों-जन्मों यही स्वप्न तुमने देखे हैं। इतने बार देखे हैं, बार-बार देखे हैं कि सपने भी सच मालूम होने लगे हैं। तुमने ख्याल किया कभी? अगर एक ही झूठ को बार-बार दोहराए जाओ तो वह सच मालूम होने लगता है।
एडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्म-कथा "मैनकेम्फ" में लिखा है कि सच और झूठ में ज्यादा फर्क नहीं है। इतना ही फर्क है कि जिन झूठों को बहुत बार दोहराया जाता है वे सच हो जाते हैं। बस दोहराते रहो।
इसी पर तो सारी दुनिया का विज्ञान खोज करता है और हैरान होता है। आदमी कैसे-कैसे अंधविश्वासों में पड़ा रहा है। सदियां बीत गईं, उन अंधविश्वासों

की जड़ें कहां हैं? पुनरुक्ति में, दोहराने में। बस दोहराए जाओ। तुम्हारे पिता ने कुछ दोहराया था, तुम अपने बच्चों से दोहरा दो। दोहराए चले जाओ। पंडित हैं, पुजारी हैं, मौलवी हैं, दोहराए चले जाओ।
जब लोग एक ही बात को बार-बार सुनते हैं तो सोचने लगते हैं कि जहां धुआं है, वहां आग भी होगी। कुछ न कुछ तो सच होगा ही। एक बार सुनते हैं तो शायद शक करें; दूसरी बार सुनते हैं, तीसरी बार सुनते हैं, धीरे-धीरे बात बैठती जाती है। लकीर गहरी हो जाती है। रसरी आवत-जात है सिल पर पड़त निशान। पत्थरों पर निशान पड़ जाते हैं तो आदमी का मन... आदमी का मन तो पत्थर नहीं है। आदमी का मन तो बहुत कोमल है, मोम की तरह है। निशान बड़ी जल्दी पड़ जाते हैं।
इसी आधार पर तो सारा विज्ञापन जीता है। बस दोहराए चले जाओ। फिकर ही मत करो कोई सुन रहा है कि नहीं। तुम सिर्फ दोहराए चले जाओ। मनुष्य विज्ञापन से जी रहा है। तुम कुछ भी सोचते हो, जब तुम जाकर दुकान में पूछते होः बिनाका टूथपेस्ट। तो तुम सोचते हो, तुम कुछ सोच-समझ कर पूछ रहे हो? कि तुमने कुछ विचार किया है कि कौन सा टूथपेस्ट वैज्ञानिक रूप से दांतों के लिए उपयोगी है? तुमने डाक्टर से पूछा है? डाक्टरों की सलाह तुम मानोगे? एक दफे एक टूथपेस्ट-कंपनी ने यह प्रयोग किया कि एक टूथपेस्ट का विज्ञापन दिया दस दुनिया के सब से बड़े दांतों के डाक्टरों के नामों के साथ। उसकी बिक्री हुई ही नहीं। दूसरा टूथपेस्ट विज्ञापन किया मरलिन मनरो--अमरीका की बहुत प्रसिद्ध अभिनेत्री के नग्न चित्र के साथ। उसके दांत, मुस्कुराती हुई मनरो, और मुस्कुराहट कि जिमी कार्टर को झेंपा दे! खूब बिक्री हुई। और दस बड़े डाक्टर... पहले तो बड़े डाक्टरों का नाम जानता कौन? होंगे कोई, किसको लेना-देना! और डाक्टरों की सुनता कौन? और डाक्टरों का प्रभाव क्या पड़ता है! लेकिन सुंदर अभिनेत्री! अब हेमामालिनी तुम्हारे कान में कुछ कहे, उसकी सुनोगे कि नहीं? फुसफुसा कर कहा जाएः "बिनाका टूथपेस्ट।" फिर सारे दुनिया के डाक्टर चिल्लाते रहें कुछ और, कौन फिकर करता है।
दोहराए जाओ। और इस ढंग से दोहराओ कि लोगों की कामनाएं और वासनाओं में उसके अंकन हो जाएं। कोई भी चीज बेचनी हो, नग्न स्त्री का विज्ञापन देना पड़ता है। चीजें नहीं बिकतीं, हमेशा नग्न स्त्री बिकती है। ऐसी चीजें जिनसे कुछ लेना-देना नहीं स्त्री का, उनको भी बेचना हो तो नग्न स्त्री को खड़ा कर दो। पुरुष की आंखें एकदम फैल जाती हैं।
और जब आंखें फैली होती हैं... तुम चकित होओगे, यह मैं ऐसे ही नहीं कह रहा हूं कोई, काव्य की भाषा में नहीं कह रहा हूं कि आंखें फैल जाती हैं, विज्ञान की भाषा में आंखें फैल जाती हैं। वह जो तुम्हारी आंख की पुतली है, जब तुम नग्न स्त्री को देखते हो, एकदम बड़ी हो जाती है। क्योंकि तुम चाहते हो कि पूरी की पूरी गप कर जाओ। तो छोटा-सा छेद पुतली का, उसमें से कहां जाएगी? हेमामालिनी जरा मोटी भी है! तो आंख की पुतली एकदम बड़ी हो जाती है। वह तुम्हारी आंख की पुतली पी रही है। वह पी रही है हेमामालिनी को, मगर साथ में बिनाका टूथपेस्ट भी चला जा रहा है।
फिर जगह-जगह विज्ञापन। अखबार--बिनाका टूथपेस्ट। रेडियो--बिनाका गीतमाला। फिर सीलोन हो कि आदिस अबाबा--बिनाका। रास्ते पर निकलो, बड़े-बड़े अक्षरों में बिनाका। जहां जाओ वहां बिनाका। तुम्हें ख्याल भी नहीं आता कि क्या हो रहा है। एक दिन तुम जाते हो दुकान पर और दुकानदार पूछता है, कौन सा टूथपेस्ट? और तुम कहते हो, बिनाका! और तुम सोचते हो तुम बड़े बुद्धिमान आदमी हो? तुम बुद्धू हो। तुम बुद्धू बनाए गए हो। चीजें दोहराई गई हैं और तुम्हारे मन में बिठा दी गई हैं। तुम सिर्फ संस्कारित कर दिए गए हो। जिंदगी पुनरुक्ति से चल रही है। और इसीलिए तुम्हारे चारों तरफ लोग जो मानते हैं वही तुम भी मान लेते हो। सब लोग धन की दौड़ में लगे हैं, तुम भी लग जाते हो। अ भी दौड़ रहा है, ब भी दौड़ रहा है, सभी दौड़ रहे हैं। सभी धन की दौड़ में दौड़ रहे हैं। सभी कहते हैं, धन मूल्यवान है। तुम भी दौड़े। सब दिल्ली जा रहे हैं, तुमने उठा लिया झंडा कि चलो दिल्ली; कि अब दिल्ली से पहले रुकना ही नहीं है।

चारों तरफ एक हवा होती है। उस हवा में आदमी बहता है। लहरें उठती हैं, लहरों के साथ आदमी चले जाते हैं। समझदार आदमी वही है जो अपने को इन लहरों से बचाए। नहीं तो तुम धक्के खाते रहे, कितने जन्मों तक खाते ही रहोगे। यहां परमात्मा को खोजने वाले लोग तो बहुंत कम हैं, न के बराबर हैं। उनका तुम्हें पता ही न चलेगा अगर तुम खोजने ही न निकलो। धन को खोजने वाले तो सब जगह हैं। सभी वही कर रहे हैं। तुम्हारे पिता भी वही कर रहे हैं, तुम्हारे भाई भी वही कर रहे हैं, तुम्हारा परिवार भी वही कर रहा है, तुम्हारे पड़ोसी भी वही कर रहे हैं। सारी दुनिया धन खोज रही है। इतने लोग गलत थोड़े ही हो सकते हैं। इतने लोग खोज रहे हैं तो ठीक ही खोज रहे होंगे।
इसलिए तुम्हारा मन हजार-हजार चीजों में उलझ जाता है। तुम ऐसी चीज खरीद लेते हो जिनकी तुम्हें जरूरत नहीं है। लेकिन पड़ोसियों ने खरीदी हैं, तुम कर भी क्या सकते हो? जब पड़ोसी खरीदते हैं तो तुम्हें भी खरीदनी पड़ती हैं। तुम ऐसे कपड़े पहने हुए हो, जो तुम्हें न रुचते हैं न जंचते हैं, न सुखद हैं। अब हिंदुस्तान जैसे देश में भी लोग टाई बांधे हुए हैं। यहां गर्मी से वैसे ही मरे जा रहे हो। टाई ठंडे मुल्क के लिए जरूरी है, उपयोगी है ताकि गले में कोई संध न रह जाए जरा भी। ठंडी हवा भीतर न जा सके। ठंडे मुल्कों में टाई बिल्कुल ठीक है लेकिन गर्म मुल्क...! तुम टाई बांधे हुए हो, गलफांस--अपने हाथ से ही फांसी लगाए बैठे हो। मगर बैठे हैं लोग।
ठंडे मुल्कों में लोग जूते और मोजे दिन भर पहने रहते हैं, स्वाभाविक है। मगर तुम किसलिए पहने हुए हो? पसीने से तरबतर हो रहे हो मगर मोजे नहीं उतार सकते, जूते नहीं उतार सकते। उसके बिना साहबी चली जाती है।
लोग जीवन को सोच कर नहीं जी रहे हैं, सिर्फ अनुकरण कर रहे हैं अंधा। जो दूसरे कर रहे हैं वैसा ही तुम भी कर रहे हो, तो तुम शायद परमात्मा तक कभी नहीं पहुंच पाओगे। क्योंकि तुम्हारा मन इतना छितर जाएगा, इतना बिखर जाएगा खंड-खंडों में। और परमात्मा को पाने के लिए अखंड मन चाहिए। और परमात्मा मांग करता है कि पूरा मन मेरी तरफ हो तो ही तुम मुझे पाने के हकदार हो। वह उसकी शर्त है। उससे कम शर्त पर उसे कोई पाता नहीं।
तुमसों मन लागो है मोरा!
लेकिन लग गया जगजीवन का मन। प्रकृति से रस जुड़ते-जुड़ते एक दिन बुल्लेशाह से रस जुड़ गया। जो प्रकृति से रस जोड़ेगा उसे आज नहीं कल सदगुरु मिल जाएगा।
तो मैं तुमसे कहता हूं, मंदिर जाओ न जाओ चलेगा; लेकिन कभी वृक्षों के पास जरूर बैठना; नदियों के पास जरूर बैठना; सागर में उठती हुई उत्ताल तरंगों को जरूर देखना; हिमाच्छदित शिखर हिमालय के जरूर दर्शन करना। फूलों से दोस्ती बनाओ। वृक्षों से बातें करो। हवाओं में नाचो। वर्षा से नाता जोड़ो--और तुम सदगुरु को खोज लोगे। क्योंकि न तो वृक्ष झूठ बोलेंगे तुमसे, न नदियां झूठ बोलेंगी, न पक्षी झूठ बोलेंगे। इन्हें झूठ का कुछ पता नहीं है। झूठ आदमी की ईजाद है। ये विज्ञापन भी नहीं करेंगे लेकिन उनकी मौजूदगी, उनकी शांति, उनका सन्नाटा, उनका उत्सव। यह चल रहा सतत उत्सव, यह प्रकृति का चौबीस घंटे चल रहा नृत्य--यह तुम्हें कितनी देर तक दूर रखेगा? जल्दी ही तुम्हें रहस्य का अनुभव होगा, विस्मय जगेगा, आश्चर्य का भाव उठेगा। जल्दी ही तुम सदगुरु को खोजने में समर्थ हो जाओगे।
और ध्यान रखना, एक पुरानी इजिप्ती कहावत तुम्हें मैं दोहराऊं। इजिप्त
के पुराने फकीरों ने कहा है कि जब शिष्य राजी होता है तो गुरु प्रकट होता है।
ऐसे ही बुल्लेशाह जगजीवन के जीवन में प्रकट हुए। अचानक! बांसुरी बजाता होगा, गाय चराता होगा। बुल्लेशाह का आना, इसे आग लेने भेजना, बुल्लेशाह का इसकी आंखों में आंख डालकर देखना, इसके सिर पर हाथ रखना, इसके हाथ में प्रेम की राखी बांध देना। जरूर इसकी प्यास इतनी प्रगाढ़ हो गई होगी कि सरोवर इसकी तरफ चला; कि सरोवर ने इसकी तलाश की।
और फिर तो जगजीवन का मन पूरा का पूरा परमात्मा में लग गया। वह जो संस्पर्श हुआ गुरु का, उसने उसके सारे मन को एक प्रज्वलित अग्नि बना दिया। तुमसों मन लागो है मोरा!

हम तुम बैठे रही अटरिया, भला बना है जोरा
और कहता है, अब तो खूब मजा हो रहा है, खूब रस बह रहा है। यह भी खूब जोड़ी बनी है हमारी और तुम्हारी। इसी की तलाश है।
तुम जब किसी स्त्री के प्रेम में पड़े हो या किसी पुरुष के प्रेम में पड़े हो तब भी तुम परमात्मा की ही तलाश कर रहे हो, हालांकि तुम्हारी तलाश अंधी है। और चूंकि परमात्मा को तुम इस अंधे ढंग से तलाश रहे हो, तुम असफल होओगे। क्या तुम्हें पता है कि सभी प्रेम असफल हो जाते हैं इस पृथ्वी पर? और सभी प्रेम पीछे मुंह में कड़ुवा स्वाद छोड़ जाते हैं।
क्यों? कारण क्या है? कारण है अपेक्षा। जब तुम किसी स्त्री के प्रेम में पड़ते हो तो तुम साधारण स्त्री नहीं मानते हो उसे; मान ही नहीं सकते। तुम मानते हो अद्वितीय, दिव्य प्रतिमा। और फिर धीरे-धीरे तुम पाते हो, मिट्टी की है। ऐसी मिट्टी की जैसी और स्त्रियां हैं। जरा भेद नहीं है। जब कोई स्त्री किसी पुरुष के प्रेम में पड़ती है तो परमात्मा के ही प्रेम में पड़ती है। वह पुरुष में परमात्मा को खोजना शुरू करती है और नहीं पाती है। तब विषाद मन को पकड़ लेता है। लगता है जैसे धोखा दिया गया। तब धोखे की प्रतीति में क्रोध उठता है।
पति-पत्नी अगर सतत कलह करते रहते हैं तो उसका कारण क्या है? जो कारण
वे बताते हैं उनमें मत उलझना। उन कारणों का कोई मूल्य नहीं है। पति कहे कि आज रोटी में नमक कम था इसलिए झगड़ा हो गया, कि पत्नी कहे कि पति आज रात देर से लौटा घर इसलिए झगड़ा हो गया। ये तो बहाने हैं झगड़े के। अगर पति घर में ही बैठा रहे तो भी झगड़ा हो जाएगा कि तुम यहीं क्यों बैठे हो?
मुल्ला नसरुद्दीन शाह की पत्नी उससे झगड़ती रहती कि तुम हमेशा बकवास क्यों करते हो? मैंने उससे एक दिन कहा कि तू बकवास बंद ही कर दे, अब यही झगड़े का कारण है। तो उसने कहा, अच्छा आज मैं कसम खाकर जाता हूं। वह जाकर बिल्कुल चुप बैठ गया। घड़ी-भर बाद पत्नी बोली कि तुम चुप क्यों बैठे हो? बोलते क्यों नहीं? क्या लकवा मार गया है?
बोले तो मौत, न बोले तो मौत। बोलो तो फंसो, न बोलो तो फंसो। अगर पति दिन
भर घर में रहे तो पत्नी पूछती है कि बात क्या है? तुम यहीं-यहीं क्यों चक्कर काट रहे हो? काम-धाम नहीं करना है? अगर काम-धाम के लिए जाए तो पूछती है, तुम्हें काम ही धाम पड़ा है। तुम्हें मेरी कोई चिंता नहीं है।
अगर गौर से देखोगे तो पति-पत्नी के झगड़े के भीतर में छोटी-छोटी बातें
तो सिर्फ निमित्त हैं। असली झगड़ा कुछ और है। दोनों ने धोखा खाया है। दोनों ने सोचा था किसी दिव्य प्रेम का आविर्भाव हो रहा है और फिर पीछे पाया कि न कुछ दिव्य है न कुछ प्रेम है। सब क्षुद्र है। सब मिट्टी से भरा है। मुंह मिट्टी से भर गया है। सोचा था कुछ, हो गया कुछ है।
लेकिन अगर तुम्हें समझ में आ जाए कि किस कारण यह हो रहा है तो बड़े फर्क
पड़ जाएंगे। फिर झगड़े की कोई बात न रही। परमात्मा की तलाश चल रही है। प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा को खोज रहा है, चाहे उसे पता हो और चाहे पता न हो। वे भी जो कहते हैं ईश्वर नहीं है, परमात्मा की खोज में लगे हैं। नास्तिक भी उसी तरफ चल रहा है। कोई बचने का उपाय ही नहीं है। हर नदी सागर की तरफ जा रही है। जैसे हर नदी सागर की तरफ जा रही है, चाहे दिशा कोई भी हो, ऐसे ही हर चैतन्य परमात्मा की तरफ जा हा है। क्योंकि चैतन्य उस परम चेतना की किरणें हैं; वे अपने मूल उद्गम को खोज रही हैं। और जब तक मूल उद्गम न मिले तब तक विश्राम नहीं है।
तुमसों मन लागो है मोरा!
हम तुम बैठे रही अटरिया, भला बना है जोरा।।
और अब जगजीवन कहते हैं कि बन गई जोड़ी। रच गया विवाह। आ गई सुहागरात जिसका कोई अंत नहीं होता। अटरिया पर बैठे हैं। बड़ी ऊंचाई पर बैठे हैं क्योंकि यह मिलन बड़ी ऊंचाई पर होता है।
अब यह तो गैर-पढ़े-लिखे आदमी की भाषा है इसलिए अटरिया। अगर पतंजलि कहते
तो कहते, सहस्रार। वह पढ़े-लिखे आदमी की भाषा है। अगर बुद्ध कहते तो कहते, निर्वाण। वह सुसंस्कृत आदमी की भाषा है। अगर महावीर कहते तो कहते, मोक्ष।

बेचारे जगजीवन कहते हैं... गांव में अटारी से बड़ी और तो कोई चीज होती नहीं। और अटारी भी क्या कोई खास अटारी होती है! दो मंजिल का मकान हो उसको गांव में अटारी कहते हैं।
मैं जिस घर में पैदा हुआ उसको उस गांव के लोग अटारी कहते हैं। दो मंजिल का मकान! कुल तीन सौ रुपए में बिका। उसको गांव के लोग अटारी कहते हैं।
मगर गांव के आदमी थे जगजीवन। अपनी ही तो भाषा बोलेंगे न!
हम तुम बैठे रही अटरिया, भला बना है जोरा
बैठे हैं, बड़ी ऊंचाई पर--अटारी पर। खूब जोड़ा बना है।
सत की सेज बिछाय सूति रहि...
और हमने सत्य की सेज बिछा ली है। सत्य की सेज को बिछा कर हम सो रहे हैं साथ-साथ। मिलन हुआ है, प्रेम हुआ है। प्रेम में डुबकी मार रहे हैं।
... सुख आनंद घनेरा
और बड़ा घना सुख है और बड़ा अपूर्व आनंद है। आ गई अंतिम घड़ी मिलन की।
करता हरता तुमहीं आहहु
तुम्हीं हो करने वाले, तुम्हीं हो हरने वाले
... करौं मैं कौन निहोरा
अब तो मैं विनती भी क्या करूं! अब तो मैं प्रार्थना भी क्या करूं! जो ठीक होता है, तुम सदा कर ही देते हो। देखो बुल्लेशाह को भेज दिया। मैं तो अपनी बांसुरी बजा रहा था, अपने गाय-बैल चरा रहा था। देखो बुल्लेशाह के हाथ से तुमने अपना हाथ मेरे सिर पर रख दिया। देखो मेरी तो कुछ हैसियत न थी। न कोई साधना की, न कोई सिद्धि, न कोई जप। तुम आ गए अचानक, जला दिया सब कूड़ा- करकट। कर दिया मुझे कुंदन। कर दिया मुझे शुद्ध। तो अब तो विनती भी क्या करूं! अब तुमसे मांगूं क्या? तुम तो बिन मांगे दे देते हो।
करता हरता तुमहीं आहहु, करौं मैं कौन निहोरा
रह्यो अजान अब जानि परयो है
अब तक तो अजान था तो मांगता था। क्षमा कर देना। तुमसे कभी कुछ मांगा हो, माफ कर देना। अजान था तो प्रार्थना कर लेता था कि ऐसा करो प्रभु, कि वैसा करो प्रभु। रह्यो अजान अब जान परयो है--लेकिन अब तो मैं जान गया। और जाना कैसे?
--जब चितयो एक कोरा
तुमने प्यार-भरी एक नजर से देख लिया बस। बस जान गया सब। एक बार तुमने प्यार-भरी नजर से देख लिया, बस जान गया सब। जब चितयो एक कोरा--आंख की एक कोर से मुझे देख लिया, इतना पर्याप्त है। मुझ भिखारी को सम्राट बना दिया।
अब निर्वाह किए बन अइहे...
और अब कोई चिंता नहीं है। अब तो सब निर्वाह कर लूंगा। अब तो सुख आए, दुख आए; सफलता हो, विफलता हो; स्वास्थ्य हो, बीमारी हो; जीवन हो, मृत्यु हो, अब कोई चिंता नहीं है। तुम्हारी आंख का प्रेम देख लिया, उसमें अमृत बरस गया है।
अब निरवाह किए बन अइहे--अब तो सब निर्वाह कर लूंगा। अब तुमसे क्या प्रार्थना करनी!
लाय प्रीति नहिं तोरिय डोरा--अब तो मुझे पक्का भरोसा आ गया है कि प्रेम का जो धागा तुमसे मेरा बंध गया है, अब टूटनेवाला नहीं है। अब टूट नहीं सकता। मेरे किए बना होता तो शायद टूट भी जाता, तुम्हारे ही किए बना है, कैसे टूट सकता है? लाए प्रीति नहीं तोरे डोरा। तुम्हीं लाए हो प्रेम। मेरा किया कुछ है नहीं। प्रसादरूप आया है सब, कैसे तोड़ोगे?
इश्क सुनते थे जिसे हम वह यही है शायद
खुद-ब-खुद दिल में इक शख्स समाया जाता है
जगजीवन के जीवन में अपने आप परमात्मा प्रविष्ट हुआ। और जब अपने आप परमात्मा प्रविष्ट होता है तो उसका सौंदर्य अलग, उसकी महिमा अलग। भक्त इसी को प्रसाद कहते हैं। तुम पात्र भर बनो। और पात्र यानी प्यास, गहन प्यास। और परमात्मा उतरेगा, निश्चित उतरता है।
कब आप आए कि ताकत नहीं इशारे की

कब आप आए कि जुंबिश नहीं जुबां के लिए
और जब उसका उतरना होता है तो भक्त के इशारे खो जाते हैं। भक्त बिल्कुल गूंगा हो जाता है।
कब आप आए कि ताकत नहीं इशारे की
अब कैसे बताऊं किए कब आप आए, कैसे आप आए। मेरे किए तो आए नहीं। ज्ञानी बता सकता है, तपस्वी बता सकता है कि परमात्मा कैसे आता है। इतना व्रत, इतना उपवास, इतना ध्यान, इतनी पूजा, इतनी प्रार्थना--तब परमात्मा आता है। भक्त कैसे बताए? क्योंकि भक्त के ऊपर तो ऐसा आता है, छप्पर तोड़ कर आता है, प्रमाद की तरह बरसता है।
कब आप आए कि ताकत नहीं इशारे की
कब आप आए कि जुंबिश नहीं जुबां के लिए
अब मेरे पास जबान नहीं है कि कह दूं।
जगजीवन बिनती करि मांगै, देखत दरस सदा रहौं तोरा
इतनी ही प्रार्थना हैः तू दिखाई पड़ता रहना, ओझल न हो जाना। जैसे पहले ओझल थी ऐसे फिर छिप मत जाना। बस भक्त की एक ही आकांक्षा है--न मोक्ष की आकांक्षा है, न निर्वाण की आकांक्षा, एक ही आकांक्षा है कि तेरा दरस मिलता रहे। तू दिखाई पड़ता रहे। तेरी झलक मिलती रहे। तेरी झलक काफी है। तेरी एक झलक में हजार वैकुंठ, तेरी एक झलक में सारे मोक्ष, तेरी एक झलक में सारे निर्वाण।
भक्त तो उसकी एक झलक से ही बेहोश रहने लगता है, मस्त रहने लगता है।
अब यह आलम है तेरे हुस्न की खैर
होश-ओ-मस्ती में इम्तिया.ज नहीं
यह तेरे सौंदर्य ने ऐसा दीवाना बना दिया है। यह तेरे सौंदर्य की कृपा
कि अब तो होश और मस्ती में कुछ फर्क नहीं मालूम होता। वही होश है, वही मस्ती है।
बे पिए कहते हो सब रिंद-ए-मैशाआम मुझे
बेखुदी तूने किया मुफत में बदनाम मुझे
लोग कहते हैं कि यह आदमी कुछ पिया-पिया सा मालूम पड़ता है। रिंद हो गया है, पियक्कड़ हो गया है, मद्यप हो गया है। और सच यह है कि मैंने सिर्फ तुझे देखा है। मगर तुझे देखकर ऐसा बेखुद हुआ हूं! मेरी खुदी मिट गई, मेरा अहंकार मिट गया।
बे पिए कहते हो सब रिंद-ए-मैशाआम मुझे
बेखुदी तूने किया मुफत में बदनाम मुझे
मन महं जाइ फकीरी करना
कहते हैं, बस मन के भीतर डुबकी मारो और फकीरी हो गई। फकीरी कुछ बाहर आयोजन नहीं करनी पड़ती। मन के जो भीतर गया वह फकीर हो गया। पहाड़ों पर जाने से कोई फकीर नहीं होता; न भिक्षापात्र ले लेने से कोई फकीर हो जाता है। जगजीवन इसी तरह फकीर कभी हुए भी नहीं। भीतर गए और फकीर हो गए। भीतर जाने से दिखाई पड़ गया, संसार में सब व्यर्थ है और जो सार्थक है वह अपने भीतर मौजूद है। मांगना किससे है? हाथ किसके सामने फैलाने हैं? मालिक भीतर बैठा है। देने वाला भीतर बैठा है। मांगो भी मत तो भी देता है। एक बार उस पर नजर डालो। एक बार लौटो। उसकी तरफ पीठ की है, उसकी तरह मुंह करो। अभी तुम राम से विमुख हो, राम के सम्मुख हो जाओ। वही फकीरी है।
रहे एकंत तंत तें लागा
और भीतर डूबो कि वहां एकांत है। फिर किसी गुफा और हिमालय पर बैठने की कोई जरूरत नहीं है। भीतर जाओ; वहां से बड़ा हिमालय और कहीं भी नहीं है। हृदय की गुफा से गहरी कोई गुफा नहीं है।
रहे एकंत तंत तें लागा--और वहां जो बैठता है उसका तत्त्व में चित्त लगा रहता है; उसका प्रभु से संबंध जुड़ा रहता है।
राग निर्त नहिं सुनना--फिर बाहर का सब राग-रंग सुनाई भी नहीं पड़ता।
बाजार में बैठे रहो, भीतर डूबने की कला आ जाए। फिर बाजार का सब राग-रंग चलता रहता है, सुनाई भी नहीं पड़ता। पहचान में भी नहीं आता।
कथा-चरचा पढ़ै-सुनै नहिं, नाहिं बहुत बक बोलना

ना थिर रहै जहां तहं धावै, यह मन अहै हिंडोलना
न तो फिर व्यर्थ की बातचीत करनी होती, न व्यर्थ की कथा-कहानियां सुननी होतीं। फिर गपशप इधर-उधर की सब व्यर्थ हो जाती है।
कथा-चरचा पढ़ै-सुनै नहिं, नहिं बहुत बक बोलना
ना थिर रहै जहां तहं धावै, यह मन अहै हिंडोलना
यह मन जब तक है तब तक हिंडोलने की तरह डोलता रहता है--यहां जाए वहां जाए, यह करूं, वह करूं। भीतर जाओ और सब ठहर जाता है।
मैं तैं गुमान बिबादहिं, सबै दूर यह करना और जैसे ही भीतर गए, मैं ही मिट जाता है फिर तू कहां; फिर विवाद कहां! सब विवाद मैं-तू के विवाद हैं। लोग सिद्धांतों की सिर्फ आड़ लेते हैं। बातें सिद्धांतों की करते हैं लेकिन सब विवाद... कोई कहेगा, मैं समाजवाद के लिए लड़ रहा हूं और कोई कहेगा कि मैं लोकतंत्र के लिए लड़ रहा हूं, लेकिन सब विवाद मैं-तू के विवाद हैं। यह तो सिर्फ अच्छे-अच्छे नाम हैं। जिनके पीछे अहंकार को छिपाना पड़ता है। कोई कहता है मैं इस्लाम के लिए लड़ रहा हूं, कोई कहता है मैं हिंदू धर्म
के लिए लड़ रहा हूं। कुल लड़ाई, सारी लड़ाई अहंकार की लड़ाई है। और जिस दिन आदमी यह देख लेगा कि ये सारे पर्दे झूठे हैं उस दिन दुनिया से लड़ाइयां बहुत कम हो जाएंगी। हर आदमी अपनी लड़ाई को सैद्धांतिक रंग देता है; उसको लीपता है, पोतता है। अहंकार को सजाता है--समाजवाद! लोकतंत्र! क्रांति! बड़े- बड़े शब्द, बड़ी-बड़ी बातें।
अभी तुमने देखा! एक फिजूल की घटना घटी, उसको दूसरी क्रांति कहते हैं। देशभर के मुर्दो को सत्ता में बिठाल दिया, उसको क्रांति कहते हैं। दूसरी क्रांति हो गई! लोकतंत्र आ गया! न कभी कुछ आता, न कभी कुछ जाता। सब वैसा का वैसा चलता रहता है। नाम बदल जाते हैं, काम वही के वही।
जरा गौर से देखो कि ये सारे लोग जो विवाद में पड़े रहते हैं, इनके विवाद
के पीछे सार क्या है? सार इतना है कि मैं बड़ा हूं, तुम छोटे हो। मगर यह कैसे कहें? यह सीधा-सीधा कहो तो जरा भद्दा मालूम होता है। और सीधा-सीधा कहो तो लोग फौरन गर्दन पर सवार हो जाएंगे। कि तुम बड़े अकड़े, बड़े अहंकारी। यहां तो अहंकार की भी घोषणा करनी हो तो कहना पड़ता हैः मैं विनम्र हूं आपके पैर की धूल हूं। ये ढंग हैं, यहां अहंकार की घोषणा करने के। यहां घोषणाएं परोक्ष करनी होती हैं। प्रत्यक्ष नहीं करनी होती हैं। यहां आड़ लेकर करनी होती हैं।
अगर तुम्हीं को मारना है तो भी यह कहना पड़ता है कि तुम्हारे ही हित में तुम्हें मार रहा हूं। फिर तो बचना भी मुश्किल हो जाता है। अब अपने ही हित में मार रहे हैं तो अब करो भी क्या? और वे तो कहते हैं, हम हित करके रहेंगे। तुम अज्ञानी हो, तुम क्या जानो!
एक स्कूल में एक ईसाई पादरी ने बच्चों को समझाया कि प्रत्येक सप्ताह
कम से कम एक अच्छा काम जरूर करो। बच्चों ने पूछा, कौन से अच्छे काम? तो उन्होंने कहा, जैसे कोई डूब रहा हो तो उसको बचाओ, किसी के घर में आग लगी हो तो चाहे जीवन में जोखम हो, कोई फिकर नहीं मगर जाकर कुछ बचा सकते हो तो बचाओ। पर बच्चों ने कहा कि यह तो बहुत... कभी-कभी होता है। हर सप्ताह कहां आग लगती है, कहां कोई डूबता है! तो उसने कहा, छोटे-छोटे काम भी हैं, जैसे कोई गिर पड़े तो उसको उठाओ, या कोई बूढ़ी स्त्री रास्ता पार नहीं हो सकती है तो उसको पार करवा दो। बच्चों ने कहा, यह ठीक है।
सात दिन बाद जब दुबारा वह आया, उसने पूछा कि "बच्चो, कुछ अच्छे काम किए?" एक लड़के ने हाथ हिलाया, बड़े जोर से कि हां, मैंने एक बूढ़ी स्त्री को रास्ता पार करवाया। तो बिल्कुल ठीक किया, यही करना चाहिए। यही धर्म है। दूसरा भी बच्चा हाथ हिला रहा था। पूछा, तुमने क्या किया? उसने कहा, मैंने भी एक बूढ़ी स्त्री को रास्ता पार करवाया। थोड़ा तो शक हुआ पादरी को मगर कुछ हैरानी की बात नहीं है। कोई एकाध बुढ़िया थोड़े ही है गांव में, कई बुढ़िएं हैं, करवा दिया होगा। तीसरा भी हाथ हिला रहा था। पूछा, भाई, तूने क्या किया? उसने कहा, मैंने भी एक बूढ़ी स्त्री को रास्ता पार करवाया।
तब पादरी ने कहा कि तुम तीनों को बूढ़ी स्त्रियां मिल गईं? उन्होंने कहा, तीन नहीं थीं, एक ही थी। हम तीनों ने उसी को पार करवाया। तो उसने पूछा

कि तीन की जरूरत पड़ी पार करवाने को? उसने कहा, हम तीन भी बामुश्किल करवा पाए। वह तो जाना ही नहीं चाहती थी। धक्का दे-दे कर... मगर करवा दिया। जब आपने कहा कि करना ही है केई अच्छा कार्य, तो हमने किया।
कुछ लोग हैं जो अच्छे काम करने के पीछे पड़े हैं। मगर सारे अच्छे कामों
के पीछे मजा सिर्फ एक है--अहंकार का। अच्छे काम तो बहाने हैं।
मैं तैं गर्व गुमान बिबादहिं, सबै दूर यह करना
सीतल दीन रहै मरि अंतर, गहै नाम की सरना
शीतल बनो। मैं न रहे तो शीतलता आ जाती है। और तब तो सिर्फ एक ही उस नाम कीछयाद रह जाती है और सब विस्मरण हो जाता है।
तुमसों मन लागो है मोरा
जल पषान की करै आस नहिं, आहै सकल भरमना
जगजीवनदास निहारि निरखिकै, गहि रहु गुरु की सरना
और फिर ऐसा व्यक्ति न तो नदियों की पूजा करता है, न पत्थरों की--जल पषान की करै आस नहिं। फिर इनसे कुछ आशा नहीं रखता। फिर इस तरह की सारी व्यर्थ बातें उससे छूट जाती हैं। वह तो एक सदगुरु के चरण पकड़ लेता है। कहते हैं, अब जागो। इस फूल जैसी छोटी सी जिंदगी पर भूले मत रहो, इतराओ मत। यह सुबह खिला, सांझ मुरझा जाएगा।
भूलु फूलु सुख पर नहीं, अबहुं होहुं सचेत
सांईं पठवा तोहि कां, लावो तेहि ते हेत
जिसने भेजा है उसकी याद करो। यह फूल तो कुम्हला जाएगा। यह फूल जहां से आया है उसकी याद करो। यह फूल जिससे जन्मा है और जिसमें लीन हो जाएगा उसकी याद करो। मूल-स्रोत की याद करो तो शाश्वत से मिलन हो। अन्यथ क्षणभंगुर भटकाता है, तड़पाता है।
तजु आसा सब झूठ ही, संग साथी नहिं कोय
यहां कौन किसका संगी है, कौन किसका साथी है? ये झूठी आशाएं छोड़ो।
केउ केहू न उबारिहि, जेहि पर होय सो होय
और यहां कोई किसी को उबार नहीं सकता। न पत्नी तुम्हें उबारेगी न पति;
न पिता न मां, न बेटा न भाई, न मित्र। यहां कोई किसी को उबार नहीं सकता। उबार तो एक ही सकता है--जेहि पर होय सो होय। वह जो करना चाहेगा वही होगा। उस मालिक का हाथ पकड़ो, ताकि बच सको। झूठी सुरक्षाओं में मत डूबे रहो। समय मत गंवाओ। उस माझी का साथ ले लो, वही पार ले जाएगा; वही उस पार ले जा सकता है।
कहंवां ते चलि आयहू, कहां रहा अस्थान
कहां से आए हो, पूछो। कहां जा रहे हो, पूछो।
सो सुधि बिसरि गई तोहिं, अब कस भयसि हेवान
सब कुछ भूल-भाल गए। बिल्कुल पशु हो गए हो। अपने में और पशु में फर्क तो खोजो। वही काम, वही लोभ, वही मोह, वही मत्सर, वही द्वेष, वही घृणा, वही हिंसा--जो पशु में है वही तुममें है। भेद कहां है?
अगर पशु और आदमी में कहीं कोई भेद है तो वह भेद तभी शुरू होता है, जब तुम सजग होकर, जाग कर अंतर्यात्रा शुरू करते हो। कोई पशु अंतर्यात्रा करने में समर्थ नहीं मालूम होता, सिर्फ आदमी अंतर्यात्रा कर सकता है। काया-नगर सोहावना, सुख तबहीं पै होय
और यह जो तुम्हें देह मिली है, इसको तुम किन व्यर्थ चीजों में नष्ट कर रहे हो! यह बड़ा सुहावना नगर है। इसके भीतर मालिक का वास है। यह मंदिर है। लेकिन बाहर ही बाहर चक्कर काटते रहोगे, परिक्रमा करते रहोगे? मंदिर के देवता से मिलोगे या नहीं? जैसे कोई मंदिर के बाहर से ही चक्कर काट कर लौट आए और मंदिर के देवता के चरणों में जाए ही नहीं, ऐसे ही अधिक लोग हैं। काया-नगर सोहावना, सुख तबही पै होय
रमत रहै तेहिं भीतरे, दुख नहीं व्यापै कोय
तुम्हारे भीतर जो रम रहा है उसे कोई दुख कभी व्यापा नहीं। तुम व्यर्थ दुखी हो रहे हो। उससे दोस्ती करो, उससे संबंध बनाओ, उससे विवाह रचाओ।
मृत मंडल कोउ थिर नहीं, आवा सो चलि जाय

इस मर्त्य लोक में कोई चीज थिर नहीं है। जो आया वह गया। जो बना वह मिटा।
गाफिल ह्व फंदा परयौ, जहं-तहं गयो बिलाय
और तू भी इस मुर्दो की बस्ती में फंदों में उलझ गया है और अपने को बिल्कुल भूल गया है।
सूफी फकीर इब्राहिम कभी सम्राट था, फिर सब छोड़-छाड़ कर जंगल में बैठ गया। रास्ते से राहगीर गुजरते थे तो पूछते थे कि बस्ती का रास्ता कहां है? तो बता देताः बाएं जाना। बाएं ही जाना तो बस्ती पहुंच जाओगे। अगर दाएं तरफ चले गए तो मरघट पहुंच जाओगे।
फकीर आदमी, मस्त आदमी! उसकी बात लोग मान लेते और बाएं जाते। तीन-चार मील चलने के बाद मरघट पहुंच जाते। बड़े हैरान होते। लौट कर आते, बड़े नाराज होते कि फकीर होकर कुछ तो शर्म खाओ। इस तरह की मजाक शोभा देती है? थके- मांदे यात्री! हम इतनी दूर से यात्रा करके आ रहे हैं, हमें गांव पहुंचना है। सांझ हो रही है, सूरज ढल रहा है। तुमने मरघट भेज दिया? और तुमने बड़े जोर से कहा कि बाएं जाओगे तो बस्ती पहुंचोगे, दाएं जाओगे तो मरघट। और हम मरघट पहुंच गए।
इब्राहिम ने कहाः तो भाई, हमारी-तुम्हारी भाषा में भेद मालूम पड़ता है। क्योंकि तुम जिसको बस्ती कहते हो उसको मैंने मरघट जाना है। क्योंकि वहां सब लोग मरने के लिए तैयार बैठे हैं। कोई आज मरा, कोई कल मरा, क्यू लगा है। जहां सभी लोग मरने को बैठे हैं उसको मरघट कहोगे या क्या? कुछ मर गए हैं, कुछ मरने की तैयारी कर रहे हैं कुछ चल पड़े हैं, पहुंच जाएंगे; मगर सब मौत की तरफ जा रहे हैं। उसको तुम बस्ती कहते हो? जहां एक भी आदमी सदा के लिए बसा नहीं रहेगा, उसको बस्ती कहते हो? मैं मरघट को बस्ती कहता हूं क्योंकि वहां जो बस गया सो बस गया। फिर न आना, न जाना। हमारी-तुम्हारी भाषा का भेद है, नाराज न होओ। अगर तुम्हें मरघट जाना है तो दाएं चले जाओ। उसको ही तुम बस्ती कहते हो।
जानने वाले तुम्हारी बस्ती को मरघट कहते हैं। और तुम भी जरा सोचो तो मरघट पाओगे। सब मरणधर्मा हैं यहां। बाहर मृत्यु है, भीतर अमृत है। बाहर स्े जुड़े, मृत्यु से जुड़े। और मृत्यु दुख लाएगी। मृत्यु से कैसे परमानंद होगा?
भीतर चलो। कोई चरण गहो। कोई शरण गहो। किसी बुल्लेशाह का हाथ पड़ने दो सिर पर। प्यास और प्रार्थना से भरे हुए पुकारो कि कोई बुल्लेशाह खोजता हुआ तुम्हें आ जाए तो तुम्हारा अमृत से मिलन हो जाए। अमृतस्य पुत्रः। तुम पुत्र तो अमृत के हो, लेकिन मृत्यु में भटक गए हो।
जागो!

आज इतना ही।

नाम सुमिर मन बावरे
दूसरा प्रवचन

कीचड़ में खिले कमल

पहला प्रश्नः ओशो, जबसे मैंने संन्यास लिया है तबसे रंग ही बदल गया है। मैं आपका हाथ अपने हाथ में महसूस करती हूं। कभी-कभी ध्यान की अवस्था में पूरे शरीर के रोएं खड़े हो जाते हैं, शरीर उड़ाने भरने लगता है और आंसुओं की झड़ी लग जाती है।
मेरी यह हालत देख कर लोग मुझे पागल कहते हैं। उन्हें कैसे समझाऊं कि
इन गैरिक वस्त्रों में बहुत खुशियों के लच्छे हैं। हमें पागल ही रहने दो, पागल ही अच्छे हैं।

कृष्णा भारती! संन्यास का रंग शुरू तो बाहर से ही होता है लेकिन अंत
तो तभी है जब भीतर भी रंग जाए। और जो बाहर से रंगने को राजी है उन्होंने निमंत्रण दिया, उन्होंने द्वार खोले। उन्होंने सूचन दिया कि अब हम भीतर से रंगने को भी राजी हैं।
यह रंग गुलाल, यह गैरिक आभा धीरे-धीरे व्याप्त होगी, गहन होगी। और एक घड़ी ऐसी आएगी--बाहर और भीतर एक ही रंग हो जाएगा। जब बाहर और भीतरमें कोई भेद न रह जाए तभी जानना कि वास्तविक संन्यास घटित हुआ। वही घड़ी करीब आ रही है।
और जब भी ऐसी घड़ी करीब आएगी, लोग पागल कहेंगे। क्योंकि लोग तर्क से जीते हैं, गणित से जीते हैं, हिसाब-किताब रखते हैं। बाहर बाहर होना चाहिए, भीतर भीतर होना चाहिए। शरीर, शरीर; आत्मा, आत्मा। बुद्धि, बुद्धि; हृदय, हृदय। वे विभाजन करके रखते हैं; हर चीज को खंडों में बांट कर रखते हैं।
संन्यास का अर्थ ही है समग्रता। बाहर को भीतर में डूबा देंगे, भीतर को बाहर फैला देंगे। बुद्ध को अलग-थलग न रहने देंगे, हृदय में मिला लेंगे।
भाव और विचार एक साथ नाचें। देह और आत्मा में रंचमात्र भी भेद न रह जाए।
पदार्थ और परमात्मा एक ही सिक्के के दो पहलू हो जाएं। सब द्वंद्व मिटें।
द्वंद्वातीत का जन्म हो। अद्वैत उमगे।
लेकिन अद्वैत तो निश्चित ही पागलपन जैसा मालूम होगा। क्योंकि अद्वैत
का अर्थ हुआः बुद्धि ने जितनी सीमाएं खींची थीं, तुमने सब पोंछ डालीं।
बुद्धि ने भेद खड़े किए थे, तुमने सब मिटा दिए। संसार और परमात्मा दो नहीं हैं। माया और ब्रह्म दो नहीं हैं। दो का कोई अस्तित्व ही नहीं है।
लेकिन जीवन का सारा व्यवहार दो के स्वीकार पर खड़ा है। इसलिए जब भी किसी के जीवन से दो का भाव गिरेगा, लोग पागल कहेंगे। लोग ठीक ही कहते हैं; उससे पीड़ा भी मत लेना; उससे दंश मत पाना। लोग अपनी तरफ से ठीक ही कहते हैं। उनकी बात को लेकर उनके अनुसार चलने की चेष्टा भी मत करना, क्योंकि वह अब संभव नहीं होगा। यह रंग चढ़े तो फिर उतरता नहीं।
बाहर के दीये तो बुझ जाते हैं। तेल चुक जाता है, बाती चुक जाती है, दीये टूट जाते हैं; भीतर का दीया बुझता नहीं। बिन बाती बिन तेल। न तो वहां तेल है जो चुक जाए, न बाती है जो जल जाए, न दीया है जो टूट जाए। भीतर शाश्वत धारा है प्रकाश की। वहां प्रतिपल दीवाली है और प्रतिपल होली है। वहां तो पहुंच ही वे पाते हैं जो पागल होने को ही नहीं, बिल्कुल मिट जाने को राजी हैं।
मुझसे वो कहते हैं परवाने को देखा तुमने
देख यूं जलते हैं इस तरह से दम देते हैं
देखा है परवाने को शमा पर जल जाते हैं? वही संन्यास का ढंग है।
मुझसे वो कहते हैं परवाने को देखा तुमने
देख यूं जलते हैं इस तरह से दम देते हैं
जब परवाना शमा के साथ एक हो जाता है, जब हमारी छोटी सी ज्योति उस विराट ज्योति में लीन हो जाती है, जब हम उसी के रंग में रंग जाते हैं। कबीर ने कहा न! "लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल।" उसे देखने जो जाएंगे, उस जैसे ही हो

जाएंगे। उसे देखते ही देखने वाले में और दिखाई पड़ने वाले में भेद नहीं रह जाता।
यह गैरिक रंग तो प्रतीक है। प्रतीक है बहुत-सी बातों का। सुबह के उगते सूरज का। जब आकाश पर प्राची में लालिमा छा जाती है, वैसे ही तुम्हारे भीतर का प्रकाश जब उगता है तो तुम्हारे अंतराकाश पर प्राची में लाली छा जातीहै।
वही रंग उतर रहा है। अहोभाव से, आनंद से दोनों बाहें फैलाओ और जो आ रहा
है उसे भेंट लो। जरा भी संकोच मत करना। लोकलाज मत करना। जरा भी लज्जा मत करना। हटा दो सब घूंघट। गिरा दो सब पर्दे। उस परम से तो कोई निर्वस्त्र ही मिलता है, जहां कोई अड़चन नहीं रह जाती।
और उससे मिलना मिटना है। उससे मिल कर कौन जीया, कौन बचा? इसलिए रास्ता
तो पागलों का है ही; हुशियारों का नहीं। हुशियार तो धन इकट्ठा करते हैं, पद इकट्ठा करते हैं, प्रतिष्ठा कमाते हैं। पागल परमात्मा की तरफ जाते हैं। .फानी को या जुनूं है या तेरी आरजू है
कल नाम लेके तेरा दीवानवार रोया
या तो पागल रोते हैं या उसके प्रेमी रोते हैं।
.फानी को या जुनूं है या तेरी आरजू है
या तो उसकी अभीप्सा पैदा हो जाए या कोई पागल हो जाए। सच में तो दोनों
एक ही बात के दो नाम हैं।
मैं साधारण पागलों की बात नहीं कर रहा हूं, असाधारण पागलों की बात कर रहा हूं, मस्तों की बात कर रहा हूं। साधारण पागल तो वह है जो बुद्धि से नीचे गिर गया। असाधारण पागल वह है जो बुद्धि से ऊपर उठ गया। दोनों से बुद्धि छूट जाती है। मगर जो बुद्धि से नीचे गिर गया उसका तो संसार भी गया, परमात्मा कहां मिला? उसके तो हाथ में जो था वह भी खो गया। मिलने की तो कोई बात नहीं है। जो बुद्धि से ऊपर उठता है उसका भी संसार खो जाता है लेकिन संसार का मालिक मिल जाता है। और जिसको मालिक मिल गया उसको तो सारा साम्राज्य मिला ही हुआ है।
लोग हंसेंगे भी। लोग मखौल भी उड़ाएंगे। लोग पागल भी कहेंगे। ऐसा उन्होंने सदा किया है। यह उनकी पुरानी आदत है, कुछ नई नहीं।
दिल के तअईं आतिशे-हिज्रां से बचाया न गया
घर जला सामने और हमसे बुझाया न गया
जब तुम अपने घर को जलते हुए देखोगे तो दूसरे तुम्हें पागल तो कहेंगे
ही कि खड़े-खड़े देखते क्या हो? बुझाते नहीं? उन्हें क्या पता कि बूंद मिट रही है और सागर हो रहा है। उन्हें क्या पता कि बीज टूट रहा है और वृक्ष का जन्म हो रहा है, उन्हें क्या पता कि सूली के पीछे सिंहासन है। सूली ऊपर सेज पिया की। उन्हें तो सूली दिखाई पड़ रही है।
दिल के तअईं आतिशे-हिज्रां से बचाया न गया
घर जला सामने और हमसे बुझाया न गया
ये गैरिक वस्त्र अग्नि के प्रतीक भी हैं। कबीर ने कहाः "कबीरा खड़ा बजार में लिए लुकाठी हाथ, जो घर बारे आपना चले हमारे साथ।"
किस घर में आग लगानी है? अहंकार के घर में आग लगानी है। यह आशियां दिखता है कि आशियां है; यह कारागृह है, यह कैद है। यह तो जल ही जाए तो तुम मुक्त हो जाओ। यह तो राख हो जाए तो सारा आकाश तुम्हारा हो जाए।
लेकिन लोग पागल कहें तो आश्चर्य नहीं। क्योंकि जिसे वे घर समझते हैं उसे तुम जलाने चल पड़े। और जिसे वे यश समझते हैं उसे तुमने दो कौड़ी का माना। मार रहता है उसको आखिरकार
इश्क को जिससे प्यार होता है
प्रेम के रास्ते पर तो मृत्यु अहोभाग्य है। लेकिन जिन्होंने प्रेम जाना ही नहीं उन अभागों को तो मृत्यु मृत्यु ही है। फिर प्रेम के रास्ते पर घटे कि घृणा के रास्ते पर घटे, उन्हें कुछ भेद मालूम नहीं होता। वे तो इतना ही जानते हैंः खाओ, पीयो, मौज करो। मौत आ गई, सब छिन जाएगा। उन्हें पता नहीं है कि एक ऐसी भी मौत है कि क्षुद्र छिनता है और विराट मिलता है। एक ऐसी भी मौत है जो महाजीवन का द्वार है।

पर उन पर दया करना। उन पर नाराज भी मत होना। उनसे विवाद भी मत करना।
क्योंकि कृष्ण, वे विवाद समझेंगे भी नहीं।
पूछा हैः "जबसे मैंने संन्यास लिया है तब से रंग ही बदल गया है।"
बदल ही जाना चाहिए। संन्यास लो तो बदलेगा ही।
लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, कपड़ों का रंग बदलने से क्या होगा?
यह तो बाहर की बात है। भीतर से तो हम आपके संन्यासी हैं ही। मैं उनकी आंखों में देखता हूं, न वे बाहर से हैं न वे भीतर से। भीतर की बात तो सिर्फ इसलिए उठा रहे हैं ताकि बाहर से बच जाएं। मैं उनसे कहता हूं, ईमान से कहते हो भीतर से संन्यासी हो? या केवल बातचीत कर रहे हो, बहाना खोज रहे हो? अभी बाहर से संन्यासी होने की भी हिम्मत नहीं है लेकिन आदमी बड़ा चालबाज है। बड़ी ऊंची बातें उठाता है। छोटी-मोटी बातों को तो करना ही क्या है! बड़ी-बड़ी बातें करता है। फिर भीतर की बात तो ऐसी है कि किसी को दिखाई पड़ती नहीं।
जो कहता है कि मैं भीतर से संन्यासी हूं, बाहर से लेने से क्या होगा, उसे भी जब प्यास लगती है तो बाहर से पानी पीता है। यह नहीं कहता है कि भीतर की प्यास को बाहर के पानी से क्यों बुझाएं? भीतर की भूख को बाहर के भोजन से क्यों बुझाएं? भीतर के प्रेम को बाहर के प्रेमी से क्यों बुझाएं? तब बाहर का पानी, बाहर का भोजन, बाहर का प्रेम, बाहर की श्वास--सब स्वीकार है। लेकिन जब संन्यास की बात उठे तो वह कहता है, बाहर से क्या जरूरत? भीतर तो मैं संन्यासी ही हूं। जब सर्दी लगती है तो बाहर से कोट पहन लेते हो, कपड़े पहन लेते हो। तब नहीं कहते कि सर्दी तो भीतर लग रही है, बाहर से क्या जरूरत? भीतर तो मैं संन्यासी ही हूं। जब सर्दी लगती है तो बाहर से कोट पहन लेते हो, कपड़े पहन लेते हो। तब नहीं कहते कि सर्दी तो भीतर लग रही है, बाहर कोट पहनने से क्या होगा?
बाहर और भीतर का फासला कहां है? जो अभी बाहर है, अभी भीतर हो जाएगा। और
जो अभी भीतर है, अभी बाहर हो जाएगा। बाहर और भीतर में प्रतिपल लेन-देन है। जो श्वास भीतर जा रही है, अभी भीतर है, क्षण भर बाद बाहर हो गई। और जो अभी बाहर थी, क्षण भर बाद भीतर हो गई। वृक्ष पर फल लगा है, अभी बाहर है; फिर तुमने भोजन कर लिया, फल को पचा गए, खून-मांस-मज्जा बन गया। अब तुम्हारे भीतर है। उसी से तुम्हारी हड्डी बनेगी, उसी से तुम्हारा मांस बनेगा, उसी से तुम्हारा रक्त बनेगा। इतना ही नहीं, उसी से तुम्हारी बुद्धि के तंतु बनेंगे, जिनसे तुम सोचोगे-विचारोगे, गणित करोगे, विज्ञान शोधोगे, काव्य लिखोगे। वह जो अभी बाहर वृक्ष पर लटका हुआ फल था, कल तुम्हारे भीतर से कविता बन कर उमगेगा, गीत बन कर उठेगा। वही फल सितार छेड़ेगा, संगीत जगाएगा। और जो अभी तुम्हारे भीतर है, कल मर जाओगे, जमीन में गड़ा दिए जाओगे। तुम्हारी लाश पर कोई वृक्ष उगेगा। तुम्हारी मांस-मज्जा फिर फल बन जाएगी, खाद बन जाएगी। क्या बाहर क्या भीतर? बाहर भीतर का अंग है, भीतर बाहर का अंग है।
झूठी चालबाजियों, झूठे तर्को में, तर्काभासों में अपने को मत उलझाना।
कृष्णा, तूने हिम्मत की। संन्यास लिया बाहर से। अब भीतर से भी घट रहा है। अब फल पचने लगा। अब फल तेरा रक्त-मांस मज्जा बनने लगा।
"आपका हाथ अपने में महसूस करती हूं"--संन्यास का यही अर्थ है कि मैं हाथ देने को तैयार हूं, तुम ले लो।
"कभी-कभी ध्यान की अवस्था में पूरे शरीर के रोएं खड़े हो जाते हैं।" रोमांच होगा। जब आनंद बरसेगा, रोएं-राएं मगन हो जाएंगे। रोआं-रोआं नाचेगा। स्फुरणा होगी, उसे दबाना मत। क्योंकि दबाना सिखाया गया है। हमारा जीवन का जो ढंग है अब तक, वह ऐसा है कि दब-दब कर जीयो। न तो खुल कर हंसना, न खुल कर रोना, न खुलकर नाचना। तुम्हारी देह कुछ बातें भूल ही गई है। तुम्हारा मन कुछ बातें विस्मरण ही कर गया है। न रोए कभी, न नाचे कभी, न हंसे कभी। पंगु हो गए हो। और परमात्मा की तरफ जाने के लिए यह अनिवार्य कदम है।
इसलिए जब रोएं खड़े हो जाएं, रोमांच हो, आहलादित हो जाना। प्रार्थना करीब है। परमात्मा पास है, इसलिए रोएं खड़े हो गए होंगे। देखते हो, वृक्षों के पत्ते हिलते हैं, उसका अर्थ हवाएं आ गईं। वृक्ष के पत्ते हिलने लगे। जब

रोमांच हो तो समझना कि परमात्मा बहुत करीब से गुजर रहा है। उसका चुंबक बहुत करीब है। उसी के चुंबकीय आकर्षण में रोएं खड़े हो गए हैं, रोमांच हुआ है। सौभाग्य समझना।
"शरीर उड़ानें भरने लगता है।"
भरेगा ही। भरना चाहिए। जैसे-जैसे तुम्हारा अंतर्जीवन निखरेगा, रंगेगा, जैसे-जैसे तुम्हारे भीतर होली का उत्सव होगा और दीवाली के दीये जलेंगे, तुम निर्भार होओगे वैसे पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण अब तुम्हें बांध न रख सकेगा। अब तुम पंख फैलाओगे। अब तुम्हारे डैने आकाश को नापने के लिए चलने के लिए तैयार होने लगेंगे।
"शरीर उड़ाने भरने लगता है, आंसुओं की झड़ी लग जाती है।"
ये आंसू परम आनंद के आंसू हैं। रोकना मत, पोंछना मत, सम्हालना मत। तुम्हारे पैर डगमगाने लगें तो समझना कि मंदिर बहुत करीब है। उसके मंदिर में कौन सम्हला हुआ पहुंचा है? उसके मंदिर में लोग डगमगाते हुए ही पहुंचते हैं।
कुछ हो रहा है। कुछ गहरा हो रहा है।
ऐ दोस्त, मेरे सीने की धड़कन को देखना
वो चीज तो नहीं है मोहब्बत कहें जिसे
वही चीज है! दिल जोर से धड़क रहा है। रोमांच हुआ है। आंखें गागर की तरह आंसुओं को बहा रही हैं। शरीर उड़ान भरने को आतुर हो रहा है।
डर भी लगेगा। भय भी होगा। क्योंकि हमें सदा कहा गया है कि आंसू दुख के लक्षण हैं। सौ प्रतिशत बात गलत है। आंसुओं का दुख से कुछ लेना-देना नहीं है। कोई अनिवार्य संबंध नहीं है। आंसू तो अतिरेक के लक्षण हैं। न दुख के, न सुख के, न प्रीति के, न क्रोध के, न घृणा के--अतिरेक के। जब भी कोई भाव अतिरेक से हो जाता है, सम्हालना मुश्किल हो जाता है तो आंसू उसे बहा कर बाहर ले जाने लगते हैं। लोगों के मन में आंसू दुख के पर्यायवाची हो गए हैं क्योंकि उन्होंने एक ही चीज अतिरेक से जानी है--दुख। और तो उन्होंने अतिरेक से कुछ जाना नहीं। इसलिए दुख और आंसुओं का साहचर्य हो गया है। जब तुम आनंद में भी अतिरेक जानोगे तो आनंद के भी आंसू बहेंगे।
लोग क्रोध में भी रोने लगते हैं। स्त्रियां अक्सर क्रोध में रोने लगती हैं। क्रोध का अतिरेक हो जाता है। करुणा में भी लोग रोते हैं। प्रेम में भी लोग रोते हैं। और घृणा में भी। इतना स्मरण रखना कि आंसू तो जो भी तुम्हारे भीतर सम्हालने के बाहर हो जाता है, उसको तुमसे बाहर ले जाते हैं। जैसे घड़ा भर गया और ऊपर से बहने लगा। बस ऊपर से बहने का लक्षण है।
अश्क आंख से, दिल हाथ से, जी तन से चला जाए
ऐ वाए-मुसीबत! कोई किस-किसको सम्हाले
अब सम्हालना ही मत। क्योंकि संहालना घातक है। और सम्हालने की आदतें पुरानी हैं। सम्हालों तो सम्हाल सकोगे। रोको तो रोक सकोगे। हर चीज का दमन किया जा सकता है। लोग आनंद तक का दमन कर लेते हैं।
कुछ दिन हुए, चेतना मेरे पास सांझ मिलने आई थी। उसके माथे पर मैंने हाथ रखा। देखा, अतिरेक से उसके भीतर आनंद उठा, पर जैसे अनजाने, जैसे मूर्च्छा में उसने अपना ओंठ काट लिया। वह भी मैं देख रहा--उसने अपना ओंठ काट लिया अपने दांतों में ओंठ भींच लिया। वह दबा रही है, वह घबड़ा गई है। इतना आनंद प्रकट करना पागलपन होगा। शायद सोच कर उसने किया भी नहीं यह। ओंठ को दांतों के बीच दबा लेना, दबाने का एक ढंग है। एक गहन अवसर चूका। कोई चीज उठी उठी हो रही थी, दबा दी गई।
होश रखो। जब कुछ बहना चाहे तो बहने दो। घबड़ाहट इतनी भी हो सकती है कि बहुत बार ऐसा लगे, किस झंझट में पड़ गए! छोड़ें। इस उपद्रव से हट जाएं। मजाल-ए-तर्क-ए-मुहब्बत न एक बार हुई
ख्याल-ए-तर्क-ए-मुहब्बत तो बार-बार आया
और कई बार ऐसा आएगा, छोड़ो यह प्रेम की झंझट, यह प्रार्थना की झंझट। ख्याल-ए-तर्क-मुहब्बत तो बार-बार आया
बहुत बार ख्याल आया कि प्रेम का त्याग ही कर दें, हालांकि यह हो नहीं सकता।

मजाल-ए-तर्क-ए-मुहब्बत न एक बार हुई
लेकिन प्रेम का त्याग एक बार भी न हो सका। और फिर प्रेम जब प्रभु की
तरफ बहता हो तब तो उसके त्याग का कोई उपाय नहीं है। आज ओंठ काट लोगे, कब तक काटते रहोगे? प्रभु और और जोर से आएगा। मेघ और घने होकर बरसेंगे। बाढ़ आएगी और ले जाएगी। एक बार तुमने द्वार खोल दिया बाढ़ो लिए तो बंद कर लेने का उपाय नहीं है।
और लोग पागल कहेंगे। कृष्णा, लोग कहेंगे कि बचो। इस स्थान से बचो। इस
तरह के लोगों से बचो। मेरा नाम तक लेने में मित्रों को डर लगने लगता है। दूसरों से बात करते वक्त मेरा नाम नहीं लेते। यह सब भय छोड़ो। जो तुम्हें हुआ है उसे संक्रामक बनाओ। जो आंसू तुम्हें बह रहे हैं, औरों को भी बहें। और जो रोमांच तुम्हें हो रहा है, औरों को भी हो। जो उड़ान तुम्हारे भीतर भी जग रही है, वह औरों के भीतर भी जगे। जाओ! उन्हें पागल कहने दो लेकिन तुम अपने आनंद को बांटो। तुम अपने गीत को बांटो। सौ को बांटो तो शायद एकाध सुन लेगा। एक ने भी सुन लिया तो बहुत।
कुछ जुर्म नहीं इश्क जो दुनिया से छुपाएं
हमने तुम्हें चाहा है हजारों में कहेंगे
जाओ और कहो और पुकारो। और जब तुम्हारे भीतर कुछ होने लगे तो बांटना। क्योंकि बांटने से बढ़ता है। रोकना मत; रोकने से मरता है। रोकने से सड़ता है। कितने ही स्वच्छ जल की धार क्यों न हो... ।
कल मैं एक सूफी कहानी पढ़ता था। एक गरीब खानाबदोश तीर्थयात्रा से वापस लौट रहा था। रास्ते में उसे एक मरूद्यान में, भयंकर रेगिस्तान के बीच एक छोटे से मरूद्यान में पानी का इतना मीठा झरना मिला कि उसने अपनी चमड़े की बोतल में जल भर लिया। सोचा, अपने सम्राट को भेंट करूंगा। इतना प्यारा, इतना स्वच्छ उसने जल देखा नहीं था। और इतनी मिठास थी उस जल में।
भर लिया अपनी चमड़े की बोतल में और पहला काम उसने यही किया, राजधानी पहुंचा तो जाकर राजा के द्वार पर दस्तक दी। कहा, कुछ भेंट लाया हूं सम्राट के लिए। बुलाया गया। उसने बड़ी तारीफ की उस झरने की और कहा, यह जल लाया हूं। इतना मीठा जल शायद ही आपने जीवन में पिया हो। सम्राट ने थोड़ा सा जल लेकर पिया, खूब प्रसन्न हुआ, आनंदित हुआ। उस गरीब की झोली सोने की अशर्फियों से भर दी। उसे विदा किया।
दरबारियों ने भी कहा कि थोड़ा हम भी चख कर देखें। सम्राट ने कहा, रुको; पहले उसे जाने दो। जब वह चला गया तब सम्राट ने कहा, भूल कर मत पीना। बिल्कुल जहर हो गया है। लेकिन उस गरीब आदमी के प्रेम को देखो। जब उसने भरा होगा तो मीठा रहा होगा। लेकिन चमड़े की बोतल में, महीनों बीत गए उस जल को भरे हुए। वह बिल्कुल सड़ चुका है। जहरीला हो गया है। घातक भी हो सकता है। इसलिए मैंने एक ही घूंट पिया। और फिर मैंने बोतल सम्हाल कर रख ली। उसके सामने मैं तुम्हें यह जल नहीं देना चाहता था क्योंकि मुझे भरोसा नहीं था तुममें इतनी समझ होगी कि तुम उसके सामने ही कह न दोगे कि यह जहर है। भूल कर भी इसे पीना मत।
स्वच्छ से स्वच्छ जल भी जब झरनों में नहीं बहता तो जहरीला हो जाता है। तुम्हारे आंसू अगर तुम्हारे आंख के झरनों से न बहें, तुम्हारे शरीर में जहर होकर रहेंगे। तुम्हारे रोएं अगर आनंद में नाचना चाहते थे, न नाचें तो तुम्हारे भीतर वही ऊर्जा जहर बन जाएगी।
इस जगत में लोग इतने कड़ुवे क्यों हो गए हैं? इसीलिए हो गए हैं। इतना तिक्त स्वाद हो गया है लोगों में। शब्द बोलते हैं तो उनके शब्दों में जहर है। गीत भी गाएं तो उनके गीतों में गालियों की धुन होती है। सब जहरीला हो गया है। क्योंकि जीवन एक कला भूल गया है--बांटने की, देने की, लुटाने की। लुटाओ! "दोनों हाथ उलीचिए यही सज्जन को काम।"
लोग पागल कहें, ठीक ही कहते हैं। बुरा न मानना। जो पागल कहे उसको भी बांटना। कौन जाने! तुम्हें पागल कहने में भी तुम्हारे प्रति उसका आकर्षण ही कारण हो। कौन जाने! तुम्हें पागल कह कर वह अपनी सिर्फ सुरक्षा कर रहा हो।

दूसरा प्रश्नः प्रभु, विरह की पीड़ा असह्य है। अब तो आप कुछ करें।
जिंदगी जब अजाब होती है
आशिकी कामयाब होती है

जब जीवन इतनी पीड़ा से भर जाए कि तुम सह न सको, तभी प्रेम का फूल खिलता है।
जिंदगी जब अजाब होती है--मुसीबत ही मुसीबत हो जाती है, विरह की अग्नि धू-धू कर जलती है। आशिकी कामयाब होती है--"तभी प्रेम सफल होता है। जल्दी पानी मत छिड़क कर आग को बुझा देना। यह आग ऐसी नहीं है कि बुझाओ, यह आग ऐसी है कि बढ़ाओ। यह आग ऐसी नहीं है कि जलधारा को पुकारो, यह आग ऐसी है कि कहो हवाओं से कि आओ। आंधियो आओ, इस आग को और भड़काओ। यह आग ऐसी जले कि आग ही आग रह जाए और तुम न बचो।
तुम कहते होः "प्रभु, विरह की पीड़ा असह्य है।"
मैं जानता हूं। लेकिन जब तक तुम हो तब तक पीड़ा रहेगी। किसको असह्य है? अभी तुम थोड़े दूर खड़े हो इसलिए आंच लग रही है। जब तुम न बचोगे, फिर कैसे असह्य होगी? किसको असह्य होगी? और यह पीड़ा ऐसी नहीं है कि बुझाई जा सके। लगाए लगती नहीं, बुझाए बुझती नहीं। न लगाए लगे, न बुझाए बुझे। कोई चेष्टा करके लगाना चाहे तो लगती नहीं और कोई चेष्टा करके बुझाना चाहे तो बुझती नहीं। तुम धन्यभागी हो। यह प्रभु का प्रसाद है। झुको। सिर आंखों पर लो। स्वीकार करो। तुम चुने गए। मैं जानता हूं, कहना भी मुश्किल है। कठिनाई ऐसी भी नहीं कि शब्दों में व्यक्त की जा सके।
गमे-हिज्र का या रब किस जबां से माजरा कहिए
न कहिए गर तो क्या कहिए, अगर कहिए तो क्या कहिए
कहते भी नहीं बन पड़ता। जबान लड़खड़ाती है। बड़े-बड़े ज्ञानी तुतलाते हैं। बड़े-बड़े ज्ञानी छोटे बच्चों जैसा बोलने लगते हैं। सूझ-बूझ खो जाती है। असह्य मालूम होती है क्योंकि तुम अपने को बचाना चाह रहे हो। और जब तक तुम अपने को बचाना चाह रहे हो तब तक असह्य मालूम होगी। अब तो छलांग लगा जाओ इसमें। सती हो जाओ। उतर ही जाओ इस अग्नि में। और उतर कर तुम पाओगे, आग में खिला फूल कमल का। जल में खिलते कमल के फूल तो देखे हैं। आग में खिला कमल का फूल कब देखोगे? जल में खिले कमल के फूल क्षण भर को खिलते हैं, फिर मुरझा जाते हैं। मिट्टी से उठते हैं, मिट्टी में मुरझा जाते हैं; मृण्मय हैं। आग में जला फूल, आग में उठा फूल, लपटों से बना फूल शाश्वत है। जब आग में ही जन्मा है तो अब कैसे मिटेगा? अब तो मिटने का कोई उपाय न रहा। अब तो इसे कौन मिटाएगा? कौन चिता इसे नष्ट कर सकेगी? अब तो यह अमृत है।
जब तक यह न हो जाए तब तक विरह की पीड़ा जितने आनंद से झेल सको उतना अच्छा है; क्योंकि उतने ही जल्दी रात कट जाएगी और सुबह होगी।
मुझमें और शमअ में होती थीं ये बातें शब भर
आज की रात बचेंगे तो सहर देखेंगे
लंबी है विरह की रात्रि।
मुझमें और शमअ में होती थीं ये बातें शब भर
आज की रात बचेंगे तो सहर देखेंगे
आज की रात बच जाएं तो सुबह देखने का मौका मिले। और यह रात लंबी है। लेकिन इस रात की लंबाई तुम पर निर्भर है। यह छोटी सी हो सकती है। यह बहुत लंबी भी हो सकती है। यह जन्मों-जन्मों तक फैल सकती है अगर कुनकुनी-कुनकुनी हो। और अगर कुनकुनी न हो, त्वरा से जले, प्रचंड हो, एक क्षण में पूरी हो सकती है। अभी सुबह हो सकती है। यहीं सुबह हो सकती है। कल तो दूर, एक क्षण के लिए भी टालना आवश्यक नहीं। मगर फिर साहस चाहिए--जुआरी का साहस, जो सब दांव पर लगा दे। इकट्ठा दांव पर लगा दे।
ौ देता है साथ गम की रात का
शमअ भी आखिर भड़क कर रह गई
और आखिर में तो आदमी बिल्कुल अकेला रह जाता है। सब छूट जाते हैं--संगी
और साथी, प्रियजन, अपने-पराए। सब छूट जाते हैं। और जैसे-जैसे संगी-साथी छूटने लगते हैं वैसे-वैसे प्रगाढ़ होने लगता है विरह। वैसे-वैसे भाला

छिदने लगता है छाती में। वैसे-वैसे पीड़ा और गहरे जाने लगती है। जब तक आर-पार ही न हो जाए यह तीर, तब तक कठिनाई रहेगी।
ऐसी तो प्रार्थना भूल कर मत करना कि यह तीर निकाल लो क्योंकि यही तीर
तो एकमात्र आशा है। ऐसी प्रार्थना करना कि प्रभु, इसे पूरा ही उतर जाने दो। जल्दी करो। मुझे मिटा ही दो।
हाय ये मजबूरियां, महरूमियां, नाकामियां
इश्क आखिर इश्क है, तुम क्या करो हम क्या करें
कोई भी कुछ कर न सकेगा। इसका कोई इलाज थोड़े ही है!
तुम मुझसे पूछते होः "प्रभु, विरह की पीड़ा असह्य है। अब तो आप कुछ करें।"
इश्क आखिर इश्क है, तुम क्या करो, हम क्या करें
कोई कुछ कर नहीं सकता। इलाज इसका होता नहीं। यह बीमारी बीमारी नहीं है, यह तो परम स्वास्थ्य की शुरुआत है। यह तुम्हें बीमारी जैसी लगती है क्योंकि तुमने इसे कभी जाना नहीं।
एक राजा रात भर नाच-गाने में रहा, जैसी उसकी रोज की आदत थी। डट कर शराब चली, जैसी उसकी रोज की आदत थी। फिर उसे नींद नहीं आ रही थी तो उठ कर बगीचे में आ गया। ब्रह्ममुहूर्त... पहली दफा जीवन में ब्रह्ममुहूर्त में उठा और बगीचे में आ गया। ठंडी और ताजी हवाएं। मलय-पवन सुवासित! उसने अपने पहरेदार को पूछा, यह बदबू कैसी? यह दुर्गंध कहां से आ रही है? अब जिनको शराब में ही सुगंध मालूम पड़ती रही हो, उनको अगर सुबह के मलय-समीर में दुर्गंध मालूम पड़े, तो आश्चर्य तो नहीं। उस पहरेदार ने कहाः मालिक, यह सुबह की ताजी हवा है। यह दुर्गंध नहीं है।
तुमने तो जीवन में अब तक जो जाना है वह बीमारी थी, रोग था। अब पहली बार स्वास्थ्य का अवतरण हो रहा है। तुम्हें तो डर लगेगा कि यह कौन सी बीमारी चली आ रही है? अपरिचित, अनजान! और इसका कोई इलाज भी नहीं। कोई चिकित्सक कुछ भी न कर सकेगा।
नानक बीमार पड़े, चिकित्सक बुलाए गए। नानक की नाड़ी पर चिकित्सक ने हाथ रखा। नानक हंसने लगे। और नानक ने कहा कि देखो नाड़ी, तुम्हारे देखने की इच्छा है तो। और औषधि भी दोगे तो पी लूंगा। मगर यह बीमारी ऐसी है कि इसका कोई इलाज नहीं। तुम्हारे हाथ में नहीं।
घर के लोग परेशान थे क्योंकि नानक दुबले होते जाते। सोते भी नहीं, ठीक
से भोजन भी नहीं करते। न मालूम कौन-सी धुन चढ़ी है! रात-रात बैठे रोते हैं। एक रात बहुत देर तक रोते रहे। मां ने कहा कि अब सो भी जाओ। रोने से सार क्या है? लेकिन नानक ने कहा कि जिद बंधी है एक किसी से। सुनती हो? दूर एक पपीहा कह रहा हैः पी कहां? पी कहां? इससे जिद बंधी है, कि जब तक यह चुप न होगा, मैं भी चुप नहीं हो सकता। मैं भी अपने प्यारे को पुकार रहा हूं: पी कहां? और पपीहा नहीं हार रहा है तो मैं हार जाऊं! इस प्रतियोगिता में मैं हारनेवाला नहीं हूं; रहूं कि जाऊं।
पी कहां? प्यारे की खोज पर जो निकला है उसकी जिंदगी यहां तो अस्तव्यस्त होने लगेगी। इस अस्तव्यस्तता को लोग तो यही समझेंगे कि बीमारी है। तुम भी पहले यही समझोगे कि यह क्या हो गया? भले-चंगे थे, यह सब कैसे बिगड़ गया? मगर मैं तुम्हें भरोसा दिलाता हूं, यह सुबह की खबर है। मलय-पवन आता है। तुम्हें थोड़े अनुभव से धीरे-धीरे सुवास का पता चलेगा।
और जल्दी भी मत करो। यह भी मत सोचो कि इतनी देर क्यों हो रही है? प्रतीक्षा प्रार्थना का प्राण है। और जो इंतजार में आनंदित नहीं है उसके इंतजार में कमी है और उसका इंतजार पूरा नहीं होगा।
तुझको पा लेने में यह बेताब कैफियत कहां
जिंदगी वो है जो तेरी जुस्तजू में कट गई
पाने वालों ने कहा है कि तुझे पाया, सब ठीक, मगर वह मजा नहीं जो तेरी खोज में था, तेरे इंतजार में था, तेरी प्रतीक्षा में था। वह ललक, वह पुलक! वे आकांक्षाओं-अभीप्साओं की लपटें!
तुझको पा लेने में यह बेताब कैफियत कहां
जिंदगी वो है जो तेरी जुस्तजू में कट गई

असली जिंदगी तो तब पता चलती है कि वे जो खोज के दिन थे, बड़े प्यारे थे। मजिंल तो प्यारी है ही, मगर यात्रा भी कुछ कम प्यारी नहीं; शायद ज्यादा ही प्यारी है। क्योंकि उसी यात्रा-पथ से तो हम मजिंल तक पहुंचते हैं।
जो मजिंल तक ले आती है उसको भी सौभाग्य की तरह स्वीकार करो। यही विरह
की अग्नि, यही असह्य पीड़ा तुम्हें मंदिर तक ले आएगी। ये रास्ते के कांटे... एक-एक कांटा हजार-हजार फूल बनकर खिलेगा। ये रास्ते की मुसीबतें... एक-एक मुसीबत हजार-हजार अमृत के घट बनेगी।
चलते चलो। रोते चलो। पुकारते चलो। हारो मत। "हारिए न हिम्मत, बिसरिए न राम।"

तीसरा प्रश्न : सिर्फ हमारे ही देश के नहीं, किसी भी देश के पुरखा "शेष प्रश्न" का जवाब नहीं दे गए हैं। दे गए हों, ऐसा हो भी नहीं सकता क्योंकि तब तो फिर सृष्टि ही रुक जाती है।
ओशो, विख्यात कथाकार शरदचंद्र चटोपाध्याय की इस उक्ति पर कुछ कहने की अनुकंपा करें।

मैत्रेय! एक ही प्रश्न का उत्तर नहीं है; और तो सब प्रश्नों के उत्तर हैं। उस एक ही प्रश्न को शेषप्रश्न कहा जाता है। वह प्रश्न है परमात्मा के संबंध में या आत्मा के संबंध में या अस्तित्व के संबंध में। और ये तीनों एक ही बात के तीन नाम हैं।
अस्तित्व क्या है, क्यों है, इसका कोई उत्तर नहीं है। इसका उत्तर हो
भी नहीं सकता। ऐसा नहीं है कि आदमी ने खोजा नहीं है इसलिए उत्तर नहीं है। नहीं, उत्तर होने की संभावना ही नहीं है। उत्तर का न होना प्रश्न के स्वभाव का हिस्सा है। अगर कोई कारण बता भी दे कि अस्तित्व इसलिए है तो फिर प्रश्न खड़ा हो जाएगा। उस कारण के संबंध में कि वह कारण क्यों है? एक प्रश्न तो सदा शेष रहेगा ही।
कोई कह दे कि अस्तित्व को ईश्वर ने बनाया तो तुम पूछोगे, ईश्वर को किसने बनाया? अंतहीनशृंखला है। फिर तुम और ईश्वर खोजते चले जाओ। मगर अंततः प्रश्न तो खड़ा ही रहेगा। हर उत्तर के पीछे प्रश्नवाचक चिह्न खड़ा रहेगाः इसको किसने बनाया?
इसे ही शरदचंद्र ने शेष प्रश्न कहा है। यह शेष ही रहेगा।
हम छोटी-छोटी बातों के उत्तर पा सकते हैं। खंडों के संबंध में उत्तर
पा सकते हैं, समग्र के संबंध में उत्तर नहीं पा सकते क्योंकि हम भी उस समग्र के हिस्से हैं। हम उस समग्र के भीतर पैदा हुए और उसी समग्र में लीन हो जाएंगे। हम अपने को इतना पीछे खड़ा नहीं कर सकते कि समग्र हमारे बाद आए, ताकि हम देख सकें कि समग्र कहां से आया, कैसे आया! और न ही हम अपने को बचा सकते हैं, जब समग्र नष्ट हो रहा हो; कि हम दूर खड़े देखते रहें कि समग्र कैसे विलीन होता है! न तो हम पहले दिन हो सकते हैं इस यात्रा में, न अंतिम दिन हो सकते हैं। हम तो मध्य में आते हैं, मध्य में ही विलीन हो जाते हैं। तो हम कैसे उत्तर दे सकेंगे?
लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि जाना नहीं जा सकता। इन दोनों बातों में भेद समझ लेना। उत्तर नहीं है, अनुभव है। यह तो नहीं जाना जा सकता कि परमात्मा क्यों है, लेकिन परमात्मा हुआ जा सकता है। और परमात्मा होने के लिए परमात्मा क्यों है, इस उत्तर को जानना जरूरी भी नहीं है।
सागर क्यों है--क्या सागर में डुबकी लगाने के लिए यह जानना जरूरी है? अनिवार्यता है? पानी क्यों है--क्या प्यास को बुझाने के लिए यह जानना जरूरी है? क्या तुम समझते हो, जब लोगों को पता नहीं था कि पानी एच टू ओ से बनता है, तब तक प्यास नहीं बुझती थी? और अभी भी क्या पता चल गया? यह भी पता चल गया कि पानी आक्सीजन और उद्जन से मिल कर बनता है। अब सवाल यह है कि उद्जन कहां से, कैसे बनती है? यह भी पता चल गया कि उद्जन परमाणुओं से बनती है, कि इलेक्टरन, न्यूटरन, पाजिटरन से बनती है। वे कैसे बनते हैं, वे कहां से आते हैं?

प्रश्न तो खड़ा होता ही चला जाएगा। हर उत्तर के पीछे प्रश्न-चिह्न खड़ा रहेगा। एक जगह जाकर हमें थक ही जाना होगा। इसको ही उपनिषदों ने अतिप्रश्न कहा है।
जनक ने एक बहुत बड़ा संयोजन किया, जिसमें देश के सारे पंडित आए विचार-विमर्श के लिए। उसने एक हजार गौएं, सुंदरतम गौएं महल के सामने खड़ी कर दीं। उनके सींगों पर सोना चढ़ा था, हीरे जड़े थे। और उसने कहा, जो भी जीत जाएगा इस विवाद में वही इन गौओं को ले जाएगा।
बहुत लोग आकांक्षी थे विजेता होने के, लेकिन मुश्किल थी विजय। क्योंकि देश पंडितों से भरा था। फिर याज्ञवल्क्य आया अपने शिष्यों के साथ। दुपहर हो गई थी, धूप तेज थी, गौएं धूप में खड़ी थीं। याज्ञवल्क्य अपने किस्म का अदभुत आदमी था। उसने अपने शिष्यों से कहा कि खदेड़ो गौओं को और आश्रम ले जाओ। मेरे जैसा आदमी रहा होगा! खदेड़ो गौओं को, आश्रम ले जाओ-- कोरेगांव पार्क ले जाओ सबको। पर शिष्यों ने कहा कि कोरेगांव पार्क ले जाएं? अभी आप जीते कहां हैं! उसने कहा, वह हम निपट लेंगे। लेकिन गौएं धूप में खड़े-खड़े थक गई हैं, पसीना-पसीना हो रही हैं। यह मेरी बर्दाश्त के बाहर है। तुम गौएं ले जाओ।
गौएं तो ले जाई गईं। और पंडित तो चौंके रह गए। और ज्ञानी तो बड़े हतप्रभ हुए। शिकायत भी की उन्होंने जनक से कि यह तो बड़ा मजा हुआ। अभी विवाद शुरू भी नहीं हुआ है। लेकिन याज्ञवल्क्य को अपने बोध का ऐसा भरोसा था। बोध था तो भरोसा था। बाकी पंडित ही पंडित थे वे। याज्ञवल्क्य ज्ञानी था। जो जानता था, जानता था। इसमें हार का प्रश्न ही कहां था? और यह भी जानता था कि जो इकट्ठे हैं, तोते हैं।
विवाद हुआ और याज्ञवल्क्य करीब-करीब जीत गया। और तभी एक स्त्री खड़ी
हो गई--गार्गी। और उसने कहा, औरों के तो प्रश्न सब आपने उत्तर दे दिए, मेरे प्रश्नों के उत्तर भी चाहिए। उसने सरल सा प्रश्न पूछा। ऊपर से दिखता सरल था लेकिन पीछे जटिल था। वह शेषप्रश्न था।
उसने पूछा कि यह पृथ्वी किस चीज पर ठहरी है?
याज्ञवल्क्य ने कहाः सब कुछ परमात्मा पर ठहरा है।
और गार्गी ने पूछाः परमात्मा किस पर ठहरा है?
याज्ञवल्क्य ने कहाः यह अतिप्रश्न है गार्गी।
अतिप्रश्न का क्या अर्थ होता है? अतिप्रश्न का अर्थ होता है, शेष प्रश्न। उसी को शरदचंद्र शेषप्रश्न कहते हैं। याज्ञवल्क्य ने कहा, यह अतिप्रश्न है गार्गी। अतिप्रश्न का अर्थ हुआ कि मैं जो भी उत्तर दूंगा, यह उस पर फिर लागू होगा।
यह प्रश्न नहीं है। इसे जानने का उपाय उत्तर नहीं है, इसे जानने का उपाय ध्यान है। मैं उत्तर नहीं दे सकता इसका। कोई उत्तर नहीं दे सकता इसका। कोई शास्त्र न कभी दिया है, न कभी देगा। लेकिन जो स्वयं में डुबकी लगाए वह जान लेता है। यह स्वाद की बात है। प्रश्न की दृष्टि से अतिप्रश्न है, अनुभव की दृष्टि से कोई अड़चन नहीं।
और आश्चर्य की बात तो यही है कि बुद्ध जिसको सोच-सोच कर थक जाए और न खोज पाए, हृदय एक छलांग में जान लेता है। विचार महत चेष्टा के बाद भी हारता है और भाव बिना चेष्टा के पहुंच जाता है। प्रयत्न से हम और दूर निकलते जाते हैं। निष्प्रयत्न, अप्रयास, असहाय--और प्रसाद बरस जाता है।

चौथा प्रश्नः मेरे जीवन में कष्ट ही कष्ट क्यों हैं?

किसके जीवन में नहीं हैं? अपने को ऐसा अलग-थलग मत तोड़ो। अपने को ऐसा विशिष्ट मत मानो कि तुम्हारे ही जीवन में कष्ट ही कष्ट हैं। सभी के जीवन में कष्ट हैं। जीवन कष्ट है।
और जीवन अगर कष्ट न होता तो परमात्मा की खोज ही क्यों होती? जीवन कष्ट
है इसीलिए तो परमात्मा की खोज है। यह जीवन कष्ट है इसीलिए तो किसी और जीवन की तलाश है, जहां कष्ट न हों। आश्चर्य यह नहीं है कि जीवन में कष्ट क्यों हैं, आश्चर्य यह है कि इतने कष्ट हैं फिर भी लोग दूसरे जीवन को खोजने नहीं

निकलते। सहे जाते हैं, कुटे जाते हैं, पिटे जाते हैं। सौ-सौ जूते खाएं, तमाशा घुस कर देखें। कुछ भी हो जाए, कितनी ही कुटाई-पिटाई हो, मगर वे तमाशा देखते ही चले जाते हैं। दूसरे उनका तमाशा देखते हैं, वे दूसरों का तमाशा देखते हैं। ऐसा पारस्परिक समझौता मालूम पड़ता है कि जब हम पिटें, तुम मजा ले लेना; जब तुम पिटो, हम मजा ले लेंगे। मगर यहां दुख के अतिरिक्त और है क्या?
तो पहली तो बात, यह तो मत पूछो कि मेरे ही जीवन में कष्ट ही कष्ट क्यों हैं? तुम्हारे जीवन में कुछ विशेषता नहीं है। जीवन कष्ट है क्योंकि जीवन हम अंधेरे में जी रहे हैं।
कोई आदमी पूछे कि मैं हर जगह टकरा-टकरा क्यों जाता हूं? कभी टेबल से, कभी कुर्सी से, कभी दीवाल से। तो उसका मतलब हुआ कि कमरे में अंधेरा है। या फिर मतलब हुआ कि अंधेरा भी न हो, प्रकाश हो, तो तुम आंखें बंद किए हो। तुम्हारे लिए अंधेरा है। आंखें बंद हैं इसलिए टकराहट हो रही है। अंधेरा है इसलिए टकराहट हो रही है। आदमी अंधा है इसलिए अड़चन है।
एक झेन कथा: शिष्य गुरु से मिल कर वापस लौटता था। शिष्य अंधा था। सभी शिष्य अंधे होते हैं। अंधे न हों तो शिष्य होने की जरूरत क्या? गुरु आंख वाला, शिष्य अंधा। गुरु ने कहा, जा रहे हो तुम, रात भी हो गई है, यह लालटेन लेकर जाओ। उस अंधे शिष्य ने कहा, लालटेन का मैं क्या करूंगा? व्यर्थ का बोझ क्यों ढोऊं? मैं तो अंधा हूं। मुझे दिखाई पड़ता ही नहीं। लालटेन भी मेरे हाथ में हो तो क्या फायदा! मुझे तो दिन और रात सब बराबर हैं। लेकिन गुरु ने कहा, मेरी सुन, तू लालटेन ले जा। तुझे तो दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन कम से कम दूसरों को तो दिखाई पड़ता रहेगा कि तू लालटेन लिए आ रहा है। तो दूसरे तुझसे टकराने से बच जाएं यह भी क्या कम है?
यह तर्क ऐसा था कि शिष्य कुछ कह न सका। लालटेन लेकर चला, बेमन से ही चला। कोई सार नहीं, फिजूल लालटेन लटकाए चला जा रहा हूं। और एक वजन हो गया। अगर रोशनी न दिखाई पड़ती हो तो लालटेन एक वजन तो है ही। और कोई बीस-पच्चीस कदम ही चला होगा कि एक आदमी आकर उससे टकरा गया। उसने कहा, हद हो गई! एक तो वजन ढो रहा हूं और गुरु ने कहा था वह तर्क भी खंडित हो गया। गुरु ने कहा था कि कम से कम दूसरे तुमसे न टकराएंगे।
क्रोध से उस शिष्य ने पूछा कि महानुभाव, क्या आप भी अंधे हैं? उस आदमी
ने कहा, मैं तो अंधा नहीं हूं लेकिन आपकी लालटेन बुझ गई है। अब अंधे आदमी को कैसे पता चले कि उसकी लालटेन बुझ गई है? तुम्हें बहुत बार दीये दिए गए हैं। उपनिषदों ने दिए, वेदों ने दिए, कुरान ने दिए धम्मपद ने दिए। तुम्हें बहुत बार दीये दिए गए हैं लेकिन वे कभी के बुझ गए हैं। तुम नाहक बुझी लालटेन ढो रहे हो। बोझ भी भारी हो गया है। सदियों का कूड़ा-कबाड़ भी उन पर जम गया है। मगर तुम ढो रहे हो--मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा। अपने को चलाना मुश्किल है और इन सबको भी चला रहे हो। और हर जगह टकरा रहे हो। जगह-जगह टक्कर! फिर किसी तरह उठा कर अपना सामान बटोर कर फिर चल पड़ते हो।
जीवन में कष्ट न होगा तो और क्या होगा? रोशनी चाहिए। आंख खुली चाहिए।
और मैं तुमसे कहना चाहता हूं, रोशनी तो है ही, सिर्फ आंख खोलो। और मैं तुमसे यह भी कहना चाहता हूं कि तुम अंधे नहीं हो, सिर्फ तुम्हें आंख बंद करने की आदत पड़ी है। और आंख भी तुम इसलिए बंद किए हो कि आंख बंद करो तो भीतर सुंदर सपने देखने में मजा आता है।
मुल्ला नसरुद्दीन ने एक रात सपना देखा कि कोई चमत्कारी पुरुष सामने खड़ा है और कहता है, मांग ले भाई। ले, यह एक रुपया ले ले। मुल्ला ने कहा, एक? एक से राजी नहीं होऊंगा। कम से कम सौ। जब मांग ही रहे हैं और जब आप दे ही रहे हैं, और बड़े दिलदार बने हैं तो कम से कम सौ। मगर वह भी आदमी एक ही था। उसने कहा, दो ले ले, तीन ले ले... ऐसी बड़ी घिसा-पिसी हुई। निन्यानवे पर जाकर बात अटक गई। वह आदमी भी जिद पकड़ गया कि निन्यानबे से एक ज्यादा नहीं। क्योंकि सपने का चक्कर निन्यानवे का चक्कर है। वह भी अटक गया। उसने कहा, निन्यानबे से ज्यादा तो दे ही नहीं सकता। कोई सपना निन्यानवे से ज्यादा नहीं देता। तभी तो सपना जारी रहता है। अगर सौ ही दे दे, सपना ही खतम हो जाए।
बात ही पूरी हो गई। निपटारा ही हो गया।

उस आदमी ने भी जिद पकड़ ली कि बस निन्यानवे से एक रत्ती ज्यादा नहीं।
लेना हो, ले ले। मगर मुल्ला भी जिद्दी जैसे सभी आदमी जिद्दी होते हैं।
मुल्ला ने कहा, मैं तो सौ ही लूंगा। अब हद हो गई तुम्हारी भी कंजूसी की। जब निन्यानवे तक देने को राजी हो गए तो एक रुपए में क्या बिगड़ा जा रहा है? एक रुपली के पीछे क्यों झंझट कर रहे हो? दे ही दो।
बात इतनी बढ़ गई, जोर-शोर इतना बढ़ गया कि मुल्ला कहे कि सौ और वह आदमी कहे, निन्यानवे। मुल्ला ने इतने जोर से कहा सौ, कि नींद टूट गई। नींद टूट गई तो देखा, कोई नहीं है। पत्नी पास बैठी देख रही है। क्योंकि पत्नियां रात को देखती हैं बैठकर कि पति क्या-क्या कह रहा है। कोई कमला, विमला इत्यादि के नाम तो नहीं ले रहा है। जब इतने जोर-जोर से बात कर रहा है तो कुछ मतलब की बात हो रही है। और संख्या की बात चल रही थी तो वह भी जरा उत्सुक थी। वह भी हिसाब लगाने लगी कि अगर मिल ही जाए इसको निन्यानवे या सौ या जितना भी हो, तो वह जो हार देखा है बाजार में, वह फिर खरीद ही लिया जाए। वह भी नये सपनों में डूबी जा रही थी।
मुल्ला ने आंख खोली, देखा पत्नी बैठी है--वैसे ही घबड़ा गया। और पास के जाने की नौबत आई जा रही है। मिलना तो दूर रहा। जल्दी से आंख बंद कर ली और बोला, भाई कहां हो? चलो निन्यानबे ही सही। मगर अब इतनी देर तो बहुत देर हो गई। एक दफा आंख खुल गई तो सपने तो नष्ट हो जाते हैं। वह आदमी का पता ही नहीं चला। फिर बहुत उसने आंखें बंद कीं बार-बार और कहा, अट्ठानबे, सत्तानबे, छियानबे... उलटा लौटने लगा। एक रुपये पर भी वापस आ गया कि चलो, कुछ तो दो! मगर एक बार आंख खुल गई तो सपना गया। फिर कोई उपाय नहीं। वह आदमी दिखाई
ही न पड़े। आखिर मुल्ला अपनी पत्नी से बोला, जरा मेरा चश्मा उठा कर ला। रात भी है, अंधेरा भी, और सज्जन दिखाई भी नहीं पड़ते हैं। लेकिन तुम फिर चश्मे भी लगाओ, तो भी कुछ सार नहीं।
आदमी अंधा नहीं है, सिर्फ आंखें बंद किए है। आंखें बंद करने के पीछे
एक न्यस्त स्वार्थ है कि सुंदर-सुंदर सपने देख रहा है। यह भवन बना लें, यह अटारी उठा लें, यह हवेली। ऐसी धन की राशि जोड़ दें। कैसे निन्यानबे सौ हो जाएं, सबकी यही तो मांग है। और निन्यानबे कभी सौ होते नहीं। तनाव जारी रहता है। सपना भरता नहीं। आंख खोलने की हिम्मत नहीं होती किछकहीं आंख खोलूं तो जो हाथ में है वह भी न छिटक जाए।
इसलिए जीवन में कष्ट है। और सबके जीवन में कष्ट है। और एकाध कष्ट नहीं, कष्ट ही कष्ट है। इसीलिए तो लोगों की बात सुनो। बैठे हैं लोग अपना- अपना कष्ट-पुराण लिए। एक-दूसरे को सुना रहे हैं। सुनो कष्ट-पुराण!
एक कष्ट से उपजैं तीन
चौथा कष्ट किए गमगीन
कष्ट एक और है
पहला कष्ट है कि पढ़े-लिखे
फिक्र खर्च की रही नहीं
पढ़ने में जो खर्च किया
उतने की नौकरी नहीं
दूजा कष्ट नौकरी है
कष्टों से यह भरी है
इसके कष्ट वर्णनातीत
जिसने जाने जिसने करी है सब जिसका अनुभव करते
कष्ट तीसरा ऐसा है
आते-जाते दुखी करे
सब जानें वह पैसा है
चौथा कष्ट पड़ोसी है
सदा सामने रहता है
हम तो दुख से रह लेते हैं वह सुख से क्यों रहता है? कष्ट एक और है

कष्ट कि रुपया ज्यादा है आया आफत का मारा
खर्च नहीं कर सकते हम
काला सारा का सारा
कष्ट दूसरा सुविधाएं
सब कुछ मेरे पास है
करने को कुछ नहीं बचा
कष्ट यही अहसास है
कष्ट तीसरा शाम है
रोज-रोज आ जाती है
कैसे इसे बिताएं हम
रोज समस्या आती है
चौथा कष्ट एकरसता
हो आदमी या कि मौसम
कुछ भी नहीं बदलता है
सब न समझ पाएं यह गम
कष्ट एक और है
कष्ट बहुत कुछ करना है
करने दिया न जाता है
निर्णय किसी और का है
बंदा हुकुम बजाता है
कष्ट दूसरा है माखन
मिलता है यह सभी कहीं
जो उपयोग जानता है
हारेगा वह कभी नहीं
भाषण कष्ट तीसरा है
सुनना जिसे जरूरी है
कह देना कुछ, करना कुछ
छूट यहां पर पूरी है
चौथा कष्ट बड़ा भारी
सहने की है लाचारी
पैदा हुए बाद में हम
उनका पलड़ा है भारी
कष्ट एक और है...
--लेकिन कोई अंत नहीं है। अगर कष्टों की बात करने बैठो तो पुराण शुरू
तो हो सकता है लेकिन अंत नहीं होता। और तुम कहते हो कि मेरे जीवन में कष्ट ही कष्ट क्यों हैं? सबके जीवन में हैं। लोगों की बातें सुनो, एक-दूसरे को कष्ट सुनाते हैं। कष्टों की ही बात चलती रहती है। कौन कितनी मुसीबत में है! सभी मुसीबत में हैं।
तो जरूर कहीं मौलिक कुछ भूल हो रही है, कहीं कुछ ऐसी बुनियादी भूल हो रही है जो सभी से हो रही है। सभी मूर्च्छित हैं। मूर्च्छा दुःख है और जागृति आनंद है। जागो। चैतन्य को उभारो। सोई आंखें खोलो।
बुद्धों की सुनो। वे तो कहते हैं, जीवन में सच्चिदानंद है और तुम कहते हो, कष्ट ही कष्ट हैं। तो जरूर वे किसी और जीवन की बात कर रहे हैं, तुम किसी और जीवन की बात कर रहे हो। मैं भी तुमसे कहता हूं, आ नंद के अतिरिक्त जीवन में और कुछ भी नहीं है। जीवन बना ही आनंद की ईंटों से है।
लेकिन तुम कहते हो कष्ट ही कष्ट हैं। जरूर तुम्हारे देखने में कहीं कुछ भूल हो रही है, चूक हो रही है। तुम अंधे हो, आंख बंद किए हो। अंधेरे में टटोलते हो, टकरा-टकरा जाते हो। अंधेरे में कुछ का कुछ समझ लेते हो। फिर टकराओगे न तो क्या होगा?
मैंने सुना है, एक आदमी रात शराबघर गया। वहां लोग जाते ही इसीलिए हैं
कि किसी तरह कष्टों को भूल जाएं। थोड़ी देर के लिए ही सही, नशे में डूब

जाएं। खुद डूबेंगे तो कष्ट भी डूब जाएंगे। थोड़ी देर को ही सही, राहत तो मिलेगी। खूब पिया उसने, डटकर पिया उसने।
जब घर से चला था तो ख्याल करके चला था कि लौटते वक्त अंधेरा हो जाएगा। रात है अंधेरी, अमावस, तो लालटेन साथ ले गया था। लेकिन खूब डट कर पी गया। चारों खाने चित्त पड़ा था। अब अपनी लालटेन टटोल रहा है। किसी का पैर हाथ में आ जाए, कुर्सी का पाया हाथ में आ जाए, टेबल का पाया हाथ में आए, लालटेन का पता न चले। फिर लालटेन मिल गई। ली लालटेन और चल पड़ा। बाहर निकला ही था, एक भैंस से टकरा गया। फिर एक नाली में गिर पड़ा। फिर एक टक ने धक्का मार दिया। सुबह जब पाया गया तो एक नाली में पड़ा था। उसे उठा कर घर पहुंचाया गया।
दोपहर को शराबघर का मालिक आया और उसने कहा महानुभाव, यह आपकी लालटेन लो। उस आदमी ने कहा, अरे! क्या लालटेन मैं आपके यहां ही भूल आया? मैं तो लेकर चला था। उस शराबघर के मालिक ने कहा, आप जरूर लेकर चले थे, वह मेरे तोते का पिंजरा है। मेरा तोता मुझे वापस करो। यह लालटेन अपनी सम्हालो।
बेहोश आदमी लालटेनों की जगह तोतों के पिंजरे लेकर चले जाते हैं। फिर भैंसों से टकराते हैं। फिर टक का धक्का लग गया, फिर नाली में पड़े। और फिर तुम पूछते हो, जीवन में कष्ट ही कष्ट क्यों हैं? जरा गौर से देखो, तुम्हारे हाथ में तोतों के पिंजरे हैं, लालटेन नहीं। तुम खुद ही तोते हो गए हो। तुम खुद ही तोते हो जो पिंजरे में बंद हैं। तुम सिर्फ दोहरा रहे हो--कोई गीता, कोई कुरान, कोई बाइबल।
यह दोहराना बंद करो। इस दोहराने से रोशनी नहीं होगी। दीये की बातें करने से दीये नहीं जलते, दीये जलाने पड़ेंगे। ज्योति अपने भीतर उठानी पड़ेगी। और जब तुम्हारे भीतर ज्योति होगी और चारों तरफ प्रकाश पड़ेगा, तुम्हारे कष्ट ऐसे ही तिरोहित हो जाएंगे जैसे कि अंधकार तिरोहित हो जाता है।
जीवन में कष्ट है यह इस बात का सबूत है कि तुम्हारे जीवन में ध्यान का दीया नहीं है। तुम्हारे जीवन में प्रार्थना और प्रेम नहीं है और प्रकाश नहीं है और परमात्मा नहीं है। कष्टों से इंगित लो, इशारा लो, समझो कुछ। कष्ट इतना ही कह रहे हैंः तुम भटक गए हो, राह पर आओ। मेरे देखे दुख लक्षण है कि हम जीवन के धर्म से दूर हट गए हैं। सुख लक्षण है कि हम जीवन के धर्म से दूर हट गए हैं। सुख लक्षण है कि हम जीवन के धर्म के पास आ गए हैं। और आनंद लक्षण है कि हम जीवन के धर्म के साथ एकरूप हो गए हैं।

पांचवां प्रश्नः मैं संसार की कीचड़ से मुक्त होना चाहता हूं, लेकिन
आप तो उसे पलायन कहते हैं। मैं क्या करूं?

संसार को कीचड़ कहोगे, वहीं से चूक शुरू हो गई। संसार में खिले कमल तुम्हें दिखाई नहीं पड़ते? बुद्ध कहां खिले? महावीर कहां खिले? कबीर कहां खिले? ये जो जगजीवन के सूत्रों पर हम विचार कर रहे हैं, ये सूत्र कहां जन्मे? यह जगजीवन का गीत कहां उठा? इसी संसार में। इसी कीचड़ में।
तो कीचड़ को सिर्फ कीचड़ ही मत कहो, इसमें कमल भी होते हैं। कीचड़ कमल की जननी है। सम्मान करो। कीचड़ के बिना कमल कहां? कीचड़ को छोड़ कर भाग जाओगे तो फिर कमल कैसे पैदा होगा? कीचड़ का उपयोग करो। कमल कीचड़ की संभावना है। कमल कीचड़ में दबा पड़ा है। खोजो। तलाशो। मिलेगा। मिला है, तुम्हें भी मिलेगा। भाग कर कहां जाओगे? और कीचड़ से भाग गए तो कमल से भी भाग गए; याद रखना। सूखोगे, लेकिन जीवन में सुगंध कभी न उठेगी।
इसलिए मैं कहता हूं, संसार से भागना भगोड़ाफन है, फलायन है। संसार का उपयोग करो। संसार एक अवसर है--एक महान अवसर। एक चुनौती, जहां प्रतिपल तुम्हें जगाने के लिए कितना आयोजन परमात्मा करता है। किसी के मुंह से गाली आ जाती है तुम्हारे लिए। अगर तुम समझदार हो तो गाली जगाएगी। कोई निंदा कर गया तो निंदा जगाएगी। किसी से टक्कर हो गई तो टक्कर जगाएगी। क्रोध आया, क्रोध से जलन हुई, भीतर घाव बने, छाले उठे तो क्रोध जगाएगा। करुणा उठी, रस बहा तो करुणा जगाएगी। प्रेम उफजेगा, प्रार्थना बनी तो

प्रार्थना जगाएगी। यहां दुख भी जगाएगा, सुख भी जगाएगा। और संसार सुख-दुख की कीचड़ है। लेकिन इसी सुख-दुख की कीचड़ में, इसी सुख-दुख के तनाव में कमल के अपूर्व फूल भी खिलते हैं।
सोख लिया है
ग्रीष्म ने
सरोवर के जल को
किया है कीचड़
और दलदल में
घुटनों तक
गड़ा हुआ खड़ा मैं
भागूंगा नहीं
इस सरोवर को छोड़ कर
कीचड़ में
झरे हुए कमल के बीज
मरे नहीं हैं
सिर्फ हो गए हैं भूमिगत
लड़ रहे हैं
जन्मने की
लड़ाई कीचड़ में ही
दरअसल
उगती है
कमल की फसल!
यहां बीज पड़े हैं। इसी कीचड़ में दबे पड़े हैं। समझदार तो जहर को भी अमृत बना लेता है। नासमझ अमृत को भी जहर कर लेता है।
जिन्होंने तुमसे कहा है, संसार से भाग जाओ, वे नासमझ ही लोग हो सकते हैं। और इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं तुमसे कह रहा हूं कि कभी-कभार अगर तुम पहाड़ चले जाओ और थोड़े दिन वहां मौन और एकांत में रह आओ तो कुछ बुरा है। लेकिन ध्यान रखना, लौट यहीं आना है। पहाड़ तुम्हारी आदत नहीं बननी चाहिए। पहाड़ तुम्हारी लत नहीं बननी चाहिए। पहाड़ तुम्हारी आसक्ति नहीं बननी चाहिए। ऐसा न हो कि जंगल की शांति से ऐसी आसक्ति लग जाए कि फिर बाजार का कोलाहल बिल्कुल न सह सको। यह तो और हार हो गई। यह तो और कमजोरी हो गई। यह तो तुम पहले से भी ज्यादा दीन हो गए।
जंगल की शांति, कभी-कभी जाओ, भोगो। वह भी संसार है--संसार का दूसरा पहलू। उसे भी भोगो लेकिन लौट आओ बाजार में। असली परीक्षा बाजार में है। और जिस दिन तुम पाओः जंगल में तुम जितने शांत, उतने ही बाजार में शांत, उस दिन समझना, कुछ हुआ; उसके पहले नहीं। उस दिन समझना, कुछ हुआ। उस दिन समझना, अब अपना स्वरूप मिला। अब परिस्थिति अनुकूल हो कि प्रतिकूल, भेद नहीं पड़ता। हार हो कि जीत, भीतर की मौज अछूती रहती है। सुख आए कि दुख, भीतर का गीत वैसा का वैसा। जीवन हो कि मृत्यु, भीतर सब अस्पर्शित।
उस अस्पर्शित दशा का नाम ही संन्यास है। संन्यास का अर्थ नहीं है संसार के विपरीत। संन्यास का अर्थ हैः द्वंद्व के बीच में निर्द्वंद्व रहने की कला।
तो जंगल चले गए हैं और बाजार में आने से डरते हैं वे भी बंध गए। जंगल
के सन्नाटे से उन्होंने जंजीरें ढाल लीं। पहाड़ के मौन को उन्होंने अपना मौन समझ लिया जो कि धोखा है। हिमालय की शांति तुम्हारी शांति नहीं है। लौटकर देखो बाजार में। अगर बाजार में भी टिक जाए तो समझना कि तुम्हारी है; और अगर बाजार में आते ही से खो जाए तो समझना हिमालय की थी। तो हिमालय की शांति से हिमालय का मोक्ष होगा, तुम्हारा कैसे होगा? यह कैसी उधारी! इस उधार से क्यों अपने को धोखा देते हो?
हमेशा लौट आओ बाजार में। लौट-लौट कर बाजार में आ जाओ। वहीं कसौटी है। वहीं तुम्हारा सोना कसा जाएगा कि पीतल हो या सोना।
और जिस दिन तुम पाओगे कि कीचड़ में कमल खिलता है, उस दिन तुम परमात्मा
को धन्यवाद देने में निश्चित ही सफल होओगे। बस उसी दिन सफल होओगे; उसके

पहले नहीं। अभी तो तुम्हारे मन में कीचड़ है--परमात्मा ने कहां पटक दिया! तुम जैसे प्यारे आदमी को कहां कीचड़ में पटक दिया! कहां हीरे को कीचड़ में डाल दिया! शिकायत ही शिकायत है मन में तुम्हारे। इस शिकायत में कैसे तो प्रार्थना जन्मे? इस शिकायत में कैसे तो पूजा बने? इस शिकायत में कैसे तो अर्चना का थाल सजे? इस शिकायत में कहां तो गंध, कहां सुगंध, कहां धूप, कहां दीप!
प्रार्थना तो तब उठती है, जब जैसा परमात्मा ने दिया है, शुभ है; जैसा दिया है यही श्रेष्ठ है; जैसा है इससे ज्यादा पूर्णतर हो ही नहीं सकता--ऐसा भाव जब सघन होता है, उसी सघनता से धन्यवाद उठता है, कृतज्ञता उठती है।
मैं तुम्हें जंगल की शांति से नहीं तोड़ना चाहता, न बाजार के शोरगुल से तोड़ना चाहता हूं। दोनों का मजा लो। कभी-कभी जंगल चले जाओ, जब सुविधा हो। न जंगल जा सको, द्वार-दरवाजे बंद करके घड़ी-दो घड़ी दिन में चुपचाप बैठ जाओ। संसार को भूल जाओ। चलने दो बाजार बाहर, चलता है, चलता रहेगा। तुम्हारा क्या लेना-देना है? तुम अपने में थिर हो जाओ। ऐसे अपने में डूबते रहो। कभी- कभी जंगल में भी जाकर वृक्षों के पास पहाड़ों की शांति को भी भोगते रहो, पर हर बार लौट आओ बाजार में। और हर बार यह ख्याल रखो, जो तुमने कमाया वह बचता है या नहीं?
मेरे पास पश्चिम से इतने संन्यासी आते हैं, उन सबकी पीड़ा यही है कि उन्हें अंततः जाना पड़ता है। एक सीमा तक ही वे यहां रुक सकते हैं। कोई तीन महीने रुक सकता है, कोई केवल तीन सप्ताह रुक सकता है। क्योंकि राज्यों की सीमाएं हैं। ये बड़े कारागृह हैं। इनमें तीन सप्ताह की छुट्टी किसी को मिलती है कि चले जाओ। तीन सप्ताह के बाद बाहर हो जाओ देश के।
यह दुनिया अभी भी खंडित है, बटी है। सारे दुनिया के विधानशास्त्र कहते हैं कि आवागमन की आजादी है। कहीं भी दिखाई नहीं पड़ती कि मनुष्य आवागमन के लिए स्वतंत्र है--कहीं भी दिखाई नहीं पड़ता। जरा अपने देश के बाहर जाओ तो तुम्हें पता चलना शुरू होता है कि कितनी झंझट है। बाहर जाने में झंझट, फिर दूसरे देश में प्रवेश करने में झंझट। यह पूरी पृथ्वी जैसे हमारी नहीं है; छोटे-छोटे टुकड़े बांट लिए हैं।
तो पश्चिम से, बाहर के देशों से जो लोग आते हैं उनकी अड़चन है। तीन महीने यहां मेरे पास रह लेते हैं, एक रस का स्वाद लगता है, फिर जाने की घड़ी जल्दी आ जाती है। फिर उदास होता है चित्त। और उनकी उदासी मैं समझ सकता हूं। क्योंकि तुम्हारे बाजार तो कुछ भी नहीं हैं पश्चिम के बाजारों के मुकाबले। तुम्हारे बाजारों में जो उपद्रव चल रहा है वह तो कुछ भी नहीं है। वह तो बहुत आदिम है। बाबा आदम के जमाने के बाजार हैं तुम्हारे। उनके बहुत विकसित बाजार हैं। वहां शोरगुल सच में भारी है। वहां उपद्रव अपनी चरम सीमा पर है। वहां आत्मा-परमात्मा का कोई पता ही नहीं चलता। वहां कैसा ध्यान, कैसी प्रार्थना, कैसी पूजा! जो करे वह पागल है।
और लोग कहकर नहीं छोड़ देंगे जैसा मैंने पहले प्रश्न में तुमसे कहा। कृष्णा को लोग कहते हैं, पागल है। अच्छा है कि तू भारत में है। यहां लोग सिर्फ पागल कह कर छोड देते हैं। बात खतम हो गई। पश्चिम में इतनी आसानी से छोड़ नहीं देते। एक दफे कहा पागल है तो बस, किया भर्ती पागलखाने में। फिर तुम लाख चिल्लाओ, फिर लाख तुम रोओ, लाख कहो कि मैं बिल्कुल ठीक हूं। जितना तुम कहोगे, मैं ठीक हूं उतनी ही मुश्किल होती जाएगी। लगेंगे इंजेक्शन। डालने लगेंगे जहर तुम्हारे शरीर में। तुम्हें मूर्च्छित करेंगे, बेहोश रखेंगे। हजार तरह की दवाएं पिलाएंगे।
एक फ्रेंच युवक कुछ दिन पहले गया। उसने कहा, मैं बड़ी मुश्किल में हूं। क्योंकि जाते ही से मुझे सेना में जाना पड़ेगा। मेरी उम्र हो गई है सेना में जाने की और डेढ़ वर्ष मुझे सेना में रहना पड़ेगा। और अब मैं जाना नहीं चाहता सेना में। अब मैं नहीं चलाना चाहता बंदूकें और नहीं सीखना चाहता बम फेंकना। अब ये बातें मुझे मूढ़ता जैसी मालूम पड़ती हैं। आपने मुझे मुश्किल में डाल दिया। इस देश में मैं रुक नहीं सकता। सरकार कहती है, छोड़ो। नोटिस आ रहे हैं। वहां मैं जा नहीं सकता क्योंकि वहां मैं गया कि तत्क्षण पकड़ लिया जाऊंगा। मिलिटी में मुझे जाना पड़ेगा।

मैंने पूछाः बचने का कोई उपाय है? उसने कहाः एक ही उपाय हैः अगर यह सिद्ध हो जाए कि मैं पागल हूं। मैंने कहा, फिर तो बहुत आसान मामला है। उसने कहा, कैसे? मैं क्या करूं कि सिद्ध हो जाए? कहा, तू कुछ मत करना। तू तो चले जाना और एकदम कुंडलिनी करना शुरू कर देना। या सक्रिय ध्यान करेगा तो भी चलेगा। जैसे ही तू "हू, हू, हू," करना शुरू करेग... । और दिल खोल कर कुंडलिनी करना। फिर जब कर ही रहे हैं... फिर रोकना मत। उसने कहा, आप कह क्या रहे हैं? मैंने कहा, तू करके देख।
उसने करके देखा भी और सफल भी हुआ। उसका पत्र आया है कि गजब हो गया! जब मैंने कुंडलिनी किया तो उन्होंने कहा, यह तो बिल्कुल पागल है। इसे तो भूल कर मिलिटरी में लेना मत। वे कुछ भी करते रहे, मैं अपनी कुंडलिनी करता ही रहा। वे जांच-पड़ताल करते रहे, मैं अपनी कुंडलिनी करता रहा।
पश्चिम में तो जल्दी ही पागल करार दिए जाओगे। और फिर पश्चिम का उपद्रव और बाजार और धन की विक्षिप्त दौड़! संन्यासी दुखी होने लगते हैं कि कैसे जाएं! पर मैं उन्हें भेजता हूं। मैं कहता हूं, जाना लाभ का है, हानि का नहीं। तुमने जो यहां कमाया है, तुम्हें तीन महीने में जो यहां मिला है, अब उसे वहां बचाना। जो यहां से तुम ले जा रहे हो उसकी सुरक्षा करना। माना कि पौधा कमजोर है, टूट सकता है। मगर अगर सुरक्षा ठीक से की तो मजबूत हो जाएगा। और जहां चुनौती होगी वहां अगर तुम सजग पहरेदार हो गए अपने भीतर के तो तुम्हें खूब लाभ होगा। और यह मेरा निरंतर का अनुभव है कि जो व्यक्ति यहां दो-चार-पांच महीने ध्यान करने के बाद पश्चिम जाता है और फिर लौटता है, उसकी गहराई बहुत बढ़ जाती है।
मैं तुमसे संसार छोड़ने को नहीं कहता। हां, कभी-कभी छुट्टी ले लो संसार से। दिन-दो चार दिन, महीने-पंद्रह दिन चले जाओ जंगल में, मगर फिर लौट आना।
और हर बार आना-जाना तुम्हारी गहराई को बढ़ाएगा, ऊंचाई को बढ़ाएगा।

आखिरी प्रश्नः आपकी बातें क्या सुनीं, बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं।
आंसू थमते ही नहीं हैं। याद भी प्रतिपल बनी रहती है। मुझे यह क्या हो रहा है? लोग कहते हैं कि मैं आपको छोड़ दूं। और वह भी असंभव मालूम पड़ता है।
इब्तिदा-ए-इश्क है रोता है क्या!
आगे-आगे देखिए होता है

क्या शुरुआत है अभी तो। अभी तो पहले कदम पड़े हैं। घबड़ाओ न। चिंता न लो।
इश्क जब तक न कर चुके रुसवा
आदमी काम का नहीं होता
जब तक प्रेम बर्बाद न कर दे, बदनाम न कर दे, तब तक आदमी काम का होता ही नहीं।
तुम पूछते होः "मुझे क्या हो गया है?"
प्रेम हो गया है तुम्हें। तुम्हारा भाव भक्ति में रूपांतरित हो रहा है। और यह बड़े सौभाग्य से होता है।
नसीबों से मिलता है दर्दे-मुहब्बत
यहां मरने वाले ही अच्छे रहे हैं
जो प्रेम में मर जाएं वे अमृत को पा जाते हैं। और बड़े भाग्य से मिलता
है यह दर्द, यह पीड़ा। यह सभी को नहीं मिलती।
आंसू आएं, उन्हें प्रार्थना बनाओ।
क्यों दर्द के रोने रोता है
अब इश्क है तो सब्र भी कर
गाली इसमें तो यही कुछ होता है गाली
और यह तो शुरुआत है। यह तो पहली बूंदाबांदी है। अभी तो मूसलाधार वर्षा होगी जो सब बहा ले जाएगी--सब जो तुमने अपना माना है, सब जैसा तुमने अपने को माना है। और जब तुम पूरे के पूरे बह जाओगे इस बाढ़ में, पीछे जो शेष रह जाएगा, वही तुम्हारा स्वत्व है; वही तुम्हारा सार है। सत्य कहो उसे, परमात्मा कहो उसे, निर्वाण कहो उसे; या जो नाम देना चाहो, दो।

जब सब इस बाढ़ में बह जाएगा इन आंसुओं में, यह विक्षिप्तता जब सब तुम्हारे तर्कजाल तोड़ देगी, यह प्रेम जब धीरे-धीरे तीर की तरह तुम्हारे हृदय के अंतस्तल में चुभ जाएगा तब... तब तुम्हें पता चलेगा तुम कितने सौभाग्यशाली हो। तुम्हें जलस्रोत मिल जाएंगे। भीतर खोदने से ही मिलते हैं। और प्रेम की कुदाल लेकर कोई खोदता है तो ही भीतर खुदाई होती है। दिक्कतें आएंगी। बदनामी होगी।
फिरते हैं मीर ख्वार कोई पूछता नहीं
इस आशिकी में इज्जते-सादात भी गई
कोई पूछेगा भी नहीं। पहले तो लोग कहेंगे कि पागल हो गए। पहले लोग कहेंगे, यह तुम्हें क्या हो गया? फिर धीरे-धीरे लोग कहेंगे, अब हो ही गया, पूछना भी क्या! लोग रास्ता काटकर निकल जाएंगे। लोग जयरामजी तक करने में डरेंगे। पागलों से कौन दोस्ती रखता है? और पागलों के साथ रहो तो दूसरे लोग समझने लगते हैं कि तुम भी पागल हो रहे हो।
फिरते हैं मीर ख्वार कोई पूछता नहीं
इस आशिकी में इज्जते-सादात भी गई
यह प्रेम ऐसा है, इसमें सब चला जाता है। सय्यद होने का जो सम्मान था वह
भी गया--इज्जते-सादात भी गई। इसमें तो सब गंवाना पड़ता है। लेकिन जो गंवाते हैं वे ही पाते हैं।
और बहुत लोग तुम्हें समझाएंगे कि अभी रुक जाओ, अभी कुछ बिगड़ा नहीं है। अभी ठहर जाओ। अभी तो दो ही कदम बढ़े हैं, लौट आओ। मगर प्रेम के रास्ते पर एक भी कदम पड़ जाए, तो पूरी मनुष्य-जाति के इतिहास में अभी तक ऐसा हुआ नहीं कि कोई लौट गया हो। रस ऐसा है। मादकता ऐसी है।
कुछ न मैं समझा जुनूने-इश्क में
देर नासह मुझको समझाता रहा
लोग समझाएंगे तुम्हें। समझदार लोग समझाएंगे, उपदेशक समझाएंगे, धर्मगुरु समझाएंगे, पंडित मौलवी समझाएंगे।
कुछ न मैं समझा जुनूने-इश्क में
देर नासह मुझको समझाता रहा
लेकिन जिसको दीवानी चढ़ी, जिसको प्रेम का पागलपन आया, उसको कुछ सुनाई
भी नहीं पड़ता, समझ में भी नहीं आता। जिसने एक बार प्रेम की पुकार सुनी, इस जगत के कोई तर्क उसे सार्थक नहीं मालूम होते। वह हंस कर टाल देगा। वह अपनी धुन में मस्त रहेगा। ये सो तर्क तो वह भी जानता है। इन तर्को से कुछ भी नहीं मिला। घास का एक फूल भी नहीं खिला इन तर्को से। और अब उसके भीतर गुलाब की गंध आनी शुरू हो रही है। कैसे रुके? अवश आदमी खिंचा चला जाता है। मिटना ही होगा अब तो।
तुम पूछते होः "आपकी बातें क्या सुनीं, बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं।"
हाथ उठाओ इश्क के बीमार से
कोई बचता भी है इस आजार से
इस रोग से कोई बचता ही नहीं। इस रोग में तो जाना ही पड़ता है, मिटना ही पड़ता है।
न सुनते तो एक बात थी, अब सुन ली... ! न आते यहां तो एक बात थी, अब आ गए... !
अब यह रंग तुम पर चढ़ा। अब यह उतरने वाला रंग नहीं। मैं तो रंगरेज हूं।
और फिर तुम्हें याद दिला दूं कि यह जो दुख अभी मालूम हो रहा है, इसे सम्हालना संपदा की तरह। जैसे मां के पेट में बच्चा होता है गर्भ में--पीड़ा झेलनी पड़ती है। भोजन पचता नहीं, उलटियां हो जाती हैं। बोझ, पीड़ा नौ महीने तक झेलनी पड़ती है। लेकिन मां झेलती है क्योंकि एक भरोसा है। एक नया जीवन उसके भीतर पल रहा है। एक नया जीवन आ रहा है।
ऐसे ही तुम हो। ये जो बातें तुम्हारे भीतर पड़ रही हैं, तुम्हारा गर्भ बनेंगी। बहुत पीड़ा से गुजरना होगा। लेकिन सब पीड़ा झेलने-योग्य है क्योंकि इसीसे तुम्हारा नया जीवन पैदा होगा। एक जन्म तो मिलता है मां-बाप से, एक जन्म देना पड़ता है स्वयं को। अपने ही गर्भ में अपने को जन्माना पड़ता है। यही साधना है।
वहीं लुट गया कारवाने-हयात

जहां से तेरा गम जुदा हो गया और जिस दिन परमात्मा का गम जुदा हो जाता है, समझ लेना वहीं जीवन का काफिला लुट गया। वे ही लोग अभागे हैं जिनके जीवन में परमात्मा ने गर्भ की प्रसव पीड़ा नहीं दी है। तुम सौभाग्यशाली हो। पूछते होः "मैं मुसीबत में पड़ गया हूं।"
अच्छा हुआ। और भी तुम्हें मुसीबत में डालेंगे। ऐसे ही तो निखरोगे। ऐसे ही तो सुथरोगे। ऐसे ही सुलझोगे।
"आंसू रुकते ही नहीं हैं।"
रोकते ही क्यों हो? सहारा दो, सहयोग करो, बाहर की ही आंखों को आंसू साफ नहीं करते, भीतर की आंखों को भी साफ करते हैं।
"याद भी प्रतिपल बनी रहती है।"
अच्छा हो रहा है। जिनको नहीं बनी रहती है प्रतिपल याद, उन्हें दुखी होना चाहिए। तुम क्यों दुखी हो? उन्हें प्रश्न उठाना चाहिए। तुम क्यों प्रश्न उठाते हो? याद तो ऐसी हो जाना चाहिए कि दिन तो रहे रहे, रात भी रहे। जागे-जागे तो रहे ही, सोए-सोए भी रहे।
स्वामी राम अमरीका से लौटे। हिमालय पर मेहमान थे टेहरी गढ़वाल के महल में। उनके शिष्य थे एक सरदार पूर्णसिंह; उनकी सेवा में रहते थे। रात सोए, गर्मी तेज थी और पूर्णसिंह को नींद न आई। और नींद न आने का एक कारण और भी था कि कोई पास में ही बस राम-राम-राम की धुन लगा रहा था। उठे कि कौन पागल है? बाहर गए बरामदे में चक्कर लगाया--महल खाली है कहीं दूर-दूर तक भी कोई नहीं है। जितना दूर तक चक्कर लगाया उतनी आवाज कम सुनाई पड़ी। फिर कमरे में लौटे, आवाज फिर सुनाई पड़ी।
थोड़े हैरान हुए। कहीं राम तो नहीं राम-राम जप रहे हैं! नींद न आ रही हो
तो पड़े-पड़े क्या करें! तो पास गए, वे तो सो रहे हैं। न केवल सो रहे हैं, घुर्रा भी रहे हैं। मगर आवाज, जैसे ही उनके पास गए, और जोर से आने लगी। गौर से सुना; सिर के पास सुना, पैर के पास सुना, हाथ के पास सुना। कान लगा कर सुना, पूरे शरीर से राम, राम, राम की धुन आ रही है।
सुबह राम से पूछा। राम ने कहा, तुमने ठीक ही सुना। पहले दिन में ही आती थी, फिर धीरे-धीरे रात में भी समा गई। पहले मन में ही आती थी, फिर धीरे-धीरे तन में भी समा गई। अब तो राम ही हैं। अब तो मैं नहीं हूं।
तुम तो न पूछो। प्रतिपल याद आती है? गहराओ उसे। एक क्षण खाली न जाए। यही याद तो धीमा सा धागा है, जो तुम्हें परमात्मा तक ले जाएगा। पतला धागा है स्मृति का, सुरति का; यही तो तुम्हें पहुंचाएगा। इस धागे में अपनी पूरी ऊर्जा डाल दो ताकि यह मजबूत हो, रोज-रोज मजबूत हो। इसे प्रगाढ़ करो।
"... याद भी प्रतिपल बनी रहती है। मुझे यह क्या हो रहा है?"
लक्षण बिल्कुल साफ हैं। किसी से पूछने जाने की जरूरत नहीं। प्रेम हो रहा है। भाव भक्ति बन रही है। रात कटना शुरू हो रहा है। सुबह करीब आ रही है। चलते ही रहे, रुक न गए तो पहुंच जाओगे।
"लोग कहते हैं, मैं आपको छोड़ दूं। और वह तो अब असंभव है।"
लोग तो कहेंगे। लोग दयावश कहते हैं। लोग कहते हैं, कैसी तुम्हारी हालत हो गई है! अच्छे-भले आदमी थे, यह तुम्हें क्या हो गया है? आंख से आंसू बहते रहते हैं। पहले तो कभी नहीं बहते थे। यह तुमने कैसी बात सीख ली? यह तुम कहां के जाल में पड़ गए? यह तुम किसके सम्मोहन में आ गए? होश में नहीं चलते। चलते कहीं हो, देखते कहीं हो। बोलते कुछ हो, सोचते कुछ हो। तुम्हारे भीतर क्या हो रहा है? नशे में तो नहीं हो? कुछ पीना इत्यादि तो शुरू नहीं कर दिया है? लोग भी दयावश कहते हैं। उन पर नाराज न होना। लेकिन जो तुम्हें हो रहा है, इससे लौटने का कोई उपाय भी नहीं है।
उसकी तरफ से दिल न फिरेगा नासहो
अब हो गया यह जिसका तरफदार, हो गया
परमात्मा से जब तक तुम नहीं जुड़े, नहीं जुड़े। भटकते रहो जन्मों तक। एक बार जुड़ने लगे, फिर कोई उपाय लौटने का नहीं है।
हो गया यह जिसका तरफदार, हो गया
यह दिल एक बार उसकी तरफ झुक जाए तो फिर सारा जगत और सारे जगत का साम्राज्य भी दूसरे पलड़े पर रखा हो तो भी तुम लेने को राजी न होओगे।

उसकी तरफ से दिल न फिरेगा नासहो अब हो गया यह जिसका तरफदार, हो गया

आज इतना ही।

नाम सुमिर मन बावरे
तीसरा प्रवचन

पंडित, काह करै पंडिताई

हमारा देखि करै नहिं कोई।
जो कोई देखि हमारा करिहै, अंत फजीहति होई।।
जस हम चले चलै नहिं कोई, करी सो करै न सोई।
मानै कहा कहे जो चलिहै, सिद्ध काज सब होई।।
हम तो देह धरे जग नाचब, भेद न पाई कोई।
हम आहन सतसंगो-बासी, सूरति रही समोई।।
कहा पुकारि बिचारि लेहु सुनि, बृथा सब्द नहिं सोई।
जगजीवनदास सहज मन सुमिरन, बिरले यहि जग कोई।।

कलि की रीति सुनहु रे भाई।
माया यह सब है साईं की, आपुनि सब केहु गाई।।
भूले फूले फिरत आय, पर केहुके हाथ न आई।
जो है जहां तहां ही है सो, अंतकाल चाले पछिताई।।
जहं कहुं होय नामरस चरचा, तहां आइकै और चलाई।
लेखा-जोखा करहिं दाम का, पड़े अघोर नरक महिं जाई।।
बूड़हिं आपु और कहं बोरहिं, करि झूठी बहुतक बताई।
जगजीवन मन न्यारे रहिए, सत्तनाम तें रहु लय आई।।

पंडित, काह करै पंडिताई।
त्यागदे बहुत पढ़ब पोथी का, नाम जपहू चित लाई।।
यह तो चार विचार जगत का, कहे देत गोहराई।
सुनि जो करै तरै पै छिन महं, जेहिं प्रतीति मन आई।।
पढ़ब पढ़ाउब बेधत नाहीं, बकि दिनरैन गंवाई।
एहि तैं भक्ति होत है नाहीं, परगट कहौं सुनाई।
सत्त कहत हौं बुरा न मानौ, आजपा जपै जो जाई।
जगजीवन सत-मत तब पावैं, परमज्ञान अधिकाई।।

तुमहीं सो चित्त लागु है, जीवन कछु नाहीं।
मात पिता सुत बंधवा, कोउ संग न जाहीं।।
सिद्ध साध मुनि गंध्रवा मिलि माटी माहीं।
ब्रह्मा बिस्नु महेश्वरा, गनि आवत नाहीं।।
नर केतानि को बापुरा, केहि लेखे माहीं।
जगजीवन बिनती करै, रहै तुम्हरी छांहीं।।

आनंद के सिंध में आनि बसे, तिनको न रहयो तन को तपनो।
जब आपु में आपु समाय गए, तब आपु में आपु लह्यो अपनो।।
जब आपु में आपु लह्यो अपुनो, तब अपनो हो जाय रह्यो जपनो।
जब ज्ञान को भान प्रकास भयो, जगजीवन होय रह्यो सपनो।।

संतों के वचन तो हीरों की खदान हैं। लेकिन हीरों की खदान में भी कभी- कभी--और कभी-कभी ही--कोहिनूर भी मिल जाते हैं। ऐसे तो सभी वचन प्यारे हैं लेकिन कभी कोई वचन अपूर्व होता है।
आज का पहला सूत्र ऐसा ही अपूर्व है; कोहिनूर जैसा है। समझोगे तो बहुत
रस पाओगे। जी सके तो जीवन रूपांतरित हो जाएगा। एक महत कुंजी जगजीवनदास इस सूत्र में दे रहे हैं।
हमारा देखि करै नहिं कोई
मनुष्य नकलची है। चार्ल्स डार्विन ठीक ही कहता है कि आदमी बंदर से पैदा हुआ है। और चाहे कारण ठीक हों या न हों, मगर एक मनोवैज्ञानिक कारण तो

ठीक मालूम पड़ता ही है कि आदमी बंदरों जैसा ही नकलची है। शायद बंदर भी सीख लेते हों कुछ आदमी नहीं सीखता। आदमी बस नकल ही करता है।
मैंने सुना है, एक आदमी टोपियां बेचता था बाजार में। एक दिन टोपियां
बेच कर वापस लौटता था, एक बड़े बरगद के वृक्ष के नीचे विश्राम करने को रुका। ठंडी-ठंडी हवा, दिन भर का थका! झपकी लग गई। जब आंख खुली तो देखा, टोकरी का ढक्कन खुला पड़ा है और टोकरी के भीतर जितनी टोपियां थीं, सब नदारद हैं। हैरान हुआ, कहां गईं? चारों तरफ नजर डाली। ऊपर देखा, वृक्ष पर बहुत-से बंदर बैठे थे। सब टोपियां ले गए थे। सब बिल्कुल गांधीवादी हो गए थे। बड़ी जंच रही थीं टोपियां उन्हें; जैसे दिल्ली में लोगों को जंचती हैं!
घबड़ाया दुकानदार। अब क्या करे! एक ही टोपी बची थी सिर पर। उसे याद आया, बंदर नकलची होते हैं। उसने अपनी टोपी निकालकर फेंक दी। सारे बदंरों ने अपनी टोपियां निकालकर फेंक दीं। उसने टोपियां इकट्ठी कर लीं, घर लौट गया। फिर बहुत वर्षों तक उसका बेटा वही काम करने लगा। बाप ने उसे बताया था
कि ख्याल रखना, कभी उस वृक्ष के नीचे--बरगद के वृक्ष के नीचे विश्राम करने मत रुकना। बंदरों का अड्डा है वहां। एक बार मेरी सारी टोपियां ले गए थे। फिर अगर कभी भूल-चूक से ऐसा तेरे जीवन में हो जाए तो सूत्र ख्याल रखना, अपनी टोपी निकाल कर फेंक देना।
बेटा भी आया। और बरगद का झाड़ बड़ा प्यारा था। उसके नीचे बड़ी गहन छाया थी, शीतलता थी। थका-मांदा था। फिर सूत्र भी उसे मालूम था तो फिक्र की कोई जरूरत भी न थी। टोकरी रखकर वह भी विश्राम करने लेट गया, नींद आ गई। और वही हुआ जो होना था। उठा तो टोकरी खाली थी। ऊपर देखा, सब बैठे थे--सब नेतागण टोपी लगाए हुए। हंसा। उसने कहा, मन में ही कहा कि पागलो, तुम्हें मालूम नहीं है कि मुझे सूत्र भी पता है। अपनी टोपी निकाल कर फेंक दी। एक बंदर नीचे उतरा और वह टोपी भी उठा कर ले गया।
बंदरों की भी यह दूसरी पीढ़ी थी। उनके बापदादे भी समझा गए थे कि अगर ऐसी भूल मत करना। एक बार हम कर चुके सो कर चुके।
बंदर भी सीख लेते हैं, पर आदमी शायद ही सीखता हो। आदमी नकल से जीता है। महावीर को लोगों ने देखा कि नग्न हैं, लोग नग्न हो गए बिना समझे, बिना बूझे कि महावीर की नग्नता कोई आचरण नहीं है, अंतस्तल में पैदा हुई निर्दोषता का परिणाम है। तुम परिणाम का आरोपण कर सकते हो, अंतस्तल कहां से लाओगे?
नग्न खड़े होने से तुम निर्दोष हो जाओगे? हां, निर्दोष होने से कोई नग्न खड़ा हो जाए, वह बात दूसरी। क्रांति भीतर से बाहर की तरफ होती है, बाहर से भीतर की तरफ नहीं होती।
ढाई हजार साल बीत गए महावीर को, अब भी कुछ लोग उसी नकल में नग्न हो जाते हैं। न तो उनमें महावीर की सुगंध मालूम होती है, न सौंदर्य मालूम होता है, न महावीर की महिमा, न प्रसाद; कुछ भी नहीं। बस नंगे खड़े हैं। तो नंगे तो बहुत आदिवासी हैं। नग्न होने से अगर कोई तीर्थंकर होता हो, नग्न होने से अगर कोई परम ज्ञान को उपलब्ध होता हो तो सारे आदिवासी कभी के हो गए होते। यह नग्नता सिर्फ नकल है।
महावीर ने उपवास किए--किए कहना ठीक नहीं, हुए। ऐसे रस-विभोर हो जाते थे अंतर्लोक में कि भूल ही जाते भोजन की बात। दिन आते, चले जाते, सुबह होती, सांझ होती, उनकी डुबकी, लगी रहती समाधि में। लोगों ने देखा, महावीर उपवास करते हैं। उपवास हो रहे थे, लोगों ने देखा, उपवास करते हैं। लोग तो यही देखेंगे जो बाहर से दिखाई पड़ेगा।
और बाहर से केवल लक्षण दिखाई पड़ते हैं। बाहर से भीतर का अंतस्तल दिखाई नहीं पड़ सकता। महावीर का अंतस्तल कौन देखेगा? जो महावीर जैसा हो जाए। बुद्ध का अंतस्तल कौन देखेगा? जो बुद्ध जैसा हो जाए। बाहर से लक्षण दिखाई पड़ते हैं।
देखा कि महावीर भोजन नहीं करते; कई दिन बीत जाते हैं। लोगों ने भी उपवास शुरू कर दिया। ढाई हजार साल बीत गए, लोग उपवास कर रहे हैं। और कोई भी यह नहीं सोचता कि उपवास से फिर तुम एक बार भी तो महावीर पैदा नहीं कर सके। ढाई हजार साल की कहानी तुम्हारी हार की, पराजय की कहानी है। फिर भी नकल

जारी है। लोग सोचते हैं, शायद उपवास ठीक से नहीं कर पा रहे हैं इसलिए।
जितना करना चाहिए इतना नहीं कर पा रहे हैं इसलिए चूक रहे हैं।
नहीं, इसलिए चूक रहे हो कि उपवास तो किसी और चीज की मौजूदगी का परिणाम है। दीया जले तो अंधकार दूर हो जाता है, लेकिन अंधकार दूर करने से दीया नहीं जलता; और न अंधकार दूर हो सकता है।
इसलिए यह आज का पहला सूत्र कोहिनूर जैसा है। इतनी साफ-साफ सीधी-सीधी बात इस तरह कभी नहीं कही गई थी।
हमारा देखि करै नहिं कोई
जगजीवन कहते हैं, जैसा हम करते हैं वैसा तुम मत करना। हमारा देखकर करोगे, मुश्किल में पड़ोगे।
जो कोई देख हमारा करिहै, अंत फजीहति होई
सिर्फ फजीहत होगी, और कुछ भी न पाओगे।
जस हम चले चलै नहिं कोई, करी सो करै न सोई
जैसे हम चलते हैं वैसे मत चलना। जैसा हम करते हैं वैसा मत करना। क्योंकि जो हमें हो रहा है, जो तुम्हें दिखाई पड़ रहा है वह केवल बाह्य लक्षण है। जड़ें भीतर हैं, फूल बाहर आए हैं। तुम फूलों को बिना जड़ों के न ला सकोगे। और अगर ले आए तो बाजार से खरीदे गए कागजी फूल होंगे। उपर से चिपका लेना, मगर कागजी फूल कागजी फूल हैं। इनसे न कोई महावीर बनता ह, न बुद्ध, न मुहम्मद बनता है, न कृष्ण, न क्राइस्ट। इससे सिर्फ झूठे, थोथे, पाखंडी पैदा होते हैं।
पहले भीतर की जड़ें पैदा करो, पहले बीज बोओ। लेकिन लोग जल्दी में हैं। लोग कहते हैं, बीज बोएं, फिर प्रतीक्षा करें, फिर वर्षा के बादल जब आएंगे तब आएंगे, फिर वर्षा होगी--इतनी लंबी कौन प्रतीक्षा करे? फूल बाजार में मिलते हैं, हम ऊपर से क्यों न चिपका लें?
आचरण से बचना। अंतःकरण में क्रांति होती है। अंतःकरण में जड़ें हैं। आचरण तो केवल अंतःकरण में जो होता है, उसको बाहर तक लाता है। लेकिन लोग आचरण के पीछे चलते हैं। और जो स्वयं आचरण के पीछे चलते हैं वे दूसरों को भी समझाते हैं कि हम जैसा करते हैं वैसा करो। हमारे आचरण का अनुसरण करो। तुम्हें जगजीवन के वचन बड़े हैरानी में डालेंगे। तुम्हारे तथाकथित साधु-संत यही कहते हैं: हमारे जैसा करो। हम जैसा करते हैं वैसा तुम करो। इतना न बन सके तो थोड़ा सही; ज्यादा न बन सके तो थोड़ा सही। दो मील न चल सको तो आधा सही, दस कदम सही। हमारे जितने व्रत न कर सको तो एकाध तो व्रत ले लो।
हमारे जैसे लंबे उपवास न कर सको तो छोटे उपवास सही, मगर कुछ तो करो। हमारे जैसा करो। वे खुद भी नकल कर रहे हैं, वे तुम्हें भी नकल ही सिखा रहे हैं। नकलची नकल ही सिखा सकते हैं। बंदरों से और ज्यादा की आशा भी नहीं है। जगजीवन का सूत्र बड़ा क्रांतिकारी है। ठीक इस ढंग से किसी ने कहा ही नहीं है। इतना सीधा-साधा साफ-साफ। गंवार आदमी थे, पढ़े-लिखे नहीं थे। बातों को उलझाकर कहने की आदत भी न थी। जैसा था वैसा कह दिया है। एक बात साफ दिखाई पड़ गई होगी कि लोग नकल करने लगे होंगे।
लोग नकल करने में बड़े कुशल हैं। और कभी-कभी इतनी कुशलता से नकल करते
हैं कि मूल को भी मात दे दें; मूल भी हार जाए।
जो कोई देखि हमारा करिहै, अंत फजीहति होई
जस हम चले चलै नहिं कोई, करी सो करै न सोई
मानै कहा कहे जो चलिहै, सिद्ध काज सब होई
जगजीवन कहते हैं, हम जो कहते हैं वह मानो। हम जो करते हैं, उसकी फिकर न करो अभी। क्योंकि हम जहां हैं वहां जो हो रहा है वहां तुम अभी नहीं हो। तुमने अभी वैसा किया तो तुम बुरी तरह गिरोगे; बड़ी फजीहत होगी।
मनुष्य के भीतर चेतना के कई तल हैं। जो व्यक्ति समाधि को उपलब्ध हो गया है उसे जीवन के छोटे-मोटे नियम, मर्यादाएं मानने की कोई जरूरत नहीं है। जो वृक्ष बादलों को छूने लगा है, अब उसे बचाने के लिए बागुड़ थोड़े ही लगानी पड़ती है! मगर जो पौधा अभी-अभी पैदा हुआ है, नये-नये पत्ते आए हैं, अगर इसको ऐसा ही छोड़ दिया बिना बागुड़ के, जानवर चर जाएंगे। यह बच नहीं सकेगा।

जब आदमी जवान हो जाता है तो अपने पैरों से चलता है। जब छोटा बच्चा होता है तब तो नहीं चल सकता। तब किसी के हाथ के सहारे की जरूरत होती है। तब तो घुटने के बल रेंगता है। हां, कोई हाथ का सहारा दे दे, एक-दो कदम चल लेता है। एक दिन चल पाएगा; अपने ही पैरों से चल पाएगा लेकिन अभी देर है। अभी थोड़ी तैयारी होनी जरूरी है। अभी देह को इस योग्य बनना है।
जैसी देह की योग्यता निर्मित होती है ऐसी ही आत्मा की योग्यता भी क्रमशः निर्मित होती है। जो पहुंच गए हैं समाधि में उन्हें न नियम की कोई जरूरत है, न मर्यादा की कोई जरूरत है। लेकिन जो नहीं पहुंचे हैं, अगर सब नियम और मर्यादा छोड़ देंगे तो कभी भी पहुंच नहीं पाएंगे। टूट ही जाएंगे। रास्ते में ही बिखर जाएंगे।
मानै कहा कहे जो चलिहै, सिद्ध काज सब होई
हम तो देह धरै जग नाचब, भेद न पाई कोई
जगजीवन कहते हैं कि हमारी तो तुम मत पूछो। क्योंकि हम तो अब ऐसी हालत में हैं कि जहां हम जानते है कि हम देह नहीं हैं। "हम तो देह धरै जग नाचब"। अब तो हम जानते है कि हम और हैं, देह और है। अब तो हम नाच रहे हैं देह में। अब देह से हमारा कोई बंधन नहीं रह गया है। अब देह से हमारी कोई आसक्ति नहीं रह गई है। अब देह और हमारे बीच फासला पैदा हो गया है, तादात्म्य टूट गया है।
तो हम जो करें, वही तुम मत करने लगना। जब तक तुम्हारा देह से तादात्म्य है तब तक तुम वही मत करने लगना, अन्यथा तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। पहले तादात्म्य टूटने दो। और तादात्म्य टूटने की प्रक्रियाएं... और अक्सर ऐसा हो जाता है कि तादात्म्य टूटने के बाद जो व्यक्ति करता है अगर वही तादात्म्य रहते हुए करे तो तादात्म्य और मजबूत हो जाता है।
जनक के पास एक संन्यासी गया। पूछने गया था। उसके गुरु ने भेजा था कि जाकर ब्रह्मज्ञान ले आ। मन में बहुत सकुचाया भी, सोचा भी कि सम्राट के पास क्या ब्रह्मज्ञान होगा? लेकिन गुरु कहते हैं तो गया। देखा तो और भी चौका। वहां तो महफिल जमी थी। शराब के दौर चल रहे थे, नर्तकियां नाच रहीं थीं। सम्राट मस्त बीच में बैठा था। संन्यासी के तो हाथ-पैर कंप गए। वह तो तत्क्षण भागना चाहता था लेकिन जनक ने कहा, जब आ ही गए तो रुको। कम से कम रात तो विश्राम करो। फिर तुम जो पूछने आए हो, वह बिना पूछे जाओ मत। सुबह उठकर पूछ लेना।
दूर जंगल से थका-मांदा आया था तो सो गया। सुंदर बिस्तर--सुंदरतम; जीवन में देखा भी नहीं था ऐसा। दिन भर का थका-मांदा भी था, खूब गहरी नींद आनी थी मगर नींद आई ही नहीं। सुबह सम्राट ने पूछा कि कोई अड़चन तो नहीं हुई? नींद तो ठीक आई? उसने कहा, नींद कैसे आए? नींद आती कैसे? आपने भी खूब मजाक की। इतना सुंदर भवन, इतना सुंदर बिस्तर, इतना सुंदर भोजन! मैं थका-मांदा भी बहुत। गहरी नींद आनी ही थी। रोज आती है मगर आज नहीं आ सकी। यह आपने क्या मजाक किया? जब मैं सोया बिस्तर पर और मैंने ऊपर आंख की तो देखा एक नंगी तलवार कच्चे धागे से लटकी है। रातभर यही सोचता रहा कि पता नहीं यह तलवार कब गिर जाए, कब प्राण ले ले। डर के मारे नींद न लगी। सो नहीं पाया। पलक नहीं झपी।
सम्राट ने कहा, मेरी तरफ देखो। यह मेरा उत्तर है। मौत की तलवार मेरे ऊपर भी लटकी है। और मौत का मुझे प्रतिक्षण स्मरण है इसलिए नर्तकियां नाचें, शराब का दौर चले, स्वर्ण-महल हों, वैभव-विलास हो, सब ठीक लेकिन तलवार ऊपर लटकी है। वह तलवार मुझे भूलती नहीं। तुम जैसे सो नहीं पाए ऐसे ही मैं भी मूर्च्छित नहीं हो पाता हूं। मेरा होश जगा रहता है। ध्यान सधा रहता है। तो देख कर मत लौट जाओ। बाहर से तम देख कर लौट जाओगे, भूल हो जाएगी। मैं बैठा था वहां, फिर भी वहां था नहीं। दौर चलता था तो चलता था। मेरी मौजूदगी सिर्फ ऊपर-ऊपर थी। भीतर से मैं वहां मौजूद न था। भीतर से मैं कोसों दूर था। जैसे रातभर तुम बिस्तर पर थे और बिस्तर पर नहीं थे, सोने का सब आयोजन था और सो न पाए ऐसे ही भोग का सब आयोजन है और भोग नहीं है। मैं अलिप्त हूं। मैं दूर-दूर हूं। मैं जल में कमलवत हूं। पानी से घिरा हूं लेकिन पानी की बूंद भी मुझे छूती नहीं है।

लेकिन क्या तुम सोचते हो यही स्थिति बाकी दरबारियों की भी थी? तो तुम गलती में पड़ जाओगे। हालांकि दरबारी भी वही कर रहे थे जो सम्राट कर रहा था।
ऊपर-ऊपर दोनों एक जैसे थे, भीतर-भीतर बड़ा भेद था।
जगजीवन से मैं राजी हूं। इसे खूब गहरे बैठ जाने दो इस विचार को।
हम तो देह धरे जग नाचब, भेद न पाई कोई
हम तो नाच रहे हैं देह धरे। देह तो हमें वस्त्रों-जैसी हो गई है। हम बसे हैं देह में। हम मालिक हैं देह के। हम देह नहीं हैं।
और अब हमें इस संसार में कोई भेद नहीं दिखाई पड़ता, सब अभेद हो गया है। मिट्टी और सोना एक जैसा है।
महाराष्ट्रमें राका-बांका की बड़ी प्यारी कहानी है। एक फकीर हुआ राका--बड़ा त्यागी। सब छोड़ दिया। संपत्ति थी बहुत, सब लात मार दी। पत्नी भी उसके साथ हो ली। पत्नियां इतनी आसानी से साथ नहीं हो जातीं क्योंकि स्त्री का मोह पृथ्वी पर बहुत है। स्त्री पृथ्वी का रूप है--घर जायदाद, मकान। इसलिए देखते हो न! पुरुष कमाता है धन, खरीदता है मकान लेकिन स्त्री कहलाती है घरवाली। पुरुष को कोई घरवाला नहीं कहता। उनकी कोई गिनती ही नहीं। कमाए वह, खून-पसीना करे, मकान खरीदे, मगर खरीदते ही से स्त्री का हो जाता है--घरवाली। स्त्री की पकड़ स्थूल पर गहरी है।
तो राका थोड़ा चिंतित था कि पत्नी साथ जाएगी कि नहीं, लेकिन बड़ा हैरान हुआ। पत्नी ने तो एक बार भी इनकार नहीं किया। जब सब लुटा रहा था धन-दौलत तो पत्नी खड़ी देखती रही। जब चला तो वह भी पीछे हो ली। उसने पूछा, तू भी आती है? उसने कहा, मैं भी आती हूं। यह झंझट मिटी, अच्छा हुआ। उपद्रव ही था व्यर्थ का।
राका को तो भरोसा ही न आया। उसने तो कभी सोचा ही न था। कोई पति नहीं सोचता कि उसकी पत्नी कभी इतनी ज्ञानवान होगी। दोनों फिर जंगल से लकड़ी काटते, बेच देते, उसी से भोजन मिल जाता, काम चला लेते।
एक दिन बेमौसम तीन दिन तक पानी गिर गया तो लकड़ी काटने जा न पाए। तीनों दिन भूखे रहना पड़ा। चौथे दिन थके-मांदे, भूखे-प्यासे लकड़ी काटने गए। काट कर लौटते थे, राका आगे था। उसने देखा कि रास्ते के किनारे किसी राहगीर की सोने की अशर्फियों से भरी थैली गिर गई है। कोई घुड़सवार... घोड़े के टाप के निशान हैं। अभी धूल भी हवा में है। अभी-अभी गुजरा होगा। उसकी स्वर्ण-अशर्फियों की थैली गिर गई है।
राका के मन में हुआ कि मैं तो त्यागी हूं। मैंने तो जान-बूझ कर त्यागा है, सोच-समझ कर त्यागा है। मेरी पत्नी तो सिर्फ मेरे पीछे चली आई है शायद मोहवश। शायद पति को नहीं छोड़ सकी है। शायद मेरे कारण। शायद अब और कोई उपाय नहीं है। शायद अकेली नहीं रह सकी है। पता नहीं किस कारण मेरे साथ चली आई है। कहीं उसका मन लोभ में न आ जाए। स्त्री स्त्री है। कहीं मन पकड़ने का न हो जाए। और इतनी अशर्फियां! फिर तीन दिन के हम भूखे भी हैं। सोचने लगे कि इनको बचा कर रख लो। कभी पानी गिरे, अड़चन हो, लकड़ियां न काटी जा सकें, बीमारी आ जाए तो काम पड़ेंगी। तो इसे जल्दी छिपा दूं।
तो वह पास के ही एक गड्ढे में सारी अशर्फियों को डालकर उस पर मिट्टी पूर रहा था। जब वह मिट्टी पूर ही रहा था कि पत्नी आ गई। पत्नी ने पूछा, क्या करते हैं आप? सच बोलने की कसम खाई थी इसलिए झूठ भी न बोल सका। कहा कि अब मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया। तूने पूछा तो मुझे कहना पड़ेगा। बहुत सी स्वर्ण-अशर्फियों से भरी हुई एक थैली पड़ी थी। किसी राहगीर की गिर गई है। कोई घुड़सवार अभी-अभी भूल गया है। यह सोचकर कि कहीं तेरे मन में मोह न आ जाए... मैं तो त्यागी हूं; सर्वत्यागी! मेरे लिए तो मिट्टी और सोना बराबर है। मगर तू... तेरा मुझे अभी भी भरोसा नहीं है। तू आ गई है मेरे साथ, लेकिन पता नहीं किस हेतु से आ गई है। शायद यह भी मेरे प्रति आसक्ति हो कि सुख में साथ रहे, दुःख में भी साथ रहेंगे। जीवन-मरण का साथ है, इस कारण आ गई हो। डरकर कि कहीं तेरा मन डोल न जाए; फिर तीन दिन की भूख! सोच कर कि रख लो उठा कर।
तो मैं अशर्फियों के ऊपर मिट्टी डाल कर छिपा रहा हूं।
उसकी पत्नी खिलखिला कर हंसने लगी और उसने कहा, हद हो गई। तो तुम्हें अभी सोने और मिट्टी में फर्क दिखाई पड़ता है? मिट्टी पर मिट्टी डाल रहे हो,

शर्म नहीं आती? उस दिन से उसकी स्त्री का नाम हो गया बांका। राका तो उसका नाम था पति का; उस दिन से उसका नाम हो गया बांका। बांकी औरत रही होगी। अदभुत स्त्री रही होगी। कहा, मिट्टी पर मिट्टी डालते शर्म नहीं आती? कुछ तो शरमाओ! कुछ तो लज्जा खाओ! यह क्या बेशर्मी कर रहे हो? तो तुम्हें अभी सोने और मिट्टी में फर्क दिखाई पड़ता है! तो तुम किस भ्रांति में पड़े हो कि तुमने सब छोड़ दिया? छोड़ने का मतलब ही होता है, जब भेद ही दिखाई न पड़े।
अब तुम फर्क समझो। एक तो ऐसी समाधि की दशा है जहां भेद दिखाई नहीं पड़ता। सब बराबर है। और एक ऐसी दशा है जहां भेद तो साफ-साफ दिखाई पड़ता है, चेष्टा करके हम त्याग देते हैं। तो अड़चन आएगी। तो तुम्हारे भीतर द्वंद्व आएगा, पाखंड आएगा। तुम मिथ्या हो जाओगे।
ऐसे मिथ्या न हो जाओ इसलिए जगजीवन का यह सूत्र है कि मैं तुमसे जो कहूं वह करो, ताकि धीरे-धीरे सीढ़ी-सीढ़ी तुम्हें चढ़ाऊं; ताकि इंच-इंच तुम्हें रूपांतरित करूं। एक दिन ऐसी घड़ी जरूर आ जाएगी कि जो मैं करता हूं वही तुम भी करोगे लेकिन नकल के कारण नहीं, तुम्हारे भीतर से बहाव होगा। तुम्हारा अपना फूल खिलेगा। तुम्हारी अपनी सुगंध उठेगी।
धर्म के जगत में नकल की बहुत सुविधा है क्योंकि नकल सस्ती है। ज्यादा अड़चन नहीं मालूम होती। बुद्ध जिस ढंग से चलते हैं, तुम भी चल सकते हो। क्या अड़चन है? थोड़ा अयास करना पड़ेगा।
लाओत्सु ने कहा है, ज्ञानी ऐसे चलता है जैसे प्रत्येक कदम पर खतरा है-- इतना सावधान! ज्ञानी ऐसे चलता है सावधान, जैसे कोई ठंड के दिनों में, गहरी ठंड के दिनों में बर्फीली नदी से गुजरता हो। एक-एक पांव सोच-सोचकर रखता है। ज्ञानी ऐसे चलता है जैसे चारों तरफ दुश्मन तीर साधे बैठे हों--कब कहां से तीर लग जाए, इतना सावधान चलता है। जैसे शिकारियों के भय से कोई हिरन जंगल में सावधान चलता है।
मगर यह सावधानी भीतर से आ रही है, होश से आ रही है, सजगता से आ रही है। तुम यह सावधानी बाहर से भी सीख सकते हो। तुम बिल्कुल पैर सम्हाल-सम्हाल कर रख सकते हो। मगर क्या तुम्हारे पैर सम्हाल-सम्हाल कर रखने से तुम्हारे भीतर जागरूकता पैदा हो जाएगी? पैर सम्हालकर रखना तुम्हारी आदत हो जाएगी, अयास हो जाएगा। भीतर की नींद अछूती बनी रहेगी; जैसी थी वैसी ही बनी रहेगी। जो भीतर करना है, भीतर से बाहर की तरफ करना है, बाहर से भीतर की तरफ नहीं करना है।
महावीर को भीतर अभेद का बोध हुआ, अहिंसा जन्मी। उनके पीछे चलनेवाले अहिंसा को साधते हैं और सोचते हैं कि अभेद का जन्म हो जाएगा। पागल हुए हो? इतना सस्ता है जीवन के सत्य को पा लेना? महावीर ने जरूर फूंक-फूंक कर कदम रखे कि कहीं कोई चींटी न मर जाए। महावीर के पीछे चलने वाले भी फूंक-फूंक कर कदम रखते हैं कि कहीं कोई चींटी न मर जाए। लेकिन दोनों में बड़ा भेद है। एक-से कृत्य और भेद जमीन-आसमान का है।
महावीर इसलिए पैर सम्हाल-सम्हालकर रखते है कि चींटी में भी मैं ही हूं। अपने पर ही कैसे पैर रखूं? अपने को ही कैसे कष्ट दूं? जैसे कोई अपने ही हाथ से अपने गाल पर चांटा मारे, ऐसा पागलपन है महावीर के लिए। क्योंकि एक का ही वास है। एक ही आत्मा सब में व्यापक है।
लेकिन जब जैन मुनि--तथाकथित जैन मुनि पैर सम्हाल कर रखता है, चींटी न
मर जाए; तुम सोचते हो उसका कारण वही है? नहीं, वह डर रहा है कहीं चींटी मर गई तो नरक जाना पड़े। वह नरक से बचने की कोशिश में लगा हुआ है। उसकी फिकर अपनी है। चींटी से क्या लेना-देना है? भाड़ में जाए चींटी। कल की मरती, आज मर जाए। मगर इतना ही भर उसे ख्याल रखना है कहीं मेरा नरक, कहीं मैं झंझट में न पड़ जाऊं। मेरा नरक बच जाए, मेरा स्वर्ग निश्चित हो जाए।
यह तो अहंकार, लोभ--उसी की यात्रा चल रही है। यह तो महत्वाकांक्षा का
ही खेल चल रहा है। यह तो राजनीति का ही विस्तार है। इस दुनिया से उस दुनिया तक फैल गई राजनीति। चींटी को बचाने में चींटी से कोई प्रयोजन नहीं है। चींटी को बचाने में अभेद कोई भाव नहीं है। अपना नरक बचाना है। कंप रहा है, डर रहा है। डर के मारे सम्हल कर कदम रख रहा है।

महावीर डर के मारे सम्हल कर कदम नहीं रख रहे हैं, प्रेम के कारण। और प्रेम और भय में कितना फर्क है थोड़ा सोचो तो! उल्टे हैं एक-दूसरे से। भय तो प्रेम से बिल्कुल उलटा है। कृत्य एक से मालूम पड़ते हैं, कारण बिल्कुल विपरीत हैं। जिससे तुम भयभीत हो उसके कारण तुम्हारी आत्मा विस्तीर्ण नहीं होगी। सिकुड़ोगे तुम। इसलिए तथाकथित जैन मुनि सिकुड़ गए हैं; बिल्कुल सिकुड़ गए हैं, विस्तार नहीं हुआ है। और धर्म तो विस्तार है। आत्मा फैलनी चाहिए। जितने डर जाओगे उतने सिकुड़ जाओगे। जितना प्रेम बढ़ेगा उतने फैलते जाओगे। एक दिन प्रेम इतना विराट हो जाता है कि सारे जगत को अपने भीतर समा लेता है; आकाश जैसा हो जाता है।
महावीर को ऐसा ही प्रेम उपलब्ध हुआ। उस प्रेम से अहिंसा जन्मी। अहिंसा से समाधि पैदा नहीं होती, समाधि से अहिंसा पैदा होती है। और यही सूत्र जीवन के सारे नियमों के संबंध में सच है।
हम तो देह धरे जग नाचब, भेद न पाई कोई
हम आहन सतसंगी-बासी, सूरति रही समोई
तुम हमारी देख-देख कर मत करो, जगजीवन कहते हैं, हमें तो सत्संग मिल गया, तुम्हें अभी कहां मिला? हमें तो गुरु मिल गया, तुम्हें अभी कहां मिला? हमारे ऊपर तो गुरु बरसा है, उसका प्रसाद आया है। हमने तो अपने को गुरु के चरणों में रख दिया। हम सत्संग के वासी हो गए। हमारे भीतर अहंकार नहीं बचा; तभी तो प्रसाद मिला।
बुल्लेशाह के हाथ रखते ही जगजीवन ही जगजीवन के सिर पर, ज्योति जगमगा उठी। कोई रुकावट ही न पाई। द्वार-दरवाजे खुले थे। दीया बिल्कुल पास सरक आया बुल्लेशाह के, तो बुझा दीया भी जल गया।
हम आहन सतसंगी-बासी--हम तो हैं सत्संग के बासी। हमें तो मिल गया सत्य
का संग-साथ। उस संग-साथ के कारण हमारे जीवन में क्रांति हुई है--सूरति रही समोई। समाधि जग गई है, स्मरण पैदा हुआ है। परमात्मा का बोध जगा है, दीया जला है।
अब हमारे जीवन में जो हो रहा है ऐसा ही तुम मत करना, नहीं तो तुम झूठे
हो जाओगे, तुम थोथे हो जाओगे। तुम प्रवचंक हो जाओगे।
जरा सोचो! जैसे किसी आदमी को लॉटरी मिल गई और वह नाच रहा है। और तुम भी उसकी देखादेखी नाचने लगे। तुम क्या सोचते हो, नाचने से तुम्हें लॉटरी मिल जाएगी? और तुम वैसे ही नाचो बिल्कुल जैसा वह नाच रहा है, तो भी उसके भीतर कुछ है जो तुम्हारे भीतर नहीं है। उसके भीतर एक आनंदभाव है--लॉटरी मिल गई। तुम्हें तो कुछ मिला नहीं। तुम तो शायद इसलिए नाच रहे हो कि देखो, यह आदमी नाचने से कितना आनंदित हो रहा है! हम भी नाचें, हम भी आनंदित हों।
बस वहीं चूक हो रही है। गणित वहीं भूल से भर रहा है। यह आदमी आनंदित है इसलिए नाच पैदा हो रहा है।
लॉटरी का तो मैंने उदाहरण दिया। समाधि तो परम धन है। लॉटरी की तो बात कही ताकि तुम्हारी समझ में आ जाए। समाधि तो तुम्हारे लिए कोरा शब्द है।
सुरति तो तुमने सुना है। क्या है क्या नहीं, पता नहीं।
इस जगत की सारी संपदाएं व्यर्थ हैं सुरति के सामने। जिसे प्रभु का स्मरण आ गया उसको सब मिल गया। मिल गए सारे साम्राज्य। हो गया सम्राट।
सूरति रही समोई।
कहा पुकारि बिचारि लेहु सुनि...
इसलिए पुकारकर कहते हैं, खूब विचार कर सुन लो।
... बृथा शब्द नहिं होई
हम जो कह रहे हैं ये शब्द ऐसे ही नहीं हैं।
जगजीवनदास सहज मन सुमिरन, बिरले यहि जग कोई
बहुत मुश्किल से कभी किसी के जीवन में ऐसी विरल घटना घटती है--समाधि
का उतरना। लेकिन जब यह घटना घटती है तो आचरण तत्क्षण रूपांतरित हो जाता है। जीवन आभासपूर्ण हो जाता है।
फिर ऐसे आदमी के लिए न कुछ बुराहै न कुछ भला है। वह मिट्टी भी छुए तो सोना हो जाती है। वह जो भी करे, शुभ है। उससे अशुभ होता ही नहीं। जिसके भीतर समाधि आ गई उससे अशुभ होता नहीं। उसके लिए कोई मर्यादा नहीं रह जाती।

इसलिए हमने परम संन्यास की दशा को परमहंस कहा है। उसके लिए कोई मर्यादा नहीं है। लेकिन परमहंस का अनुसरण मत करना। उसका आचरण देख कर अनुसरण मत करना।
ऐसा समझो, तुम चिकित्सक के पास जाते हो तो तुम यह थोड़े ही देखते हो कि चिकित्सक क्या करता है, वही मैं करूं। चिकित्सक जो तुम्हें प्रिस्क्रिप्शन देता है, चिकित्सक जो तुम्हें लिख कर दे देता है कि ये-ये दवाएं लो, इस-इस तरह से लो, यह भोजन करो--ऐसा उपचार की व्यवस्था बना देता है। तुम उसके अनुसार चलते हो। तुम यह नहीं देखते कि चिकित्सक को देखें, यह क्या करता है; कि हर रविवार को गोल्फ खेलने जाता है तो हम भी जाएं। तो तुम मरोगे, मुश्किल में पड़ोगे। कि यह घुड़सवारी करता है तो हम भी करें। कि यह रात देर तक क्लब-घर में बैठकर ताश खेलता है तो हम भी खेलें। देखो कैसा स्वस्थ है!
तुम चिकित्सक का अनुसरण मत करना, चिकित्सक की कही बात का अनुसरण करना। क्योंकि तुम्हारी बीमारी अलग, तुम्हारा रोग अलग।
गुरु का आचरण देखकर अगर तुम चलोगे तो मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि प्रत्येक शिष्य जो गुरु के पास आता है, अलग-अलग बीमारी लेकर आता है। गुरु तो एक है, शिष्य अनेक हैं। प्रत्येक अलग-अलग बीमारी लाया है। गुरु जो कहे, वही मान कर चलना।
और इसलिए कई बार तुम्हें बड़ी अड़चन होती है। मेरे पास रोज ऐसी घटना घटती है। कभी तो एक ही सांझ में ऐसा हो जाता है कि मुझे दो आदमियों को विपरीत सलाहें देनी पड़ती हैं। वे बड़ी मुश्किल में पड़ जाते हैं क्योंकि लोग यह सोचते हैं कि एक सलाह सभी के काम आनी चाहिए। जिंदगी इतनी आसान नहीं। जिंदगी बड़ी जटिल है और बड़ी सूक्ष्म है। एक व्यक्ति को मुझे एक बात कहनी पड़ती है, दूसरे व्यक्ति को दूसरी बात कहनी पड़ती है।
अभी कुछ दिन पहले एक भारतीय मित्र ने कहा कि कामवासना से परेशान हूं; बुरी तरह परेशान हूं। उम्र भी काफी हो गई है। पचास साल उम्र हो गई है। घबड़ाने भी लगे हैं कि अब कब इससे छुटकारा होगा? और जीवन भर छुटकारे की कोशिश की है। जन्म से जैन हैं। जैन मुनियों, साधु-संतों का सत्संग करते रहे हैं। उनकी ही बातचीत सुन-सुन कर शादी भी नहीं की। सब तरह से अपनी वासना को दबा रखा है। वह दबी हुई वासना रग-रग में समा गई है, रोएं-रोएं में बैठ गई है। अब घबड़ा रहे हैं। अब जरा उम्र भी ढलने लगी है।
जब आदमी में ताकत होती है जवानी की तब वासना को दबाना भी आसान होता है। जब ताकत कम होने लगती है, तो वासना को दबाना मुश्किल हो जाता है। लोग अक्सर सोचते हैं कि जवानी अगर एक दफे निकल गई तो फिर तो सब शांति हो जाएगी। गलत ख्याल में हो तुम। जिस दिन जवानी निकल जाएगी उस दिन तुम और मुश्किल में पड़ोगे क्योंकि फिर दबाने की ताकत भी नहीं रह जाएगी। और वासना प्रज्वलित बैठी होगी।
उन मित्र को मुझे कहना पड़ा कि दबाने का दुष्परिणाम हुआ है। अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है, दबाओ मत। वे तो घबड़ा गए, पसीना-पसीना हो गए कि दबाऊं नहीं-- अब? नहीं अब कैसे? और पचास साल की प्रतिष्ठा भी है कि बड़े त्यागी-व्रती। आप कैसी बात कर रहे हैं।
फिर मैंने कहा, मर्जी तुम्हारी। यह जारी रहेगा मरते दम तक। मरते वक्त, तुम्हें जो आखिरी ख्याल रहेगा मरते वक्त, वह वासना का ही रहेगा। क्योंकि वही तुम्हारे भीतर सबसे प्रबल बात है। तुम लाख उपाय करो कि णमोकार की याद रह जाए मरते वक्त, नहीं रहेगी। स्त्रियां ही दिखाई पड़ेंगी।
अक्सर ऐसा हो जाता है... अब तक मेरे जीवन में ऐसा अनुभव नहीं आया, लाखों लोगों ने मुझसे सवाल पूछे हैं, प्रश्न पूछे हैं, सलाहें ली हैं, एक भी भारतीय ने ऐसा सवाल नहीं पूछा जैसा पश्चिम से आए हुए लोग पूछते हैं। रोग अलग-अलग हो गए हैं। भारतीयों का प्रश्न यही होता है कि वासना से कैसे छुटकारा हो? क्योंकि वासना को दमन करने की प्रतिक्रियाएं सिखाई गई हैं या लोगों ने सीख ली हैं। पश्चिम से जरूर कभी-कभी कुछ लोग आ जाते हैं जो बिल्कुल उलटा प्रश्न पूछते हैं, जिसको भारतीय सुन कर चौंकेगा।

उसी रात जिस दिन ये सज्जन पूछ रहे थे: वासना से कैसे छुटकारा हो, पचास साल की उम्र में, बत्तीस तैंतीस साल की युवती ने पूछा--फ्रांस से आई है--कि मेरी वासना बिल्कुल समाप्त हो गई है। यह कैसे जगे? क्योंकि पश्चिम में यह ख्याल है कि जिस दिन वासना खत्म हो गई, जीवन खत्म हो गया। और रखा क्या है जीवन में? फ्रायड की शिक्षा का यह मूलाधार है कि जीवन यानी कामवासना। जिस दिन कामवासना चली गई उस दिन तुम्हारा जीवन थोथा है। चली कारतूस! किसी काम की नहीं है। फिर व्यर्थ है जीना।
तो स्वभावतः उस युवती के मन में बड़ी घबड़ाहट है। उतनी ही घबड़ाहट, जितनी भारतीय के मन में है कि वासना से कैसे छुटकारा हो? युवती पूछ रही है कि इस वासना को मैं कैसे प्रज्वलित करूं? मुझे रस ही नहीं आता। मुझे पुरुषों में कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता। मुझे सपना भी नहीं आता। मैं चाहती हूं कोशिश करके किसी के प्रेम में पड़ जाऊं, मगर वह सब कोशिश ही कोशिश रहती है। उसमें कोई सार नहीं है। प्रेम करने की मुझे कोई वृत्ति ही नहीं पैदा होती। मुझे बचाओ! मैं इसीलिए फ्रांस से आई हूं कि किसी तरह यह मेरी मरती हुई जीवन-ऊर्जा फिर से प्रज्वलित हो जाए। नहीं तो मैं मरूंगी क्या? अभी मेरी उम्र केवल तैंतीस वर्ष है। अभी कम से कम पचास साल मुझे और जीना है। ये पचास साल बस ऐसे ही जीने पड़ेंगे--अर्थहीन?
मैंने उससे कहा कि जो तुझे हुआ है, फ्रांस में ही हो सकता था और कहां
हो सकता है? जहां वासना को खुले रूप से स्वीकार कर लिया गया हो, जहां वासना के प्रति किसी तरह का दुर्भाव न हो, वहां वासना समाप्त हो जाती है। ये उल्टी बातें हैं। जिस चीज को भी तुम जी लेते हो वह मिट जाती है और जिसको तुम अनजिया छोड़ देते हो वह जिंदा रहती है; वह पुकार करती है, मांग करती है। भारतीय की वासना मरते दम तक नहीं छूटती।
पश्चिम में अनेक युवक-युवतियों के सामने सवाल खड़ा हुआ है। तुम यह जानकर हैरान होओगे कि पश्चिम के मनोवैज्ञानिक के पास रोज लोग आते हैं, जिनका प्रश्न यही है कि हमारी वासना मरी जा रही है। अब हमें रस नहीं है स्त्री-पुरुषों में कोई। हम क्या करें? और पश्चिम में नई-नई विधियां खोजी जाती हैं कि कैसे रस को फिर से जगाया जाए! कैसे पुनरुज्जीवित किया जाए! नई-नई दवाएं खोजी जाती हैं। ऐसा कोई वर्ष नहीं जाता जिस वर्ष कोई नई दवा की घोषणा नहीं होती, कि इसको लेने से वासना फिर जीवित हो जाएगी।
क्या कारण होगा? जो भी चीज समझ में आ जाएगी, देख लोगे, भोग लोगे, जान लोगे उसका रस समाप्त हो जाएगा। जो भी चीज नहीं जानोगे, नहीं भोगोगे, नहीं देखोगे उसका रस बना रहेगा, रुका रहेगा, अटका रहेगा। अनुभव मुक्ति है। और सच्चा त्याग भोग की प्रक्रियाओं का अंतिम परिणाम है।
मोक्ष संसार से गुजरकर ही उपलब्ध होता है। संसार राह है मोक्ष की। संसार मोक्ष के विपरीत नहीं है, मोक्ष का मार्ग है। इसी से चल कर आदमी मोक्ष तक पहुंचता है। पदार्थ की सीढ़ियों पर चढ़-चढ़ कर परमात्मा के मंदिर तक पहुंचना होता है।
अब जब दो तरह के लोग दो बातें पूछेंगे तो मुझे अलग-अलग सुझाव देने पड़ेंगे दोनों को। भिन्न- सुझाव देने पड़ेंगे। मुझे उस ोंच युवती से कहना पड़ा कि अच्छा ही हुआ कि तू झंझट के बाहर हो गई। अगर तू भारत में पैदा होती, तू अपने को सौभाग्यशाली समझती। तू धन्यभागी समझती; जन्मों-जन्मों के पुण्यों का फल समझती कि वासना समाप्त हो गई। तू नाचती, आनंदित होती कि चलो, एक उपद्रव समाप्त हुआ। अब मेरी सारी जीवन-ऊर्जा प्रभु की तलाश में लग सकेगी, प्रार्थना बन सकेगी, पूजा बन सकेगी। अब मैं सारे जीवन को ध्यान में ढाल सकूंगी। तू आनंदित होती। यह तो बहुत अच्छा हुआ।
वे भारतीय मित्र भी बैठे सुन रहे हैं। वे तो बड़े चौंके। क्योंकि उनसे मैंने कहा है कि किसी तरह... अभी भी बिगड़ा है कुछ। अभी भी थोड़े-बहुत वासना के अनुभव से गुजर जाओ। और इस युवती से मैं कह रहा हूं कि तू धन्यभागी है। अब अगर उनको लगे दोनों को कि मैं विरोधाभासी बातें कर रहा हूं तो आश्चर्य तो नहीं। लेकिन जरा भी विरोधाभास नहीं है। दोनों का रोग अलग है। एक का रोग दमन है, उसे दमन के बाहर लाना है। एक का रोग भोग की आकांक्षा है, उसे भोग की आकांक्षा से बाहर लाना है।

यह मैंने तुम्हें उदाहरण के लिए कहा। प्रत्येक व्यक्ति के अलग-अलग रोग हैं, भिन्न-भिन्न रोग हैं। उनके भिन्न-भिन्न उपाय हैं, इलाज हैं। इसलिए ठीक कहते है जगजीवन कि जो मैं कहूं, वह सुनना। मैं क्या करता हूं उसे करने की कोई जरूरत नहीं है। उसे किया तो बड़ी फजीहत होगी। जगजीवनदास सहज मन सुमिरन, बिरले यहि जग होई
बहुत विरल है सहज स्मरण, सहज समाधि। लेकिन जब घट जाती है सहज समाधि किसी को तो तुम उसके आचरण का अनुसरण मत करने लगना। क्योंकि जो उसके लिए सहज है वह तुम्हारे लिए सहज नहीं होगा। उसके जीवन में तो एक रोशनी आ गई। उस रोशनी के अनुसार उसे दिखाई पड़ने लगा। उसके जीवन में तो तादात्म्य टूट गया है देह से। अब वह देह नहीं है। अब वह संसार में है और संसार में नहीं है। वह संसार में है, संसार उसके भीतर नहीं है। उसकी दशा बड़ी अनूठी है। सम्मान करना। उसके चरणों में झुकना। उसके पास उठना-बैठना। उसकी सुनना। उसकी मानना। उसकी बात मानकर जीवन में प्रयोग करना। उसके आनंद-भाव से एक ही बात सीखना कि ऐसा आनंद-भाव एक दिन तुम्हें भी हो सके।
लेकिन यह हो सकेगा तभी, जब तुम उसकी मानकर चलोगे। यह मत सोचने लगना कि
हम भी इसी तरह जीने लगें जैसे यह आदमी जी रहा है; नहीं तो तुम अभिनय में पड़ जाओगे। और इस जगत में धर्म के नाम पर बहुत अभिनय हो रहा है इसलिए सावधानी अत्यंत आवश्यक है।
इब्तिदा से आज तक "नातिक" की है यह सरगुजश्त
पहले चुप था, फिर हुआ दीवाना, अब बेहोश है
पहले चुप था, फिर हुआ दीवाना, अब बेहोश है--साधक के जीवन में बड़े पड़ाव आते हैं। पहले चुप हो जाना पड़ता है, बिल्कुल चुप हो जाना पड़ता है। फिर हुआ दीवाना--फिर उस चुप्पी से एक शराब पैदा होती है, भीतर एक मस्ती पैदा होती है। बाहर से कोई नशा नहीं करना पड़ता, भीतर ही नशा सघन होने लगता है
पहले चुप था, फिर हुआ दीवाना, अब बेहोश है
और फिर ऐसी घड़ी आ जाती है कि बेहोश हो जाता है। और बेहोशी भी कैसी? बेहोशी भी ऐसी कि जिसके भीतर होश का दीया जलता है। बाहर से दुनिया कहे बेहोश, और भीतर वह परम होश में होता है।
रामकृष्ण बेहोश होकर गिर पड़ते थे--घंटों! कभी-कभी तो दिनों बेहोशी में पड़े रहते थे। चिकित्सक तो कहते थे कि यह एक तरह का हिस्टेरिया है, एक तरह की मिर्गी। लेकिन रामकृष्ण हंसते थे। वे कहते थे कि बाहर से भला मेरा शरीर जड़ हो जाता हो, लेकिन भीतर तो मैं इतने होश से भरा होता हूं जितना और कभी नहीं भरा होता। जब वे होश में आते हमारे हिसाब से, बाहर के हिसाब से, जब उनकी बेहोशी टूटती, होश में आते तो वे जो पहली बात कहते वह यही कहते कि फिर बेहोशी में भेज दिया? वापिस बुला लो। होश में वापिस बुला लो। क्यों मुझे फिर धक्के देकर बेहोशी में भेज रहे हो? और इधर सारे लोग समझ रहे थे कि वे होश में आ रहे हैं। और वे कहते हैं, मुझे फिर क्यों बेहोशी में भेजा? क्यों मुझे संसार में फिर डाल रहे हो। मुझे भीतर आ जाने दो। चिकित्सक तो कहेगा कि हिस्टेरिया है। लेकिन जाननेवाले कहते हैं यह परमहंस की अवस्था है। लेकिन नकल मत करना।
एक झेन फकीर ने अपने शिष्य को ध्यान करने के लिए कहा था। झेन फकीर ध्यान के लिए कुछ पहेली देते हैं कि इस पहेली पर विचार करो, इसका उत्तर लेकर आओ। और जो भी उत्तर लेकर आता है शिष्य, वह कह देता है कि "नहीं, और खोजो; नहीं, और खोजो। दिन आए, महीने आए, वर्ष आए-गए--थक गया शिष्य। जो भी उत्तर ले जाए--नहीं!
उसने जरा दूसरे पुराने शिष्यों से पूछा कि भाई, यह मामला क्या है? उन्होंने कहा, यह होता है। "फिर इससे छुटकारा क्या है?" एक शिष्य ने कहा कि मेरा तो इस तरह छुटकारा हुआ था सात साल के बाद, कि एक दिन जब उन्होंने मुझसे पूछा तो मैं बस एकदम बेहोश हो गया। गिर पड़ा। उन्होंने गले लगा लिया और मुझे कहा कि बस ठीक है, उत्तर मिल गया।
तो उसने कहा, भले मानस! मुझे बताया क्यों नहीं? पहले ही बता दिया होता!
आज जाता, जाता। गया और गुरुो चरण छुए और गुरु ने जैसे ही पूछा, उत्तर? वह जल्दी चारों खाने चित्त होकर बेहोश हो गया। गुरु ने कहा, बिल्कुल ठीक,

लेकिन उत्तर का क्या हुआ? तो उसने एक आंख खोलकर कहा कि उत्तर? यह उत्तर नहीं है?
गुरु ने कहा, देखो, बेहोशी में कोई बोलता नहीं; और न ही बेहोशी में कोई
एक आंख खोलता है। उठो और भागो यहां से। उत्तर के खोजने में लगो। इस तरह दूसरों के द्वारा बताए गए उत्तरों से काम न चलेगा। यह कोई बेहोशी थोड़े ही है। और किसने तुझे यह कहा है, मुझे याद आ गया। मगर उसकी बेहोशी सच्ची थी। वह बेहोश हुआ नहीं था, बस मेरे देखते ही, आंख में आंख डालते ही घटना घट गई थी। वह डुबकी मार गया था। तूने तो मुझे खूब चौंकाया। मैंने पूछा, उत्तर क्या है? तू जल्दी से चित्त! और बड़ी व्यवस्था से लेटा कि चोट वगैरह भी न लग जाए। क्योंकि जब आदमी व्यवस्था से लेटता है तो देख लिया आगे-पीछे और जल्दी से लेट गया कि कोई सिर में चोट न लग जाए, कोई... और बिल्कुल पड़ा रह गया शांत। तुम्हारा धार्मिक आचरण करीब-करीब इस आदमी जैसा आचरण है। कुछ बातें हैं जो केवल अनुभव से जानी जाती हैं, किसी के कहने से नहीं जानी जातीं।
ये शबाब के फसाने जो मैं दिल में सुन रहा हूं
अगर और कोई कहता तो न ऐतबार होता
किसी छोटे बच्चे को कहो कि जवानी में जो रस, जो स्वप्न, जो प्रेम, प्रीति जगती है उसकी बात किसी बच्चे से कहो, उसे भरोसा नहीं आएगा। वह कहेगा, क्या बातें कर रहे हो?
ये शबाब के फसाने जो से दिल से सुन रहा हूं
अगर और कोई कहता तो न ऐतबार होता
कभी भरोसा नहीं हो सकता था किसी और के कहने से। जब तक तुम अपने दिल से
न सुनो। फिर चाहे वे जवानी के फसाने हों और चाहे परमात्मा की याद हो, भीतर से सुनी जाए तभी सार्थक होती है।
कलि की रीति सुनहु रे भाई
लेकिन कलियुग की अपनी रीति है। लोग सचाई तो भूल ही गए हैं, सत्य तो भूल
ही गए हैं। सतयुग तो उनके जीवन से जैसे तिरोहित हो गया है।
कलि की रीति सुनहु रे भाई
माया यह सब है साईं की, आपुनि सब केहु गाई
यह सारा जगत परमात्मा का है, सब कुछ उसका है। और कलियुग की रीत देखो।
हर आदमी कह रहा है, मेरा-मेरा। न जमीन तुम्हारी है; जमीन तुम ले न आए थे, और न ले जाओगे। न पति तुम्हारा है, न पत्नी तुम्हारी, न बेटे तुम्हारे।
शायद दुनिया में एक अकेली भाषा है एस्किमो की जिसमें एक सच्चाई प्रकट होती है। अगर तुम किसी एस्किमो के साथ उसके बेटे को जाते देखो और तुम उससे पूछो कि यह लड़का कौन है, तो सिर्फ अकेली एस्किमो की भाषा ऐसी है कि उसमें यह नहीं कहा जाता कि यह मेरा बेटा है, मैं इसका बाप हूं। उसमें कहा जाता है, यह लड़का हमारे घर रहता है, हमारे साथ रहता है। यह लड़का कहां से आया? तो कहा जाता है, परमात्मा के यहां से आया, परमात्मा ने भेजा। हम इसके रखवाले हैं। दीन-दरिद्र एस्किमो जरूर बड़ी गहरी बात कह रहे हैं। हम इसके रखवाले हैं। परमात्मा ने भेजा है। यह लड़का हमारे साथ रहता है, हमारे घर में रहता है। हम इसकी देखभाल करते हैं। मगर यह नहीं कहते वे कि यह हमारा बेटा है। हमारा क्या!
न जमीन हमारी है, न धन हमारा है, न पद हमारा है। कुछ भी हमारा नहीं है।
हम एक दिन खाली हाथ आए हैं, और एक दिन खाली हाथ चले जाएंगे। न हम कुछ लाते हैं, न हम कुछ ले जाते है, मगर बीच में हम कितना शोरगुल मचाते हैं। उसी शोरगुल का नाम संसार है।
माया यह सब है साईं की, आपुनि सब केहु गाई
भूले फूले फिरत आय, पर केहुके हाथ न आई
जो है जहां तहां ही है सो, अंतकाल चाले पछिताई
फिर पीछे पछताओगे। जो जहां है वहीं पड़ा रह जाएगा। जो जैसा है वैसा ही पड़ा रह जाएगा। अंतिम समय बहुत पछताओगे। इस के पहले जागो, समझो: मेरा कुछ भी नहीं है, सब उसका है। मैं भी उसका हूं। यह बोध उठने लगे तो तुम्हारे जीवन में धर्म की पहली किरण उतरी।
जहुं कहुं होय नामरस चरचा, तहां आइकै और चलाई

और तुम तो ऐसे हो कि जहां राम की चर्चा चल रही हो, जहां नाम का रस बह रहा हो वहां भी जाकर और दूसरी बातें चलाना चाहते हो। लोग मंदिर में जाकर न मालूम क्या-क्या बातें करते हैं!
एक बार एक सभा में मुझे जाने का मौका मिला, फिर उसके बाद मैं किसी सभा में नहीं गया। कृष्णाष्टमी थी और पंजाबी और सिंधियों की सभा थी। सब सज-धज कर आए थे। सिंधियों का तो कोई मुकाबला ही नहीं है इसमें। चाहे स्नान करें चाहे न करें, मगर कपड़े तो रेशमी... ! स्त्रियां तो बहुत सज-धज कर आई थीं। ऐसे दिनों की प्रतीक्षा ही करती हैं स्त्रियां, नहीं तो दिखाओ कब--कपड़े-लत्ते, गहने? बड़ा रंगीन समां था।
मैं तो बड़ा चकित हुआ। मुझसे पहले जो बोल रहे थे सज्जन, वे एक पीठ के शंकराचार्य हैं। मैं तो बड़ा हैरान हुआ। ऐसा चमत्कार मैंने देखा ही नहीं था। सब लोग गपशप में लगे हैं, वे बोल रहे हैं। सब लोग गपशप में लगे हैं। यहां तक कि औरतें पीठ किए बैठी हैं बोलने वाले की तरफ! क्योंकि बातचीत चल रही है दूसरों से, ऐसे झुंड-झुंड बनाए हुए हैं। और जमाने-भर की चर्चा चल रही है। उसी दिन मुझे यह राज समझ में आया कि धार्मिक सभाओं में बीच-बीच में क्यों बोलना पड़ता हैः "बोल सियाबल रामचंद्र की जय!" उस दिन मुझे रहस्य समझ में आया कि क्यों बीच-बीच में... कोई कारण समझ में नहीं आता। इसको अचानक... ! उतनी देर के लिए कम से कम लोग चुप हो जाते हैं। एकाध-दो मिनट चुप रहते हैं, उतनी देर में जो कुछ बोलनेवाले को बोलना हो, बोल दे। वे फिर अपनी चर्चा शुरू कर देते हैं।
मैंने तो हाथ जोड़ लिए। मैंने उनसे कहा कि मैं चला, इस सभा ही से नहीं चला, सब सभाओं से गया। अब कहीं बोलने नहीं जाऊंगा। कोई प्रयोजन किसी को नहीं है।
इसलिए मैं नये लोगों को सामने बैठने भी नहीं देना चाहता। उन्हें हैरानी भी होती है, दुःख भी होता है मगर मजबूरी है। मैं सामने अपने उन लोगों को देखना चाहता हूं जो सच में पी रहे हैं। जो यहां यूं नहीं चले आए हैं किसी कुतूहलवश या किसी अखबार के प्रतिनिधि की तरह नहीं चले आए हैं। उनका कोई प्रयोजन नहीं है यहां। क्या हो रहा है, इससे कोई प्रयोजन नहीं है। उन्हें कुछ व्यर्थ की बातें इकट्ठी कर लेनी हैं।
तबसे मैंने बोलने जाना बंद कर दिया क्योंकि क्या प्रयोजन है? किससे बोलना है? सुन कोई रहा ही नहीं है। अब उनसे ही बोलता हूं जो सुनने को राजी हैं। और सुनने को ही नहीं, उसके अनुसार अपने जीवन को रूपांतरित करने को राजी हैं।
लेकिन लोग ऐसे हैं, जगजीवनदास कहते हैं, जैसी सभा में मैं गया, ऐसी किसी सभा में गए होंगे, तभी ऐसी अनुभव की बात लिखी है--
जहुं कहुं होय नामरस चरचा, तहां आइकै और चलाई
लेखा-जोखा करहिं दाम का, पड़े अघोर नरक महं जाई
और वहां भी बैठ कर लेखा-जोखा करते हैं। बैठे हैं धार्मिक सभा में और स्त्रियां एक-दूसरे से पूछने लगती हैं: "साड़ी के दाम कितने हैं?" यह मैंने सुना है अपने कानों से, इसलिए कहता हूं। "कहां से खरीदी?" पते तक देख लेती हैं एक-दूसरे की साड़ी को बैठे-बैठे। जगजीवनदास बड़े अनुभवी आदमी हैं। देखा होगा, देवियां एक-दूसरे की साड़ी का पोत देख रही हैं। "कहां से खरीदी? कितने में मिली?" एक-दूसरे के गहने देख लेती हैं। नजर ही व्यर्थ पर अटकी है। लेखा-जोखा करहिं दाम का, पड़े अघोर नरक महं जाई
यह अघोर शब्द समझने जैसा है। जगजीवनदास पढ़े-लिखे आदमी नहीं हैं। कहना चाहते हैं, घोर; कह गए हैं, अघोर। कारण है उसके पीछे। घोर नरक में पड़ेंगे-- कहना चाहते हैं वे यह।
लेकिन शब्दों के भी इतिहास होते हैं। अघोर का मतलब होता है, सरल, सहज।
तुम भी चौंकोगे। तुम तो किसी गंदे आदमी को कहते हो अघोरी। भूलकर मत कहना-- घोरी! तुम गलत शब्द का उपयोग कर रहे हो। लेकिन उसके पीछे कहानी जुड़ गई है।
अघोर का अर्थ होता हैः सीधा-सादा, सरल; जिसके जीवन में जटिलता है ही नहीं।
छोटे बच्चे जैसा--अघोर का अर्थ होता है।

अघोर बड़ा कीमती शब्द है। जब पहले-पहल चला था अघोरपंथ, तो उसका मतलब यह
था कि सरल जीवन, सहज जीवन। साधो सहज भली! मगर फिर लोग नकलची पैदा हुए। फिर लोगों ने कहा, साधो सहज समाधि भली? तो उन्होंने कहा, ठीक है तो जो हमें करना है वह भी करेंगे और दावा भी करेंगे कि यह तो सहज जीवन जी रहे हैं। तो शराब भी पिएंगे, जुआ भी खेलेंगे और जब कोई कहेगा कुछ तो कहेंगेः साधो सहज समाधि भली। सभी कुछ करेंगे क्योंकि सहज जीवन में सभी आ गया, कुछ बचा नहीं। वेश्यालय भी जाएंगे और कहेंगे, साधो सहज समाधि भली।
तो वह जो अघोर जैसा प्यारा शब्द था, वह धीरे-धीरे विकृत हुआ। क्योंकि लोग जो अपने को अघोरी मानते थे, वे धीरे-धीरे सब तरह के विकृत काम करने लगे। नशा भी करेंगे, गांजा भी पिएंगे, शराब भी पीएंगे, गंदगी में पड़े रहेंगे। क्योंकि वे तो अघोरपंथी हैं। फिर धीरे-धीरे शब्द का अर्थ बदला। फिर अर्थ उलटा हो गया। फिर अब जो आदमी गंदा रहता है, व्यर्थ का जीवन जीता है, उलझा जीवन जीता है--न नहाता न धोता, जिससे बास उठती है, जिसके खाने-पीने का कोई हिसाब नहीं; कुछ भी खा-पी ले, मांस-मछली सब चले, पंच मकार जिसके जीवन की चर्या हो जाए उसको लोग कहने लगेः अघोरी।
अघोरी शब्द विकृत हो गया। प्यारा शब्द था, बुरी तरह गिरा। शिखर पर था, गिरा और नीचे गड्ढे में गंदा हो गया। कीचड़ में पड़ गया। उसी अर्थ में जगजीवनदास ने प्रयोग कर दिया है लेकिन उनका प्रयोजन हैः घोर।
ऐसा कुछ एक शब्द के साथ नहीं, बहुत शब्दों के साथ होता है। जैसे तुम्हारे समझाने के लिए मैं कहूंः बाबू। बाबू जगजीवनराम! अब उनको पता नहीं कि बाबू का मतलब क्या होता है। कि बाबू राजेंद्रप्रसाद! मालूम नहीं कि बाबू का मतलब होता क्या है।
जब पहली दफा अंग्रेज भारत आए तो उनका पहला संपर्क बंगालियों से हुआ, इसलिए बंगाली बाबू। जितना बाबू बंगाली होता है उतना कोई दूसरा नहीं होता बाबू; समझे? वह पहली दफा अंग्रेजों ने बाबू बंगाली को कहा। और कहा क्यों बाबू? क्योंकि उससे बदबू आती है। बू का मतलब होता है: बदबू। और बा का मतलब होता हैः सहित--जिससे बास आती हो। मछली खाओगे तो बास तो आएगी ही। बंगालियों के मुंह से मछली की बास आती थी। अंग्रेज उनको कहने लगे, बाबू। बंगाली बाबू हो गए।
लेकिन फिर धीरे-धीरे क्या हुआ कि जो-जो अंग्रेजों के करीब थे... बाबू
ही लोग उनके करीब थे। उनके क्लर्क, उनके नौकर-चाकर--वे ही उनके करीब थे। जो मालिक के जितना करीब था वह उतना ही महत्त्वपूर्ण हो गया। अंग्रेजों के बाद महत्वपूर्ण नंबर दो पर बाबू हो गए। बाबू जगजीवनराम! अब कोई सोचता ही नहीं कि बाबू गाली है। किसी से भूल कर बाबूजी मत कहना! लेकिन लोग उसको सम्मान से उपयोग कर रहे हैं।
अघोर सम्मानजनक शब्द था, गाली हो गया। बाबू गाली है, सम्मानजनक हो गया। शब्दों की बड़ी कथाएं हैं। उनके भी दिन चढ़ाव के, उतार के होते हैं; दुर्दिन, सुदिन सब आते हैं।
बूड़हिं आपु और कहं बोरहिं, करि झूठी बहुतक बकताई
कह रहे हैं ये जो अघोरी हैं--ये बाबू लोग!--ये खुद तो डूबेंगे ही, ये दूसरों को डुबाएंगे। क्योंकि ये बकवास करने में भी कुशल हो जाते हैं सुन-सुन कर। ये ज्ञानियों की बातें सुन कर करते नहीं हैं, कि उन बातों को जीवन में करें। ज्ञानियों की बातें सुन कर ये ग्रामोफोन रेकॉर्ड हो जाते हैं। ये उनको दोहराने लगते हैं। ये खुद तो डूबेंगे ही, डूबे ही हैं, ये दूसरों को भी ले डूबेंगे। "आप डुबंते पांडे लै डूबे जजमान!"
जगजीवन मन न्यारे रहिए, सत्तनाम तें रहु लय लाई
जगजीवन कहते हैं, मेरे शिष्यो, अगर तुम्हें पहुंचना हो परमात्मा तक
तो इस तरह की बातों से सावधान रहना। मन से अपने को न्यारा करना है। अगर मैंने तुमसे जो कहा, इन्हीं बातों को तुमने कहना सीख लिया तो तुम्हारा मन से और जोड़ हो गया। मन को तो शून्य करना है। शून्य होगा तो ही तुम न्यारे हो पाओगे। इस बात को ठीक से समझो।
शरीर, मन, आत्मा, इन तीन में शरीर तो सत्य है, आत्मा सत्य है, मन तो केवल सेतु है, दोनों को जोड़ने वाला है। जितना मन भरा हुआ होगा विचारों से उतना

ही ज्यादा जोड़ होगा आत्मा और शरीर में। जितना मन विचारों से खाली होगा, उतना ही जोड़ टूट गया। अगर मन बिल्कुल निर्विचार हो जाए तो जोड़ समाप्त हो गया। रस्सी गिर गई। फिर शरीर अलग है, आत्मा अलग है। और वही न्यारे होने का अर्थ है।
और जिसने जान लिया कि शरीर अलग, आत्मा अलग--फिर बात ही और है। "हम तो देह धरे जग नाचब।" फिर तुम नाचो जग में। फिर तुम अछूते ही हो। फिर तुम्हें जगत की कोई चीज छू नहीं सकती। लेकिन उसके पहले यह क्रांति घट जानी चाहिए, मन की मृत्यु घट जानी चाहिए। मन की मृत्यु घटे इसलिए कहते हैं--
पंडित, काह करै पंडिताई
कह रहे हैं, सुन-सुन कर पंडित मत हो जाओ। शास्त्र पढ़ कर भी लोग पंडित
हो जाते हैं, शास्ता के पास बैठकर भी लोग पंडित हो जाते हैं।
पंडित, काह करै पंडिताई
त्यागदे बहुत पढ़ब पोथी का, नाम जपहु चित्त लाई
हो चुका बहुत पोथी के साथ सिर-फोड़ी! अब बंद करो। इस पोथी ने कहीं किसी
को भेजा नहीं है, न यह पहुंचा सकती है। फिर पोथी क्या है--वेद या कुरान या बाइबल, फर्क नहीं पड़ता। शब्दों से बहुत हो चुका संबंध! अब निःशब्द से संबंध जोड़ो। विचार में बहुत जी लिए और बहुत भटक भी लिए। विचार ही तो आवागमन है। यही तो बार-बार संसार में ले आया है। विचार के ही मार्ग से तो तुम बार-बार गर्भ में उतरे हो। और विचार के ही तो सब रूप हैं--सारी वासनाएं, सारी कल्पनाएं, सारी इच्छाएं, एषणाएं, तृष्णाएं, सब विचार की ही तरंगें हैं।
त्यागदे बहुत पढ़ब पोथी का, नाम जपहु चित लाई
अब तो एक बात को ही चित्त में रख कि प्रभु का स्मरण जगे। अब पोथी को छोड़। अब भीतर की पोथी को पढ़। परमात्मा ने प्रत्येक के भीतर वेद रख छोड़ा है। तुम बाहर के वेद में उलझे रहोगे, तुम्हारा वेद अनबोला रहेगा। तुम बाहर के वेद को छोड़ दोगे, तुम्हारा वेद गुंजरित हो उठेगा, गुंजायमान हो जाएगा। तुम्हारे भीतर से उठेगा नाद। और ऐसा नाद कि सब संगीत उसके सामने फीके हैं। यह तो चार विचार जगत का, कह देत गोहराई
अब तक तुम जो करते रहे हो, यह तो बाहर जगत का आचरण है। जगजीवन कहते हैं, मैं तुम्हें बहुत जोर से कह देना चाहता हूं, चिल्ला कर कह देना चाहता हूं, गोहरा कर कह देना चाहता हूं--यह तो चार विचार जगत का, कहे देत गोहराई। तुम्हारा आचरण भी बाहरी, तुम्हारे विचार भी बाहरी। तुमने आचरण नकल से सीख लिया, विचार भी तुमने दूसरों से उधार ले लिए, स्मृति में भर लिए। न तो विचार तुम्हारे अपने हैं, न आचरण तुम्हारा अपना है। तुम दरिद्र इसीलिए तो हो कि तुम्हारा अपना कुछ भी नहीं है। निजता की कोई संपदा नहीं है। तुम कब अपनी समाधि खोजोगे? कब तुम अपने मौलिक स्वरूप को पहचानोगे? परमात्मा की याद लाओ अब।
शबे-फु.र्कत में याद उस बेखबर की बार-बार आई
भुलाना हमने भी चाहा मगर बेइख्तियार आई
ऐसी याद आनी चाहिए कि भुलाना भी चाहो तो भुला न सको। लेकिन पंडित तो सिर्फ तोतों की तरह दोहराता है।
बेदिलों की हस्ती क्या, जीते हैं न मरते हैं
ख्वाब है न बेदारी, होश है न मस्ती है
पंडित तो केवल थोथे शब्दों में जीता है। न तो उसके शब्दों में होश, न उसके शब्दों में बेहोशी। न उसके शब्दों में मस्ती, नाच, रंग। न उसके शब्दों में अर्थ, जीवन, मौलिकता। उसके शब्द तो सड़ी हुई लाशें हैं। सदियों- सदियों की सड़ी हुई लाशें। पंडित तो मुर्दा घर में रहता है। और मुर्दों के साथ ज्यादा रहोगे तो मुर्दा हो जाओगे। संग-साथ महंगा पड़ता है। जिंदों की दोस्ती खोजो। सदगुरुओं का सत्संग--जहां अभी जीवित झरना बह रहा है। और वहां भी चूक सकते हो, ख्याल रखना, अगर शब्द ही पकड़ कर गए।
थी, मगर, इतनी रायगां भी न थी
आज कुछ जिंदगी से खो बैठे
तेरे दर तक पहुंच कर लौट आए

इश्क की आबरू डुबो बैठे
लोग तो ऐसे हैं कि जिंदा गुरु के पास जाकर भी खाली के खाली लौट आते हैं।
तेरे दर तक पहुंचकर लौट आए
इश्क की आबरू डुबो बैठे
ऐसा तुम मत करना; प्रेम की आबरू मत डुबो देना। जब कहीं कोई जीवंत धारा मिल जाए तो प्रेम में डूबना, डुबकी लगा देना। दरवाजे से लौट मत जाना। बहुत लौट जाते हैं। क्योंकि कम ही लोगों की हिम्मत है प्रेम के जगत में उतरने की। और उतनी-सी बात है। वही प्रेम का छोटा-सा धागा अगर हो, जरा-सी भी प्रेम की बूंद हो तो सागर हो जाती है बढ़ते-बढ़ते। जरा-सा बीज हो तो बड़ा वृक्ष हो जाता है बढ़ते-बढ़ते।
जज्बा-ए-इश्क सलामत है तो इंशा-अल्ला
कच्चे धागे में चले आएंगे सरकार बंधे
वह जो प्रेम का छोटा सा कच्चा धागा है, जज्बा-ए-इश्क--वह जो प्रेम की भावना है, बस उतनी सी छोटी सी भावना परमात्मा को भी खींच ले आती है। मगर पंडित उससे ही बच जाता है।
यहां भी पंडित आ जाते हैं और इश्क की आबरू डुबा जाते हैं। कभी-कभी कोई पंडित आता है कि इश्क की आबरू नहीं डुबाता। कल किसी ने मुझे पत्र लिखा है कि मैं स्वयं भी पंडित हूं, पंडिताई ही करता हूं।
आप पंडित के खिलाफ इतना बोलते हैं। पहले तो मुझे चोट लगती थी, अब मुझे समझ में भी आ रही है बात कि यह तो मेरे जीवन की भी बात है। क्योंकि मैं जिंदगी-भर से तोतों की तरह शब्दों को दोहरा रहा हूं। मुझे भी कुछ नहीं हुआ। आप जो कहते हैं, ठीक ही कहते हैं। ऐसा व्यक्ति प्रेम की लाज बचा सकता है।
फकीहे-शहर से मैं का जवाज क्या पूछो
कि चांदनी को भी हजरत हराम कहते हैं
नवाए-मुर्ग को कहते हैं अब जियाने-चमन
खिले न फूल इसे इंतजाम कहते हैं।
पंडितों से तुम पूछोगे तो बड़ी झंझट में पड़ोगे।
फकीहे-शहर से मै का जवा.ज क्या पूछो--पंडित से मत पूछना कि शराब, बेहोशी, मस्ती में डूबना उचित है या अनुचित?
कि चांदनी को भी ह.जरत हराम कहते हैं--शराब की तो बात ही छोड़ो, पियक्कड़ों की तो बात ही छोड़ो, यह तो चांद से गिरती चांदनी का जो रस है, जो सुधा बरसती है--कि चांदनी को भी हजरत हराम कहते हैं। ये तो केवल शब्दों को मानते हैं। जहां जीवंत कुछ है--नाच पैदा हो सके कि मस्ती पैदा हो सके कि कोई घूंघर पैरों में बांध सके कि कोई बांसुरी बजा सके, वहां तो ये घबड़ा जाते हैं।
चांदनी को भी ह.जरत हराम कहते हैं
नवाए-मुर्ग को कहते हैं अब जियाने-चमन
पक्षियों का कलरव है, उसको कहते हैं कि इससे बगीचे को नुकसान पहुंचता है।
खिले न फूल इसे इंतजाम कहते हैं--फूल न खिले इसे इंतजाम कहते हैं। अगर महाराष्ट्र की भाषा में समझो तो बंदोबस्त। खिले न फूल इसे इंत.जाम कहते हैं। पुलिस का बंदोबस्त! एक फूल न खिल पाए कहीं।
फूलों से डरते हैं क्योंकि खुद भी खिले नहीं हैं। जो खुद नहीं खिला है
वह फूलों को भी मुरझा डालेगा, काट डालेगा, गिरा देगा क्योंकि हर फूल से उसे ईर्ष्या होगी। और जिसके भीतर का चांद नहीं उगा है वह बाहर के चांद के सौंदर्य को भी न देख पाएगा। और जिसके भीतर, भीतर नाच पैदा नहीं हुआ है, रंग नहीं जन्मा है उसे बाहर के सब रंग, सब सौंदर्य, सब उत्सव निंदा-योग्य मालूम पड़ेंगे।
एक तो ऐसे पंडित हैं। ये जो इश्क की आबरू डुबा देते हैं। लेकिन कभी कोई पंडित ऐसा भी होता है जो इश्क की आबरू बचा लेता है। कल जिसने मुझे पत्र लिखा है, ऐसा ही पंडित होगा। ऐसे पंडित को देख कर कहना होता है--

दिल में अब यूं तेरे भूले हुए गम आते हैं
जैसे बिछुड़े हुए काबे में सनम आते हैं
रक्से-मै तेज करो साज की लै तेज करो
सूए-मैखाना सफीराने-हरम आते हैं
--कि नाच की गति बढ़ाओ, कि साज की गति बढ़ाओ कि आज काबे के नमाजी शराबघर में आ रहे हैं।
रक्से-मै तेज करो सा.ज की लै तेज करो
सूए-मैखाना सफीराने-हरम आते हैं
स्वागत है! पांडित्य को जो छोड़ सके उसका मंदिर में स्वागत है। उसका ही स्वागत है। और मंदिरों में पंडितों ने कब्जा कर लिया है, जो कि मंदिर के दुश्मन हैं; जानी दुश्मन हैं।
सुनि जो करै तरै पै छिन महं, जेहिं प्रतीति मन आई
जगजीवन कहते हैं कि मैं तुमसे जो कह रहा हूं, छोटी सी ही बात है, कुछ बहुत बड़ी बात नहीं है। कुछ बहुत जाल नहीं फैला रहा हूं। जरा-सी बात कह रहा हूं, और वह है: जेहिं प्रतीति मन आई। मन में प्रेम ले आओ--बस इतना ही कर लो। पढ़ब पढ़ाउब बेधत नाहीं, बकि दिनरैन गंवाई
पढ़ने-पढ़ाने से यह प्रेम की पीड़ा पैदा नहीं होगी। इससे प्राण नहीं बिंधेंगे। ये पढ़ने-पढ़ाने के तीर तुम्हारे हृदय को नहीं छेद पाएंगे।
पढ़ब पढ़ाउब बेधत नाहीं, बकि दिनरैन गंवाई
एहि तैं भक्ति होत है नाहीं, परगट कहौं सुनाई
और तुमसे सीधी-सीधी बात कह देता हूं इस तरह भक्ति न कभी प्रकट हुई है न
हो सकती है।
सत्त कहत हौं बुरा न मानौ आजपा जपै जो जाई
जगजीवन सत-मत तब पावैं, परमज्ञान अधिकाई
जब तुम्हारे भीतर परमात्मा का नाद अपने आप उठने लगेगा, तुम्हे जपना न पड़ेगा, अपजा होगा तभी जानना कि कुछ हुआ। जब तक तुम तोते की तरह रटते रहो भीतर, तब तक समझना अभी कुछ भी नहीं हुआ।
सत्त कहत हौं बुरा न मानौ, आपजा जपै जो जाई
जगजीवन सत-मत तब पावैं, परमज्ञान अधिकाई
फिर तो रोज-रोज अधिक से अधिक ज्ञान बढ़ता चला जाता है। एक ज्ञान है जो किताबों से मिलता है, उसको जानकारी समझो। और एक ज्ञान है जो भीतर उतरने से उपजता है; उसे ही ज्ञान समझो। पंडिताई से बचो ताकि प्रज्ञावान हो सको। तुमहीं सो चित लागु है, जीवन कछु नाहीं
मात पित सुत बंधवा, कोउ संग न जाहीं
सब छूट जाएंगे। कोई साथ जाने को नहीं है।
मंजिले-इश्क पे तनहा पहुंचे कोई मंजिल साथ न थी
थक-थककर इस राह में आखिर इक-इक साथी छूट गया
सिद्ध साध मुनि गंध्रवा मिलि माटी माहीं
ब्रह्मा बिस्नु महेश्वरा, गनि आवत नाहीं
नर केतानि को बापुरा, केहि लेखे माहीं
जगजीवन कहते हैं, सिद्ध साध मुनि गंध्रवा--सिद्ध, बड़े-बड़े स्द्धि, बड़े चमत्कारी लोग--कि हाथ से भभूत निकाल दें, कि स्विट्जरलैंड की बनी घड़ियां निकाल दें; बड़े-बड़े सिद्ध लोग, बड़े-बड़े साधु--उपवास, व्रत, त्याग; बड़े मुनि-- कि बिल्कुल न बोलें, हालांकि हाथ से इशारे करें; मुंह से बिल्कुल न बोलें, लिख-लिखकर बतावें ऐसे बड़े-बड़े मुनि, गंधर्व: स्वर्ग के संगीतज्ञ, ये सब भी मिट्टी में मिल जाते हैं।
ब्रह्मा बिस्नु महेश्वरा, गनि आवत नाहीं
ब्रह्मा-विष्णु की भी कोई गिनती नहीं है। वे भी मिट्टी में मिल जाते हैं।
नर केतानि को बापुरा, केहि लेखे माहीं।।
--तो आदमी की तो कहां हम गिनती करें, कहां लेखा करें! सब मिट्टी में गिर जाएगा।
जगजीवन बिनती करै, रहे तुम्हरी छांही

और मजा यह है कि जिसको तुम तलाश रहे हो, तुम्हारी छाया की तरह तुम्हारे पीछे चल रहा है। जगजीवन कहते हैं, मैं विनती करता हूं, जरा लौटकर तो देखो! जिसको तुम खोज रहे हो वह तुम्हारी छाया है। जिसे तुम खोज रहे हो वह तुम्हारे भीतर बैठा है।
लेकिन तुम बाहर खोज रहे हो और भटक रहे हो। भटकते रहो बाहर जन्मों- जन्मों तक। बार-बार मिट्टी में गिरोगे, बार-बार मिट्टी से उठोगे और गिरोगे। मिट्टी उठती रहेगी, गिरती रहेगी। ये मिट्टी की लहरें हैं जिनको तुम अपना जीवन कह रहे हो। जीवन तो सिर्फ एक है: मिट्टी के पार तुम्हारे भीतर जो है उसे पहचान लो। मृण्मय में चिन्मय की पहचान जीवन का प्रारंभ है। आनंद के सिंध में आनि बसे, तिनको न रह्यो तन को तपनो
और एक बार जो तुम्हें छाया की तरह तुम्हारे पीछे चल रहा है, सदा तुम्हारे साथ है, सदा तुम्हारे भीतर मौजूद है उससे पहचान हो जाए तो--आनंद के सिंध में आनि बसे, तिनको न रह्यो तन को तपनो। वैसा व्यक्ति तत्क्षण आनंद के सागर में बस जाता है। फिर उसको तन की कोई पीड़ा नहीं रह जाती। देह से उसका कोई संबंध ही छूट जाता है। देह रहे तो और देह जाए तो; लेकिन भीतर फासला हो जाता है।
सूफी फकीर फरीद के पास लोग आते थे। कोई कुछ चढ़ा जाता, कोई कुछ चढ़ा जाता। एक दिन एक आदमी आया, उसने दो नारियल चढ़ाए और फरीद से पूछा, एक प्रश्न है मेरे मन में। मैंने सुना है कि मंसूर को जब फांसी दी गई... तुम तो फकीर हो, तुम तो सूफी हो, तुम्हीं उत्तर दे सकोगे, तुम तो मंसूर जैसे हो। जब मंसूर को फांसी दी गई तो वह हंसता राहा। उसकी गर्दन काटी गई, उसकी हंसी फूटती ही रही। यह कैसे हो सकता है? जरा-सा कांटा चुभ जाता है तो आदमी रोता है। हाथ जल जाता है तो आदमी रोता है। उसके अंग-अंग काटे गए, यह कैसे हो सकता है?
फरीद ने एक नारियल उठाया और जमीन पर पटका। वह कच्चा नारियल था। तो नारियल टूट गया लेकिन भीतर की गिरी भी टूट गई। फिर उसने दूसरा नारियल पटका। वह पक्का नारियल था, पका नारियल था। नारियल तो टूट गया मगर गिरी भीतर की साबित रह गई। उसने कहा, देखो! यह रहे तुम, यह रहा मंसूर। तुम कच्चे नारियल हो। गरी अभी जुड़ी हुई है खोल में। खोल टूटेगी, गरी भी टूट जाएगी। तुम्हारी आत्मा शरीर से जुड़ी है। शरीर टूटेगा, आत्मा भी टूटने लगेगी इसलिए रोओगे, चिल्लाओगे, परेशान होओगे। यह रहा मंसूर--यह सूखा नारियल। इसकी गरी खोल से अलग हो गई है। खोल टूट जाएगा, गरी का क्या बनता-बिगड़ता है! गरी जैसी है वैसी।
आनंद के सिंध में आनि बसे, तिनको न रह्यो तन को तपनो
अब आपु में आपु में समाय गए, तब आपु में आपु लह्यो अपनो
और जब तुम अपने भीतर जाओगे तभी तुम पाओगे, जिसकी तलाश करते थे, वह तुम्हीं हो। जिसकी खोज थी, खोजनेवाले में छिपा है। मजिंल दूर नहीं है, यात्री के प्राणों में मौजूद है; तुम्हारी श्वास-श्वास में बसी है। तुम्हारे हृदय की धड़कन में ही मोक्ष का निवास है।
जब आपु में आपु समाय गए, तब आपु में आपु लह्यो अपनो
जब आपु में आपु लह्यो अपनो, तब अपनो हो जाय रह्यो जपनो
जब आपु में आपु लह्यो अपुनो, तब अपनो हो जाय रह्यो जपनो--तब तो फिर जाप करना नहीं पड़ता, होने लगता है; होता ही रहता है--सतत, अहर्निश! स्मरण करना नहीं पड़ता। दूरी ही न रही। परमात्मा में और उसके प्रेमी में दूरी न रही। भक्त और भगवान एक हो गया। अब क्या स्मरण करना, किसका स्मरण करना? अब कौन स्मरण करे?
जब ज्ञान को भान प्रकास भयो, जगजीवन होय रह्यो सपनो
और जब भीतर यह रोशनी होती है, जब अपने से मिलन होता है और प्रकाश जन्मता है तब सारा जगत सपना हो जाता है। जगत माया है, यह कोई सिद्धांत नहीं, यह तो प्रकाश जिनका जग गया उनका अनुभव है। यह कोई दार्शनिक प्रत्यय नहीं है कि जगत माया है, यह अस्तित्वगत अनुभव है।

ये सूत्र बड़े प्यारे हैं। इन सूत्रों को सुन कर सिर्फ समझ कर मत रह जाना। इन सूत्रों को समझ कर दूसरों को मत समझाने लगना, अन्यथा तुम पंडित हो जाओगे; चूक जाओगे।
तेरे दर तक पहुंच कर लौट आए
इश्क की आबरू डुबो बैठे
ये सूत्र तुम्हारे श्वास-श्वास में रम जाएं। ये तुम्हारा जीवन बन जाएं तो तुम भी वहां पहुंच सकते हो, जहां बुद्ध पहुंचे, मीरां पहुंची, रामकृष्ण पहुंचे, रमण पहुंचे। जहां कोई भी कभी पहुंचा है, तुम भी पहुंच सकते हो।
वह परम धन तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है, आओ! वह परम प्यारा तुम्हें पुकार रहा है, आओ!

आज इतना ही।

नाम सुमिर मन बावरे
चौथा प्रवचन

धर्म एक क्रांतिकारी उद्घोष है

पहला प्रश्नः मेरे ख्वाबों के सहारे मेरी जन्नत के सितारे
मेरी दुनिया, मेरे हमदम, ऐ मेरे दोस्त!
मुझे हुआ क्या है? रोता हूं, गाता हूं, नाचता हूं, मौन रहता हूं। इतनी दूर हूं फिर भी तुम्हारा जादू मुझ पर छाया रहता है। तुमसे क्या मांगूं? तुमसे क्या कहूं? बस तुम ही तुम हो, और नहीं भी। ऐसा क्यों है?

पुरुषोत्तम, होना और न होना, है और नहीं एक-दूसरे के विपरीत नहीं है, परिपूरक हैं। शून्य और पूर्ण एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जब तक ऐसा तुम्हारे अनुभव में न आएगा तब तक तुम बंटे रहोगे; तब तक तुम जीवन को और मृत्यु को एक-दूसरे का शत्रु मानते रहोगे। और जिसने मृत्यु और जीवन को विपरीत देखा, स्वभावतः जीवन से जकड़ा रहेगा, मृत्यु से डरा रहेगा। जब तुम्हें जीवन और मृत्यु एक ही सिक्के के दो पहलू दिखाई पड़ेंगे--एक ही लहर की तरंगें, उसी क्षण जीवन में मोह छूट जाता है; उसी क्षण वैराग्य का जन्म होता है।
शून्य और पूर्ण को एक करके जान लेना, देख लेना, पहचान लेना परम अनुभव है।
तुमने पूछा हैः "बस तुम ही तुम हो और नहीं भी।"
ऐसा ही होता है। ये दोनों बातें एक साथ ही घटती हैं। यदि तुम मेरी आसक्ति में पड़ जाओ... और ध्यान रखना आसक्ति प्रेम नहीं है। आसक्ति है, जीवन का मोह। प्रेम है, जीवन और मृत्यु को एक ही जान लेने का बोध। तब तुम मेरी आसक्ति में पड़ जाओगे।
और सब आसक्तियां बांध लेती हैं; फिर गुरु की आसक्ति ही क्यों न हो, वह
भी बांधेगी। सोने की जंजीर ही सही, लेकिन सोने की जंजीर भी उतना ही बांध लेगी, जितनी लोहे की जंजीर बांधती है। और शायद थोड़ी मजबूती से बांधेगी। क्योंकि लोहे की जंजीर को तो छोड़ने का मन भी होता है, सोने की जंजीर को तो लोग आभूषण समझ लेते हैं। कांटों के ताज तो उतार देने आसान हैं, फूलों के ताज कैसे उतारोगे?
जीवन का जो साधारण विस्तार है वह तो कंटकाकीर्ण है। वहां तो दुख भरपूर है। वहां तो यह चमत्कार है कि तुम कैसे उलझे रहते हो! लेकिन किसी सद्गुरु के प्रेम में पड़ गए तो वहां तो फूलों की सुवास ही सुवास है। अगर वह प्रेम आसक्ति बन जाए तो मुक्तिदायी नहीं होगा। इसलिए सद्गुरु दोनों तरह से तुम्हारे भीतर प्रवेश करेगा--है की तरह और नहीं की तरह, पूर्ण की तरह और शून्य की तरह। कभी तुम पाओगे, तुम पूरे उससे भरे हो और कभी तुम पाओगे, तुम्हारे भीतर कोई भी नहीं है, सिर्फ सन्नाटा है। ये दोनों बातें जब समतुल हो जाती हैं, एक वजन की हो जाती हैं, ये पलड़े तराजू के जब एक तौल पर आ जाते हैं, उसी क्षण आसक्ति विलीन हो जाती है, प्रेम का अनुभव होता है।
प्रेम बड़ी और बात है। प्रेम मुक्तिदायी है। जहां आसक्ति बांधती है वहां प्रेम मुक्त करता है। प्रेम परम स्वतंत्रता है।
लेकिन इसके लिए बुद्धि के भेदों से ऊपर उठना होगा। यह बुद्धि प्रश्न उठा रही है। यह बुद्धि को अड़चन हो रही है कि मामला क्या है! "ऐसा भी लगता है कि आप हो, और ऐसा भी लगता है, आप नहीं हो।" तो बुद्धि कहती है, दो में से कोई एक ही बात सच होगी। बुद्धि दोनों को साथ एक नहीं मान सकती। बुद्धि की प्रक्रिया ही यही है कि वह विपरीत को समाविष्ट नहीं कर सकती। इतनी बड़ी उसकी छाती नहीं है बुद्धि बड़ी छोटी और ओछी है। बुद्धि कहती है दिन है तो फिर रात नहीं हो सकती। और रात है तो दिन नहीं हो सकता। बुद्धि से थोड़ा ऊपर उठो तो दिन और रात साथ-साथ हैं। दिन और रात एक ही पक्षी के दो पंख हैं। बुद्धि से ऊपर उठो अर्थात थोड़े दीवाने होओ, थोड़े पागल होओ।
रहे खिजां में तलाशे-बहार करते रहे भी
शबे-सियह से तलब हुस्ने-यार करते रहे

ख्याले-यार, कभी जिक्रे-यार करते रहे इसी मताअ पै हम रोजगार करते रहे
नहीं शिकायते-हिज्रां कि इस वसीले से
हम उनसे रिश्तए-दिल उस्तुवार करते रहे
वे दिन कि कोई भी जब वजहे-इंतजार न थी
हम उनमें तेरा सिवा इंतजार करते रहे
उन्हीं के फैज से बाजारे-अक्ल रोशन है
जो गाह-गाह जुनूं इख्तियार करते रहे
इस संसार में जो थोड़ी-सी गरिमा है, गौरव है, सौंदर्य है यह उन पागलों
के कारण है, जो गाह-गाह जुनूं इख्तियार करते रहे। जो कभी-कभी बुद्धि को छोड़कर दीवाने होते रहे।
उन्हीं के फैज से बाजारे अक्ल रोशन है
जो गाह-गाह जुनूं इख्तियार करते रहे
--उन्हीं की कृपा से, उन्हीं थोड़े दीवाने लोगों की कृपा से जीवन में रस बहता है और जीवन सत्य से बिल्कुल उखड़ नहीं जाता। यहां बुद्धिमान तो बुद्धि की सीमाओं में घिर जाते हैं। यहां बुद्धि के ऊपर उठने का अर्थ होता है: सारी सीमाओं को तोड़ देना। बुद्धिमान कहता है, मैं आस्तिक हूं। बुद्धिमान कहता है, मैं नास्तिक हूं। धार्मिक कहता है, ईश्वर को कहो, है, तो भी है; ईश्वर को कहो, नहीं है, तो भी है। धार्मिक कहता है, कैसी आस्तिकता, कैसी नास्तिकता! होना भी उसका एक ढंग है, न होना भी उसका एक ढंग है। उपस्थिति भी उसकी है, अनुपस्थिति भी उसकी है। भाव भी उसका, अभाव भी उसका।
हो, तो भी वही है; न हो, तो भी वही है।
रहे खिजां में तलाशे-बहार करते रहे
ऐसा दीवानापन चाहिए कि पतझड़ के दिनों में बहार को खोजने निकले कोई; अंधेरे में रोशनी की तलाश करे, मौत में जिंदगी को खोदे।
रहे खिजां में तलाशे-बहार करते रहे--जब पतझड़ आ गया हो, पत्ते झड़ गए हों, वृक्ष सूखे खड़े हों अस्थिपंजर, तब जो बहार की खोज करता है, ऐसा दीवाना ही परमात्मा को पा सकता है।
शबे-सियह से तलब हुस्ने-यार करते रहे--अंधेरे में जो प्यारे के चेहरे
की खोज कर रहा है, गहन अंधकार में भी जो उसकी आभा को खोजता है।
ख्याले-यार, कभी जिक्रे-यार करते रहे--कभी सोचना है, कभी बात करता है; मगर बात भी उस प्यारे की, सोचना भी उसी प्यारे का।
इसी मताअ पै हम रोजगार करते रहे--जिसकी सारी जिंदगी इसी एक ढंग में ढल
गई होती है: उसी की याद। फूल दिखें तो उसकी याद और फूल खो जाएं तो उसकी याद।
नहीं शिकायते-हिज्रां कि इस वसीले से
हम उनसे रिश्तए-दिल उस्तुवार करते रहे
ऐसे ही उस प्यारे से प्रेम का संबंध गहरा होता है। ऐसे ही स्थायी और दृढ़ संबंध निश्चित रूप से निर्मित होते हैं।
वे दिन कि कोई भी जब वजहे-इंतजार न थी--जब कोई भी कारण नहीं होता है प्रतीक्षा करने का, आने की कोई संभावना नहीं होती, कोई संकेत भी नहीं होता...
वे दिन कि कोई भी जब वजहे-इंतजार न थी
हम उनमें तेरा, सिवा इंतजार करते रहे
हम उनमें भी तेरी याद करते रहे और तेरा इंतजार करते रहे। कोई कारण न था। तूने कोई खबर भी न भेजी थी। तेरे पगों की कोई ध्वनि भी सुनाई न पड़ती थी। सच तो यह है कि तू आएगा यह तो संभव ही नहीं था तू कभी नहीं आएगा इसके सारे प्रमाण मौजूद थे। न तू आया कभी न तू कभी आएगा इसके सब प्रमाण मौजूद थे; फिर भी--
वे दिन कि कोई भी जब वजहे-इंतजार न थी
हम उनमें तेरा, सिवा इंतजार करते रहे
उन्हीं के फैज से बाजारे-अक्ल रोशन है
जो गाह-गाह जुनूं इख्तियार करते रहे

ऐसे थोड़े-से पागलों के कारण जगत से धर्म विदा नहीं होता। ऐसे थोड़े-से दुस्साहसियों के कारण परमात्मा का संबंध पृथ्वी से नहीं टूटता। ये दीवाने ही परमात्मा और पृथ्वी के बीच सेतु हैं।
बुद्धि से तो छुटकारा लेना होगा पुरुषोत्तम! छोड़ो यह फिक्र। बड़े-बड़े विचारक, बड़े दार्शनिक इसी फिक्र में उलझे और समाप्त हो गए हैं। कितना विवाद चला है! बौद्ध दार्शनिक कहते हैं, परमात्मा शून्य है और वेदांती दार्शनिक कहते हैं, परमात्मा पूर्ण है। और विवाद चल रहा है सदियों से।
दोनों को पता नहीं है। दार्शनिकों को कुछ पता नहीं है।
परमात्मा पूर्ण भी है और शून्य भी। उपनिषद ठीक कहते हैं। उपनिषद्भ के वक्तव्य दार्शनिकों के वक्तव्य नहीं हैं, दीवानों के वक्तव्य हैं। परमात्मा पास भी है, दूर भी। बुद्ध ठीक कहते हैं: है भी, नहीं भी।
दोनों को एक साथ स्वीकार कर लो। और दोनों की स्वीकृति में ही बुद्धि
की श्वासें टूट जाती हैं। और बुद्धि की श्वासें टूट जाएं तो आत्मा श्वास ले। बुद्धि बिखरे तो तुम संगठित हो जाओ। बुद्धि जाए तो तुम्हारा आगमन हो, पदार्पण हो।
तुम पूछते हो: "मेरे ख्वाबों के सहारे, मेरी जन्नत के सितारे
मेरी दुनिया, मेरे हमदम, ऐ मेरे दोस्त!
मुझे हुआ क्या है?"
बाहर मत पूछो। बाहर पूछे कि चूके। हो रहा है भीतर। आंखें बंद करो और डूबो; और स्वाद लो और पियो। और तुम पहचान जाओगे कि क्या हो रहा है। क्योंकि ये बातें सिर्फ स्वाद से ही पहचानी जाती हैं।
मैंने ही कुछ न समझा, मेरी ही थीं खताएं
वो दिल की धड़कनों से देते रहे सदाएं
वहां से आवाज उठी रही है हृदय में। वहां कोई पुकार रहा है, वहां कोई खींच रहा है। तुम बाहर प्रश्न खड़े करोगे, उलझ जाओगे, उलझ जाओगे। वहीं से पूछो। जहां प्रश्न उठ रहा है उसी प्रश्न में डुबकी मार जाओ; वहीं उत्तर छिपा है।
और तुम कहते हो कि रोता हूं, गाता हूं, नाचता हूं, मौन रहता हूं। इतनी दूर हूं फिर भी तुम्हारा जादू मुझ पर छाया रहता है।
दूरी से जादू का क्या लेना-देना? जादू दूरी मानता ही नहीं। प्रेम को दूरी का कोई पता ही नहीं है। प्रेम के लिए तो सभी कुछ पास ही है--पास से भी पास। प्रेम के लिए न कोई समय का अंतराल है, न कोई स्थान का अंतराल है। जहां प्रेमी बैठ जाता है, जब आंख बंद कर लेता है, तभी उसके भीतर की धारा गुनगुनाने लगती है।
रिंद जो जर्फ उठा लें वही कूजा बन जाए
जिस जगह बैठकर पी लें वहीं मैखाना बने
जहां बैठकर तुम परमात्मा की याद करोगे, वहीं मंदिर है; वहीं परमात्मा है; वहीं काबा, वहीं कैलाश। दूरी से कुछ प्रयोजन नहीं है। पास बैठकर भी पास बैठना इतना आसान तो नहीं।
लोग बुद्ध के सामने बैठ रहे हैं और चूक गए हैं। बुद्ध के सामने बैठे रहे और ऐसी व्यर्थ की बातें पूछते रहे! ऐसी व्यर्थ की बातें... समय अपना गंवाया, बुद्ध का गंवाया। बुद्ध के सामने थे, आंख में आंख डाल लेनी थी, हाथ में हाथ ले लेना था, चरणों पर सिर रख देना था। थोड़ी देर को विस्मरण करते सब सोच-विचार। थोड़ी देर को निर्विचार होते। उसी निर्विचार में बुद्ध से भी जुड़ते और अपने से भी जुड़ते। क्योंकि जो जाग गया वह वहीं है, जहां तुम भी जाग जाओगे तो पहुंच जाओ। जो जाग गया है वह वहीं है, जहां तुम्हारे भी अंतस्तल का केंद्र है। सोए-सोए हम अलग-अलग हैं, जागकर हम सब एक हैं। नींद में भेद है, जागरण में अभेद है।
अच्छा हो रहा है। रोते हो, गाते हो, नाचते हो, कभी मौन। भयभीत न होना।
भय लगता है क्योंकि साधारणतः इस तरह की बातें की नहीं जातीं।
हमने तो आदमी को बिल्कुल झूठा बना दिया है। न रोने के योग्य रखा है, न गाने के योग्य रखा है। आदमी हंसे तो भी कामचलाऊ, रोए तो भी कामचलाऊ। हंसता है तो भी ऊपर-ऊपर, रोता है तो भी ऊपर-ऊपर। आंसू भी झूठे, मुस्कुराहटें भी

झूठी। हमने तो आदमी को ऐसा नियंत्रण सिखाया है कि अपने को दबा कर रखो। अपना कोई भावावेश प्रकट न हो जाए। हमने तो भाव को मार ही डाला है। हमने हृदय की धड़कनें बंद कर दी हैं।
इसलिए जब जीवन में पहली बार रोओगे, नाचोगे, गाओगे, भीतर भी भय लगेगा कि
यह मैं क्या कर रहा हूं! लोग क्या समझेंगे! लेकिन जब तक लड़खड़ाना न आ जाए, उसके मंदिर की यात्रा नहीं होती।
मैं फिदा लगजिश-ए-रफ्तार पे अपनी ऐ "शाद"
दूर से देखकर उसने मुझे पहचान लिया
जब कोई लड़खड़ाता हुआ आता है तभी परमात्मा पहचानता है कि आया कोई! कि आता है कोई मेरी तरफ!
सम्हले हुए लोग उसके लोग नहीं हैं। सम्हले हुए लोग अपने अहंकार से जी रहे हैं। सम्हले हुए लोग अपने नियंत्रण में हें, अपने अनुशासन में हैं। उसके पास तो लड़खड़ा कर ही जाना होता है। और जब तुम पहचान लिए जाओगे तभी तुम धन्यवाद दोगे।
मैं फिदा लगजिश-ए-रफ्तार पे अपनी ऐ "शाद"
तब तुम कहोगे, धन्यभाग मेरा कि मैं लड़खड़ाया। धन्यभाग मेरा कि मेरे पैर डगमगाए। धन्यभाग मेरा कि मैं शराबी जैसा चला; नहीं तो पहचाना न जाता।
दूर से देख कर उसने मुझे पहचान लिया।
रोना आ रहा है, गाना आ रहा है, नाचना आ रहा है,--आने दो! बांहें फैलाकर स्वागत करो, आलिंगन करो। भाव का उन्मेष हो रहा है। सहारा दो, सहयोग दो। किसी भी बाह्य कारण से रोकना मत।
और बाहर कारण ही कारण हैं रोकने के। क्योंकि हम मनुष्य की सरलता को स्वीकार नहीं करते हैं। हम तो मनुष्य को कपटी बनाते हैं। हम तो उसकी सहजता को अंगीकार नहीं करते। हम तो उसके आसपास एक ढांचा बिठाते हैं। उस ढांचे को हम चरित्र कहते हैं, आचरण कहते हैं।
और जितना ढांचे में बंधा आदमी हो उतना ही समाज में सम्मानित होता है, पुरस्कृत होता है। मगर समाज से पुरस्कार ले लिया तो ध्यान रखना, परमात्मा के पुरस्कार से वंचित रह जाओगे। मिल गया तुम्हें तुम्हारा पुरस्कार, दे दिया समाज ने सम्मान, फूलमालाएं पहना दीं। ये हाथ झूठे हैं, इनके फूल झूठे हैं। ये फूल भी कुम्हला जाएंगे, ये हाथ भी कुम्हला जाएंगे। ये फूल भी मिट्टी हैं, ये हाथ भी मिट्टी हैं, यह सम्मान भी मिट्टी है। जब तक अमृत के हाथ तुम्हारे गले में वरमाला न डालें तब तक सब व्यर्थ है।
अब तो डूबो! यह जो हलकी-हलकी हवा आनी शुरू हुई है, इसे तूफान बनने दो।
न गरज किसी से न वास्ता मुझे काम अपने ही काम से
तिरे जिक्र से, तिरी फिक्र से, तिरी याद से, तिरे नाम से

दूसरा प्रश्नः मैं दुनिया के दुख देख कर बहुत रोता हूं। क्या ये दुख रोके नहीं जा सकते?

प्रश्न से तुम्हारे ऐसा लगता है कि कम से कम तुम दुखी नहीं हो। दुनिया
के दुख देख कर रोने का हक उसको है जो दुखी न हो। नहीं तो तुम्हारे रोने से और दुख बढ़ेगा, घटेगा थोड़े ही। और तुम्हारे रोने से किसी का दुख कटने वाला है? दुनिया सदा से दुखी है। इस सत्य को, चाहे यह सत्य कितना ही कड़वा क्यों न हो, स्वीकार करना ही होगा। दुनिया सदा दुखी रही है। दुनिया के दुख कभी समाप्त नहीं होंगे। व्यक्तियों के दुख समाप्त हुए हैं। व्यक्तियों के ही दुख समाप्त हो सकते हैं। हां, तुम चाहो तो तुम्हारा दुख समाप्त हो सकता है। तुम दूसरे का दुख कैसे समाप्त करोगे?
और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि लोगों को रोटी नहीं दी जा सकती, मकान नहीं दिए जा सकते। दिए जा सकते हैं, दिए जा रहे हैं, दिए गए हैं। लेकिन दुख फिर भी मिटते नहीं। सच तो यह है, दुख और गढ़ गए हैं। जहां लोगों को मकान मिल गए हैं, रोटी-रोजी मिल गई है, काम मिल गया है, धन मिल गया है वहां दुख और बढ़ गए हैं, घटे नहीं हैं।

आज अमरीका जितना दुखी है उतना इस पृथ्वी पर कोई देश दुखी नहीं है। हां, दुखों ने नया रूप ले लिया। शरीर के दुख नहीं रहे, अब मन के दुःख हैं। और मन के दुख निश्चित ही शरीर के दुख से ज्यादा गहरे होते हैं। शरीर की गहराई ही क्या! गहराई तो मन की होती है। अमरीका में जितने लोग आत्महत्या करते हैं उतनी आत्महत्या दुनिया में कहीं नहीं की जाती। अमरीका में जितने विवाह टूटते हैं उतने विवाह कहीं नहीं टूटते। अमरीका के मन पर जितना बोझ और चिंता है उतनी किसी के मन पर नहीं है। और अमरीका भौतिक अर्थों में सबसे ज्यादा सुखी है। पृथ्वी पर पहली बार पूरे अब तक के इतिहास में एक देश समृद्ध हुआ है। मगर समृद्धि के साथ-साथ दुख की भी बाढ़ आ गई।
मेरे लेखे जब तक आदमी जागृत न हो तब तक वह कुछ भी करे, दुखी रहेगा। भूखा हो तो भूख से दुखी रहेगा और भरा पेट हो तो भरे पेट के कारण दुःखी रहेगा।
जीसस के जीवन में एक कहानी है। ईसाइयों ने बाइबल में नहीं रखी है। कहानी जरा खतरनाक है। लेकिन सूफी फकीरों ने बचा ली है। कहानी है कि जीसस एक गांव में प्रवेश करते हैं और उन्होंने देखा, एक आदमी शराब पिए नाली में पड़ा हुआ गंदी गालियां बक रहा है। समझाने वे झुके, उसके चेहरे से भयंकर बदबू उठ रही है। चेहरा पहचाना हुआ मालूम पड़ा। याद उन्हें आई। उन्होंने उस आदमी को हिलाया और कहा, मेरे भाई! जरा आंख खोल और मुझे देख। क्या तू मुझे भूल गया? क्या तुझे बिल्कुल याद नहीं है कि मैं कौन हूं?
उस आदमी ने गौर से देखा और कहा, हां याद है। और तुम्हारे ही कारण मैं दुःख भोग रहा हूं। क्योंकि मैं बीमार था, बिस्तर से लगा था, तुमने मुझे स्वस्थ किया। तुमने छुआ और मैं स्वस्थ हो गया। अब मैं तुमसे पूछता हूं इस स्वास्थ्य का क्या करूं? शराब न पीऊं तो और क्या करूं? बीमार था तो बिस्तर पर लगा था। शराब का ख्याल ही नहीं उठता था। जबसे स्वस्थ हुआ हूं तबसे यह झंझट सिर पर पड़ी। तुम्हीं जिम्मेवार हो।
जीसस तो बहुत चौंके। ऐसा शायद उन्होंने पहले कभी सोचा भी न होगा। उदास थोड़े आगे बढ़े। उन्होंने एक और आदमी को एक वेश्या के पीछे भागते देखा। उसको रोका और कहा, मेरे भाई, परमात्मा ने आंखें इसलिए नहीं दी हैं। उस आदमी ने जीसस को देखा और कहा कि परमात्मा ने तो दी ही नहीं थीं। तुम्हीं हो जिम्मेवार। मैं अंधा था, तुमने मेरी आंखें छुईं और मुझे आंखें मिल गईं। अब मैं इन आंखों का क्या करूं, तुम्हीं बताओ। तुमने आंखें क्या दीं, तबसे मैं स्त्रियों के पीछे भाग रहा हूं।
जीसस तो बहुत हैरान हो गए। वे तो फिर गांव में गए नहीं और आगे, उदास लौट आए। लौटते थे तो गांव के बाहर देखा, एक आदमी एक वृक्ष में रस्सी बांधकर फांसी लगाने का आयोजन कर रहा था। भागे, उसे रोका; कहा, यह तू क्या कर रहा है? इतना अमूल्य जीवन ... ! उस आदमी ने कहा, अब मेरे पास मत आना। मैं तो मर गया था, तुमने ही मुझे जिंदा किया। अब इस जिंदगी का मैं क्या करूं? जिंदगी बड़ी बोझ है। मुझे मर जाने दो। कृपा करके और चमत्कार मत दिखाओ। तुम्हारे चमत्कार दिखाने की वजह से हम मुसीबत में पड़ रहे हैं। तुम्हें चमत्कार दिखाना हो तो कहीं और दिखाओ। तुम मुझे बक्शो, मुझे क्षमा कर दो।
इस कहानी की अर्थवत्ता देखो। तुम्हारे पास आंखें हैं, करोगे क्या? तुम्हारे पास स्वास्थ्य है, करोगे क्या? तुम्हारे पास जीवन है, करोगे क्या? जब तक जागरण न हो तब तक आंखें होते हुए भी अंधे होओगे। और आंखें तुम्हें गड्ढ़ों की तरफ ले जाएंगी। और जब तक जागरण न हो, स्वस्थ हुए तो पाप के अतिरिक्त कुछ करने को दिखाई नहीं पड़ेगा। स्वास्थ्य तुम्हें पाप में ले जाएगा। और जब तक जाग्रत न होओ तब तक जीवन भी व्यर्थ है; बोझ हो जाएगा। आत्मघात का तुम विचार करने लगोगे।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं, ऐसा आदमी खोजना कठिन है जिसने जिंदगी में दस-पांच बार आत्मघात का विचार न किया हो। तुम खुद ही अपने तरफ सोचना। दो-चार बार तुमने भी सोचा होगा कि क्या सार है, खतम करो। फिजूल रोज उठना, फिर वही धंधा, फिर वही झगड़ा, फिर वही उपद्रव, इसमें सार क्या है? क्यों न हम मर जाएं? क्या बिगड़ेगा मर जाने से? है भी तो नहीं हाथ में कुछ! खो भी क्या जाएगा? जीवन ऐसा रिक्त-रिक्त है कि मृत्यु और क्या छीन लेगी?

लोग तो दुखी हैं, और लोग दुःखी रहे हैं और लोग दुखी रहेंगे। क्योंकि सुख का अवतरण संपत्ति से नहीं होता। और मैं संपत्ति-विरोधी नहीं हूं, ख्याल रखना। संपत्ति से सुविधा मिल सकती है। तो एक आदमी जिसके पास संपत्ति नहीं है, असुविधा में दुखी होता है। और जो आदमी जिसके पास संपत्ति है, वह... वह सुविधा में दुखी होता है। सुविधा दुख नहीं छीनती, सुविधा दुख के लिए और अच्छे अवसर दे देती है। वातानुकूलित भवन में, मगर रहोगे दुखी। महल में, संगमरमर के महल में, पर रहोगे दुखी। मखमली सेजों पर, पर रहोगे दुखी।
और मैं यह भी नहीं कह रहा हूं कि सुविधा बुरी चीज है। सुविधा अपनी तरफ अपने तईं ठीक है लेकिन उससे दुख नहीं मिटता। सच तो यह है, जितनी सुविधा हो उतना दुःख प्रगाढ़ होकर दिखाई पड़ता है। दुःखी आदमी, सुविधा से हीन आदमी को फुरसत ही नहीं मिलती दुख देखने की। जिनको हम सुखी कहते हैं, उनको ही फुरसत होती है दुःख देखने की।
आदमी का दुख न सुविधा से मिटता है, न धन से मिटता, न पद से, न प्रतिष्ठा से। आदमी का दुख आत्म-जागरण से मिटता है।
तुम कहते हो, मैं दुनिया के दुख देख कर बहुत रोता हूं। तुम्हें रोना
हो तो मजे से रोओ, मगर रोने के लिए और अच्छे कारण खोज सकते तो। परमात्मा के लिए रोओ। और तुम्हारे रोने से क्या होगा? एक आदमी बीमार पड़ा है, मर रहा है, तुम उसके पास बैठे रो रहे हो, तुम सोचते हो इससे इलाज हो जाएगा? तुम्हारे रोने से वह और जल्दी मर जाएगा। और घबड़ा जाएगा। कोई पानी में डूब रहा है, तुम किनारे पर बैठे रो रहे हो। तुम क्या सोचते हो, तुम्हारे रोने से बच जाएगा? तुम्हें रोते देख कर और जल्दी आशा छोड़ देगा। तुम पर दया करके डूब ही जाएगा कि अब खत्म ही हो जाऊं, यह बेचारा नाहक रो रहा है। तुम्हारे रोने से क्या होना है?
तुम पूछते होः "क्या ये दुख रोके नहीं जा सकते?"
जरूर रोके जा सकते हैं। मगर किसी और के द्वारा नहीं। यही राजनीति और धर्म का भेद है। राजनीति सोचती है, दुख दूसरों के द्वारा रोके जा सकते हैं। इसलिए राजनीतिक सत्ता की तलाश करता है कि सत्ता में पहुंच जाए, ताकत हाथ में हो तो लोगों के दुख रोक देगा। इसलिए राजनीतिक क्रांति की भाषा में सोचता है। क्रांति हो जाए, समाज का अर्थतंत्र बदले, समाजवाद आए, साम्यवाद भी आ चुका, कोई दुख मिटते नहीं। कहीं दुःख मिटते नहीं।
धर्म की यही मूल भित्ति है, मूल भेद है कि दुख मिटता है आत्म-जागरण से। आत्म-जागरण कौन तुम्हें दे सकता है? तुम जागो। तुम ध्यान में उठो। तुम भक्ति में पगो तो दुख मिटेगा। तुम नाहक मत रोओ।
मत रोओ, कबीर
मत रोओ!
तुम ऐसा कवि-नबी
गिराता है जब आंसू
तब सदियों का दामन भीग उठा करता है
हर दाना नादान जिया जो करता है, मरता है पाटों में पड़ना,
रगड़ा खाना
हो जाना चूरा-धूरा
चलता आया,
और सदा चलता आएगा
और तुम्हारे आंसू से भी
कभी नहीं यह रुक पाएगा
मत रोओ, कबीर
मत रोओ!
किस अजाने की मर्जी पर दो पाटों के बीच पड़ा था मुझे न साबित बच कर घिस-पिस जाना ही था कालबद्ध मिट्टी था
मेरे वर्तमान को

भूत, भविष्य सबका
यह कर्ज चुकाना ही था
हर्ष-विषाद विमुक्त
नियति अपनी यह मैंने स्वीकारी है और बड़ी चक्कियां हैं
और बड़ी चक्कियां
कि जिनमें है यह चक्की बस दाने-सी मुझे पीसने-घिसनेवाले
पाटों के भी
घिसने-पिसने की आने वाली बारी है आगे भी यह क्रम जारी है
पर घिसना-पिसना अपने में अंत नहीं है व्यर्थ नहीं है
इसके ऊपर इसका कोई अर्थ कहीं है
और न भी हो तो
इससे क्या फर्क पड़ेगा?
दाना किस गिनती में!
जिसे झगड़ना होगा
अंतिम चक्की के दो पाटों से झगड़ेगा
मत रोओ, कबीर
मत रोओ!
संसार तो दो चक्कियों के, दो पाटों के बीच है, पिस रहा है। कबीर ने कहा
है कि देख कबीरा रोया। दो पाटों के बीच में लोगों को पिसते देखकर कबीर रोया।
और जब कबीर ने घर आकर यह पद कहा तो कबीर के बेटे कमाल ने उसके उत्तर में एक पद लिखा, जिसमें उसने लिखा कि आप ठीक कहते हैं कि दो पाटों के बीच जो भी पड़ गया वह पिस गया। लेकिन आपने एक बात ध्यान नहीं दी कि दो पाटों के बीच में जो कील है, उस कील से जो दाना लग गया वह नहीं पिसा; वह बच गया।
वह बेटा कमाल का ही था इसीलिए तो कबीर ने उसको नाम कमाल दिया था। उस कमाल ने कहा कि इसलिए जिसने उस एक का सहारा पकड़ लिया, जिस पर सारी चक्कियां घूम रही हैं और जो बिना घूमा बीच में खड़ा है--चक्की के पाट भी कील के बिना थोड़े ही घूमेंगे। गाड़ी का चाक भी बिना कील के थोड़े ही घूमेगा। चाक घूमता है, कील खड़ी है। कील कभी नहीं घूमती। नहीं घूमती इसीलिए चाक घूम पाता है। कील भी घूम जाए तो गाड़ी गिर जाए। दो पाटों के बीच तो पिस गए दाने, लेकिन जिन्होंने बीच की कील का सहारा पकड़ लिया वे बच गए।
संसार में तो पिसोगे। संसार में दुख है। संसार दुख है। लेकिन अगर राम
का सहारा पकड़ लिया, अगर राम के आसरे हो गए, अगर परिवर्तन में ही रहे तो पिसोगे। अगर शाश्वत का हाथ पकड़ लिया तो नहीं पिसोगे, बच जाओगे। दुख से मुक्त होने का एक ही उपाय है कि उस एक को पकड़ लो, जो अनेक के बीच में मौजूद है। शाश्वत को पकड़ो, जो समय की धारा में छिपा है। नित्य को पकड़ो। अनित्य को पकड़ोगे तो दुख पाओगे।
दुख क्या है? कि अनित्य को हमने पकड़ा है। देह को मान लिया है मैं हूं,
यह दुःख है। फिर देह तो जरा भी आएगी, जीर्ण भी होगी, शीर्ण भी होगी। आज जवान है, कल बूढ़ी होगी, परसों मरेगी भी। देह तो हजार दुःख लाएगी। किसी स्त्री से प्रेम किया, किसी पुरुष से प्रेम किया, दुखाएगा। क्योंकि हम सब अजनबी हैं यहां। कोई किसी का भी नहीं। जिसने जितना अपना मोह का विस्तार किया उतना ही पीड़ा में पड़ेगा। जिसने अहंकार से अपने को एक समझ लिया और प्रतिष्ठा चाही, पद चाहा, सम्मान चाहा, वह भी दुखी होगा।
यह दुख स्वाभाविक है। यह चक्की के पाटों के बीच में पड़ जाने के कारण है। उस एक का सहारा पकड़ो। उसको पकड़ते ही से सारे दुःख विदा हो जाते हैं। ऐसा समझो कि दुख को हम अपनी भ्रांति के कारण पैदा कर रहे हैं। और कोई किसी दूसरे की भ्रांति नहीं मिटा सकता। तुम्हारे हाथ में यह बात नहीं है कि तुम

दुनिया के दुख मिटा दो, लेकिन तुम्हारे हाथ में एक बात जरूर है कि तुम अपना दुख मिटा लो।
और इससे बड़ी और कोई सेवा नहीं हो सकती। अगर तुम अपना दुख मिटा लो तो तुमने दुनिया के एक हिस्से का दुख तो मिटाया। तुम भी तो दुनिया के एक हिस्से हो। अगर दुनिया में तीन अरब आदमी हैं और तुमने अपना दुःख मिटा लिया तो एक दुखी आदमी कम हुआ। और इतना ही नहीं है, जब एक दीया जलता है आनंद का तो उसकी किरणें आसपास के लोगों को भी आंदोलित करती हैं। और जब एक फूल खिलता है सुवासित होकर तो दूसरों के नासापुटों तक भी गंध जाती है। और जब कोई एक वीणा बजती है तो दूसरों के भीतर हृदय की सोई पड़ी वीणा के भी तार झंकृत हो जाते हैं।
बस, इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। इसके अतिरिक्त तुम जो भी उपाय करोगे, वे उपाय तुम्हें राजनीति में ले जाएंगे। और उन उपायों से तुम दुनिया का दुःख बढ़ाओगे, घटाओगे नहीं। क्योंकि राजनीति की सारी प्रक्रिया अहंकार की प्रक्रिया है।
इसलिए मैं तुमसे समाजसेवा की बात नहीं करता। मैं तुमसे कहता हूं, समाजसेवा हो जाएगी अपने से। तुम पहले स्वयं की सेवा तो कर लो। इसके पहले कि दूसरों के जीवन में रोशनी देने चलो, तुम्हारे भीतर रोशनी तो होनी चाहिए। उतनी शर्त तो पूरी करो। इसके पहले कि तुम चाहो कि लोगों के दुख मिट जाएं, तुम्हें अपना दुख तो मिटा लेना चाहिए। कम से कम तो इतना तो करो। तुम तो तुम्हारे बस में हो। तुम तो अपनी सुन सकते हो। दूसरों का क्या पता! सुनें न सुनें, मानें न मानें। कोई जोर-जबरदस्ती नहीं है। अगर उन्होंने दुःखी ही रहने का तय किया है तो तुम क्या करोगे?
लेकिन मेरे देखे ऐसा है कि जो लोग दूसरों के दुख मिटाने में उत्सुक हो जाते हैं, यह एक मनोवैज्ञानिक चालबाजी है। यह अपने दुःख न देखने का उपाय है। यह अपना साक्षात्कार न हो जाए इसके लिए बड़ा सुगम आयोजन है। दूसरों का दुख देखने लगे। अपने से आंख फेर ली। कहा कि अपने दुख में क्या रक्खा है! यहां लोग इतने दुखी हैं, पहले इनका दुख तो मिटाएं। इस तरह अपने को व्यस्त कर लिया। समाज-सेवक सिर्फ अपने दुःख की तरफ पीठ करने में लगे हैं, और कुछ भी नहीं।
मेरे पास आ जाते हैं समाज-सेवक कभी-कभी। एक सजन हैं, वे पचास साल से आदिवासियों की सेवा कर रहे हैं बस्तर में। मुझे मिलने आए थे। बूढ़े हैं, अस्सी साल के करीब हैं। कहने लगे, जीवन में बड़ी अशांति है, बड़ी बेचैनी है। कहा, पचास साल की समाज-सेवा, और अशांति और बेचैनी तुम्हारी गई नहीं? तो तुमने पचास साल में न मालूम अपनी अशांति और बेचैनी से कितने लोगों को अशांत और बेचैन कर दिया होगा। तुम क्यों लोगों के पीछे पड़े हो?
उन्होंने कहा, मैंने कोई गलत काम तो नहीं किया। मैं तो आदिवासियों को शिक्षा होनी चाहिए इसके काम में लगा हूं। मैंने कहा, तुम जरा अपने विश्वविद्यालयों की हालत तो देख लो। जो शिक्षित हैं उनकी हालत तो देख लो। क्यों आदिवासियों के पीछे पड़े हो? शिक्षित कहां पहुंच गया है? तुम्हारे विश्वविद्यालय जितने उपद्रवों के अड्डे हैं, कहीं और उतने उपद्रवों के अड्डे नहीं हैं। जो शिक्षित हो गया है उसके जीवन में कौन-सा आनंद है?
सच तो यह है कि शिक्षित महत्त्वाकांक्षी हो जाता है। महत्त्वाकांक्षी होने से दुःख बढ़ जाता है। क्योंकि जितनी महत्वाकांक्षा है, वह पूरी तो हो नहीं सकती। शिक्षित होकर सभी लोग तो प्रधानमंत्री होना चाहते हैं। सभी लोग प्रधानमंत्री हो नहीं सकते। और जब वे देखते हैं कि ऐरे-गैरे नत्थू खैरे प्रधानमंत्री बन रहे हैं तो उनको और बड़ा दुःख होता है कि हम पढ़े-लिखे बुद्धिमान लोग बैठे हैं, अंगूठा छाप लोग मंत्री बन रहे हैं, मुख्यमंत्री बन रहे हैं और हम पढ़े-लिखे लोग--! बड़ा अन्याय हो रहा है। उनके चित्त की पीड़ा और बढ़ जाती है, विषाद बहुत बढ़ जाता है।
दुनिया में जितने उपद्रव लोग करते हैं, वे पढ़े-लिखे लोग हैं। क्यों? क्योंकि उनकी महत्वाकांक्षा बड़ी है। और कोई भी चीज उसे तृप्त नहीं कर पाती। उन्हें कुछ भी मिल जाए, उन्हें सदा लगता है हमारी योग्यता से कम है।
इसलिए उनके जीवन में कभी शांति हो नहीं सकती। असंतोष उनका स्वर रहेगा।

असंतोष में भभकेंगे, धधकेंगे। असंतोष के अंगार ही उनके जीवन में रहेंगे, और कुछ भी न रहेगा। जहां फूल खिलने चाहिए थे संतोष के, वहां केवल असंतोष के अंगार ही होंगे।
तो मैंने उनसे पूछा कि तुम बेचारे आदिवासियों के पीछे क्यों पड़े हो?
वे वैसे ही मस्त हैं। चाहे पेट पूरा न भरता हो लेकिन रात गीत तो गाते हैं। चाहे तन पर बहुत कपड़े न हों लेकिन बांसुरी तो बजाते हैं। और चाहे रहने के लिए सुंदर मकान न हों, घास-फूस के झोंपड़े हों, लेकिन रात जब मस्त होकर नाचते हैं तो समृद्ध से समृद्ध आदमी को भी ईर्ष्या हो।
तुम क्यों उनके पीछे पड़े हो? तुम उन्हें इस दौड़ में लगा दोगे न जिसमें सारी दुनिया लगी है? और तुम उन्हें भी बेचैन कर दोगे। तुम तो पढ़े-लिखे हो, तुम्हें चैन कहां है? अस्सी साल की उम्र में तुम मुझसे पूछने आए हो कि मेरे जीवन में चैन नहीं है, शांति नहीं है। और पचास साल तुम सेवा करते रहे। तो शायद पचास साल तुम इसी अशांति को छिपाने के लिए दूसरों पर नजर गड़ाए रहे। यह सेवा आत्म-विस्मरण है। यह एक तरह का नशा है, यह शराब है। इससे बचना।
राजनीति की शराब होती है, सेवा की शराब होती है। और ये शराबें ऐसी हैं
कि किसी को पकड़ लें तो पता भी नहीं चलता। और फिर ये शराबें ऐसी हैं कि समाज इनका सम्मान करता है। लोग कहेंगे, महान समाजसेवक! सत्कार करो, हीरक जयंती मनाओ, स्मारक बनवाओ, स्मृति-ग्रंथ प्रकाशित करवाओ। और तुम वैसे के वैसे! तुम्हारे पचास साल व्यर्थ गए।
उन सज्जन ने मुझे कहा कि आप कहते हैं तो सोच आता है, मैं जवान था, विश्वविद्यालय से निकला ही था कि महात्मा गांधी के प्रभाव में आ गया। उन्होंने मुझसे कहा कि सेवा करो, सेवा ही धर्म है। तो मैं सेवा में लग गया। "पचास साल करके देख लिया, कुछ अकल आई? सेवा धर्म नहीं है, यद्यपि धर्म जरूर सेवा है। और इन दोनों बातों में जमीन-आसमान का फर्क है।"
महात्मा गांधी ने कहा है, सेवा धर्म है। विनोबा भावे कहते हैं, सेवा धर्म है। मैं तुमसे कहता हूं, सेवा धर्म नहीं है, धर्म सेवा है। पर तब यात्रा बिल्कुल भिन्न हो गई। पहले स्वयं के जीवन में धर्म का जागरण हो, फिर सेवा अपने-आप हो जाती है; फिर तुम्हें करनी नहीं पड़ती। कोई चेष्टा नहीं, कोई आयोजन नहीं। तुम जहां बैठते हो, तुम जहां उठते हो, तुम जिनके साथ हो लेते हो उनके जीवन में तुम्हारी सुगंध व्यापने लगती है। तुम कोई उनकी गर्दन नहीं पकड़ लेते कि हम तुम्हें बदल कर रहेंगे।
ख्याल रखना, दूसरों को बदलने वाले मत बनना। ये अक्सर बुरे लोग होते हैं जो दूसरों को बदलने में उत्सुक हो जाते हैं। जो किसी के पीछे पड़ जाते हैं कि हम तुम्हारा चरित्र ठीक करके रहेंगे। तुम हो कौन? तुम्हें किसने जिम्मा दिया है? यह दूसरे का चरित्र ठीक करने का तुमने ठेका कहां से लिया है? तुम अपनी फिकर ले लो। तुम अपनी तो निबेर लो। तुम सुंदर हो जाओ; फिर तुम्हारे सौंदर्य के प्रभाव में अगर कुछ होना होगा, हो जाएगा। जरूर होता है। तुम्हारे सौंदर्य की छाप जरूर पड़ेगी।
अक्सर दूसरों को बदलने वाले लोग जोर जबरदस्ती करते हैं। यह हिंसा का
ही एक ढंग है। महात्माओं से सावधान रहना। महात्माओं से जरा बचना क्योंकि महात्मा अक्सर हिंसक होते हैं। अहिंसा की बातें करते हैं, मगर उनकी अहिंसा की बात में भी हिंसा होती है।
जिंदगी बड़ी जटिल है। ऊपर से कुछ होता है, भीतर कुछ होता है। अगर तुम महात्मा गांधी की बात न मानते, वे उपवास करेंगे। यह उपवास क्या है? यह हिंसा है, यह धमकी है। यह इस बात की धमकी है कि मैं मर जाऊंगा अगर मेरी बात नहीं मानी। मगर यह तो बड़े मजे की बात हो गई। अगर कोई आदमी छुरा लेकर बैठ जाए, मैं मर जाऊंगा अगर मेरी बात नहीं मानी तो तुम्हें साफ दिखाई पड़ेगा कि यह आदमी तो बड़ा हिंसक है। छुरा है उपवास भी--सूक्ष्म है। एकदम नहीं मर जाएंगे, मरते-मरते मरेंगे। और एकदम मर जाएं तो ठीक भी है। तुम्हारी झंझट छूटे। ठीक है, रो-धोकर विदा कर आओ। मगर ये महीनों तुम्हारे पीछे रहेंगे। ये तुम्हें सोने न देंगे। रात तुम्हें नींद न आएगी कि बेचारा, मेरे पीछे मर रहा है।

कोई किसी के पीछे नहीं मर रहा है। लोग अपने-अपने अहंकार के लिए मर रहे हैं। यह आदमी इसलिए मर रहा है, यह कहता है, मेरी मानो। जो मैं कहता हूं, वह ठीक है। कोई कहता है, मेरी मानो नहीं तो तुम्हारी गर्दन काट दूंगा। एडोल्फ हिटलर जैसे लोग--कि हम ठीक हैं, मानते हो कि नहीं?
मैंने सुना है, एडोल्फ हिटलर ने अपने मंत्रियों की एक सभा ली। उसके बीस मंत्री थे। उसने खड़े होकर कहा, एक प्रस्ताव रखा कि यह प्रस्ताव है। और जो लोग भी इससे असहमत हों, वे अपने इस्तीफे दे दें। जो लोग भी इससे असहमत हों, वे अपना इस्तीफा दे दें। मामला खतम करो।
कौन असहमत होगा? कैसे असहमत होगा? और इस्तीफे पर ही यह बात नहीं रुक जाएगी, जान का भी खतरा है फिर पीछे। यह खतरा कौन मोल ले? हिटलर कहता है, जो मेरे साथ हैं वे ठीक, जो मेरे साथ नहीं है वह मेरा दुश्मन है। उसे मिटाना मेरा कर्त्तव्य है। मेरी नहीं मानते तो गर्दन कटवाने को राजी हो जाओ। यह एक ढंग हुआ।
महात्मा गांधी कहते हैं कि अगर मेरी नहीं मानते तो मैं खुद मर जाऊंगा। और महीनों तक मरता रहूंगा, घिसता रहूंगा। और तुमको भी सताता रहूंगा। भूत की तरह तुम्हारे पीछे पड़ा रहूंगा। न तुम सो सकोगे, न बैठोगे। तुम खाना खाओगे तो भी विचार आएगा कि एक आदमी मेरे पीछे है। यह कोई नई तरकीब भी नहीं है। स्त्रियां इस तरकीब का उपयोग सदियों से करती रही हैं। महात्मा गांधी की कोई खोज नहीं है इसमें। यह स्त्रियों का बहुत पुराना हथियार है: नहीं खाना खाएंगे। फिर ठीक और सही का सवाल ही नहीं उठता। फिर जो नहीं खाना खा रहा है वही ठीक है। क्योंकि कौन झंझट बढ़ाए! उससे सार भी क्या है?
लेकिन इतना आग्रहपूर्ण होकर जब तुम दूसरे को बदलते हो तो तुम उसकी गर्दन पर शिकंजा कस रहे हो; तुम फांसी लगा रहे हो। यह सेवा नहीं है। और इसी तरह के सेवक काफी हैं। इस देश में तो बहुत हैं। इस देश में तो सेवक ही सेवक हैं। थोड़े ही दिनों में इस देश में मुश्किल हो जाएगी कि एक-एक आदमी के पीछे कई-कई सेवक पड़े हुए हैं। क्योंकि सेवक ज्यादा हो जाएंगे सेवा करवाने वाले कम रह जाएंगे। आखिर कहां इतने कोढ़ी खोजोगे? दबा रहे पैर! मालिश कर रहे हैं। कोढ़ी कह भी रहा है कि मेरी बहुत मालिश हो चुकी है दिन-भर से। अब मुझे छोड़ो, मुझे कुछ और भी करने दो। मगर यह कैसे हो सकता है? सेवा करनी ही है। सेवा का भाव ही एक भ्रांत धारणा पर खड़ा है। तुम इसके पहले सेवा की बात सोचो, सोच लेना कि मैं अभी कहां हूं, क्या हूं। मेरी अपनी अंतर्दशा कैसी है। पहले बुद्ध बनो। पहले जगो। पहले प्रीति का सागर बनो, फिर उस सागर से अपने आप तरंगें उठेंगी, लहरें उठेंगी। न मालूम कितने लोग डूबेंगे! मगर तुम्हें डुबाना न पड़ेगा तुम्हें एक-एक के पीछे दौड़ना नहीं पड़ेगा। लोग अपने से आकर डूबें, तब मजा है।
तुम लोगों को बदलना चाहो, तब मजा नहीं है; लोग बदलें, तब मजा है। तुम अनुशासन थोपो, उनको भयभीत करो कि नरक में सड़ाए जाओगे अगर हमारी बात नहीं मानी; या स्वर्ग का पुरस्कार मिलेगा अगर हमारी बात मानी। ये सब धोखे- धड़ियां हैं। न कहीं कोई नरक है, न कहीं कोई स्वर्ग है। यह सिर्फ चालबाजों की ईजाद है--उन चालबाजों की, जो आदमी की गर्दन से हाथ अलग नहीं करना चाहते। वे तुम्हें भयभीत करते हैं और तुम्हें लोभी भी बनाते हैं।
सच्चा धार्मिक व्यक्ति न तो तुम्हें भय देता है, न तुम्हें लोभ देता है। सच्चा धार्मिक व्यक्ति अपने जीवन को तुम्हारे सामने खोल देता है। अगर उसमें से तुम्हें कुछ चुनना हो, चुन लो। चुन लो तो धन्यवाद, न चुनो तो धन्यवाद।
तुम चिंता न करो दूसरे लोगों के दुखों की। तुम अपना दुःख मिटा लो। तुम रोओ मत। और रोना ही हो तो परमात्मा के लिए रोओ, विरह में रोओ। तो तुम्हारा रोना भी तुम्हें ऊपर की तरफ ले जाएगा, उड़ान देगा, ऊंचाई देगा। तुम्हारे आंसू तब बहुमूल्य हो जाएंगे। उन्हें परमात्मा के चरणों पर चढ़ाओ। और मैं तुमसे कहता हूं, एक दिन ऐसी घटना घटेगी कि तुम्हारे भीतर उतर आएगा कुछ अज्ञात से। और तब तुम्हारे आस-पास बहुत कुछ घटना शुरू हो जाएगा। वह अपने से घटता है। तुम उसकी चिंता ही नहीं लेना। तुम अकड़ना भी मत कि देखो, मेरे

पास इतनी घटनाएं घट रही हैं; नहीं तो उसी वक्त रुक जाएगा। अहंकार आया कि परमात्मा गया। अहंकार गया कि परमात्मा आया।
यह भी अहंकार है कि मैं दूसरों के दुख मिटाऊंगा। मैं कौन हूं? अगर परमात्मा नहीं मिटा पा रहा है तो मैं कैसे मिटाऊंगा? कितने अवतार, कितने तीर्थंकर, कितने पैगंबर आए और गए; अगर नहीं मिटा पाए हैं आदमी का दुःख तो मैं कैसे मिटाऊंगा? छोड़ो यह पागलपन। छोड़ो ये व्यर्थ की बातें।
कोई किसी का दुःख नहीं मिटा सकता लेकिन प्रत्येक व्यक्ति अपना दुख जरूर मिटा सकता है। जो हो सकता है वही कर लो पहले, फिर जो नहीं हो सकता है वह भी होना शुरू हो जाता है। संभव को सम्हाल लो, असंभव भी संहलता है।

तीसरा प्रश्न : आप कहते हैं, प्रेम परमात्मा है लेकिन मैं तो प्रेम से ऐसा जला बैठा हूं कि प्रेम शब्द से ही चिढ़ हो गई है। मुझे मार्गदर्शन दें। प्रेम शब्द से न चिढ़ो। यह हो सकता है कि तुमने जो प्रेम समझा था वह प्रेम ही नहीं था। उससे ही तुम जले बैठे हो। और यह भी मैं जानता हूं कि दूध का जला छाछ भी पूंक-फूंक कर पीने लगता है।
तो तुम्हें प्रेम शब्द सुनकर पीड़ा उठ आती होगी, चोट लग जाती होगी। तुम्हारे घाव हरे हो जाते होंगे। फिर से तुम्हें अपनी पुरानी याददाश्तें उभर आती होंगी। लेकिन मैं उस प्रेम की बात नहीं कर रहा हूं।
मैं जिस प्रेम की बात कर रहा हूं उस प्रेम का तो तुम्हें अभी पता ही नहीं है। मैं जिस प्रेम की बात कर रहा हूं वह तो कभी असफल होता ही नहीं। और मैं जिस प्रेम की बात कर रहा हूं उसमें अगर कोई जल जाए तो निखर कर कुंदन बन जाता है, शुद्ध स्वर्ण हो जाता है। मैं जिस प्रेम की बात कर रहा हूं उसमें जल कर कोई जलता नहीं, और जीवंत हो जाता है। व्यर्थ जल जाता है, सार्थक निखर आता है।
लेकिन मैं तुम्हारी तकलीफ भी समझता हूं। बहुतों की तकलीफ यही है। इसलिए तो प्रेम जैसा प्यारा शब्द, बहुमूल्य शब्द अपना अर्थ खो दिया है-- जैसे हीरा कीचड़ में गिर गया हो।
लोग कहते हैं मोहब्बत में असर होता है
कौन से शहर में होता है कहां होता है
स्वभावतः तुमने तो जिसको प्रेम करके जाना था उसमें सिवा दुख के और कुछ भी नहीं पाया; पीड़ा के सिवा कुछ हाथ न लगा। तुमने तो सोचा था कि प्रेम करेंगे तो जीवन में बसंत आएगा। प्रेम ही पतझड़ लाया। प्रेम न करते तो ही भले थे। प्रेम ने सिर्फ नये-नये नरक बनाए।
और ऐसा ही नहीं है कि जो प्रेम में हारते हैं उनके लिए ही नरक और दुख होता है, जो जीतते हैं उनके लिए भी नरक और दुख होता है। जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने कहा है, दुनिया में दो ही दुःख हैं--तुम जो चाहो वह न मिलेः एक; और दूसरा, तुम जो चाहो वह मिल जाए। और दूसरा दुख मैं कहता हूं, पहले से बड़ा है। क्योंकि मजनूं को लैला न मिले तो भी विचार में तो सोचता ही रहता है कि काश मिल जाती! काश मिल जाती, तो कैसा सुख होता! तो उड़ता आकाश में; कि करता सवारी बादलों की; कि चांद-तारों से बातें होतीं; कि खिलता कमल के फूलों की भांति। नहीं मिल पाया इसलिए दुखी हूं। काश, लैला मिल जाती!
मजनूं को मैं कहूंगा, जरा उनसे पूछो जिनको लैला मिल गई है। वे छाती पीट रहे हैं। वे सोच रहे हैं कि मजनूं धन्यभाग था, बड़ा सौभाग्यशाली था। कम-से-कम बेचारा भ्रम में तो रहा। हमारा भ्रम भी टूट गया।
जिनके प्रेम सफल हो गए हैं उनके प्रेम भी असफल हो जाते हैं। इस संसार में कोई भी चीज सफल हो ही नहीं सकती। बाहर की सभी यात्राएं असफल होने को आबद्ध हैं। क्यों? क्योंकि जिसको तुम तलाश रहे हो बाहर, वह भीतर मौजूद है। इसलिए बाहर तुम्हें दिखाई पड़ता है और जब तुम पास पहुंचते हो, खो जाता है। मृग-मरीचिका है। दूर से दिखाई पड़ता है।
रेगिस्तान में प्यासा आदमी देख लेता है कि वह रहा जल का झरना। फिर दौड़ता है, दौड़ता है, दौड़ता है, और जैसे ही पहुंचता है, पाता है झरना नहीं है, सिर्फ भ्रांति हो गई थी। प्यास ने साथ दिया भ्रांति में। खूब गहरी प्यास

थी इसलिए भ्रांति हो गई। प्यास ने ही सपना पैदा कर लिया। प्यास इतनी सघन थी कि प्यास ने एक भ्रम पैदा कर लिया।
बाहर जिसे हम तलाशने चलते हैं वह भीतर है। और जब तक हम बाहर से बिल्कुल न हार जाएं, समग्ररूपेण न हार जाएं तब तक हम भीतर लौट भी नहीं सकते। तुम्हारी बात मैं समझा।
किस-दर्जा दिलशिकन थे मुहब्बत के हादिसे
हम जिंदगी में फिर कोई अरमां न कर सके।
एक बार जो मोहब्बत में जल गया, प्रेम में जल गया, घाव खा गया, फिर वह डर जाता है। फिर दुबारा प्रेम का अरमान भी नहीं कर सकता। फिर प्रेम की अभीप्सा भी नहीं कर सकता।
दिल की वीरानी का क्या मजकूर है
यह नगर सौ मरतबा लूटा गया
और इतनी दफे लूट चुका है यह दिल! इतनी बार तुमने प्रेम किया है और इतनी बार तुम लुटे हो कि अब डरने लगे हो, अब घबड़ाने लगे हो।
मैं तुमसे कहता हूं, लेकिन तुम गलत जगह लुटे। लुटने की भी कला होती है। लुटने के भी ढंग होते हैं, शैली होती है। लुटने का भी शास्त्र होता है। तुम गलत जगह लुटे। तुम गलत लुटेरों से लुटे।
तुम देखते हो, हिंदू बड़ी अद्भभुत कौम है। उसने परमात्मा को एक नाम दिया है, हरि। हरि का अर्थ होता है: लुटेरा--जो लूट ले, हर ले, छीन ले, चुरा ले। दुनिया में किसी जाति ने ऐसा प्यारा नाम परमात्मा को नहीं दिया है। हरण कर ले।
लुटना हो तो परमात्मा के हाथों लुटो। छोटी-छोटी बातों में लुट गए! चुल्लू-चुल्लू पानी में डूब कर मरने की कोशिश की, मरे भी नहीं, पानी भी खराब हुआ, कीचड़ भी मच गई, अब बैठे हो। अब तुमसे मैं कहता हूं, डूबो सागर में। तुम कहते हो, हमें डूबने की बात ही नहीं जंचती क्योंकि हम डूबे कई दफा। डूबना तो होता ही नहीं, और कीचड़ मच जाती है। वैसे ही अच्छे थे। चुल्लू-भर पानी में डूबोगे तो कीचड़ मचेगी ही। सागरों में डूबो। सागर भी हैं।
मेरी मायूस मुहब्बत की हकीकत मत पूछ
दर्द की लहर है अहसास के पैमाने में
तुम्हारा प्रेम तो सिर्फ एक दर्द की प्रतीति रही। रोना ही रोना हाथ लगा, हंसना न आया। आंसू ही आंसू हाथ लगे। आनंद, उत्सव की कोई घड़ी न आई। इश्क का कोई नतीजा नहीं जुज दर्दो-अलम
लाख तदबीर किया कीजे हासिल है वही
लेकिन संसार के दुःख का हासिल ही यही है कि दुःख ही हाथ आता है।
इश्क का कोई नतीजा नहीं जुज दर्दो-अलम
दुःख और दर्द के सिवा कुछ भी नतीजा नहीं है।
लाख तदबीर किया कीजे हासिल है वही
यहां से कोशिश करो, वहां से कोशिश करो, इसके प्रेम में पड़ो, उसके प्रेम में पड़ो, सब तरफ से हासिल यही होगा। अंततः तुम पाओगे कि हाथ में दुःख के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। राख के सिवा कुछ भी हाथ में नहीं रह गया है। धुआं ही धुआं!
लेकिन मैं तुमसे उस लपट की बात कर रहा हूं जहां धुआं होता ही नहीं। मैं तुमसे उस जगत की बात कर रहा हूं जहां आग जलाती नहीं, जिलाती है। मैं भीतर के प्रेम की बात कर रहा हूं। मेरी भी मजबूरी है। शब्द तो मुझे वे ही उपयोग करने पड़ते हैं, जो तुम उपयोग करते हो। अगर मैं ऐसे शब्द उपयोग करूं जो तुम उपयोग नहीं करते तो बात ही न हो सकेगी। और अगर ऐसे शब्द उपयोग करता हूं जो तुम भी उपयोग करते हो तो मुश्किल खड़ी होती है। क्योंकि तुमने अपने अर्थ दे रखे हैं।
जैसे ही तुमने सुना शब्द "प्रेम", कि तुमने जितनी फिल्में देखी हैं, उनका सब सार आ गया। सबका निचोड़, इत्र। मैं जिस प्रेम की बात कर रहा हूं वह कुछ और। मीरा ने किया, कबीर ने किया, नानक ने किया, जगजीवन ने किया। तुम्हारी फिल्मोंवाला प्रेम नहीं, नाटक नहीं। और जिनने यह प्रेम किया उन

सबने यही कहा कि वहां हार नहीं है, वहां जीत ही जीत है। वहां दुःख नहीं है, वहां आ नंद की पर्त पर पर्त खुलती चली जाती है। और अगर तुम इस प्रेम को न जान पाए तो जानना, जिंदगी व्यर्थ गई।
दूर से आए थे साकी सुनकर मैखाने को हम
पर तरसते ही चले अफसोस पैमाने को हम
मरते वक्त ऐसा न कहना पड़े तुम्हें कि कितनी दूर से आए थे।
दूर से आए थे साकी सुनकर मैखाने को हम--मधुशाला की खबर सुन कर कहां से तुम्हारा आना हुआ जरा सोचो तो! कितनी दूर की यात्रा से तुम आए हो।
पर तरसते ही चले अफसोस पैमाने को हम--यहां एक घूंट भी न मिला। चुल्लू
भर भी प्यास बुझाने को मदिरा न मिली। एक पैमाना भी न मिला।
मरते वक्त अधिक लोगों की आंखों में यही भाव होता है। तरसते हुए जाते हैं। हां, कभी-कभी ऐसा घटता है कि कोई भक्त, कोई प्रेमी परमात्मा का तरसता हुआ नहीं जाता, लबालब जाता है।
मैं किसी और प्रेम की बात कर रहा हूं। आंख खोलकर एक प्रेम होता है, वह रूप से है। आंख बंद करके एक प्रेम होता है, वह अरूप से है। कुछ पा लेने की इच्छा से एक प्रेम होता है वह लोभ है, लिप्सा है। अपने को समर्पित कर देने का एक प्रेम होता है, वही भक्ति है।
तुम्हारा प्रेम तो शोषण है। पुरुष स्त्री को शोषित करना चाहता है, स्त्री पुरुष को शोषित करना चाहती है। इसीलिए तो स्त्री-पुरुषों के बीच सतत झगड़ा बना रहता है। पति-पत्नी लड़ते ही रहते हैं। उनके बीच एक कलह का शाश्वत वातावरण रहता है। कारण है क्योंकि दोनों एक-दूसरे को कितना शोषण कर लें, इसकी आकांक्षा है। कितना कम देना पड़े कितना ज्यादा मिल जाए इसकी चेष्टा है। यह संबंध बाजार का है, व्यवसाय का है।
मैं उस प्रेम की बात कर रहा हूं, जहां तुम परमात्मा से कुछ मांगते नहीं; कुछ भी नहीं। सिर्फ कहते हो, मुझे अंगीकार कर लो। मुझे स्वीकार कर लो। मुझे चरणों में पड़ा रहने दो। यह मेरा हृदय किसी कीमत का नहीं है, किसी का काम भी नहीं है, मगर चढ़ाता हूं तुम्हारे चरणों में। और कुछ मेरे पास है भी नहीं। और चढ़ा रहा हूं, तो भी इसी भाव से चढ़ा रहा हूंः "त्वदीयं वस्तु गोविंद तुयमेव समर्पयेत्।" तेरी ही चीज है। तुझी को वापिस लौटा रहा हूं। मेरा इसमें कुछ है भी नहीं। देने का सवाल भी नहीं है, देने की अकड़ भी नहीं है। मगर तुझे और तेरे चरणों में रखते ही इस हृदय को शांति मिलती है, आनंद मिलता है, रस मिलता है। जो खंड टूट गया था अपने मूल से, फिर जुड़ जाता है। जो वृक्ष उखड़ गया था जमीन से, उसको फिर जड़ें मिल जाती हैं; फिर हरा हो जाता है, फिर रसधार बहती है, फिर फूल खिलते हैं, फिर पक्षी गीत गाते हैं, फिर चांद-तारों से मिलन होता है।
परमात्मा से प्रेम का अर्थ है कि मैं इस समग्र अस्तित्व के साथ अपने
को जोड़ता हूं। मैं इससे अलग-अलग नहीं जियूंगा, अपने को भिन्न नहीं मानूंगा। अपने को पृथक मानकर नहीं अपनी जीवन-व्यवस्था बनाऊंगा। मैं इसके साथ एक हूं। इसकी जो नियति है वही मेरी नियति है। मेरा कोई अलग निजी लक्ष्य नहीं है। मैं इस धारा के साथ बहूंगा, तैरूंगा भी नहीं। यह जहां ले जाए! यह डुबा दे तो डूब जाऊंगा। ऐसा समर्पण परमात्मा-प्रेम का सूत्र है। खाली मतजाना।
मैकशों ने पीके तोड़े जाम-ए-मै
हाय वो सागर जो रक्खे रह गए
ऐसे ही रक्खे मत रह जाना। पी लो जीवन का रस। तोड़ चलो ये प्यालियां। और उसकी नजर एक बार तुम पर पड़ जाए, और तुम्हारा जीवन रूपांतरित हो जाएगा। लाखों में इंतिखाब के काबिल बना दिया
जिस दिल को तुमने देख लिया दिल बना दिया
जरा रखो उसके चरणों में। जरा झुको। एक नजर उसकी पड़ जाए, एक किरण उसकी
पड़ जाए और तुम रूपांतरित हुए। लोहा सोना हुआ। मिट्टी में अमृत के फूल खिल जाते हैं।
आखिरी जाम में क्या बात थी ऐसी साकी
हो गया पी के जो खामोश वो खामोश रहा

यहां तुमने बहुत तरह के जाम पिए। आखिरी जाम--उसकी मैं बात कर रहा हूं।
आखिरी जाम में क्या बात थी ऐसी साकी
हो गया पी के जो खामोश वो खामोश रहा
उसको पी लोगे तो एक गहन सन्नाटा हो जाएगा। सब शांत, सब शून्य, सब मौन।
भीतर कोई विचार की तरंग भी न उठेगी। उसी निस्तरंग चित्त को समाधि कहा है। उसी निस्तरंग चित्त में बोध होता है, मैं कौन हूं।
मैं किसी और ही प्रेम की बात कर रहा हूं, तुम किसी और ही प्रेम की बात सुन रहे हो। मैं कुछ बोलता हूं, तुम कुछ सुनते हो। यह स्वाभाविक है शुरू- शुरू में। धीरे-धीरे बैठते-बैठते मेरे शब्द मेरे अर्थों में तुम्हें समझ में आने लगेंगे। सत्संग का यही प्रयोजन है। आज नहीं समझ में आया, कल समझ में आएगा; कल नहीं तो परसों। सुनते-सुनते... । कब तक तुम जिद करोगे अपने ही अर्थ की? धीरे-धीरे एक नये अर्थ का आविर्भाव होने लगेगा।
मेरे पास बैठकर तुम्हें एक नई भाषा सीखनी है। एक नई अर्थव्यवस्था सीखनी है। एक नई भाव-भंगिमा, जीवन की एक नई मुद्रा! तुम्हारे ही शब्दों का उपयोग करूंगा लेकिन उन पर अर्थों की नई कलम लगाऊंगा। इसलिए जब भी तुम्हें मेरे किसी शब्द से अड़चन हो तो ख्याल रखना, अड़चन का कारण तुम्हारा अर्थ होगा, मेरा शब्द नहीं। तुम यह भी कोशिश करना कि मेरा अर्थ क्या है। तुम अपने अर्थों को एक तरफ सरका कर रख दो। तुम तत्परता दिखाओ मेरे अर्थ को पकड़ने की। और तत्परता दिखाई तो घटना निश्चित घटने वाली है।

चौथा प्रश्नः मैं बहुत-से प्रश्न पूछना चाहता हूं किंतु फिर रुक जाता हूं क्योंकि वे सब व्यर्थ मालूम होते हैं। क्या सभी प्रश्न व्यर्थ हैं?

प्रश्न भी व्यर्थ हैं, उत्तर भी व्यर्थ हैं। होना है निष्प्रश्न। पहुंचना है ऐसी जगह, जहां न प्रश्न बचे न उत्तर बचे। क्योंकि प्रश्न भी विचार है और उत्तर भी विचार है। होना है शून्य। होना है निःशब्द। वहां न कोई प्रश्न उठेगा न कोई विचार उठेगा, न कोई उत्तर पर पकड़ रह जाएगी। ऐसी दशा में ही साक्षात्कार होता है।
इसलिए समाधि न तो हिंदू होती है, न तो मुसलमान होती है, न ईसाई होती है। विचार हिंदू होते हैं, ईसाई होते हैं, मुसलमान होते हैं; हजार ढंग के होते हैं। विचार सब ढंग-ढंग के होते हैं। समाधि का तो एक ही रंग होता है-- शून्यता। हिंदू भी चुप हो जाएगा तो वहीं पहुंच जाएगा जहां मुसलमान चुप होकर पहुंचेगा। स्त्री चुप होगी तो वहीं पहुंच जाएगी जहां पुरुष चुप होकर पहुंचेगा। लेकिन अगर बोलोगे तो भेद पड़ जाएंगे; तो भिन्नता आ जाएगी। अच्छा ही होता है कि तुम्हें दिखाई पड़ जाता है कि सारे प्रश्न व्यर्थ हैं। फिर भी उठते हैं। प्रश्न ऐसे ही मन में लगते हैं जैसे पत्ते वृक्षों में लगते हैं। मन का स्वभाव है प्रश्न करना। मन प्रश्नों के सहारे जिंदा रहता है। मन को उत्तर में उत्सुकता नहीं है, ख्याल रखना। ध्यान रखना, मन को उत्तर से कुछ लेना ही नहीं है। मन तो उत्तर से भी नये दस प्रश्न खड़े करने को उत्सुक है; इसलिए उत्तर भी मांगता है। एक प्रश्न पूछता है, उत्तर मिले, उत्तर में से दस नये प्रश्न खड़े कर देता है।
पूछेगा, परमात्मा ने बनाया जगत को? सच में परमात्मा ने जगत को बनाया?
और ऐसा लगता है कि बड़ी श्रद्धा से, बड़ी निष्ठा से पूछ रहा है। कहो कि हां, परमात्मा ने जगत को बनाया। और दस प्रश्न खड़े हो जाते हैं: क्यों बनाया? फिर ऐसा ही क्यों बनाया? फिर इतना दुःख क्यों बनाया? यह कैसा अन्याय हो रहा है? फिर कोई गरीब और अमीर क्यों बनाया? फिर कोई सुखी और दुखी; और कोई सोने की चम्मच मुंह में लेकर पैदा हो रहा है और कोई दाने-दाने को मोहताज है। फिर ऐसा क्यों किया? फिर पाप क्यों बनाया जगत में? फिर आदमी को ऐसा क्यों बनाया कि वह पाप कर सके? फिर उसे पुण्य ही करने की क्षमता क्यों न दी?
अब उठना शुरू हुआ। अब कोई अंत नहीं होगा। इसलिए बुद्ध जैसे ज्ञानी ने पहले ही प्रश्न पर रोक देना चाहा। पूछो बुद्ध से, ईश्वर है? बुद्ध कहते हैं, यह प्रश्न किसी काम का नहीं है। इससे न निर्वाण होगा, न समाधि लगेगी, न

शांति मिलेगी। इससे तुम्हारे चित्त की चिकित्सा नहीं हो सकती। इसे हटाओ।
यह किसी काम का नहीं है। बुद्ध जानते हैं कि इसका उत्तर दिया कि तुम दस प्रश्न ले आओगे। प्रश्नों की संतति बढ़ती ही चली जाती है।
प्रश्न मन में क्यों उठता है? यह असली प्रश्न से बचने की तरकीब है।
असली प्रश्न तो एक हैः मैं कौन हूं? मगर वह मन नहीं उठाता। वह कहता है, संसार क्या है? संसार में दुख क्यों है? संसार को किसने बनाया? क्यों बनाया? अंत क्या है? लक्ष्य क्या है? हजार प्रश्न उठाता है। एक प्रश्न नहीं उठाता कि मैं कौन हूं।
महर्षि रमण के पास जब भी कोई जाता था, कोई भी प्रश्न लेकर जाए, वे कहते, छोड़ो यह, असली प्रश्न पूछो। लोगों की समझ में ही न आता कि असली प्रश्न क्या है। लोग पूछते आप ही बता दें, असली प्रश्न क्या है। तो वह तो एक ही प्रश्न था असलीः मैं कौन हूं। तो वे कहते, मुझसे मत पूछो। असली प्रश्न दूसरे से नहीं पूछा जा सकता। आंखें बंद करो और दोहराओ भीतर कि मैं कौन हूं।
झूठे प्रश्न दूसरे से पूछे जा सकते हैं। झूठे ही हैं, किसी से भी पूछ लिए। असली प्रश्न तो अपने से ही पूछा जा सकता है। अपने ही अंतरतम में गुंजाना होता है। अपने ही भीतर, और भीतर, और भीतर, खोदते जाना होता है।
एक सवाल है कि क्या ख्याल है सच
और क्या झूठ है वास्तव
एक और सवाल है
कि क्या बवाल है बर्दाश्त करना
और क्या चोट पहुंचाना
खत्म करना है बवालों को
एक और सवाल है
कि पहले और दूसरे सवालों में से कौन-सा है पहला
क्या ये दोनों ही सवाल
न पहले हैं न दूसरे हैं?
ये सवाल ही नहीं हैं
हमारी कमजोरी है,
हमारी बेईमानी है,
हमारी चोरी है
किस बात की चोरी? हम असली सवाल को छिपा रहे हैं धुआं उठा कर। हजार सवालों का जाल खड़ा करके हम असली सवाल को भुला रहे हैं। हम अपने को उलझा रखना चाहते हैं ताकि असली सवाल न पूछना पड़े। असली सवाल पीड़ादायी है। भाले की तरह चुभेगा छाती में, जब पूछोगे, मैं कौन हूं।
क्योंकि तुमने तो मान ही लिया है कि तुम्हें पता है। हरेक मानकर बैठा
है कि मुझे पता है कि मैं कौन हूं। यह भी कोई पूछने की बात है? तुम तो जानते ही हो तुम्हारा नाम, पता, ठिकाना। और क्या चाहिए? तुम्हें पता है तुम गोरे हो कि काले हो; हिंदू हो कि मुसलमान हो; हिंदुस्तानी कि पाकिस्तानी। तुम्हें सब पता है तुम्हारे पिता का नाम, पिता के पिता का नाम, तुम्हारा घर, सब तुम्हें पता है। तुम्हारा धंधा, तुम्हारी शिक्षा-दीक्षा, सब तुम्हें पता है; और क्या चाहिए?
और इसमें से कुछ भी तुम नहीं हो। न तो तुम्हारी शिक्षा तुम हो, न तुम्हारी दीक्षा तुम हो, न तुम्हारी संस्कृति, न तुम्हारी सयता, न तुम्हारा समाज। तुम इस सबसे अतीत हो, इस सबके पार हो। तुम शुद्ध चैतन्य हो। तुम सच्चिदानंद हो। उसे किसी विशेषण में बांधा नहीं जा सकता। तुम तो दर्पण हो। इस दर्पण में जो प्रतिबिंब बनते हैं वे प्रतिबिंब तुम नहीं हो। और जितनी चीजों को तुमने समझ रखा है कि यह मैं हूं, ये सब प्रतिबिंब हैं। अभी दर्पण की तुम्हें पहचान नहीं ही आई। जब तुम दर्पण को जानोगे, पहचानोगे, चकित हो जाओगे; विमुग्ध हो जाओगे। ऐसे रस में डूबोगे कि फिर कभी उसके बाहर न आ सकोगे।
प्रश्न तो सब व्यर्थ हैं, सिर्फ एक प्रश्न को छोड़ कर। और उत्तर भी सभी व्यर्थ हैं सिर्फ एक उत्तर को छोड़ कर। लेकिन वह प्रश्न और वह उत्तर

तुम्हारे भीतर घटना है। बाहर से कोई उत्तर नहीं मिल सकता। मैं कह रहा हूं कि सच्चिदानंद हो तुम, लेकिन इससे क्या होगा? तुमने सुन भी लिया, हुआ क्या? परसों रात फ्रांस से आई एक महिला को मैं कुछ कह रहा था। दुखी थी, उदास थी। कह रही थी कि कभी-कभी सुख भी होता है लेकिन अधिकतर तो मैं उदास ही रहती हूं। कभी-कभी ठीक लगता है, बस कभी-कभी। ज्यादातर तो सब ऐसा व्यर्थ लगता है। मैं क्या करूं? तो उसे मैंने कहा कि मैं तुझे एक सूफी कहानी कहता हूं। मैंने कहानी शुरू की थी, दो ही पंक्तियां कही थीं कि उसने कहा कि यह कहानी मुझे मालूम है। मैंने कहा, अगर यह कहानी तुझे मालूम है, सच में तुझे मालूम है तो फिर उदास क्यों है? वह थोड़ी चौंकी क्योंकि कहानी मालूम होने से उदास होने का क्या संबंध हो सकता है?
तो फिर मैंने कहा, तू फिर से सुन। तुझे कहानी मालूम नहीं है। तूने सुनी होगी, पढ़ी होगी, लेकिन कहानी को जीना पड़ेगा। पढ़ने और सुनने से क्या होगा? कहानी तो छोटी-सी है, विख्यात है। तुममें से भी बहुतों को पता होगी। लेकिन फिर भी मैं कहता हूं, पता तभी होगी जब तुम जियोगे।
कहानी मैं उससे कह रहा था कि एक सम्राट ने अपने स्वर्णकार को बुलाया, सुनार को बुलाया और कहा, मेरे लिए एक सोने का छल्ला बना। और उसमें एक ऐसी पंक्ति लिख दे जो मुझे हर घड़ी में काम आए। दुख हो तो काम आए, सुख हो तो काम आए। सुनार ने छल्ला तो बनाया, सुंदर छल्ला बनाया हीरा-जड़ा, लेकिन बड़ी मुश्किल में पड़ा था कि ऐसा वचन कैसे लिखूं उसमें जो हर वक्त काम आए? कुछ भी लिखूंगा, वह किसी समय काम आ सकता है, किसी खास घड़ी में, किसी संदर्भ में। लेकिन हर घड़ी में, जीवन के हर संदर्भ में काम आए ऐसा वचन कहां से लिखूं, कैसे लिखूं?
वह पागल हुआ जा रहा था। फिर उसे याद आया, एक फकीर गांव में आया है, उससे पूछ लें। फकीर के पास गया, फकीर ने कहा, इसमें कुछ खास बात नहीं है। तू जा और इतना लिख देः "दिस टू विल पास। यह भी बीत जाएगा।" और सम्राट को कह देना कि जब भी कोई भी घड़ी हो और तुम परेशान हो, खुश हो, दुखी हो, इस छल्ले में लिखे वचन को पढ़ लेना; वह काम पड़ेगा।
और वह काम पड़ा। सम्राट कुछ ही दिनों बाद एक युद्ध में हार गया और उसे भागना पड़ा। दुश्मन पीछे है वह एक पहाड़ में जाकर छिप गया है, थर-थर कांप रहा है। घोड़ों की टाप सुनाई पड़ रही है। बड़ा दुःखी है, जीवन मिट्टी हो गया। क्या सपने देखे थे, क्या से क्या हो गया। सोचता था, राज्य बड़ा होगा, इसलिए युद्ध में उतरा था। राज्य अपना था, वह भी गया। जो हाथ का था, वह भी गया उसको पाने में जो हाथ में नहीं था। बड़ा उदास था, बड़ा चिंतित था। कैसी भूल कर ली! तभी उसे याद आई छल्ले की। वचन पढ़ा। वचन वचन था कि "यह भी बीत जाएगा।" मन एकदम हलका हो गया। जैसे बंद कमरे के किवाड़ किसीने खोल दिए। सूरज की रोशनी भीतर आ गई, ताजी हवा का झोंका भीतर आ गया। मंत्र की तरह! जैसे अमृत बरसा--"यह भी बीत जाएगा।"
वह शांत होकर बैठ गया। वह भूल ही गया थोड़ी देर में कि घोड़ों की टाप कब सुनाई पड़नी बंद हो गई, दुश्मन कब दूर निकल गए! बड़ी देर बाद उसे याद आई कि अब तक पहुंचे नहीं! और तीन दिन बाद उसकी फौजें फिर इकट्ठी हो गईं, उन्होंने फिर हमला किया, वह जीत गया। वापिस अपनी राजधानी में विजेता की तरह लौटा। बड़ा अकड़ा था। फूल फेंके जा रहे थे, दुदुंभी बजाई जा रही थी। भारी शोभा- यात्रा थी। तभी अकड़ के उस क्षण में उसे अपना हीरा चमकता हुआ दिखाई पड़ा अंगूठी का। उसने फिर वह वचन पढ़ा: "यह भी बीत जाएगा।" और चित्त फिर हलका हो गया। जैसे कोई द्वार खुल, रोशनी भर गई। वह जो अहंकार पकड़ रहा था कि देखो मैं! ऐसा विजेता था कभी पृथ्वी पर? इतिहास में लिखा जाएगा नाम स्वर्ण अक्षरों में, उड़ गया। जैसे सुबह सूरज उगे और घास पर पड़ी ओस की बूंद उड़ जाए, ऐसा वह अहंकार उड़ गया। हलका हो गया, फिर वही शांति आ गई।
मैं उस महिला को कह रहा था यह कहानी। मैंने आधी ही कही थी, उसने कहा कि मुझे यह कहानी मालूम है। मैंने कहा, नहीं मालूम। उसने कहा, मुझे मालूम है। मैंने कहा, नहीं मालूम है। अगर मालूम है तो जो तूने प्रश्न उठाया, वह उठाना नहीं था। दुख आता है, जानो कि बीत जाएगा। यहां सभी बीत जाता है। सुख आता है, बीत जाता है। न दुख में टूटो, न सुख में अकड़ो। न दुख में उदास हो जाओ, न सुख

में फूल जाओ, कुप्पा हो जाओ। सब आता है, सब जाता है। पानी की धार है, गंगा बहती रहती है।
यहां कुछ थिर नहीं। यहां साक्षी के अतिरिक्त और कुछ भी थिर नहीं है। यहां देखने वाला भर बचता है, और सब बीत जाता है। सुख भी बीत जाता है, दुख भी बीत जाता है। लेकिन जो दुख को जानता है, सुख को जानता है वह जानने वाला कभी नहीं बीतता। वह अनबीता, सदा थिर। उसी की तलाश करनी है। उसको ही जिस दिन पहचान लोगे, जानना कि उत्तर मिला इस प्रश्न का कि मैं कौन हूं। और यही एकमात्र सार्थक प्रश्न है और यही एकमात्र सार्थक खोज है।

आखिरी प्रश्नः आप जो अमृत पिला रहे हैं उसे पीने से बहुत डरता हूं। क्या कारण होगा? क्यों डरता हूं? और मैं क्या करूं?

अमृत तुम कहते हो, तुम्हें अभी दिखाई नहीं पड़ा होगा; नहीं तो पी जाते। अमृत दिखाई पड़ जाए, अनुभव में आ जाए तो पीने से कोई रुकता नहीं; न भयभीत होता है। अमृत पीने से कोई भयभीत होगा?
नहीं, मैं कहता हूं कि अमृत है। तुम सुनते हो और मेरी मान लेते हो। मगर तुम्हें अमृत मालूम होता नहीं। और जब तक तुम्हें मालूम न होगा तब तक तुम कैसे पीयोगे? और तुम्हें मालूम हो जाएगा तो एक क्षण न लगेगा, तत्क्षण पी जाओगे। फिर कौन देरी करेगा? फिर एक क्षण न रुकोगे। क्योंकि एक क्षण का भी क्या भरोसा है?
तो पहली तो बात स्मरण कर लो: मेरे कहने के कारण कोई सत्य सत्य नहीं होता, तुम्हारी अनुभूति ही उसे सत्य का प्रमाण देगी। तुम्हें उसका गवाह होना पड़ेगा। तुम्हें कैसे पता चलेगा कि जो मैं कह रहा हूं, अमृत है? अभी तो तुम पीने में भी डर रहे हो। पियो तो ही पता चलेगा न? अभी तुम्हें स्वाद का भी पता कहां है? अभी तुमने शब्द सुने हैं। अभी शब्दों का अर्थ तुम्हारे प्राणों पर नहीं फैला। अभी तुमने दीये की बातें सुनी हैं। बातें सुन-सुन कर तुम मोहित भी हो गए, लेकिन तुम कहते हो, रोशनी क्यों नहीं होती? दीया जलाओगे तब रोशनी होगी। दीये की बात करने से रोशनी नहीं होती।
मैं जानता हूं कि अमृत है, मगर मेरे जानने से क्या होगा? मेरे जानने से मैंने पिया। तुम्हारे जानने से तुम पीयोगे। कैसे तुम जान पाओगे? क्या उपाय करो जिससे तुम जान पाओगे?
अगर ठीक यात्रा शुरू करनी हो तो यहां से शुरू करो: पहले तो तुम जो पी रहे हो वह देखो कि क्या है! वह जहर है। सम्यक यात्रा शुरू होगी। पहले तो तुम जो पी रहे हो उसको गौर से देखो कि वह क्या है। तुम्हारे जीवन में दुःख, पीड़ा, विषाद, संताप के और क्या है? तुम्हारे जीवन में विषाक्त धुएं के अतिरिक्त और क्या है? तुम्हारी दम घुटी जा रही है। तुम सूली पर चढ़े हुए हो। तुम अपने जीवन के जहर को ठीक से देख लो--तुम्हारा क्रोध, तुम्हारा मोह, तुम्हारा लोभ, तुम्हारा अहंकार, तुम्हारा द्वेष, तुम्हारा काम, तुम्हारी स्पर्धा, सब जहर है। तुमने जो अब तक पिया है वह जहर है।
ऐसी तुम्हारी प्रतीति पहले होनी चाहिए। और इसको करने में कोई कठिनाई नहीं है। तुम्हारा अनुभव कह रहा है कि जहर है। अगर तुम्हारा अनुभव न कहता तो तुम मेरे पास आते क्यों? तुम तलाश क्यों करते? तुम खोजते क्यों?
एक मित्र आए। बूढ़े संन्यासी हैं। हिमालय से आए थे। कहने लगे, आपका नाम सुन कर आया। संन्यास लिए तो तीस, पैंतीस साल हो गए। मैंने उनसे पूछा, कुछ मिला? कहने लगे, हां मिला; मिला क्यों नहीं? लेकिन मैंने कहा, जिस ढंग से आप कहते हो कि "मिला, मिला क्यों नहीं", उसमें मुझे शक मालूम होता है। थोड़े झिझके, तिलमिलाए। कहा कि नहीं, नहीं, मिला। पूरा न भी मिला हो, अभी पूर्ण समाधि न भी मिली हो, निर्विकल्प समाधि न भी मिली हो लेकिन थोड़ी-थोड़ी सविकल्प समाधि का अनुभव तो होता है।
फिर मैंने कहा, यहां क्यों आए? क्योंकि अगर समाधि का थोड़ा भी अनुभव हो जाए तो सीढ़ी मिल गई। पहला सोपान मिल गया तो सीढ़ी मिल गई। अब उसके आगे दूसरा सोपान और तीसरा, और चढ़ते चले जाओ। मैं कुछ भी न कहूंगा आपसे क्योंकि आपको तो मिल ही गया है। मुझे उनसे बात करने दो जिनको अभी नहीं मिला है। वे कहने

लगे कि नहीं, नहीं, मैं बड़े दूर से आया हूं। तो फिर मैंने कहा, सच्ची बात कहो कि मिला नहीं है। सोच लो थोड़ी देर। मगर तुम सच बोलोगे तो ही बात शुरू मैं करूंगा। नहीं तो बात शुरू करना व्यर्थ है। तुम्हें अगर मिल ही गया हो तो बात ही खतम हो गई धन्यभागी हो। मैं खुश हूं कि तुम्हें मिल गया। अगर न मिला हो तो मैं कुछ सहारा दूं। तब वे कुछ झेंपे से बोले कि नहीं, मिला तो नहीं है। कुछ भी नहीं मिला। फिर मैंने कहा, क्यों कह रहे थे कि मिल गया? मैं समझता हूं अड़चन। तीस-पैंतीस साल किसी ने गंवाए हो किसी काम में तो अहंकार जुड़ जाता है। फिर यह कहने में कि तीस-पैंतीस साल मैं बुद्धू की तरह भटकता रहा हिमालय में, मूढ़ की तरह समय गंवाता रहा, अच्छा नहीं लगता। आदमी अपने को बचाता है। कहता है, कुछ-कुछ मिला।
लेकिन ध्यान रखना, समाधि खंड-खंड में मिलती ही नहीं। ऐसी थोड़े ही मिल
गई आधा सेर, फिर और आधा सेर, फिर मिलती रही, पसेरी, फिर मन, फिर मन भर! ऐसी नहीं मिलती है समाधि। समाधि के टुकड़े होते ही नहीं। समाधि अखंड मिलती है। या तो मिलती है या नहीं मिलती। तो जो कहे, थोड़ी-थोड़ी मिल रही है, समझ लेना कि मिल नहीं रही है, थोड़ी-थोड़ी कह कर वह यह कह रहा है कि अब मुझे बिल्कुल मूढ़ तो मत कहो। जो भी मैं कर रहा हूं उससे कुछ मुझे मिला है, मगर जितना चाहिए उतना नहीं मिला।
तुम जरा गौर से देखो कि तुम्हारे जीवन में जो तुमने पाया है वह जहर है
या अमृत है? अगर अमृत है तो मेरे आशीर्वाद! फिर तुम यहां परेशान न होओ। अगर जहर है तो फिर यात्रा शुरू हो सकती है। क्योंकि जिसने जहर को जहर की तरह देख लिया, आधा काम पूरा हुआ। अमृत की तरह आधी यात्रा हो गई। अंधेरे को अंधेरे की तरह देख लेना प्रकाश को प्रकाश की तरह देखने के लिए पहला कदम है। मैं अज्ञानी हूं यह दिखाई पड़ जाए तो ज्ञान की पहली किरण फूटी। मुझे पता नहीं है इतना पता चल जाए तो शुरुआत हो गई। तीर्थयात्रा शुरू हुई। पहला कदम उठा।
और पहला कदम ही कठिन है। फिर दूसरा कदम तो आसान है क्योंकि वह भी पहले
ही जैसा होता है। फिर तीसरा भी आसान है, वह भी पहले ही जैसा होता है। फिर तो सब कदम आसान हैं।
तुम कहते होः "आप जो पिला रहे हैं, अमृत है। लेकिन मैं पीने में डरता हूं।"
तुम्हारे लिए अभी अमृत नहीं है। तुम तो जो पी रहे हो उसको समझते हो, कीमती है। और डर इसलिए रहे हो कि अगर मेरी बातें पीं तो तुम जो पी रहे हो, कहीं वह चूक न जाए। तुम दौड़ रहे हो पद की लालसा में। अब तुम्हें डर लगता है, अगर मेरी बातें सुनीं, और यह संन्यास कहीं छा गया तुम्हारे मन पर तो फिर क्या करोगे?
एक मित्र बिहार से आए। और बिहारी तो जरा खास ही ढंग के लोग हैं दुनिया में। इस देश की सारी राजनीति वे ही चलाते हैं। सब उपद्रव वहीं से शुरू होते हैं। कोई भी उपद्रव शुरू करवाना हो--बिहार! कहीं और से शुरू हो ही नहीं सकता। कहने लगे, संन्यास तो लेना है मगर एक बात की आज्ञा चाहता हूं कि संन्यास के बाद भी मैं अपनी राजनीति बंद नहीं करूंगा। चुनाव तो लडूंगा। इसकी आज्ञा चाहता हूं। मैंने उनसे कहा, तुम संन्यास का अर्थ भी नहीं समझे। अगर तुम यह आज्ञा चाहते हो तो तुम्हें संन्यास की कोई प्रतीति नहीं है कि तुम क्या मांग रहे हो। संन्यास का अर्थ ही यह है कि अब मैं महत्वाकांक्षा की दौड़ से हटता हूं। अब पद में मुझे रस नहीं है। अब परमात्मा में मुझे रस है। अब धन की मेरी आकांक्षा नहीं है, ध्यान की मेरी आकांक्षा है। अब मैं दूसरों से आगे निकल जाऊं इसकी मुझे जरा भी चिंता नहीं। अब मैं अपने भीतर कैसे पहुंच जाऊं, यही मेरी चिंता है।
तुम कहते हो कि संन्यास भी ले लूं और आज्ञा भी दे दें कि मैं राजनीति में रहूं। तो मैंने कहा, तुम पहले राजनीति में रह आओ कुछ दिन और। और पियो। जब जहर का और अनुभव गहरा हो जाए तब लौट आना। अभी संन्यास की तैयारी नहीं है।
डर क्यों पैदा होता है? डर इसलिए पैदा होता है कि तुम्हारे न्यस्त स्वार्थ हैं, उनमें चोट पड़ेगी। तुम अगर धन कमाने के पीछे दीवाने हो और

मेरी बात तुमने ठीक से सुनी, समझी, उसमें डूबे, तुम्हारी पकड़ छूट जाएगी धन पर से। तुम्हारी प्रतिस्पर्धा, तुम्हारी हिंसा, सब छूट जाएगी। तुम थोड़े सरल हो जाओगे। अभी तुम दूसरों को लूटते थे, डर यही है कि कहीं दूसरे तुम्हें न लूट लें। इससे भय हो रहा है।
अमृत तो तुम पीना चाहते हो, मगर अपने को अछूता रखकर पीना चाहते हो। तुम चाहते हो, मैं जैसा हूं वैसा का वैसा रहूं और यह अमृत भी मिल जाए। यह असंभव है। फिर भी, यह प्रश्न तुमने तीसरी बार पूछा है। तो आते तो तुम हो। लगता है, बच भी अब सकते नहीं। शायद बचने की सीमा जो थी उसको तुम पार कर गए।
साकी मेरे खलूस की शिद्दत तो देखना
फिर आ गया हूं गर्दिशे-दौरां को टालकर
तुम आ जाते हो संसार का चक्कर छोड़-छाड़कर फिर-फिर। जरूर कुछ न कुछ होना शुरू हुआ है--अंधेरे में सही, अचेतन में सही, मगर कहीं कोई चोट पड़ने लगी है। कहीं कोई नाद उठने लगा है। कोई तार छिड़ा है। अब तुम बच नहीं पाते। इसीलिए प्रश्न भी उठा है। किसी न किसी दिन पी ही जाओगे, घबड़ाओ मत। एकाध दिन जल्दी से घबड़ाहट में ही पी जाओगे।
मैं-सी हसीन चीज को और वाकई हराम
मैं कसरते-शकूक से घबराके पी गया
ऐसे ही विचार करते-करते-करते एकाध दिन सोचोगे, कब तक... कब तक? और एक भी बूंद तुम्हारे कंठ के गले उतर गई तो फिर तो पूरा सागर ही पीना होगा। फिर कम से काम नहीं चलता।
मेरा तो निमंत्रण है, पी लो। भय को एक तरफ रखो। जिस चीज का भय लगता हो
वह कर ही लो। वही भय से मिटने का उपाय होता है। अगर अंधेरे से भय लगता है, अंधेरे में चले ही जाओ। बैठ जाओ दूर जंगल में जाकर झाड़ के नीचे। जो होना हो जाए। थोड़ी देर में तुम्हें मजा आने लगेगा अंधेरे में। बड़ा सन्नाटा, बड़ी शांति। थोड़ी देर में भय भी बैठ जाएगा। थोड़ी देर में आकाश के तारे दिखाई पड़ने लगेंगे। झींगुरों की आवाज सुनाई पड़ने लगेगी। थोड़ी देर में रात का सन्नाटा और तुम्हारा प्राण साथ-साथ डोलने लगेंगे।
"आरजू" जाम लो झिझक कैसी!
पी लो और दहशते-गुनाह गई
मगर पिए बिना जाती नहीं। दहशते-गुनाह--अपराध का भाव बना रहता है। वह
भी है। मेरे पास तुम आते हो तो मैं किसी पिटे-पिटाए धर्म का पक्षपाती नहीं हूं। मैं तुमसे जो कह रहा हूं वह एक क्रांतिकारी उद्घोष है। मेरे साथ जुड़ना और बहुत जगहों से टूट जाना हो जाएगा। मुझसे जुड़े तो जिस मंदिर में तुम कल तक गए थे, उस मंदिर में जाना मुश्किल होने लगेगा। जिस मस्जिद में कल तक तुमने इबादत की थी, उस मस्जिद के लोग ही तुम्हारे लिए द्वार बंद कर लेंगे।
पंजाब से मुझे कुछ पत्र आए हैं। कुछ सिक्ख संन्यासियों ने लिखा है कि
हम बड़ी मुश्किल में पड़ गए हैं क्योंकि गुरुद्वारे में हमें आने नहीं दिया जाता। वे कहते हैं, तुम चुनाव कर लो। अगर तुम्हें सिक्ख रहना है तो सिक्ख, और अगर तुम्हें ये गैरिक वस्त्र पहनने हैं और यह संन्यास स्वीकार करना है तो तुम जाओ जहां तुम्हें जाना है, मगर गुरुद्वारे मत आओ।
गुरुद्वारे में आने से जो रोक रहे हैं उन बेचारों को पता भी नहीं है
कि सिक्ख शब्द का मतलब क्या होता है। उसका मतलब होता है, शिष्य का बिगड़ा हुआ रूप है सिक्ख। अब ये बेचारे शिष्य हो गए हैं, वे उनको गुरुद्वारे में नहीं आने देते। इनको गुरु मिल गया है, इनको गुरुद्वारा छूटा जा रहा है। और गुरुद्वारे का मतलब ही केवल इतना होता है कि गुरु द्वार है; और कुछ मतलब नहीं होता।
बड़ी मुश्किल है। तुम्हें अड़चनें आएंगी। जो धर्म मैं तुम्हें दे रहा हूं, यह एक विद्रोही पुकार है, एक चुनौती है। तुम जिस धर्म के अब तक आदी रहे हो--सत्यनारायण की कथा और हनुमान जी का चालीसा इत्यादि, उससे इसका कुछ लेना-देना नहीं है। वे सब तो सांत्वनाएं हैं। उनसे तुम बदले नहीं जाते। वे तो तुम्हारे ही मन के बचाव के उपाय हैं। मैं तुम्हें जो दे रहा हूं वह

तुम्हारे मन को नष्ट ही करेगा। और मन नष्ट हो तो ही तुम्हारे भीतर आत्मा जगमगाए। यह मन का पर्दा हटे तो आत्मा प्रकट हो, अभिव्यक्ति हो।
पी ही लो! भय छोड़कर पी लो।
एक जाम आखिरी तो पीना है और साकी
अब दस्ते-शौक कांपें या पैर लड़खड़ाएं।
हाथ भी कंपते हों तो फिक्र छोड़ो। पैर भी लड़खड़ाते हों तो फिकर छोड़ो। एक दफा पीकर ही देख लो, फिर ता कर लेना कि और आगे पीना कि नहीं पीना। जिनने पी है उन्होंने फिर पीने के ही लिए तय किया है।
और पहली दफे तो हाथ कंपते हैं। डर लगता ही है। क्योंकि सारा अतीत एक,
और एक नया काम करने चले। अतीत एक तरफ खींचता है--अतीत वजनी है। और फिर कल के लिए मत छोड़ो। मैं कहता हूं, आज ही पी लो।
साकिया यां चल रहा है चलचलाओ
जब तलक बस चले, सागर चले
कब कौन चल पड़ेगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। आज हो कल पता नहीं हो न हो। कल
का क्या भरोसा!
साकिया यां चल रहा है चलचलाओ
जब तलक बस चले, सागर चले
इसलिए जब तक बन सके, पी लो। यह सागर मैं लिए तुम्हारे सामने खड़ा हूं,
पी लो। भय को उतारकर पी लो। एक बार तो भय हटाकर पीना ही पड़ेगा। बिना पिए भय मिटेगा नहीं।
तुम्हारी हालत वही है जैसे कोई आदमी कहे कि मुझे तैरना सीखना है लेकिन पानी में मैं तभी उतरूंगा जब तैरना सीख लूं। बिना तैरना सीखे मैं पानी में उतरता नहीं। मुझे डर लगता है। यह आदमी तैरना कैसे सीखेगा? यह कभी नहीं सीखेगा। अब कोई ऐसा थोड़े ही कि गद्दे तकिए लगाकर और पड़े हैं कमरे में और तैरना सीख रहे हैं। पानी में उतरना पड़ेगा। उथले में उतरो, मत जाओ गहरे में एकदम। इसीलिए कहता हूं, एकाध घूंट पियो।
बहार जाम-ब-कफ झूमती हुई आई
शिकस्त-ए-तौबा न करते तो और क्या करते
और इतने जोर से तुम्हें पुकार रहा हूं, चारों तरफ से घेरकर तुम्हें पुकार रहा हूं।
बहार जाम-ब-कफ झूमती हुई आई
शिकस्त-ए-तौबा न करते तो और क्या करते
ऐसी घड़ी में तो पुरानी कसमें छोड़ो, पुरानी आदतें छोड़ो।
भय सभी को पकड़ता है, तुम्हीं को नहीं। भय स्वाभाविक है। भय मन की आदत है। इसीलिए तो महावीर ने अभय को धर्म की पहली शर्त कहा है। अभय हो तो ही कोई नई दिशा में कदम उठा सकता है। और यह तो बड़ी नई दिशा है। धर्म सदा ही नई दिशा है। धर्म कभी पुराना पड़ता ही नहीं। और जो पुराना पड़ जाता है वह धर्म नहीं है, परंपरा है। धर्म तो रोज नये-नये अवतरण लेता है। रोज नये रूप में आकाश से उतरता है। नये गीत गाता है। धर्म पुराने गीत नहीं दोहराता। धर्म रोज नये गीत उठाता है और परंपरा पुराने गीत गाती है। और हम पुराने गीतों के आदी हो जाते हैं तो फिर नया गीत हमारे कंठ से नहीं उतरता।
मैं तुमसे इतना ही कह सकता हूं कि लगाव तुम्हारा बन गया है। भागने का उपाय नहीं है। लौट जाने की संभावना नहीं है। अब पी ही लो। और पीकर ही तुम जानोगे कि यह अमृत है। और इसे पीकर ही तुम जानोगे कि तुम जिन मंदिरों में गए थे और जिन मस्जिदों में गए थे वह सब ऊपर-ऊपर था। इसे पीकर तुम पहली दफे मंदिर में पहुंचोगे, मस्जिद में पहुंचोगे। इसे पीकर तुम जहां बैठ जाते हो वहीं तीर्थ बन जाता है।

आज इतना ही।

नाम सुमिर मन बावरे
पांचवां प्रवचन

बौरे, जामा पहिरि न जाना

बौरे, जामा पहिरि न जाना।
को तैं आसि कहां ते आइसि, समुझि न देखसि ज्ञाना।।
घर वह कौन जहां रह बासा, तहां से किहेउ पयाना।
इहां तो रहिहौ दुई-चार दिन, अंत कहां कहं जाना।।
पाप-पुन्न की यह बजार है, सौदा करु मन माना।
होइहि कूच ऊंच नहिं जानसि, भूलसि नाहिं हैवाना।।
जो जो आवा रहेउ न कोई, सबका भयो चलाना।
कोऊ फूटि टूटि गारत मा, कोउ पहुंचा अस्थाना।।
अब कि संवारि संभारि बिचारि ले, पछिताना।
जगजीवन दृढ़ डोरिलाइ रहु, गहि मन चरन अडाना।।

पैयां पकरि मैं लेहुं मनाय।।
कहौं कि तुम्हहीं कहं मैं जानौं, अब हौं तुम्हरी सरनहिं आय।
जोरी प्रीत न तोरी कबहूं, यह छबि सुरति बिसरि नहिं जाय।।
निरखत रहौं निहारत निसु-दिन, नैन दरस-रस पियौं अघाय।
जगजीवन के समरथ तुमहीं, तजि सतसंग अनत नहिं जाय।।

झमकि चढ़ि जाऊं अटरिया री।
ए सखी पूछों सांई केहिं अनुहरिया री।।
सो मैं चहौं रहौं तेहिं संगहि निरखि जाऊं बलिहरिया री।
निरखत रहौं पलक नहिं लाओं, सूतों सत्त-सेजरिया री।।
रहौं तेहि संग रंग-रसमाती, डारौं सकल बिसरिया री।
जगजीवन सखि पायन परिके, मांगि लेऊं तिन सनिया री।।

साधो नाम तें रहु लौ लाय, प्रगट न काहू कहहु सुनाय।
झूठै परगट कहत पुकारिं, तातें सुमिरन जात बिगारि।
भजन बेलि जात कुम्हलाय, कौन जुक्ति कै भक्ति दृढ़ाय।
सिखि पढ़ि जोरि कहै बहु ज्ञान, सो तौ नाहिं अहै परमान।।
प्रीति-रीति रसना रहै गाय, सो तौ नाहिं अहै परमान।।
प्रीति रीति रसना रहै गाय, सो तौ राम कों बहुत हिताय।
सो तौ मोर कहावत दास, सदा बसत हौं तिनके पास।।
मैं मरि मन तें रहे हैं हारि, दिप्त जोति तिनकै उजियारि।
जगजीवनदास भक्त भै सोइ, तिनका आवागमन न होइ।।

स्वामी आनंद मैत्रेय ने एक प्रश्न पूछा है: "जगजीवन तो चरवाहे थे, अपढ़, फिर ऐसे प्यारे शब्द कहां से खोज पाए? फिर ऐसी बहुमूल्य अभिव्यक्ति कैसे हो सकी?
पूछना अर्थपूर्ण है। और अनेक बार यह प्रश्न पूछा गया है अतीत में भी;
आज ही नहीं, सदियों-सदियों में। जीसस भी चरवाहे थे--गड़रिए। और जैसे शब्द जीसस ने बोले वैसे शब्द पृथ्वी पर किसी और ने बोले नहीं थे। जैसा उनका बोलने का ढंग था, वह बस उनका ही था। उसकी कोई तुलना नहीं है। उनकी तुलना बस उनसे ही दी जा सकती है। बहुत महाकाव्य लिखे गए हैं लेकिन जीसस के छोटे- छोटे वचनों में जैसा काव्य है वैसा काव्य शेक्सपियर और कालिदास और भवभूति में भी नहीं है।
कबीर जुलाहे थे, लेकिन ऐसी वाणी फूटी, ऐसी गंगा बही कि बड़े-बड़े मात हो गए। पंडित फीके पड़ गए। शास्त्रों के जाननेवाले अंधकारपूर्ण मालूम होने लगे तुलना में कबीर की, जुलाहे की तुलना में। और कबीर ने कहा है, "मसि कागद छुओ नहीं।" कभी स्याही छुई नहीं, कभी कागज छुआ नहीं। लेकिन कुछ और जान लिया : "ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।" वह जो ढाई अक्षर है प्रेम का, पढ़

लिया, उससे सब हो गया। सारे वेद आ गए उसमें। सारे उपनिषद्भ आ गए उसमें। कुरान, बाइबल, सब समाविष्ट हो गया।
यह प्रश्न जगजीवन के संबंध में ही सच नहीं है, यह प्रश्न अनंत संतों
के संबंध में सच है। यह कैसे होता होगा? यह चमत्कार कैसे घटता है? इसके पीछे एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है। समझ में आ जाए तो समस्या सुलझ जाएगी। जब कहने को कुछ होता है, जब प्राण कहने से भरे होते हैं, जब प्राण बहने को आतुर होते हैं, जब रस की गागर पूरी भर जाती है तो शब्द अपने आप खोज लिए जाते हैं। तुमने देखा, जब तुम क्रोध में होते हो तब तुम किस तेजी से बोलने लगते हो! अक्सर ऐसा हो जाता है कि जो लोग हकलाते हैं वे भी क्रोध में नहीं हकलाते। भूल ही जाते हैं हकलाना। क्रोध का एक ताप होता है। विस्मरण ही हो जाता है, हकलाने की फुरसत कहां? सुविधा कहां? और गालियां ऐसे बहने लगती हैं जैसे सदा-सदा उनको सोचकर सम्हाला हो। मैं क्रोध से उदाहरण दे रहा हूं क्योंकि क्रोध से तुम्हारी पहचान है। क्रोध में मूक भी वाचाल हो जाते हैं।
मैं तुम्हें प्रेम का उदाहरण नहीं दे रहा हूं क्योंकि उससे तुम्हारी पहचान नहीं है। क्रोध से जैसे अंधेरे शब्द निकलने लगते हैं--गंदे और दुर्गंधयुक्त, सरलता से गालियां प्रवाहित होने लगती हैं, ऐसे ही प्रेम की घड़ी में गीत भी प्रवाहित होते हैं। शब्द अपने आप जुड़ने लगते हैं। जब फूल खिलता है तो हवाएं मिल ही जाती हैं जिन पर चढ़कर अपनी सुगंध भेज दे दिग-दिगंत तक। जब गीत इतना घना हो जाता है कि सम्हालना मुश्किल हो जाता है तो द्वार मिल ही जाते हैं।
दुनिया में दो तरह के लोग हैं बोलनेवाले। एक: जिनके पास बोलने को कुछ नहीं है। वे कितने ही सुंदर शब्द जानते हों, उनके शब्द निष्प्राण होते हैं; उनके शब्दों में श्वास नहीं होती। उनके पास शब्द सुंदर होते हैं, जैसे कि लाश पड़ी हो किसी सुंदर स्त्री की। जैसे क्लिओपात्रा मर गई है और उसकी लाश पड़ी है। उनके शब्द ऐसे ही होते हैं। असली बात तो उड़ गई। पिंजड़ा पड़ा रह गया है। पक्षी तो जा चुका; या पक्षी कभी था ही नहीं।
पंडित सुंदर-सुंदर शब्द बोलता है। उसके शब्दों में श्रृंगार होता है, कुशलता होती है, भाषा होती है, सब होता है, प्राण नहीं होते। बस एक ढांचा होता है, आत्मा नहीं होती।
संत भी बोलते हैं, शायद शब्द ठीक-ठाक होते भी नहीं, व्याकरण का शायद पता भी नहीं होता। व्याकरण छूट जाती है, भाषा बिखर जाती है लेकिन जो मधु बहता है जो मदिरा बहती है वह किसी को भी डुबा दे; सदा को डुबा दे। शब्द तो बोतलों जैसे हैं। बोतल सुंदर भी हो और भीतर शराब न हो तो क्या करोगे? और बोतल कुरूप भी हुई और भीतर शराब हुई तो डुबा देगी। तो तुम्हारे भीतर भी गीत पैदा होगा और नाच पैदा होगा। आत्मापूर्ण हों शब्द तो तुम्हारे भीतर भी आत्मा को झंकृत करते हैं।
जगजीवन जैसे बेपढ़े-लिखे संतों की वाणी में जो बल है वह बल शब्दों का नहीं है, वह उनके शून्य का बल है। शब्दों की संपदा उनके पास बड़ी नहीं है, कामचलाऊ है; बोल-चाल की भाषा है। लेकिन बोल-चाल की भाषा में भी अमृत ढाला है। पंडितों के शब्द मूल्यवान होते हैं लेकिन शब्दों को उघाड़ोगे तो भीतर कुछ भी नहीं, चली हुई कारतूस जैसे। ऋषियों के शब्द मूल्यवान हों न हों, शब्दों को उघाड़ोगे तो भीतर परम संपदा को पाओगे; एक प्रगाढ़ता पाओगे; एक घनीभूत प्रार्थना पाओगे; एक रस-विमुग्ध चैतन्य पाओगे।
सीधे-सादे शब्द हैं, जगजीवन जो बोल रहे हैं। कुछ जटिल नहीं हैं। लोकभाषा है--जैसा सभी लोग बोल रहे होंगे। इनमें एक भी शब्द ऐसा नहीं है जो पारिभाषिक हो; कि जिसे देखने के लिए तुम्हें शब्दकोष उलटना पड़े। अगर तुम्हें कुछ कठिन मालूम पड़ते हों तो उसका कारण यह नहीं है कि वे शब्द कठिन हैं, उसका कुल कारण इतना है कि वे लोकव्यवहार के बाहर हो गए हैं। उस दिन की लोकभाषा के हैं। आज उनका उपयोग नहीं होता। अन्यथा बिल्कुल कामचलाऊ हैं। गाड़ीवान बोलता था, दुकानदार बोलता था, चरवाहा बोलता था, लकड़हारा बोलता था, जुलाहा बोलता था, कुम्हार बोलता था। उन्हीं के शब्द हैं लेकिन शब्द ज्योतिर्मय हैं।

पंडित के शब्द ऐसे होते हैं--कोरे पंडित के शब्द--जैसे दीया तेल-भरा, बातीलगा, मगर ज्योति नहीं। संतों के शब्द ऐसे होते हैं--दीया मिट्टी का, टेढ़ा-मेढ़ा, किसी ने गढ़ दिया होगा; तेल भी गरीब का; शायद शुद्ध भी न हो; बाती भी बस ऐसी-तैसी बनी लेकिन ज्योतिर्मय। और मूल्य तो ज्योति का है, दीये का तो नहीं। दीया सोने का हो, हीरे-जवाहरात जड़ा हो, क्या करोगे? दीया मिट्टी का हो, ज्योतिर्मय हो, काम आ जाएगा।
इसलिए यह चमत्कार जैसा मालूम पड़ता है मगर चमत्कार है नहीं, जीवन का एक सामान्य नियम है। प्रेम में तुम कभी अगर किसी के पड़े हो तो तुम्हारे से भी काव्य प्रवाहित होने लगता है। तुम खुद भी चौंकोगे। ऐसे रसभरे शब्द तुमने कभी बोले न थे। वही शब्द हैं जो तुम रोज बोलते थे, पर उन्हीं शब्दों में आज कुछ नया भरा है। आज उन्हीं शब्दों पर सवार होकर कुछ नया चला है।
पैर तो वही हैं जिनसे कि दफ्तर से लेकर घर तक आए-गए, लेकिन जब नाचते हैं वही पैर तो वही पैर नहीं हैं। दफ्तर से आना घर, घर से जाना दफ्तर एक बात है; और जब धुन मस्ती की छा जाती है, जब प्रेमी से मिलन होता है, वे ही पैर जब नाचने लगते हैं तो क्या तुम कहोगे ये वे ही पैर हैं, जो दफ्तर जाते थे? सब बदल गया। इन पैरों की रौनक और, रंग और। इन पैरों में बहता हुआ रक्त और। इन पैरों में बहती हुई ऊर्जा और। इन पैरों के पास आज एक आभा-मंडल है। आज ये मस्ती में नाचे हैं। कहां दफ्तर जाना! घसीटते थे। नाच कहां था? चलना तक नहीं था। जाते थे क्योंकि जाना पड़ता था। मजबूरी थी, विवशता थी। और आज जब मृदंग बजी है प्रेम की और पैरों में आनंद के घुंघरू बांधे हैं और नाच उठे हो... नहीं, ये पैर वही मालूम होते हैं मगर वही नहीं हैं। आज इन्हीं पैरों पर कोई और चढ़ आया है। आज आत्मा और है। वस्त्र वही होंगे, प्राण और हैं। भीतर का सब बदल गया है।
ये शब्द जगजीवन के साधारण ही हैं लेकिन इन शब्दों में असाधारण समाया है। उस असाधारण के कारण साधारण शब्द भी बहुमूल्य मालूम होते हैं। जैसे बुद्ध के हाथ में कोई साधारण-सा गुलाब का फूल। क्या तुम सोचते हो किसी और हाथ में यही फूल इसी मूल्य का होगा? नहीं होगा। संदर्भ बदल गया। बुद्ध के हाथ में बात और है। हाथ-हाथ की बात और है। बुद्ध के हाथ में यही साधारण-सा फूल असाधारण हो गया है। इसकी गरिमा और है। इसकी महिमा और है। जैसे सारे अस्तित्व का सौंदर्य इससे प्रकट हो उठा है।
बुद्ध जिस वृक्ष के नीचे बैठे हों वह सूखा भी हो तो कहानियां कहती हैं, हरा हो जाता है। वे कहानियां सार्थक हैं, ऐतिहासिक नहीं हैं। इस बात को ख्याल रखना। बौद्ध कथाएं कहती हैं कि बुद्ध जिस वृक्ष के नीचे बैठ जाते हैं वह अगर सूखा भी हो, तत्क्षण हरा हो जाता है। घनी उसके नीचे छाया हो जाती है। करनी ही पड़ेगी छाया बुद्ध आकर बैठे हों तो। फूल खिल आते हैं। इस्लाम में कथाएं हैं कि मुहम्मद जहां भी चलते हैं... रेगिस्तान, मरुस्थल की दुनिया! आकाश की बदलियां उनके ऊपर छाता बन जाती हैं। इतिहास नहीं है यह। इतिहास समझा तो चूक हो जाएगी। इतिहास से बहुत ज्यादा मूल्यवान हैं ये बातें। इतिहास तो सिर्फ तथ्यों का जोड़ होता है। अखबारों की कटिंग से बनता है इतिहास। यह इतिहास से बहुत ज्यादा है। तथ्य ही नहीं है, सत्य है इसमें।
इतिहास तो क्षणभंगुर होता है। अभी है, अभी अतीत हो जाता है। और जैसे
ही इतिहास अतीत हो जाता है, फिर उसे सत्य सिद्ध करने का कोई उपाय नहीं बचता। फिर तुम लाख सिर मारो, ज्यादा से ज्यादा इतना ही तय हो सकता है कि संभवतः ऐसा हुआ हो। बस, संभावना तय हो सकती है। फिर दृढ़तापूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता कि ऐसा हुआ हो।
राम हुए थे? दृढ़तापूर्वक इतिहास के पास कोई प्रमाण नहीं है। कृष्ण हुए थे? दृढ़तापूर्वक इतिहास के पास कोई निश्चयता नहीं है। बुद्ध चले थे? महावीर घटे थे? संभावना मात्र है। ऐसा हुआ भी हो, न भी हुआ हो। जीसस के संबंध में भी वही बात है।
ये तो दूर की बातें हो गईं, इंग्लैंड का एक बहुत बड़ा इतिहासज्ञ एडमंड बर्क विश्व-इतिहास लिख रहा था। उसने उस पर कोई तीस साल मेहनत की थी। सारा जीवन उस पर लगाया था। और एक दिन ऐसा हुआ कि उसने पूरी की पूरी जीवनभर की

मेहनत आग में डाल दी एक छोटी-सी घटना के कारण। उसके घर के पीछे, घर के ठीक पीछे हत्या हो गई। वह तो अपना इतिहास लिखने में लगा था। शोरगुल सुना, भीड़-भाड़ इकट्ठी हुई तो वह भी बाहर निकलकर पहुंचा। भीड़ लग गई थी, लाश पड़ी थी। जिस आदमी ने हत्या की थी, रंगे हाथों पकड़ा गया था। उसको भी लोग पकड़े हुए थे। उसके हाथ में छुरा था, उसके कपड़ों पर खून की धार थी।
अभी-अभी घटना घटी थी, ताजी थी। खून अभी गरम था। और कोई दो सौ आदमियों
की भीड़ लग गई थी। सारा मोहल्ला इकट्ठा हो गया था। और बर्क ने अलग-अलग लोगों से पूछा कि हुआ क्या? एक ने कुछ कहा, दूसरे ने कुछ कहा, तीसरे ने कुछ कहा। अभी खून भी गरम था। अभी लाश भी गरम थी। अभी हत्यारा रंगे हाथ पकड़ा सामने खड़ा था, लेकिन लोगों के वक्तव्य अलग-अलग थे, विपरीत थे, विरोधी थे; एक-दूसरे का खंडन करनेवाले थे। और वे सब चश्मदीद गवाह थे।
बर्क गया अंदर, उसने अपनी तीस साल की मेहनत आग में डाल दी। उसने कहा, अगर मेरे घर के पीछे एक घटना घटती है, आंखों देखे लोग मौजूद हैं, अभी-अभी घटी है, खून भी सूखा नहीं है, ठंडा भी नहीं हुआ है, लाश अभी गरम है, आदमी पकड़ा गया है और उनसे भी मैं यह निष्कर्ष नहीं निकाल पाता कि वस्तुतः हुआ क्या है! और मैं दुनिया का इतिहास लिखने बैठा हूं कि पांच हजार साल पहले वेद किसने लिखा था! उसे बात ही फिजूल मालूम पड़ी। उसने कहा, मेरे तीस साल व्यर्थ गए।
इतिहास तो क्षुद्र घटनाओं से बनता है। उन घटनाओं के लिए प्रामाणिकता नहीं है। और जैसे-जैसे अतीत होता जाता है वैसे-वैसे मुश्किल होता जाता है तय करना कि ऐसा हुआ था कि नहीं हुआ था?
ये घटनाएं ऐतिहासिक नहीं हैं, ये घटनाएं पौराणिक हैं। पुराण बड़ी और बात है इतिहास क्षणभंगुर तथ्यों पर निर्भर होता है, पुराण शाश्वत सार है। बुद्ध के बैठने से वृक्ष हरा हुआ या नहीं, यह सवाल नहीं है, वृक्ष को हरा होना चाहिए। इससे अन्यथा हो तो यह जगत अर्थहीन है। बुद्ध भी हुए या नहीं, यह भी सवाल नहीं है। यह प्रश्न संगत ही नहीं है पुराण में। पुराण की संगति तो और है। पुराण की संगति तो यह है कि बुद्ध जैसे व्यक्ति के ओठों पर सूखे शब्द भी हरे हो जाएंगे। बुद्ध जैसे व्यक्ति के हाथों में मरा हुआ पक्षी भी पंख फड़फड़ाने लगेगा। और तुम्हारे हाथों में जिंदा पक्षी मर जाते हैं।
और तुम जानते हो। और रोज तुमने देखा है। रोज तुम अनुभव करते हो, तुम्हारे हाथों में जीवित से जीवित शब्द जाकर दो कौड़ी के हो जाते हैं। सुंदर से सुंदर शब्द! परमात्मा जैसा प्यारा शब्द भी तुम्हारे ओठों पर क्या अर्थ रखता है? कोई भी तो अर्थ नहीं। कोरा, खाली, व्यर्थ! तुम्हारे ही परमात्मा के लिए तो नीत्शे ने कहा है कि मर गया। मुझे नीत्शे कहीं मिल जाए तो उनसे मैं कहूं कि मर गया कहना ठीक नहीं, जिंदा ही कभी न था। मरते तो वे हैं जो जिंदा रहे हों। जिन लोगों के परमात्मा की तुम बात कर रहे हो वह मर भी नहीं सकता; वह सदा से मरा हुआ है, प्लास्टिक का है। और जिनका परमात्मा जिंदा है उनके परमात्मा के मरने का कोई उपाय नहीं है क्योंकि वह सारे जीवन का प्रतीक है।
बुद्ध अगर बैठें, वृक्ष को हरा होना ही चाहिए। और मुहम्मद अगर चलें तो बदली को छाया करनी ही चाहिए। और महावीर अगर चलें तो कांटा सीधा पड़ा हो तो उसे उल्टा हो ही जाना चाहिए। यह पुराण है, इतिहास नहीं है। ये संकेत हैं, कि अस्तित्व उसका सम्मान करता है जिसने अस्तित्व का सम्मान किया है; कि अस्तित्व प्रत्युत्तर देता है; कि प्रेम के उत्तर में प्रेम बरसता है; कि गीत के उत्तर में गीत प्रतिध्वनित होता है; कि एक फूल खिले तुम्हारे जीवन में तो हजारों फूल उसके साथ-साथ, समवेत खिल जाते हैं।
ये शब्द तो साधारण हैं। चरवाहे के शब्द हैं, पर असाधारण हो गए क्योंकि चरवाहा बुद्ध हो गया। फिर बुद्ध राजा का बेटा हो जाए तो, और चरवाहे का बेटा हो जाए तो। बुद्धत्व की महिमा है। बुद्धत्व का मूल्य है। फिर एकेक शब्द में रस बहने लगता है।
बौरे, जामा पहिरि न जाना
जगजीवन कहते हैं, रे पागल, एक बात ख्याल कर ले, मैं शरीर हूं ऐसा ही मानते-मानते मत मर जाना। शरीर तो जामा है, वस्त्रमात्र है, परिधान है।

शरीर ही मैं हूं ऐसा ही सोचते-सोचते मर गया तो फिर शरीर में आ जाना पड़ेगा।
क्योंकि हम जो सोचते हैं वही हमारा भविष्य बन जाता है।
विचार के बीज भविष्य के वृक्ष हैं। मरते क्षण अगर तुम यही सोचते मरे
कि मैं शरीर हूं तो मर भी न पाओगे और नये गर्भ में प्रवेश कर जाओगे।
क्योंकि तुम्हारा विचार ही तुम्हें दिशा देता है।
बौरे, जामा पहिरि न जाना
जाते समय तक इतनी तैयारी कर लेना कि तू यह जानता हुआ जा सके कि मैं देह नहीं हूं, देह तो वस्त्रमात्र है। कि मैं घर का मालिक हूं। जब देह टूटने लगे तो ऐसा मत समझना कि तू टूट रहा है। जब देह मरने लगे तो ऐसा मत सोचना कि मैं मर रहा हूं। तेरी कोई मृत्यु नहीं, तू अमृत है। अमृतस्य पुत्रः। मृत्यु तो बस आवरण की है। यही देह जन्मती है, यही देह मरती है। न तो तू कभी जन्मता है, न कभी तू मरता है।
जो ऐसा जानकर विदा होता है, फिर दुबारा नहीं आता। फिर इस दुबारा पीड़ा
और नरक में उसे नहीं उतरना पड़ता। वह मुक्त हो जाता है उसकी सारी सीमाएं गिर जाती हैं। देह सीमा है। वह असीम हो जाता है। उसकी बूंद सागर हो जाती है। वह इस अनंत आकाश का अंग हो जाता है।
बौरे, जामा पहिरि न जाना
को तैं आसि कहां ते आइसि
तू आया कहां से है? तू कौन?
समुझि न देखसि ज्ञाना
न तो तूने देखा, न समझा, न जागा और फिर भी तू सोचता है कि तुझे ज्ञान है? तेरा ज्ञान दो कौड़ी का है। कर लिया होगा कंठस्थ वेद; इससे कुछ सार नहीं। मृत्यु के क्षण में कंठस्थ किए हुए वचन चाहे वे वेद के हों और चाहे कुरान के, काम नहीं आएंगे। कंठ ही साथ नहीं जाएगा तो कंठस्थ कैसे साथ जाएगा? सिर यहीं पड़ा रह जाएगा तो सिर में जो भरा है वह भी यही पड़ा रह जाएगा। सिर के भरे में बहुत भरोसा मत करना। सिर में तो जो भी भरा है, भूसा है।
तुम्हारे जीवन में कुछ ऐसा अनुभव होना चाहिए जो बुद्धि से अतीत अनुभव है। जो बाहर से नहीं आया है। बुद्धि में तो जो भी आया है बाहर से आया है। किताब पढ़ी, किसी को सुना, किसी से बात की, स्कूल-विश्वविद्यालय सीखा, वही सब तुम्हारी बुद्धि में भरा है। बुद्धि तो एक कंप्यूटर है जिसमें बाहर से सूचनाएं डाली जाती हैं। बुद्धि तो एक टेप-रिकॉर्ड है, एक ग्रामोफोन रिकॉर्ड है, जिसमें बाहर से सूचनाएं भर दी जाती हैं फिर बुद्धि उसे दोहराती रहती है।
और बड़ा मजा है। हम इसी को बड़ा मूल्य देते हैं। जो जितना अच्छा ग्रामोफोन रेकॉर्ड है उसको हम कहते हैं उतना ही बुद्धिमान। विश्वविद्यालय उसे स्वर्णपदक देते हैं। और उसने प्रमाण क्या दिया है बुद्धि का? एक ही प्रमाण दिया है कि जो भी साल-भर शिक्षकों ने उसकी खोपड़ी में भरा था, उसने परीक्षा की कॉपी पर उसका वमन कर दिया, उल्टी कर दी। परीक्षा की कॉपी पर ठीक उसने वैसा ही का वैसा, बिना पचा--। पच जाता तो वमन कैसे करता? सम्हाले रहा, सम्हाले रहा, सम्हाले रहा, फिर सारी परीक्षा की कॉपी गंदी कर दी। स्वर्णपदक मिल गया उसको। उसका बड़ा सम्मान है।
उसने कौन सी कुशलता दिखाई? यह कोई बुद्धि की कुशलता है? हां, इतना कहा
जा सकता है, उसके पास अच्छी स्मृति है। मगर स्मृति और बुद्धि बड़ी भिन्न बातें हैं। मनोवैज्ञानिक जिसको बुद्धि का माप कहते हैं, इंटेलिजंस कोशिएंट कहते हैं, वह वस्तुतः बुद्धि का माप नहीं है, केवल स्मृति का माप है। और याददाश्त का अच्छा होना और बुद्धि का अच्छा होना पर्यायवाची नहीं हैं। अक्सर ऐसा होता है कि जिनकी याददाश्त बहुत अच्छी होती है उनके पास बुद्धि जैसी चीज नहीं होती। और जिनके पास बुद्धि जैसी चीज होती है उनकी याददाश्त बहुत अच्छी नहीं होती।
तुमने बहुत कहानियां सुनी होंगी कि बड़े-बड़े बुद्धिमान और याददाश्त उनकी बड़ी कमजोर। इमेन्युअल कांट की याददाश्त इतनी कमजोर कि एक सांझ अपने घर आया, द्वार पर दस्तक दिया। सांझ है, सूरज ढल गया है, घूमकर लौटा है अपने

ही घर। नौकर ने छज्जे से झांका, समझा कि कोई आया होगा मालिक को मिलने। तो उसने कहा, मालिक घूमने गए हैं, थोड़ी देर बाद आना तो वह वापिस लौट आया। कोई मील-भर चलने के बाद उसे याद आया कि हद हो गई! मालिक तो मैं ही हूं।
और भी मैंने एक कहानी सुनी है जो इससे भी ज्यादा अदभुत है। एक रात लौटा घूमने के बाद, बूढ़ा हो गया था कांट। जो छड़ी लेकर घूमने गया था उसको तो बिस्तर पर सुला दिया और खुद, जहां छड़ी को खड़ा करता था कोने में, वहां जाकर खड़ा रहा। जब नौकर ने देखा कि प्रकाश बुझा नहीं मालिक का, जो कि नियम से दस बजे बुझ जाता है, साढ़े दस बज गए, ग्यारह बज गए, तो नौकर ने आकर झांका, देखकर हैरान हुआ। छड़ी सो रही है कंबल ओढ़े और कांट खड़ा है कोने में आंख बंद किए। चूक हो गई। भूल हो गई कौन-कौन है! और इमेन्युअल कांट उन थोड़े-से बुद्धिमान लोगों में से एक है, जिनके पास प्रतिभा थी।
स्मृति से कुछ सिद्ध नहीं होता। लॉर्ड कर्जन ने अपने संस्मरणों में राजस्थान में एक आदमी के संबंध में उल्लेख किया है जिसके पास अद्भभुत स्मृति थी मगर वह महामूढ़ था। उसकी स्मृति ऐसी थी कि शायद पहले भी किसी के पास नहीं हुई। उसके बाद भी बहुत लोगों के पास स्मृतियां हुईं लेकिन वैसी नहीं हुई। उसकी स्मृति अद्भभुत थी, जैसे पत्थर पर कोई खींचे। एक बार जो सुन ले वह भूलता ही नहीं था।
अब तुम सोच ही सकते हो कि वह आदमी बुद्धिमान कैसे हो पाएगा? जो बात एक बार तुम सुन लो, भूल ही न सको तो इतना कचरा इकट्ठा हो जाएगा। विस्मरण वरदान है। जरा सोचो तो, सुबह से लेकर सांझ तक कितना बकवास सुनते हो, कितना उपद्रव सुनते हो, ट्रैफिक की आवाजें, और कोई हॉर्न बजा रहा है और इंजन की भकभक हो रही है और सब सुन रहे हो तुम। और यह सब याद ही रहे तो तुम सोचोगे क्या खाक! विचार क्या करोगे? तुम्हारे पास अवकाश कहां रह जाएगा?
वह आदमी इतना अदभुत था स्मृति की दृष्टि से, पर महामूढ़ था। उसे कर्जन
के दरबार में बुलाया था वाइसराय ने देखने के लिए। उसकी स्मृति की खबरें पहुंची थीं। और फिर एक प्रयोग किया गया। कर्जन के दरबार में जितनी भाषाओं को जानने वाले अलग-अलग लोग थे, तीस लोग खोजे गए और उन तीस लोगों को बिठाया गया। और उन तीसों ने अपने-अपने मन में अपनी-अपनी भाषा का एकेक वचन ख्याल में रखा। और यह आदमी, यह राजस्थानी आदमी पहले नंबर एक के पास जाएगा, वह अपनी भाषा के, जो वचन को उसने अपने भीतर सोच रखा है, उसके पहले शब्द को कहेगा। तब एक जोर का घंटा बजाया जाएगा। फिर यह आदमी दूसरे के पास जाएगा, वह अपनी भाषा का पहला शब्द कहेगा। ऐसा यह तीस आदमियों के पास चक्कर लगाएगा और हर बार घंटा बजेगा। फिर यह नंबर एक के पास आएगा, अब वह अपने वचन का दूसरा शब्द इससे कहेगा। ऐसा यह घूमता रहेगा।
और उसने सबके वाक्य अलग-अलग बता दिए कि किसने उससे क्या कहा है! और उनमें से एक भी भाषा उसकी भाषा नहीं। एक भी भाषा वह जानता नहीं। मारवाड़ी के सिवा वह दूसरी भाषा कोई जानता नहीं था। बस, जो उसके सर में आ जाता, बैठ ही जाता; फिर उसे भूलता ही नहीं था। मगर था बिल्कुल बुद्धू आदमी। जिंदगी में उसके कोई प्रतिभा नहीं थी। उसकी आंखों में कोई चमक भी न थी। उसके चेहरे पर कोई ओज भी न था।
अगर स्मृति ही बुद्धि हो तो यह आदमी बुद्ध हो जाता। और क्या चाहिए? मगर स्मृति बुद्धि नहीं है। और मैं जो तुमसे कह रहा हूं, अभी कुछ चार-छह दिन पहले, जिन व्यक्तियों ने पश्चिम में बुद्धि-अंकः इंटेलिजंस कोशिएंट की खोज की थी उनमें से एक अभी जिंदा है, उसने चार या पांच दिन पहले ही यह घोषणा की है कि वह हमारी धारणा गलत थी। वह जो हमने अब तक खोजा था बुद्धि के संबंध में, वह बुद्धि के संबंध में नहीं है, केवल स्मृति के संबंध में है। कहां से आए हो? कौन हो? न इसे देखा, न इसे पहचाना और सोचते हो कि ज्ञानी
हो क्योंकि वेद याद है, कुरान याद है, गीता रोज पढ़ते हो। यह ज्ञान दो कौड़ी का है। ग्रामोफोन रेकॉर्ड बनने से तुम मुक्त न हो जाओगे। तुम्हें उस ज्ञान की तलाश करनी होगी जिसका झरना तुम्हारे भीतर से ही बहे, बाहर से नहीं। तुम्हें स्वस्फूर्त ज्ञान को खोजना होगा। और जब तक तुम स्वस्फूर्त चैतन्य को न खोज लोगे, तब तक तुम्हें शरीर की तरह जीना पड़ेगा और शरीर की तरह मरना पड़ेगा।

चुन लिए औरों ने गुलहा-ए-मुराद
रह गए दामन ही फैलाने में हम
ऐसा न हो कि मरते वक्त तुम्हें लगे कि दूसरे तो फूल चुन लिए और हम दामन हीफैलाते रहे। अधिक लोग ऐसे ही मरते हैं दामन फैलाते-फैलाते ही। फूल तो मुश्किल से थोड़े-से लोग चुन पाते हैं। जब कि सच्चाई यह है कि सभी का हक था, सभी चुन लेते फूल।
तुम बुद्ध होने को पैदा हुए हो। उससे कम पर राजी मत होना। तुम्हारे दामन में भी फूल भर सकते हैं, मगर जरा होश से चलना होगा, जरा सम्हलकर चलना होगा। जरा जिंदगी से व्यर्थ की दौड़-धूप को कम करना होगा। जिंदगी की ऊर्जा को निरर्थक आपाधापी से थोड़ा मुक्त करना होगा। थोड़ी घड़ियां अंतर्खोज के लिए देनी होंगी।
बौरे, जामा पहिरि न जाना
क्या ही शरमिंदा चले हैं इस दिल-ए-मजबूर से हम
थे उनकी ि.जयारत को बहुत दूर से हम
बड़े दूर से तुम आए हो। और जो खरीदने आए हो, बिना खरीदे लौट जाओगे? बड़े दूर से तुम आए हो। जिसकी तलाश में आए हो उसको बिना तलाशे लौट जाओगे? और सम्हलो! यहां कोई दूसरा तुम्हें नहीं सम्हालेगा।
मैकदा है यह समझ बूझ के पीना ऐ रिंद
कोई गिरते हुए पकड़ेगा न बा.जू तेरा
यहां तो सब पिए बैठे हैं--कोई मद, कोई पद, कोई धन। यहां तो लोगों की आंखों में नशा चढ़ा हुआ है। और वह नशा नहीं, जिसकी मैं बात करता हूं या जगजीवन बात करते हैं। धन का और पद का नशा चढ़ा हुआ है।
तुमने देखा, जब कोई आदमी पद पर पहुंच जाता है तो उसकी अकड़, उसका अहंकार। तुमने देखा, जब किसी आदमी के पास धन इकट्ठा हो जाता है तो उसके पैर जमीन पर नहीं पड़ते। ये सब नशे हैं। और शराब से कहीं ज्यादा बदतर नशे हैं। क्योंकि शराब तो तुम्हारी देह को ही नुकसान पहुंचाती है, ये तुम्हारी आत्मा को भी सड़ा देते हैं।
इसलिए तुम्हारा शराबी तुम्हारे राजनीतिक से लाख गुना बेहतर होता है। क्योंकि शराबी हो सकता है एकाध साल जल्दी मर जाएगा, और क्या होगा? शरीर थोड़ा कमजोर होगा, और क्या होगा? लेकिन राजनीतिक खोखला हो जाता है, अपनी आत्मा को बेच देता है। बेचनी ही पड़ती है उसे; नहीं तो पद की सीढ़ियां नहीं चढ़ सकता। उसे सारी चालबाजियां, बेईमानियां, सारे पाखंड करने ही पड़ते हैं। झूठे आश्वासन देने ही पड़ते हैं। उसे धोखे देने ही पड़ते हैं। जो जितना धोखा देने में कुशल है उतना ही सफल हो जाएगा। और जिसको नशा लग जाता है पद का, जिंदगी भर नहीं उतरता; लगा ही रहता है। वह जो भी करता है, बस उसी नशे के लिए करता है। एक धुन सवार हो जाती है।
मैकदा है यह समझ-बूझ के पीना ऐ रिंद
कोई गिरते हुए पकड़ेगा न बाजू तेरा
तुम अपने को सम्हालों तो सम्हाल सकते हो, कोई और तुम्हें सम्हालनेवाला नहीं है। इसलिए कहते हैं, ऐ पागल, ऐ बौरे, जामा पहिरि न जाना। घर वह कौन जहां रह बासा, तहां ते किहेउ पयाना
कहां से तू आ रहा है? किन-किन घरों में रहा है? यह घर, जिसमें तुम अभी हो--यह देह तुम्हारा पहला घर नहीं है। तुम न मालूम कितनी देहों में रहे हो, न मालूम कितनी योनियों में भटके हो। यात्रा लंबी है तुम्हारी। तुम्हारी आत्मा पर बड़ी धूल है, लंबी यात्रा की धूल है। और स्नान को तो तुम भूल ही गए हो। शरीर को तो धो भी लेते हो, आत्मा को तो कभी निखारते नहीं, धोते नहीं। आत्मा को निखारने की कला का नाम ही ध्यान है। आत्मा को सुवासित करने
की कला का नाम ही प्रेम है। आत्मा के दर्पण से धूल को बिल्कुल पोंछ देने का नाम ही भक्तिभाव है, प्रभु-स्मरण है।
इहां तो रहिहौ दुई-चार दिन--इस घर में भी दो-चार दिन रहोगे। ऐसे ही और बहुत घरों में भी रहे हो।
अंत कहां कहं जाना--और फिर जाना पड़ेगा। और-और घरों में भटकते ही रहोगे, भटकते ही रहोगे। कब अपने को पहचानोगे? कब झांककर देखोगे इस मालिक को? और

जिस दिन तुम देख लोगे मालिक को उस दिन तुम चकित हो जाओगे। इस सारे जगत का स्वामी तुम्हारे भीतर बैठा है। कुछ कमी नहीं है तुम्हारे भीतर। सब भरा- पूरा है। सब परिपूर्ण है। घट भरा है और तुम भिखारी बने घूम रहे हो। तुमने अपनी बड़ी दुर्दशा कर रखी है सिर्फ इसी ख्याल से कि तुम भिखारी हो। और यह भिखारीपन जारी रहेगा जब तक तुम देह से अपना तादात्म्य नहीं तोड़ लेते हो। सुनी हिकायते-हस्ती तो दर्मियां से सुनी
न इब्तिदा की खबर है है न इंतिहा मालूम
न तो पता प्रारंभ का और न अंत का। जिंदगी की कहानी तो बस बीच से शुरू
हो गई है। जैसे कोई उपन्यास बीच से खोल दे और शुरू कर दे; या पहुंच जाओ फिल्म में और इंटरवल से देखने लगो। न तो कुछ प्रारंभ का पता है, न अंत का कुछ पता है। बस, बीच में आंख खुलती है और जिंदगी शुरू हो जाती है।
इसीलिए तो जिंदगी में अर्थ नहीं मालूम होता। बिना प्रारंभ जाने अर्थ मालूम कैसे हो? बिना अंत जाने अर्थ कैसे मालूम हो? प्रथम और अंत का पता चल जाए तो मध्य का भी रहस्य खुल जाए। और इन मध्य की बातों में तुम इतने उलझ गए हो! इनको तुमने जरूरत से ज्यादा तूल दे दिया है। छोटी-छोटी चीजों को बड़ा बना लिया है। राई के पर्वत खड़े कर लिए हैं।
तुझे ऐ बज्मे-हस्ती कौन काफिर याद रक्खेगा?
मुसाफिर राह की बातों को अक्सर भूल जाते हैं
और अंत में सब भूल जाएगा। कुछ काम न आएगा। मौत आएगी और तुम्हारा सब बसाया हुआ उजाड़ जाएगी। तब तुम अचानक देखोगे कि रेत में घर बनाते रहे। कागज की नावें चलाते रहे। कैसे पागल थे! और कितने लड़े-झगड़े कि मेरी नाव आगे; कि तुम्हारी नाव पीछे; कि यह रेत का जो मकान मैं बना रहा हूं, मेरा तुमसे ऊंचा बन कर रहेगा। और रेत के मकान हैं। और हवा का झोंका आएगा और गिर जाएंगे। ताश के पत्तों के महल खड़े कर रहे हो और दूसरे से ऊंचा कर लेना है, दूसरे को पीछे छोड़ देना है। इसकी तुम्हें फिक्र ही नहीं है, हवा का झोंका आता होगा; सब गिरा जाएगा--छोटे महल, बड़े महल।
पाप-पुन्न की यह बजार है, सौदा करु मनमाना
और यहां दोनों चीजें बिक रही हैं--पाप भी बिक रहा है, पुण्य भी बिक रहा है। इस बाजार में सब कुछ मिल रहा है। सोच-समझकर सौदा कर लो। दूसरे को दोष मत देना। तुम्हें पूरी स्वतंत्रता है, मनमाना सौदा कर लो। यहां से कुछ लोग परमात्मा को खरीद कर लौट गए हैं और यहां से कुछ लोग अपने को भी गंवाकर लौट गए हैं। यही दुनिया, यही बाजार। कुछ लोग हीरे खरीद लेते हैं, कुछ कंकड़-पत्थर बीनते रहते हैं। कुछ फूलों से भर लेते हैं झोली और कुछ तय ही नहीं कर पाते, बिबूचन में ही पड़े रहते हैं क्या करें, क्या न करें! ऐसे ही समय बीत जाता है।
एक मित्र यहां मेरे पास आते हैं। आज भी मौजूद हैं। आज तीन साल से निरंतर सोच रहे हैं संन्यास लूं कि न लूं। बार-बार मुझे पत्र लिखते हैं कि आप कहें कि लूं या न लूं। यह भी खूब रही! मुझसे पूछते हो, आप कहें। लेना तुम्हें है। जिंदगी का तुम्हारा है सवाल। और मेरे कहने से तुम लेते होते तो तीन साल से मुझे सुनते हो, मैं और कह क्या रहा हूं? निरंतर यही तो कह रहा हूं कि लगा लो डुबकी। रंग जाओ। हो लो रंगीन जीवन के रंग में, चैतन्य के रंग में। अब तुमसे अलग से कहूं कि ले लो? उससे भी क्या फर्क पड़ेगा? फिर तुम सोचोगे कि इनकी मानना कि नहीं मानना!
फिर किसी और से पूछोगे, भई इनकी मानना कि नहीं मानना? क्या करना? पाप-पुन्न की यह बजार है, सौदा करु मनमाना
होइहि कूच ऊंच नहिं जानसि भूलसि नाहिं हैवाना
यहां से तो जाना पड़ेगा। जाना सुनिश्चित है। यहां रुकना होने वाला नहीं है। एक ही बात तय है जीवन में कि यहां से जाना पड़ेगा। और तब न कोई ऊंचा होगा, न कोई नीचा होगा। न कोई आगे होगा, न कोई पीछे होगा।
दिखावे के हैं सब ये दुनिया के मेले
भरी बज्म में हम रहे हैं अकेले
कितना ही तुम सोचो कि संगी हैं, साथी हैं...
भरी बज्म में हम रहे हैं अकेले

दिखावे के हैं सब ये दुनिया के मेले
यह भीड़भाड़ सब दिखावे की है। हो तो तुम अकेले। भीड़ में भी बिल्कुल अकेले। अकेले ही आए हो, अकेले ही जाना पड़ेगा।
भरी महफिल में दम घुटता है उफ रे दर्द-ए-तनहाई
सब अपने हैं मगर सच है किसी का कौन होता है!
बस, कहने की बातें; सपने की बातें।
जो जो आवा रहेउ न कोई, सबका भयो चलाना
जो आया है, गया है। जो जन्मा है, मरेगा। तुम अपवाद नहीं हो, स्मरण रखना। एक भ्रांति रहती है प्रत्येक व्यक्ति के मन में कि दूसरे मरते हैं, मैं थोड़े ही मरता हूं। और इस भ्रांति के लिए कारण भी मालूम होते हैं। जब भी तुम देखते हो किसी की अर्थी, दूसरे ही की अर्थी देखते हो, अपनी अरथी तो देखते नहीं। अपनी अर्थी तो दूसरे देखेंगे, तुम कैसे देखोगे? तुम्हें तो सदा दूसरा ही मरता मालूम पड़ता है। आज अ मरा, कल ब मरा, परसों स मरा। और तुम निश्चिंत होते जाते हो।
मुल्ला नसरुद्दीन बीमा दफ्तर में गया। सौ साल का हो गया है! दफ्तर के लोगों ने कहा, बड़े मियां, अब बीमा नहीं करेंगे। सौ साल... अब कौन बीमा तुम्हारा करेगा! कौन बीमा कंपनी इतनी हिम्मत करेगी? नसरुद्दीन ने कहा कि आप नासमझ हैं। आंकड़े उठा कर देखो, सौ साल के बाद कभी कोई मरता है? जिनको मरना होता है पहले ही मर जाते हैं। सौ साल के बाद तो मुश्किल से कोई मरता है। तुम फिक्र न करो। और मैं तुमसे यह कहता हूं, मेरे सौ साल का अनुभव है कि सदा दूसरे लोग मरते हैं, मैं कभी नहीं मरता। सौ साल में न मालूम कितनों को मरघट पहुंचा आया हूं। और हर बार यही सोचते लौटा हूं, गजब! सब मरते हैं, एक मैं नहीं मरता।
प्रत्येक के मन में कहीं यह भ्रांति है कि मृत्यु सदा दूसरे की होती है, मेरी नहीं होती। जागो! दूसरे की मृत्यु तुम्हारी मृत्यु का इशारा है, इंगित है। हर मृत्यु तुम्हारी ही मृत्यु है क्योंकि हर मृत्यु तुम्हारी मृत्यु को करीब ला रही है। क्यू छोटा होता जाता है। एक आदमी मरा, क्यू आगे सरका। तुम और मृत्यु के दरवाजे के करीब पहुंचे।
जो जो आवा रहेउ न कोई, सबका भयो चलाना
कोऊ टूटि फूटि गारत मा, कोउ पहुंचा अस्थाना
लेकिन मरने में भी कला है, जैसे जीने की कला है। कुछ लोग जीने की कला जानते हैं और उनका जीवन महोत्सव हो जाता है, स्वर्ग हो जाता है। स्वर्ग कहीं और नहीं है, जो लोग जीने की कला जानते हैं उनके लिए यहीं है। और नरक भी कहीं और नहीं है, जो लोग जीने की कला नहीं जानते उनके लिए यहीं है। नरक है जीवन को बिना समझे बूझे जीने का परिणाम। स्वर्ग है जीवन को समझ-बूझकर जीने का परिणाम।
तुम्हारे हाथ में कोई वीणा दे दे तुम्हें बजाना न आता हो तो वीणा का कोई कसूर नहीं है। और तुम तार छेड़ोगे तो मोहल्ले के लोग पुलिस में फोन कर देंगे कि यह आदमी हमको पागल किए दे रहा है। और तुम्हारे तार छेड़ने से सिर्फ शोरगुल पैदा होगा, संगीत पैदा नहीं होगा। बस, ऐसा ही जीवन में तुम कर रहे हो। वीणा तो मिली है मगर बजाना नहीं आता। नरक पैदा हो रहा है। इसी वीणा पर कुशल हाथ पड़ जाएं, अपूर्व संगीत पैदा हो। वही संगीत निर्वाण है, समाधि है, ईश्वर है।
और फिर जैसे जीने की कला होती है वैसे मरने की कला होती है। और जिसने ठीक से जिया है वही मरने की कला सीख पाता है। क्योंकि मरना जीवन की पूर्णाहुति है। वह जीवन का अंतिम शिखर है, गौरीशंकर है।
किन व्यक्तियों को जगजीवन कहते हैं मरने की कला जाननेवाले लोग? कोउ फूटि टूटि गारत मा... कुछ लोग तो बस टूट-फूट कर मिट्टी हो जाते हैं। कोउ पहुंचा अस्थाना। लेकिन कुछ लोग उस परम स्थान पर पहुंच जाते हैं। कुछ तो यही मिट्टी थे, मिट्टी में ही गिर जाते हैं, फिर मिट्टी में ही बंध जाते हैं; फिर मिट्टी में ही सन जाते हैं। इधर एक देह छूटी, उधर दूसरी देह मिली। इधर एक शरीर हटा, उधर दूसरे गर्भ में प्रवेश हुआ। इधर एक मिट्टी से

छुटकारा हुआ, दूसरी मिट्टी मिली। पुराना घड़ा टूटा, नया घड़ा बना। बस, यहीं मिट्टी में ही भटक जाते हैं।
लेकिन कुछ लोग हैं जिनका घड़ा तो टूटता है लेकिन फिर वे किसी और घड़े में अपने को आबद्ध नहीं करते, आकाश के साथ एक हो जाते हैं। घड़े के भीतर भी आकाश है। घड़े के टूटते ही दीवाल हट जाती है। घटाकाश, घड़े के भीतर का आकाश घड़े के बाहर के आकाश से एक हो जाता है। उस परम मिलन की वेला को ही मोक्ष कहा है।
अब कि संवारि संभारि बिचारि ले, चूका सो पछिताना
जगजीवन दृढ़ डोरि लाइ रहु, गहि मन चरन अडाना
जगजीवन कहते हैं, अब सम्हाल लो। बहुत दिन हो गए बिना सम्हाले। अब कि संवारि संभारि बिचारि ले--अब तो सम्हलो! अब तो जागो! अब होश से भरो! चूके तो बहुत पछताओगे।
लोग सुन भी लेते हैं मगर समझ नहीं पाते। जिंदा तो गलत रहते ही हैं, मरकर भी गलत। लोग जिंदगी में भी दूसरों से आगे रहने की कोशिश में रहते हैं, मरने के बाद भी इंतजाम कर देते हैं कि मेरी कब्र ऐसी बनाना, संगमरमर की हो, कि स्वर्णाक्षरों में नाम लिख देना। अपने मरने के बाद कब्र पर जो पत्थर लगेगा वह भी लोग तैयार करवा कर रख जाते हैं। तुम ही मिट गए, कब्र बचेगी? कितने दिन बचेगी? तुम न बच सके, कब्र बचेगी?
अजीजो सादा ही रहने दो लौह-ए-तुरबत को
हमीं नहीं तो यह नक्श-ओ-निगार क्या होगा
सजाने से क्या प्रयोजन है? हमीं नहीं तो यह नक्श-ओ-निगार क्या होगा! फिर फूल-बूटी चढ़ाओ, फूल-पत्तियां चढ़ाओ, संगमरमर पर सुंदर-सुंदर नाम खोदो, मूर्तियां खड़ी करो। मगर असली चला गया, अब प्रतिकृतियों से क्या होगा? मगर आदमी का मोह! आदमी गलत जिंदा रहता है, गलत मरता है।
हुए मरके हम जो रुसबा हुए क्यूं न गर्क-ए-दरिया
न कहीं जनाजा उठता न कहीं म.जार होता
समझदार तो कहते हैं, अगर नदी में डूब मरे होते, जहाज डूब गया होता सागर में तो अच्छा होता। न कहीं जनाजा उठता न कहीं मजार होता। चिह्न भी मिट जाते। क्योंकि सब चिह्न हमारे जीवन के हमारे अज्ञान के ही चिह्न हैं। हमारे सब पगचिह्न हमारी भ्रांतियों के ही प्रमाण हैं।
जगजीवन दृढ़ डोरी लाइ रहु--अब तो ऐसे प्रेम का धागा बांधो ईश्वर से, ऐसी डोरी बांधो... गहि मन चरन अडाना--कि उस ठिकाने पर पहुंचना सुनिश्चित ही हो जाए। अब तो डोर परमात्मा से जोड़ो। कौन सी डोर? ध्यान की डोर, होश की डोर, जागरण की डोर, प्रीति की डोर। इसे मजबूत करो।
कोई आदमी कुएं में गिर जाए, तुम डोर फेंकते हो बाहर निकाल लेने को। अगर दार्शनिक किस्म का आदमी हो तो पूछेगा, डोर किसने बनाई? हिंदू ने कि मुसलमान ने, ब्राह्मण ने कि शूद्र ने? हर किसी की डोर नहीं पकड़ूंगा। डोर क्यों बनाई? बनाने का कारण क्या है? डोर क्यों कुएं में डाली? मुझे बचाने का हेतु क्या है? इतनी सारी बातों का उत्तर जब पा जाए, तब अगर कोई डोर पकड़ने को राजी हो तो शायद मरेगा ही; डोर पकड़ ही नहीं पाएगा। इन सारी बातों का क्या उत्तर है?
लेकिन कुएं में डूबता आदमी ये बातें पूछता ही नहीं, डोर पकड़ लेता है। मरते को तो तिनके का सहारा बहुत हो जाता है, डोर आ गई है। तो तुम भी यह मत पूछो कि डोर किसकी है? जहां से डोर पकड़ में आ जाए! मस्जिद से तो मस्जिद, मंदिर से तो मंदिर, गुरुद्वारे से तो गुरुद्वारा। जहां से डोर पकड़ में आ जाए--बुद्ध, महावीर, कृष्ण, कबीर, नानक, जहां से डोर पकड़ में आ जाए। बस डोर पकड़ लो। इस व्यर्थ ऊहापोह में मत पड़े रहो।
मैं अमृतसर जाता था तो एक ज्ञानी सिक्ख सदा मुझे मिलने आते थे। उनका काम एक ही था कि मैं जो कहूं, वे तत्क्षण गुरुग्रंथ साहब से उसके प्रमाण में कोई वक्तव्य दे दें कि हां, ऐसा ही गुरुग्रंथ साहब में भी कहा है। मैंने उनसे कहा कि गुरुग्रंथ साहब में कहा है या नहीं कहा है यह सवाल नहीं है। मैं जो कह रहा हूं वह तुम्हारी समझ में आया कि नहीं? गुरुग्रंथ साहब में भी कहा है और कुरान में भी कहा हैऔर वेद में भी कहा है--क्या होगा?

नहीं, उन्होंने कहा कि आप जो कहते हैं, जब मुझे गुरुग्रंथ साहब में उसका सहारा मिल जाता है तो मुझे मानना आसान हो जाता है।
लोगों को इसकी फिक्र है कि किसने डोर बनाई। अगर नानक के हाथ की सील लगी हो तो डोर पर तो मान लेंगे। डूबने में इतनी फिक्र नहीं लग रही है उन्हें। डूब रहे हैं इसका शायद पता भी नहीं है। और अगर नानक की सील न लगी हो तो? तो वे इनकार कर देंगे। और नानक ने क्या कहा है इसे क्या खाक समझोगे तुम! इसे तो वे ही समझ सकते हैं जो जागे और बचे। जो उबरे वे ही समझ सकते हैं।
लोग तालमेल बिठाते रहते हैं। मैं यहां बोलता हूं, वे तालमेल बिठाते रहते हैं अपनी किताब से कि हां, ठीक है। अगर किताब से मेल खाया तो ठीक है। अगर किताब से मेल नहीं खाया तो ठीक नहीं है। तुम्हें बचना है कि तुम्हें किताबों के मेल बिठालने हैं? मैं तुम्हारी तरफ डोर फेंक रहा हूं। तुम फिक्र छोड़ो, डोर का कोई मूल्य नहीं है। एक दफा कुएं के बाहर निकल आओ फिर भूल जाना डोर को। कोई डोर को लेकर सिर पर थोड़े ही घूमता है। नाव से नदी पार हो गए, फिर नाव को सिर पर लेकर थोड़े ही बाजार में घूमना पड़ता है। फिर नाव किसने बनाई थी, इसकी फिकर छोड़ो। नाव है इतनी भर बात समझ में आ जाए।
पैयां पकरि मैं लेहुं मनाय
बस, उसके चरण तुम्हें जहां भी दिखाई पड़ने लगें, जहां भी उसका इशारा मालूम होने लगे, जिनकी आंखों में भी तुम्हें थोड़ी सी उसकी आभा दिखाई पड़ने लगे, जिनके हाथों में थोड़ी तुम्हें उसके हाथों की पहचान मालूम होने लगे, जिसकी वाणी पर तुम्हें भरोसा आ जाए। और बात भरोसे की है, बात श्रद्धा की है। क्योंकि तुम्हें पता नहीं है उस लोक का। इतना ही हो सकता कि जो उस लोक से आया हो, जो उस लोक में जी रहा हो, जो उस लोक से जुड़ा हो, जरूर उसकी आंखों में उस लोक की कुछ छाया होगी।
बगीचे से कोई गुजरता है तो फूलों की गंध कपड़ों में बस जाती है। जरूर उसमें कुछ सुवास होगी। बस उसी से परोक्ष तुम्हें प्रमाण मिल सकता है। उतना जहां प्रमाण मिल जाए वहां पैर पकड़ लेना। जगजीवन को बुल्लेशाह में ऐसा प्रमाण मिल गया। ये वचन बुल्लेशाह के लिए कहे हैं, अपने गुरु के लिए कहे हैं।
पैयां पकरि मैं लेहुं मनाय
बस मुझे झलक मिल गई, अब मैं छोड़ूंगा नहीं। अब तो मैं मानाकर ही रहूंगा। अब तो जब तक मुझे न पहुंचा दो तब तक छाया की तरह पीछा करूंगा। पैयां पकरि मैं लेहुं मनाय
ऐसे भी बहुत देर हो गई है। यह जीवन भी खो न जाए। यह जीवन भी चूक न जाए।
अब के भी तुम दूर रहे
अब के भी बरसात चली!
यह सावन भी खो न जाए। मिलन होना चाहिए। एक-एक पल मूल्यवान है।
इसका रोना नहीं क्यों तुमने किया दिल बरबाद
इसका.गम है कि बहुत देर में बरबाद किया
कहौं कि तुम्हहीं कहं मैं जानौं, अब हौं तुम्हरी सरनहिं आय
--कि अब तो मैं तुमसे कहता हूं, गुरु को कह रहे हैं कि तुम्हारे अतिरिक्त मैं किसी को नहीं जानता। कहीं मुझे जाना नहीं है। अब हौं तुम्हरी सरनहिं आय--अब मैं तुम्हारी शरण आ गया हूं। अब तुम मुझे ठुकराओ, तुम मुझे भगाओ, भगा न सकोगे।
दिल की मजबूरी क्या शै है कि दर से अपने
उसने सौ बार उठाया तो मैं सौ बार आया
गुरु भगाए भी, हटाए भी, भागना मत। गुरु भगाएगा, हटाएगा भी। क्योंकि इन्हीं कसौटियों से गुजरकर डोर मजबूत होती है। इन्हीं चुनौतियों को पार करनेवाला समर्थ होता है, पात्र बनता है।
कहौं कि तुम्हहीं कहं मैं जानौं, अब हौं तुम्हरी सरनहिं आय
जोरी प्रीत न तोरी कबहूं, यह छबि सुरति बिसरि नहिं जाय
मैंने तो जो प्रीति जोड़ ली, अब तोड़ूंगा नहीं और यह छबि को बिसरने नहीं दूंगा। अब तो यही मेरी संपदा है। तुम चाहे कितनी ही नजरें चुराओ और तुम

चाहे कितनी ही नजरें बचाओ, मैं यह भिक्षापात्र लिए तुम्हारे सामने बैठा हूं। ये मेरे आंसू गिरते रहेंगे तुम्हारे चरणों पर। मैं तुम्हें पुकारूंगा।
बस एक लतीफ तबस्सुम, बस एक हसीन नजर
मरी.ज-ए-गम की यह हालत सम्हल तो सकती है
जरा एक बार देखो तो यह मरीज भी ठीक हो सकता है। यह दुःख, यह पीड़ा जा सकती है। यहां भी फूल खिल सकते हैं।
जोरी प्रीत न तोरी कबहूं, यह छबि सुरति बिसरि नहिं जाय
परदे से इक झलक जो वो दिखलाके रह गए
मुश्ताक-ऐ-दीद और भी ललचाके रह गए
और फिर जब थोड़ी-थोड़ी झलक मिलने लगती है, थोड़ा-थोड़ा रस मिलने लगता है, बूंदाबांदी होने लगती है तो फिर और भी प्रगाढ़ प्यास जगती है, ज्वलंत अग्नि जगती है।
निरखत रहौं निहारत निसु दिन...
फिर तो चौबीस घंटे देखता ही रहूं।
निरखत रहौं निहारत निसु दिन, नैन दरस-रस पियौं अघाय
फिर तो जितना बन सके, पूरी तरह तृप्त होकर वह जो तुम्हारी आंखों से दरस-रस, दर्शन का रस झलक रहा है उसे पी लूं।
गुरु ने देखा है परमात्मा को, उसकी आंखों में उसके दर्शन का रस है। उसकी आंखों में मस्ती है। शिष्य में नहीं देखा है लेकिन गुरु की आंखों में तो शिष्य देख सकता है। गुरु की आंखों में तो शिष्य झलक पा सकता है। जैसे चांद को तुम झील में देख सकते हो ऐसे ही परमात्मा को गुरु की आंख में देख सकते हो।
जगजीवन के समरथ तुमहीं, तजि सतसंग अनत नहिं जाय
अब यह सत्संग नहीं छोड़ूंगा। जान ली है तुम्हारी सामर्थ्य। जान लिया
है कि तुम उससे जुड़ गए। इतनी बात पहचान ली है, अब कहीं और जाने का कोई कारण नहीं रह गया है। गुरु से आंख मिलती है तो एक अपूर्व घटना घटती है; एक ऐसा प्रेम जो फिर कभी टूटता नहीं। टूट जाए तो समझना कि था ही नहीं।
हमने पाला मुद्दतों पहलू में और हम कुछ भी नहीं
तुमने देखा एक नजर और दिल तुम्हारा हो गया
तुम्हारा.गम, तुम्हारी याद जब तक साथ देती है
कठिन हो कितनी ही मंजिल, कदम बोझिल नहीं होते
और गुरु की याद के सहारे यात्रा शुरू हो जाती है। दूर है मजिंल। अपनी आंखों से देखना उस परम को पता नहीं कब होगा, पर उन आंखों से तो हम जुड़ ही सकते हैं जिनको घटना घटी हो। हमारा दीया जब जलेगा, जलेगा, लेकिन किसी जले के दीये के पास तो हम सरक सकते हैं--और पास... और पास। और पास-और पास आ जाने का नाम सत्संग है।
ऐ दर्द ये चुटकियां कहां तक?
उठ और जिगर के पार हो जा
और पास! पीड़ा बढ़ती जाए, प्यास जगती जाए, प्रार्थना सघन होती जाए।
झमकि चढ़ि जाऊं अटरिया री
कैसा अद्भभुत वचन है! जगजीवन कहते हैं कि और जब बिल्कुल पास आना हो जाता है तो क्या होता है मालूम है? झमकि चढ़ि जाऊं अटरिया री। जैसे बस एक ही छलांग में चढ़ जाऊं अटरिया। सारी सीढ़ियां एक ही छलांग में चढ़ जाऊं।
झमकि चढ़ि जाऊं अटरिया री
ए सखि पूंछों सांई केहिं अनुहरिया री
बस यही पूछता हूं कि यह कैसे घट सके कि एक ही छलांग में बात हो जाए, ऐसी कोई सूरत बताओ, ऐसा कोई मार्ग बताओ। ए सखि पूंछों सांई केहि अनुहरिया री। कैसे, किस सूरत से, किस ढंग से, किस विधि से झमकि चढ़ि जाऊं अटरिया री। तुम जिस शिखर पर बैठे हो वहां कैसे आ जाऊं? तुम्हें देख लिया है गौरीशंकर पर बैठे। वहां मैं कैसे आ जाऊं? मैं इस अंधेरी झील में पड़ा हूं। मैं इस अंधेरी घाटी में भटका हूं।
सो मैं चहौं रहौं तेहिं संगहिं निरखि जाऊं बलिहरिया री

कुछ ऐसा मार्ग बता दो कि सो मैं चहौं रहौं तेहिं संगहिं। चाहे कुछ भी
हो जाए, तेरा साथ बना रहे ऐसा कुछ मार्ग बता दो। कुछ भी हो जाए, वहां पहुंच जाऊं जहां तू है। झमकि चढ़ि जाऊं अटरिया री।
देखते हो? सीधे-सादे सरल गांव के ग्रामीण आदमी के वचन, पर बुद्ध को भी ईर्ष्या न हो जाए? झमकि चढ़ि जाऊं अटरिया--कोई कठिन शब्द तो नहीं हैं। कोई व्याख्या की जरूरत नहीं है। कुछ समझाने की बात नहीं है, सीधी-सीधी है, साफ-साफ है।
मैं समझता हूं तिरि इशवागरी को साकी
काम करती है नजर, नाम है पैमाने का
गुरु के पास जो मदिरा पी जाती है वह मदिरा तो आंख से बहती मदिरा है। गुरु से जुड़ने का ढंग उसकी आंख से जुड़ने का ढंग है, उसकी दृष्टि से जुड़ने का ढंग है, उसके दर्शन से जुड़ने का ढंग है।
कभी जो दिल को उठाया कदम उठा न सका
गरज-मैं कूच-ए-जानां से उठके जा न सका
और एक बार सत्संग हो जाए, एक बार... सुनते हो इस कोयल को? ऐसी एक बार किसी के हृदय से उठती हुई आवाज सुनाई पड़ जाए, फिर कहां जाना है? फिर कैसा जाना है?
निरखत रहौं पलक नहिं लाओं, सूतों सत्त-सेजरिया री
फिर तो देखता रहूं, पलक भी न झपे। सत्य की सेज बनाऊं। तुममें डूब जाऊं,
एक हो जाऊं।
रहौं तेहिं संग रंग-रसमाती, डारौं सकल बिसरिया री
तेरे रस में डूबूं, तेरे संग में डूबूं। सब और भूल जाए, बस तू एक याद रहे।
जगजीवन सखि पायन परिके, मांगि लेऊं तिन सनिया री
और तो मैं कुछ जानता नहीं, तेरे पैर पकड़ता हूं। तेरे पैर पकड़ कर मांगता हूं कि ही राह बता दे, तू ही मार्ग बता दे।
और जिसने गुरु के भीतर झांक लिया पूरा-पूरा, उसने परमात्मा के भीतर झांकना शुरू कर दिया। गुरु तो खिड़की है। उस खिड़की से जिसने झांका उसे आकाश दिखाई पड़ा। खिड़की के पास आओ तो आकाश दिखाई पड़े, यही सत्संग का अर्थ है।
वो मैगुसार थी सा.की निगाह-ए-मस्त तिरी
तमाम बज्म में जाम-ए-शराब होके फिरी
और जब किसी गुरु का सत्संग जम जाता है, जब पीनेवाले उसके पास इकट्ठे
हो जाते हैं तो कुछ ऐसा थोड़े ही है कि एक के पीने से गुरु चूक जाता है! चूकता ही नहीं क्योंकि गुरु तो है नहीं, अब तो अनंत स्रोत उससे बह रहा है। वो मैगुसार थी सा.की निगाह-ए-मस्त तिरी
तमाम बज्म में जाम-ए-शराब होके फिरी
सारी महफिल पिए। सारा संसार एक गुरु से पी सकता है, पीनेवाले चाहिए। मैकशो, मै की कमी बेशी प" नाह.क जोश है
यह तो सा.की जानता है किसको कितना होश है
और फिर जिसको जितनी जरूरत है उतनी उसे मिल जाती है। यह तो सा.की जानता
है किसको कितना होश है।
साधो नाम तें रहु लौ लाय, प्रगट न काहू कहहु सुनाय
यह जो प्रभु-स्मरण है, इसे चुपचाप करना। यह जो संबंध बने, अनंत से तुम्हारी जो भांवर पड़े, इसे चुपचाप डाल लेना।
साधो नाम तें रहु लौ लाय
गुरु से पूछा कि मार्ग बता दो। तुम्हारे पैर पड़ता हूं, तुम्हारे पैर गिरता हूं, मुझे मार्ग बता दो। और मर्ग तो एक ही है कि प्रभु का स्मरण करो। तो गुरु ने कहा, नाम का स्मरण करो।
जगजीवन कहते हैं कि नाम से लौ को लगा दो। लेकिन ख्याल रखना, प्रकट न काहू कहहु सुनाय। लोगों को बताते मत फिरना, उछलते मत फिरना कि देखो मैं कितना भजन कर रहा हूं, कितना कीर्तन कर रहा हूं, कितना ध्यान कर रहा हूं।
चुपचुप हो यह बात। गुपचुप हो यह बात। जितनी गुपचुप हो उतनी गहरी होगी।
छुपाकर रखना। हीरा जितना बहुमूल्य हो, हम उतना ही गहरा गड़ा देते हैं।

झूठे परगट कहत पुकारिं--वे जो झूठे हैं, जिन्हें न प्रार्थना आती है, न कीर्तन न भजन, वे विज्ञापन करते फिरते रहते हैं।
झूठै परगट कहत पुकारिं, तातैं सुमिरन जात बिगारि
थोड़ा-बहुत सुमिरन बनता भी हो तो मिट जाता है। कहना मत, इसे सम्हालकर रखना।
एक बात तुम जानते हो? इस दुनिया में कुछ कठिन बातों में एक बात यह है
कि अगर कोई चीज तुमसे कही जाए कि गुप्त रखना, तो रखना बहुत मुश्किल हो जाता है। तुमसे किसी ने कहा, इस बात को गुप्त रखना, किसी को कहना मत। बस, बड़ी मुश्किल हुई। अब सम्हलती नहीं, बार-बार जबान पर आती है। कह देने का मन हो- हो जाता है। और आखिर में तुम कहोगे ही।
मुल्ला नसरुद्दीन ने अपनी पत्नी को कुछ कहा और कहा, किसी से कहना मत। देख, याद रख। सम्हाल कर रखना। यह गुप्त ही रहनी चाहिए बात। लेकिन दूसरे दिन गांव-भर में फैल गई। मुल्ला बहुत नाराज आया और पत्नी से बोला कि तूने जरूर किसी को कहा होगा। बात गांव भर में फैल गई। उससे कहा, मैंने कहा था लेकिन साथ में कहा था, किसी से कहना मत। और फिर जब तुम खुद ही न रख सके अपने भीतर और मुझसे कह दिए तो तुम क्या आशा रखते हो कि मैं रख सकूंगी अपने भीतर? किसी भी चीज को भीतर रखना कठिन होता है। लेकिन अगर भीतर रख लो तो अपने
आप गहराई में उतरने लगती है। जितना भीतर रखो उतनी गहराई में उतरती है। इसलिए जो लोग किसी बात को गुप्त रख सकते हैं उनमें एक गहराई होती है, जो उन लोगों में नहीं होती जो किसी बात को गुप्त नहीं रख सकते।
इसलिए सदियों से यह प्रक्रिया रही है कि गुरु जब मंत्र देता है तो वह कहता है, गुप्त रखना। मंत्र में कुछ खास नहीं होता। हो सकता है उसने तुमसे यही कहा हो, राम-राम जपो। अब मंत्र क्या सारी दुनिया को पता है राम-राम जपो। लेकिन गुरु कान में कहता है और कहता है, गुप्त रखना। अब तुम बहुत हैरान होओगे, तुम बड़े चौंकोगे कि यह मामला क्या है?
कल ही मैं एक लेख पढ़ रहा था। कोई अमरीकन हिमालय आया और किसी गुरु से दीक्षा लेकर गया और उसने मंत्र दिया और कहा कि देखो, इसे गुप्त रखना। और वह अमरीकन हैरान है कि इसको गुप्त क्या रखना? "हरे कृष्ण हरे राम"--सारी दुनिया जानती है। सड़क-सड़क पर लोग गा रहे हैं, इसको गुप्त क्या रखना? तो उसने लेख लिखा है कि यह बात फिजूल बकवास है। इसमें गुप्त रखने-योग्य कुछ है ही नहीं। हरे कृष्ण हरे राम कौन नहीं जानता?
चूक गया। उसे पता नहीं कि बात क्या है? सवाल यह नहीं है कि मंत्र में कुछ गुप्त रखने को है, सवाल गुप्त रखने में कुछ महत्त्व की बात है। जब तुम किसी चीज को गुप्त रखते हो, आती है जबान पर और नहीं आने देते, लौटा-लौटा देते हो तो बाहर जाने की बजाय भीतर जाने लगती है। जाएगी तो कहीं। अगर बाहर जाने दी तो बाहर चली जाएगी। अगर बाहर न जाने दी तो भीतर जाएगी। अगर सब तरफ से द्वार-दरवाजे बंद कर दिए तो तुम्हारे प्राणों में गहरे से गहरे उतरने लगेगी। गति तो होने ही वाली है। दो ही द्वार हैं--या तो बाहर या भीतर। या तो ऊपर की तरफ उठे या गहराई में जाए।
तो ध्यान रखना, मंत्र का मतलब यह नहीं होता कि उसमें कुछ छिपाने-जैसा है। मंत्र में क्या छिपाने जैसा है? बंधे-बंधाए मंत्र हैं। कोई कहता है ओम्, कोई कहता है नमोकार, कोई कुछ और। बस सब बंधे-बंधाए मंत्र हैं, सब किताबों में लिखे हैं। गुप्त कुछ भी नहीं है। लेकिन गुप्त रखने की कला में कुछ बात है। रसायन वहां है।
वह बेचारा अमरीकन, जब मैं कल उसका लेख पढ़ रहा था, चूक ही गया बात से। वह समझ रहा है कि उसको बुद्धू बनाया गया। और अक्सर ऊपर से दिखाई पड़ेगा कि हां, बात तो यही है। जब ऐसा साधारण सा मंत्र है, इसको छिपाना क्या? धर्म के जगत में जल्दबाजी मत करना निर्णय लेने की; नहीं तो चूकोगे।
साधो नाम तें रहु लौ लाय, प्रगट न काहू कहहु सुनाय।
झूठै परगट कहत पुकारिं, तातें सुमिरन जात बिगारि
भजन बेलि जात कुम्हलाय, कौनि जुक्ति कै भक्ति दृढ़ाय
सिखि पढ़ि जोरि कहै बहु ज्ञान, सो तौ नाहिं अहै परमान

सम्हालकर रखना। भीतर गड़ते जाना। गहरे में खोदते जाना, खोदते जाना। एक दिन मंत्र वहां पहुंच जाएगा जहां तुम्हारे प्राणों का स्रोत है। और जिस दिन प्राणों के स्रोत पर पहुंच जाती है चिंगारी मंत्र की, आग भभककर उठती है। सब व्यर्थ राख हो जाता है और सार्थक प्रकट होता है।
सिखि पढ़ि जोरि कहै बहु ज्ञान--कुछ लोग हैं जो सीख लेते हैं, पढ़ लेते हैं, ज्ञान को जोड़ते रहते हैं और सोचते हैं, ज्ञानी हो गए। ऐसे कोई ज्ञानी नहीं होता। जब तक चिंगारी बोध की तुम्हारे भीतर जाकर तुम्हारी ज्योति को न जगा दे तब तक कोई ज्ञानी नहीं होता।
सो तो नाहिं अहै परमान--ख्याल रखना, यह पढ़ा-लिखा, सुना हुआ, गुना हुआ, दूसरों से सीखा हुआ उधार ज्ञान परमात्मा का प्रमाण न है, न हो सकता है। उसका तो सिर्फ एक ही प्रमाण है और वह है स्वयं का साक्षात्कार। प्रीति-रीति रसना रहे गाय, सो तौं राम कों बहुत हिताय
सुनते हो? कैसा रसभरा वचन है!
सिखि पढ़ि जोरि कहै बहु ज्ञान, सो तो नाहिं अहै परमान
प्रीति-रीति रसना रहै गाय, ...
लेकिन प्रेम से, भीतर-भीतर रस उमगे, रस में डूबे। ऐसा डूबे कि भीतर का
रस एक दिन बाहर गीत बन कर प्रकट होने लगे।
प्रीति-रीति रसना रहै गाय, सो तौ राम कों बहुत हिताय
ऐसा व्यक्ति परमात्मा को बहुत प्यारा हो जाता है। तुम्हारे पढ़े-लिखे ज्ञान से तुम परमात्मा के प्यारे नहीं होते। पांडित्य तुम्हें दूर रखता है, निकट नहीं लाता। प्रेम पास लाता है। ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।
सो तौ मोर कहावत दास--जिसने प्रीति की रीति सीख ली, वह तो उसका दास हो जाता है।
सो तौ मोर कहावत दास, सदा बसत हौं तिनके पास
परमात्मा उनके पास बसने लगता है। फिर भक्त को परमात्मा को खोजने नहीं जाना पड़ता, परमात्मा ही भक्त को खोजता आने लगता है।
मैं-मरि मन तें रहे हैं हारि--जो मर गया अपने मैं-भाव में, जिसने अपनी
मन की हार मान ली, स्वीकार कर ली, दिप्त ज्योति तिनकै उजियारि--उसके भीतर ही ज्योति जलती है और उजियारा होता है।
जगजीवनदास भक्त भै सोइ, तिनका आवागमन न होइ
ऐसा व्यक्ति ही भक्त है। और ऐसे भक्त का फिर आवागमन नहीं होता। उसकी ज्योति महाज्योति में लीन हो जाती है। उसे मरने की कला भी आ गई। उसने जिया भी उत्सव से, वह मरा भी उत्सव से। जीवन भी जब उत्सव हो और मृत्यु भी जब उत्सव हो जाए, जब जीवन भी प्रभु का गुणगान हो और मृत्यु भी प्रभु का गुणगान बने, तभी जानना, तुम व्यर्थ नहीं गए; तुम सार्थक हुए।
बौरे, जामा पहिरि न जाना
बहुत बार इन्हीं कपड़ों में डूबे-डूबे चले गए हो, इस बार जगकर चैतन्य
को पहचान कर जाना।
चुन लिए औरों ने गुलहा-ए-मुराद
रह गए दामन ही फैलाने में हम
देर न करो। और कल की प्रतीक्षा मत करो। कल का कोई भरोसा नहीं। कल कभी आता नहीं।
सूत्र सीधे-साफ हैं। ज्ञान से नहीं मिलता है परमात्मा, प्रेम से मिलता है। ज्ञान तो अकड़ा देता है, अहंकार से भर देता है। प्रेम उसके चरणों में झुका देता है। पैयां पकरि मैं लेहु मनाय। प्रेम ही मना सकता है पैयां पकड़कर। ज्ञान तो दावेदार होता है। कहता है, मैं इतना जानता हूं इसका मुझे पुरस्कार चाहिए। प्रेम दावेदार नहीं होता, प्रेम विनम्र होता है। प्रेम कहता है, मेरी क्या योग्यता? मैं अपात्र हूं। तेरी करुणा का भरोसा है, अपनी पात्रता का भरोसा नहीं है।
और एक बार तुम उसके चरणों में अपने को छोड़ो, तुम हैरान हो जाओगे। उसका हाथ तुम्हारे सिर पर आ जाता है। उसका हाथ तुम्हारे हाथ में आ जाता है। सबा के हाथ में नमी है उनके हाथों की

ठहर-ठहरकर यह होता है आज दिल को गुमां
वह हाथ ढूंढ़ रहे हैं बिसाते-महफिल में
कि दिल के दाग कहां हैं, नशिस्ते-दर्द कहां
तेरा जमाल निगाहों में ले-लेके उट्ठा हूं
निखर गई है फि.जा तेरे पैरहन की-सी
नसीम तेरे शबिस्तां से होके आई है
मेरे सहर में महक है तेरे बदन की-सी
फिर तो सब तरफ उसी का अनुभव होने लगता है। सब के हाथों में नमी है उनके हाथों की। हवा आती है, हल्के से एक झोंका दे जाती है और लगता है, उसके हाथों का स्पर्श हुआ। लगता ही नहीं, होता है। हवा उसके ही हाथ हैं। नहीं पहचाना तो हवा है, पहचाना तो उसके हाथ हैं।
सबा के हाथ में नमी है उनके हाथों की
ठहर-ठहरके यह होता है आज दिल को गुमां
अब तो धीरे-धीरे विश्वास होने लगा। ठहर-ठहर कर विश्वास आ रहा है, श्रद्धा आ रही है।
वह हाथ ढूंढ रहे है बिसाते-महफिल में
इतनी बड़ी महफिल में, लेकिन वे हाथ भक्त को ढूंढने लगते हैं, अपने प्यारे को ढूंढने लगते हैं कि दिल के दाग कहां हैं, नशिस्ते-दर्द कहां है। कि कहां-कहां दाग हैं, कहां-कहां घाव हैं ताकि मलहम-पट्टी हो सके। नशिस्ते- दर्द कहां! कहां-कहां दर्द के स्थान हैं, ताकि वे हाथ आएं और घावों को भर दें। कहां-कहां रोग है, ताकि उपचार हो सके।
वह हाथ ढूंढ रहे है बिसाते-महफिल में
कि दिल के दाग कहां हैं, नशिस्ते-दर्द कहां
तेरा जमाल निगाहों में ले-लेके उट्ठा हूं
फिर तो उसी का रूप दिखाई पड़ता है। वृक्षों की हरियाली में उसकी हरियाली और फूलों के रंग में उसका रंग। इंद्रधनुषों में वही तना है। सूरज की किरणों में वही फैला है। सागर की लहरों में वही गूंजा है। उसी की गुंजार! पहाड़ों में वही सिर उठाए खड़ा है। सब तरफ उसका रूप।
तेरा जमाल निगाहों में ले-लेके उट्ठा हूं
निखर गई है फि.जा तेरे पैरहन की-सी
सब कुछ नहा गया है। तुझे नहाया हुआ देखता हूं चारों तरफ। क्योंकि सारे रंग तेरे, सारे रूप तेरे।
नसीम तेरे शबिस्तां से होके आई है
और मुझे अब पक्का भरोसा है कि यह हवा, जो सुवास लेकर आ रही है, यह तेरे निवासस्थान से आ रही है, यह तेरे मंदिर से आ रही है।
नसीम तेरे शबिस्तां से होके आई है
मेरे सहर में महक है तेरे बदन की-सी
और मेरी सुबह में जो महक मुझे मिल रही है, वह तेरे देह की महक है; वह तेरी महक है। फिर तो वर्षा होती है और जमीन से सोंधी गंध उठती है, उसी की गंध है। फिर तो सब उसका है। एक बार पहचान। और पहचान की रीति--प्रीति, ज्ञान नहीं। जो ज्ञान में भटके, अज्ञानी रह गए। और जिन्होंने अपने अज्ञान को पहचाना, उसके चरणों में झुके और कहा,
पैयां पकरि मैं लेहु मनाय
कहौं कि तुम्हहीं कहं मैं जानौं, अब हौं तुम्हरी सरनहिं आय
जोरी प्रीत न तोरी कबहूं, यह छबि सुरति बिसरि नहिं जाय
पैयां पकरि मैं लेहु मनाय
जो ऐसा कह सकता है, ऊपर-ऊपर नहीं, प्राणों से; अपनी समग्रता से, उसे देर नहीं लगती। चढ़ जाता है अटरिया उसकी। झमकि चढ़ि जाऊं अटरिया री।
रास्ता साफ है। तुम जरा सरल होओ। तुम जरा सम्हलो। रास्ता साफ है, तुम जरा होश से भरो। तुम भी चढ़ सकोगे उसकी अटरिया। और उसकी अटरिया जो चढ़ गया, अमृत को पा गया। सच्चिदानंद उसकी अटरिया का दूसरा नाम है।
झमकि चढ़ि जाऊं अटरिया री

उठने दो इस भाव को गहरे तुम्हारे भीतर। रोएं-रोएं में समाने दो। कहते
मत फिरना, गुप्त रखना।
साधो नाम तें रहु लौ लाय, प्रगट न काहू कहहु सुनाय
झूठै परगट कहत पुकारिं, तातें सुमिरन जात बिगारि
भजन बेली जात कुम्हलाय...
कहना मत। भजन की बेल कुम्हला जाएगी। जैसे कोई जमीन से बेल को उखाड़ ले देखने जड़ों को और लोगों को दिखाने को कि देखो, मेरी बेल की जड़ें कितनी मजबूत हैं। उसकी बेल कुम्हला जाएगी। जड़ें तो अंधेरे में छिपी रहनी चाहिए। ऐसे ही तुम्हारे अंतस्तल में, तुम्हारे गहरे प्राणों में तुम्हारे भजन की जड़ें समाई रहनी चाहिए।
सिखि पढ़ि जोरि कहै बहु ज्ञान, सो तो नाहिं अहै परमान
उसका प्रमाण उससे मिलता है जिसने उसे प्रेम किया। उससे नहीं, जिसने शास्त्रों से उसके संबंध में जानकारी इकट्ठी की। रामकृष्ण से किसी ने पूछा, ईश्वर का प्रमाण क्या है? रामकृष्ण ने कहा, मैं प्रमाण हूं। मेरी तरफ देखो। मेरी आंखों में झांको। मेरे हाथ को अपने हाथ में लो। मैं प्रमाण हूं।
उस दिन को दिन कहना जिस दिन तुम भी कह सको, मैं प्रमाण हूं। जब तक वैसा दिन न आ जाए तब तक समझना, सब रात है। और रात भी रात-सी रात--अमावस की रात है।

आज इतना ही।

नाम सुमिर मन बावरे
छठवां प्रवचन

जीवन सृजन का अवसर है

पहला प्रश्नः जीवन में बहुत दुख हैं और बहुत सी समस्याएं हैं। क्या प्रेम और भक्ति में डूबने के पूर्व उन्हें सुलझाना आवश्यक नहीं है?

भाई मेरे, उन्हें सुलझाओगे कैसे? उलझाव ही यही है कि प्रेम का अभाव है। जीवन की समस्याएं ही इसलिए हैं कि प्रेम के रसस्रोत से हमारे संबंध छूट गए हैं। भक्ति का प्रवाह नहीं है इसलिए जीवन में समस्याओं के डबरे भर गए हैं।
तुम तो यह कह रहे हो, अभी लोग बहुत बीमार हैं, अभी औषधि की बात करने से क्या फायदा? पहले लोग तो ठीक हो लें, पहले लोग स्वस्थ हो लें फिर औषधि की चिंता करेंगे। तुम्हारा प्रश्न ऐसा है।
भक्ति औषधि है। भक्ति का अर्थ क्या है? भगवान से जुड़ने का उपाय। उससे नहीं जुड़े हैं यही तो दुख है। उससे टूट गए हैं यही तो पीड़ा है। उसे भूल गए हैं, विस्मरण कर बैठे हैं यही तो अंधकार है। उसकी तरफ पीठ कर ली है और कचरे की तरफ उन्मुख हो गए हैं। धन से जुड़ गए हैं, ध्यान से टूट गए हैं। पद से जुड़ गए हैं, परमात्मा से टूट गए हैं। देह से जुड़ गए हैं, आत्मा से टूट गए हैं। इससे ही जीवन में इतना दुख है।
और यह दुख बिना प्रेम और भक्ति में डूबे मिटेगा नहीं। और ये समस्याएं उलझी ही रहेंगी। तुम जितना सुलझाओगे उतनी उलझती जाएंगी क्योंकि तुम ही उलझे हुए हो। तुम तो सुलझो! सुलझानेवाला तो सुलझे! तुम जो भी करोगे, गलत हो जाएगा।
ऐसा ही समझो कि एक पागल आदमी भवन बनाए। यह भवन बनेगा नहीं। बनेगा भी
तो गिरेगा। इससे तो बिना भवन के रह लेना बेहतर है। इस पागल आदमी ने बहुत भवन बनाए हैं, सब गिर गए। यह पागल आदमी जो भी करेगा उसमें इसके पागलपन की छाप होगी।
आदमी ने कुछ कम उपाय किए हैं समस्याएं हल करने के लिए? समस्याएं कम हुईं? पांच हजार साल में एक भी समस्या नहीं मिटी। हां, पांच हजार साल के लंबे चेष्टा के इतिहास में नई-नई समस्याएं जरूर खड़ी हो गईं। पुरानी अपनी जगह हैं और नई समस्याओं की कतारें बंध गई हैं। पुरानी समस्या तो जाती ही नहीं, उसको सुलझाने में नई समस्याएं और आ जाती हैं।
लेकिन कुछ लोग इस पृथ्वी पर हुए हैं जिनके जीवन में समस्या नहीं थी, जिनके जीवन में समाधान था। लेकिन समाधान आता कहां से है? समाधान आता है समाधि से। ये दोनों शब्द एक ही धातु से बने हैं। जिसका चित्त भीतर मौन हो जाता है, शून्य हो जाता है, उस शून्य चित्त में पूर्ण का अवतरण होता है। और तुम्हारे भीतर परमात्मा का प्रकाश आ जाए तो सारी समस्याएं ऐसे ही तिरोहित हो जाती हैं, जैसे दीये के जल जाने पर अंधेरा तिरोहित हो जाता है; या सूरज के निकल आने पर रात विदा हो जाती है। अंधेरी रात में तुम पक्षियों से कितनी ही प्रार्थनाएं करो कि गाओ गीत, कि खोलो कंठ; कि कोयल, तुझे हुआ क्या? क्यों चुप हो? तुम्हारी सब चेष्टाएं व्यर्थ जाएंगी। सूरज को उगने दो, पक्षियों के कंठों से गीतों के झरने फूटने लगेंगे। अनायास हो जाता है। परमात्मा के जैसे ही कोई व्यक्ति करीब पहुंचना शुरू होता है, उसके जीवन से झरने फूटने शुरू हो जाते हैं। उसके जीवन की छाया में जो भी आ बैठता है वह भी भर जाता है। उसका प्यासा कंठ भी पहली बार अमृत का स्वाद लेता है। तुमने जो प्रश्न पूछा, कुछ नया नहीं। बार-बार पूछा गया है, सदियों में पूछा गया है। कवियों ने गीत लिखे हैं कि अभी प्रेम कैसे करें?
भटक रहे हैं अभी कारवां गरीबी के
लरज रही है जबीं आस्मानों-अंजुम की
तरस रहे हैं खुशी के लिए हजारों दिल
अभी लबों को इजाजत नहीं तबस्सुम की

अभी हंसें कैसे? अभी ओंठों को हंसने की इजाजत नहीं है। अभी बहुत गरीबी है; गरीबी के काफिले के काफिले चल रहे हैं।
तुम सोचते हो, तुम्हारे हंसने को रोक लेने से गरीबी के काफिले रुक जाएंगे? तुम हंसो तो गरीबी मिटे। तुम्हारे रोने से गरीबी मिटने वाली नहीं है। तुम्हारे हंसने से फूल झरें... । और ऐसा अक्सर हो गया है कि जिसके पास कुछ भी नहीं था और अगर हंस पाया है दिल खोल कर तो अमीर हो गया है। और जिनके पास सब कुछ है, अगर हंस भी नहीं पाते हैं दिल खोल कर, तो उनकी अमीरी दो कौड़ी की है। उनसे ज्यादा भिखमंगे और तुम कहां खोजोगे?
मैं तुझको भूल गया हूं इसका ऐतबार न कर
मगर खुदा के लिए मेरा इंतजार न कर
अजब घड़ी है मैं इस वक्त आ नहीं सकता
सरूरे-इश्क की दुनिया बसा नहीं सकता
कवि सदा कहते रहे हैं, अभी कैसे हम प्रेम की दुनिया बसाएं? पहले ठीक तो
हो ले सारा इंतजाम। पहले अर्थ-व्यवस्था बदले, क्रांति हो, फिर हम प्रेम करेंगे। हम तो तब प्रेम करेंगे जब--
सनमखानों के दरवाजों पै ताले पड़ चुके होंगे
मजाहब गल चुके होंगे, अकाइद सड़ चुके होंगे
नई रूहें, नये कालिब, नया मकसद, नया मंशा
जनूने-सरफरोशी बाइसे-तामीरे-नौ होगा
जब नई सुबह होगी, नये मनुष्य का जन्म होगा--तब! उसके पहले नहीं। तब तो तुम कभी प्रेम न कर पाओगे। और प्रेम ही न किया तो भक्ति तो फिर बहुत दूर का पड़ाव है। प्रेम का अंकुर ही न फूटा तो भक्ति का पौधा कभी बड़ा न होगा। प्रेम के ही पौधों में भक्ति की संभावना है। प्रेम का पौधा ही बढ़ते-बढ़ते एक दिन भक्ति के फूलों में रूपांतरित होता है।
जाग उठो वक्फए-तब्दीर मिले या न मिले
ख्वाब फिर ख्वाब है, ताबीर मिले या न मिले
हम तो खून अपना चिरागों में जलाते जाएं
इससे क्या, सुबह की तनवीर मिले या न मिले
फिर लोगों ने देखा भी कि हजारों तो साल हो गए, क्रांति आती नहीं, कुछ बदलता नहीं। बाहर की दुनिया तो वैसी की वैसी, नरक की नरक बनी रहती है। नाम बदल जाते हैं, लेबल बदल जाते हैं; और कुछ भी नहीं बदलता। तो फिर... ।
तो भी चलते रहो। तो भी क्रांतिकारी कहता है, जाग उठो वक्फए-तब्दीर मिले या न मिले। कोई फिक्र न करो, मंजिल हाथ आएगी कि नहीं।
ख्वाब फिर ख्वाब है, ताबीर मिले या न मिले--यह सपना देखने जैसा है कि दुनिया अच्छी बनाएंगे। फिर दुनिया अच्छी बने या न बने।
हम तो खून अपना चिरागों में जलाते जाएं
इससे क्या, सुबह की तनवीर मिले या न मिले
सुबह हो या न हो, मगर हम अपना खून चढ़ाते जाएं, हम अपनी कुर्बानी देते जाएं। आदमी ने बहुत कुर्बानी दी और सब व्यर्थ गईं। आदमी ने बहुत-सी वेदियों पर अपने को चढ़ाया, और सब वेदियां झूठी सिद्ध हुई हैं। कोई तारा नहीं उगा, कोई प्रकाश नहीं जन्मा। हां, लेकिन कुछ लोगों के जीवन में तारे उगे हैं--कोई बुद्ध, कोई मीरां, कोई जगजीवन, कोई कबीर, कोई नाचा!
तुम क्या सोचते हो, कबीर नाचे तब दुनिया की सारी समस्याएं हल हो गई थीं? समस्याएं अपनी जगह थीं फिर भी कबीर नाचे। और कबीर के नाचने से समस्याओं के हल होने की तरफ इशारा हुआ। अगर कबीर नाच सकते हैं समस्याओं के रहते हुए तो तुम क्यों नहीं नाच सकते? और अगर सारी दुनिया यह तय कर ले कि समस्याओं को रहने दो, हम नाचेंगे, हम गाएंगे, हम प्रेम भी करेंगे, हम कल की प्रतीक्षा न करेंगे, हम आज जिएंगे, तो मैं तुमसे कहता हूं, समस्याएं मिट जाएं। इतने लोग नाचे, इतने लोग गीत गाएं, समस्याएं टिकेंगी कहां? किस हृदय में जगह बना सकेंगी? जहां नाच भर जाएगा वहां से समस्याओं को विदा हो जाना होगा। और जहां प्रेम उमगेगा वहां से उलझनें अपने आप गिर जाएंगी। प्रेम सुलझाता है।

और भक्ति तो परम समाधान है। भक्ति का अर्थ यही है कि मेरी कोई समस्या
न रही। जो पाना था, पा लिया। जिसे पाना था, पा लिया। और जिसे पाना था उसे अपने भीतर पा लिया; उसे स्वयं में पा लिया। वही मेरा स्वरूप है।
ऐसे सच्चिदानंद में जो भर गया, डूब गया, रसलीन हो गया, यह व्यक्ति दूसरों के बुझे दीये भी जला सकता है। इसके पास, इसके सत्संग में नई किरणें उतर सकती हैं। इसके सिवा दुनिया की समस्याओं को मिटाने का और कोई उपाय नहीं है।
तुम कहते हो, जीवन में बहुत दुख हैं। मैं भी यही कहता हूं कि जीवन में बहुत दुख हैं। लेकिन तुम्हारे कारण और मेरे कारण भिन्न हैं। तुम सोचते हो, जीवन में दुख हैं क्योंकि धन नहीं है, धन बढ़ जाए तो दुख कम हो जाएं। अमरीका में धन बढ़ गया, दुख कम नहीं हुए, बढ़ गए; धन के साथ बढ़ गए। गरीब आदमी कितने दुख खरीदेगा? उसकी हैसियत भी कम होती है। दुख खरीदने की भी हैसियत होनी चाहिए न! अमीर आदमी बड़े-बड़े दुख खरीदता है; खरीद सकता है। न खरीदेगा तो धन का मतलब क्या है?
मैंने सुना है, एक दर्जी हर महीने लॉटरी की टिकट खरीद लेता था। सालों से, वर्षों से चल रहा था। यह उसकी आदत ही हो गई थी, एक टिकट खरीद लेना हर महीने। इससे ज्यादा की हैसियत भी न थी। एक रुपए की एक टिकट खरीद लेता। कोई बीस साल तक यही करता रहा। और एक दिन द्वार पर एक बहुमूल्य कार आकर रुकी, लोग नीचे उतरे, थैलियों में भरे हुए नोट लाए और कहा कि तुम्हें पुरस्कार मिल गया है।
उसे तो भरोसा ही नहीं आया अपनी आंखों पर। उसने तो बात ही छोड़ दी थी। वह
तो खरीदता जाता था, आदत हो गई थी। हर महीने खरीदनी है एक तो खरीद लेता था। यह सोचा नहीं था कि मिलेगी। लाखों रुपए मिल गए लॉटरी में।
उसने तो ताला बंद कर दिया। अब काहे के लिए वह दर्जीगीरी करे? सामने ही कुआं था, चाबी कुएं में फेंक दी। अब क्या प्रयोजन रहा? साल भर में पैसा तो फुंक गया। शराब पी, वेश्याओं को भोगा, दुनिया भर की यात्रा कर आया। जितने भी खर्च के उपाय हो सकते थे, सब कर डाले। साल भर में रुपया खत्म हो गया। रुपया ही खत्म नहीं हुआ, दर्जी भी आधा खत्म हो गया। नींद भी चली गई, चैन भी चला गया। बड़ा पछताने लगा। परमात्मा से प्रार्थना करने लगा कि तूने किस पाप का मुझे यह दंड दिया कि लॉटरी मेरे नाम खोली? तुझे और कोई पापी न मिला? जिंदगी चैन से चलती थी। अपने दो पैसे कमा लेता था, खाता था, पीता था। रात शांति से सोता तो था! यह तो बड़ा उपद्रव हो गया। आज टोकियो, कल कलकत्ता, परसों दिल्ली... जाना ही पड़े। अब करे भी क्या? रुपया जो पास आ गया! आज यह स्त्री, कल वह स्त्री... जाना ही पड़े। करे क्या? महंगे से महंगे भोजन, जो पचे भी न। मगर करो क्या? अब गरीब की तरह रूखी-सूखी रोटी खाओ तो दुनिया मूढ़ कहे न! अब गरीब की तरह के दुख भोगो तो अच्छा लगे? अब तो अमीर के दुख भोगना पड़ेंगे। अमीर के अपने दुख हैं। उसे रात नींद नहीं आती।
साल भर में सब पुंक गया। जब साल भर बाद लौटा तो उसके पड़ोसी उसे पहचान
भी न सके। बिल्कुल पिचक गया था। डालडा का खाली डब्बा! बिल्कुल पिचक गया था। लोग पहचाने भी नहीं। आंखें भीतर घुस गई थीं, चश्मा चढ़ गया था। लोगों ने कहा, अरे क्या तुम वही हो जो यहां दर्जी का काम किया करता था? मगर तुम तो बड़े मस्त हुआ करते थे। यह तुम्हारी क्या हालत हुई? हम तो सोचते थे, तुम मजा लूट रहे हो। उसने कहा, मजे में ही यह हालत हुई। अब कुएं में उतरना, चाबी खोजना!
कुएं में उतरा, बामुश्किल चाबी खोज पाया। फिर अपनी दुकान शुरू कर दी। मगर पुरानी आदत! फिर उसने वह एक रुपए की टिकट खरीदनी शुरू कर दी। यह बिल्कुल संयोग की बात है लेकिन एक साल बीता कि उसको लॉटरी फिर मिल गई। जब उसको लॉटरी मिली, उसने अपना सिर पीट लिया। उसने कहा, मारे गए! हे भगवान, तू क्यों यह कष्ट दे रहा है? अब फिर उसी झंझट में से गुजरना पड़ेगा?
मगर गुजरना पड़ा। क्योंकि जब हाथ पैसा आ जाए, करो भी क्या? आदमी का अज्ञान ऐसा, मूर्च्छा ऐसी। मगर इस बार लौट नहीं पाया। आधा तो पहले ही खत्म हो गया था, आधा इस बार खत्म हो गया।

तुम यह मत सोचना कि धन के बढ़ने से लोगों के दुख कम हो जाते हैं। नहीं
तो अमरीका में दुख कम हो जाते। तुम यह भी मत सोचना कि सबके पास समान धन का वितरण हो जाए तो दुख कम हो जाते हैं। नहीं तो रूस में दुख कम हो जाते हैं। समान धन का वितरण करने में रूस में आदमी की आजादी भी चली गई, आत्मा भी चली गई। समान धन का वितरण हो गया! साम्यवाद आ गया, आदमी की आत्मा सूख गई।
सब तरह के उपाय हो चुके हैं। सब उपाय असफल भी हो चुके हैं। सिर्फ एक उपाय असफल नहीं हुआ है क्योंकि उसका वृहत पैमाने पर प्रयोग ही नहीं हुआ है। उसको असफल होने का भी मौका नहीं मिला, सफल होने की तो बात अलग। बुद्धों ने जो कहा है, वह इक्के-दुक्के लोगों ने प्रयोग किए हैं। और जिन्होंने भी प्रयोग किए हैं उनके जीवन में अपूर्व महिमा प्रकट हुई है। बड़े पैमाने पर उसका प्रयोग नहीं हुआ। अधिक लोग उस रंग में डूबे नहीं।
मैं तुमसे जो भक्ति की बात कह रहा हूं, इसीलिए कह रहा हूं। क्योंकि मनुष्य जाति के पूरे इतिहास का निष्कर्ष यही है कि अगर राम मिले तो सब मिले। राम चूका तो सब चूका। फिर राम जैसे भी मिले, खोजो। ध्यान से मिले, ध्यान से खोजो; प्रेम से मिले, प्रेम से खोजो। जिस द्वार से मिलता हो उसी द्वार से प्रवेश कर जाओ। द्वारों की फिक्र मत करो। कुरान से मिले तो ठीक, और गीता से मिले तो ठीक; जहां से मिले, जैसे मिले! इसकी फिक्र मत करना किस नाव में बैठकर उस तरफ पहुंचे। उस तरफ पहुंचो, नाव कोई भी हो--बड़ी हो कि छोटी हो। एक ही ध्यान अगर रहे कि परमात्मा से अपनी जड़ों को जोड़ लेना है तो तुम पाओगे, तुम्हारे दुख मिटे।
और जिस ढंग से तुम्हारे दुख मिटते हैं उसी ढंग से सारी दुनिया के दुख मिट सकते हैं। क्योंकि दुनिया में व्यक्ति ही हैं, समाज कहां है? तुम्हें कभी समाज मिला--कि चले जा रहे हैं रास्ते पर, समाज मिल गया! चले जा रहे हैं रास्ते पर, देश मिल गया! देश और समाज कोरे शब्द हैं। जो मिलता है वह तो व्यक्ति है। अगर एक बुद्ध के जीवन में हो सकती है बात, अगर मेरे जीवन में हो सकती है तो तुम्हारे जीवन में हो सकती है। क्योंकि हम सब एक हड्डी-मांस-मज्जा के बने हैं और एक-सी क्षमताएं हैं हमारी।
इसलिए मैं हिंदुओं की अवतारवाली धारणा में बहुत रस नहीं लेता; उसमें थोड़ी भूल है। मुझे जैनों और बौद्धों की धारणा ज्यादा सार्थक मालूम होती है। हिंदू कहते हैं, परमात्मा अवतरित होता है ऊपर से। उससे आदमी की आशा नहीं जगती। तो ठीक है, कृष्ण भगवान के घर से आए थे, पूर्ण अवतार थे, ठीक है, मस्त रहे। हम जैसे थे ही नहीं। विशिष्ट थे, अवतार थे। हम क्या करें? हम तो अवतार नहीं हैं।
अवतार की धारणा में आदमी को परमात्मा से तोड़ ही दिया गया। तो जो ऊपर
से उतरेंगे, ठीक है, मस्त होंगे, आनंदित होंगे, रसपूर्ण होंगे--कोई राम, कृष्ण! हम तो हड्डी-मांस-मज्जा के बने आदमी हैं, हम तो इसी मिट्टी से उठे हैं, इसी मिट्टी में जिएंगे, इसी मिट्टी में सरकेंगे। हम कैसे आकाश में उड़े? हमारे पास पंख कहां हैं? वे दिव्य पुरुष थे, उनके पास देह दिव्य थी। वे अमृत पुरुष थे। वे अमृत के घर से आए थे। वे विशेष थे, संदेशवाहक थे।
इस बात में मुझे बहुत ज्यादा रस नहीं है क्योंकि यह बात मनुष्य को आशा नहीं देती, मनुष्य की आशा को क्षीण करती है।
जैनों-बौद्धों की धारणा ज्यादा महत्त्वपूर्ण है, ज्यादा गौरवपूर्ण है। जैन और बौद्ध कहते हैं, परमात्मा ऊपर से नहीं उतरता, तुम्हारे भीतर से ऊपर की तरफ जाता है; उठता है। जैसे बीज से अंकुर उठता है, जैसे दीये से ज्योति ऊपर की तरफ उठती है, जैसे धूप से धुआं ऊपर की तरफ उठता है। परमात्मा तुम्हारी सुवास है जो आकाश की तरफ उठने लगती है।
महावीर मनुष्य हैं, बुद्ध भी मनुष्य हैं। और मनुष्य होते हुए परम सत्ता को पाया है। उसमें आश्वासन है। इसमें तुम्हारे लिए आशा है। इसका अर्थ हुआ: तुमसे जरा भी भिन्न नहीं हैं बुद्ध।
बुद्ध ने कहा है अपने शिष्यों से, एक दिन मैं तुम जैसा था। और मैं तुमसे कहता हूं, एक दिन तुम मेरे जैसे हो जाओगे क्योंकि हम एक ही जैसे हैं। जैसे आज तुम अंधेरे में भटकते हो, मैं भी भटकता था। और जैसे आज तुम्हें चिंताएं घेरती हैं, मुझे भी घेरती थीं। और जैसे आज विचारों की भीड़ तुम्हें

दबाए रखती है, तुम्हारी छाती पर बैठी रहती है, मेरी छाती पर भी बैठी थी। आज मैं उसके बाहर हुआ हूं, कल तुम भी हो सकते हो। मैं तुम्हारा भविष्य हूं। मुझे देखकर तुम्हें अपने पर श्रद्धा आनी चाहिए।
बुद्ध ने बड़ी अनूठी बात कहीः मुझे देख कर तुम्हें अपने पर श्रद्धा आनी चाहिए। हड्डी-मांस-मज्जा के मुझ मनुष्य में यह हो गया। तुम भी हड्डी- मांस-मज्जा के हो, तुममें भी यह हो सकता है। जब बीज देख ले किसी वृक्ष को अपने पास आकाश में उठा हुआ, तो भरोसा आ जाता है कि अगर किसी और बीज से वृक्ष पैदा होते हैं और फिर तारों से बातें करते हैं और बदलियों के साथ अठखेलियां करते हैं और हवाओं में नाचते हैं तो मेरे भीतर भी सोया हुआ है कोई। उसे जगाऊं, उसे पुकारूं।
जब मैं तुमसे कहता हूं, परमात्मा से जुड़ना है तो तुम यह मत सोचना कि आकाश में बैठे किसी परमात्मा से जुड़ने की मैं बात कर रहा हूं। मैं यही कह रहा हूं, तुम्हारे भीतर छिपी हुई संभावना को वास्तविक करना है। तुम भक्त बनो ताकि भगवान बन सको। इससे कम पर राजी मत होना। इससे कम पर जो राजी हो गया उसने परमात्मा ने जो भेंट दी थी उसे अंगीकार नहीं किया।
तुम्हारे भीतर कुंजी छिपी है; सारे रहस्य खुल जाएंगे उससे। और तुम्हारी समस्या मिटे तो तुम्हारे आसपास की समस्याएं मिटनी शुरू हो जाती हैं।
तुमने देखा नहीं, अगर तुम क्रोधित हो तो तुम आसपास पच्चीस तरह की समस्याएं खड़ी कर देते हो। क्रोधी आदमी अकेला ही थोड़े समस्या में रहता है। उसके क्रोध के कारण और लोगों के जीवन में समस्याएं खड़ी कर देता है। किसी को गाली देगा, किसी को मार देगा, किसी का अपमान करेगा। समस्याओं का जाल फैलना शुरू हो गया।
एक जरा-सा कंकड़ झील में फेंको, लहरें उठनी शुरू हो जाती हैं। और फिर वे लहरें दूर-दूर किनारों तक जाएंगी, अनंत हो जाएंगी। एक आदमी गाली देता है तो उसने एक कंकड़ फेंका चैतन्य के सागर में। अब इसकी तरंगें उठेंगी और तुम चकित होओगे यह जानकर कि ये तरंगें सदियों तक चलेंगी।
छोटी-सी घटनाएं दूर-दूर तक, दिग-दिगंत तक परिणाम लाती हैं क्योंकि यहां सब जुड़ा हुआ है। यह संसार ऐसा है जैसे मकड़ी का जाला। कभी मकड़ी के जाले के एक धागे को पकड़कर हिलाया है? और तुम चकित हो जाओगे, पूरा जाला हिल जाता है। जरा सा एक धागा हिलाओ, सारे धागे, पूरा जाल कंपने लगता है।
पश्चिम के कवि टनिसन ने कहा है, घास के एक पत्ते को छुओ, और तुमने दूर-दूर के चांद-तारे छू लिए। सारा अस्तित्व जुड़ा है, संयुक्त है, अंतर्निर्भर है।
तुम जान कर यह हैरान होओगे, एक छोटी सी घटना के कारण सारी दुनिया का इतिहास कुछ से कुछ हो जाता है। नेपोलियन जिस युद्ध में हारा उसमें हारने का कारण बड़ा अद्भभुत था। नेलसन उसका विपरीत सेनापति सत्तर बिल्लियां अपनी फौज के सामने बांधकर लाया था क्योंकि उसे यह खबर लग गई थी कि नेपोलियन बिल्लियों से डरता है।
और डरता इसलिए था कि जब नेपोलियन छह महीने का छोटा बच्चा था तो उसको रखवाली करनेवाली औरत जरा बाहर चली गई और एक बड़ा बिलाव उसकी छाती पर चढ़ कर बैठ गया। वह जो घबड़ा गया छह महीने का बच्चा तो फिर वह बड़ा हो गया, महायोद्धा हो गया, सिंहों से जूझ जाए मगर बिल्ली देखी कि उसकी दम टूटने लगे। बस बिल्ली देखी कि वह छह महीने के बच्चे जैसा व्यवहार करने लगे; फिर उसका होश-हवास खो जाए।
नेपोलियन हारा उस बिल्ली के द्वारा। अगर नेपोलियन जीतता तो दुनिया का इतिहास दूसरा होता। शायद हिंदुस्तान पर अंग्रेजों का राज्य कभी न होता। दुनिया की सारी कहानी और होती। जरा सोचो, एक बिल्ली एक छह महीने के बच्चे की छाती पर बैठ गई, उसने सारी दुनिया का इतिहास बदल दिया। मगर जिंदगी ऐसे ही जुड़ी है।
क्रोधी आदमी अपने आसपास तरंगें पैदा करता है। हो सकता है दुर्वासा ऋषि ने जो तरंगें पैदा की थीं, अब तक तुम्हारी खोपड़ी में काम करती हों। जा तो सकती नहीं, यहीं कहीं होंगी। दुर्वासा महाराज चले गए, मगर उनकी तरंगें

तो यहीं कहीं होंगी। भटक रही होंगी अनंत आकाश में। न मालूम किसके मस्तिष्क को पकड़ लेंगी। न मालूम किसके मस्तिष्क के तंतु कंप जाएंगे। न मालूम कौन उनसे जुड़ जाएगा।
जैसा क्रोध के साथ होता है वैसा ही प्रेम के साथ भी होता है। जब कोई प्रेम से भरता है तो उसके पास प्रेम की धार बहती है, प्रेम की तरंगें उठती हैं, संगीत उठता है। वह संगीत भी छूता है अनंत-अनंत काल तक। उसकी भी ध्वनि सुनी जाती है शाश्वत रूप से।
बुद्ध समाप्त नहीं हो गए और न जीसस समाप्त हुए। यहां कुछ भी कभी समाप्त नहीं होता। यहां सभी शाश्वत होकर जीता रहता है। बुद्ध ने जो स्पर्श किए थे धागे चैतन्य के, वे आज भी कंपित हो रहे हैं। आज भी कोई चाहे तो बुद्ध से जुड़ जाए और आज भी कोई चाहे तो जीसस से जुड़ जाए। आज भी कोई खोज ले सकता है मार्ग।
तुम जगत की समस्याएं मिटाना अगर चाहते हो, सच में चाहते हो तो अपनी समस्याएं मिटा लो। तुमने एक बड़ा कदम उठाया जगत की समस्याएं मिटाने के लिए।
लेकिन मेरे देखे अक्सर ऐसा है, जो लोग जगत की समस्याएं मिटाने में उत्सुक होते हैं ये वे लोग हैं जो अपनी समस्याओं को मिटाने में असमर्थ हैं, नपुंसक हैं। ये इतने नपुंसक हैं अपनी समस्याएं मिटाने में कि ये दूसरों की समस्या मिटाने में लग जाते हैं ताकि दिखाई न पड़े कि अपनी भी झंझटें हैं।
इसी तरह के लोग समाजसेवक हो जाते हैं, राजनीतिज्ञ हो जाते हैं, सारी दुनिया को ठीक करने चल पड़ते हैं। इनसे सावधान रहना। ये उपद्रवी लोग हैं। ये खुद अपना हल नहीं कर पाए हैं लेकिन दूसरे का हल करने चल पड़े हैं।
एक डॉक्टर के घर एक आदमी गया और उसने कहा कि मैं क्षय रोग से पीड़ित हूं। सब इलाज करवा चुका हूं। इस गांव के सब डॉक्टरों के चरण दबा चुका हूं, अब आप ही बचे हैं। और लोगों ने कहा है कि आप इस बीमारी में बड़े अनुभवी हैं। डॉक्टर ने कहा, बहुत अनुभवी हूं, मेरा तीस साल का अनुभव है। तुम निश्चित ठीक हो जाओगे। दवाएं शुरू हो गईं। छह महीने तक दवाएं चलीं। हालत और बिगड़ती चली गई। पैसा भी जा रहा है, हालत भी बिगड़ रही है, आखिर उस आदमी ने पूछा, आप कहते थे तीस साल का अनुभव है, कुछ परिणाम नहीं दिखाई पड़ता। उसने कहा, तीस साल का अनुभव है। तीस साल से मैं खुद ही इसी बीमारी से परेशान हूं।
इस तरह के अनुभवी लोग हैं। इस तरह के अनुभवी लोगों से सावधान रहना। इस तरह का अनुभवी आदमी अगर तुम्हारे पैर दबाने लगे तो बचना। अक्सर जब कोई पैर दबाता है तो बचने का मन नहीं होता, और तुम पैर फैलाकर लेट जाते हो कि चलो कोई समाजसेवा कर रहा है, इसको भी पुण्य हो रहा है, अपने को भी लाभ हो रहा है। मगर ध्यान रखना, जो लोग पैर से शुरू करते हैं, गर्दन दबाने पर अंत करते हैं। जिसने पैर दबाया वह गर्दन दबाएगा। आज नहीं कल वह कहेगा, दिल्ली जाऊंगा। दिल्ली जाना है। अब मुझे दिल्ली भेजो। अब मैंने इतनी सेवा की, उसका पुरस्कार चाहिए। इतने दिन ऐसे ही थोड़े तुम्हारे पैर दबाए! अब थोड़ा गर्दन दबाने का भी अवसर दो।
एक राजनेता चुनाव में खड़ा था और लोगों को समझा रहा था कि जिस पार्टी
को आपने अब तक चुनाव में जिताया और तीस साल से जिताते आए, उसने तुम्हें चूस लिया, लूट लिया, तुम्हें बरबाद कर दिया। भाइयो, अब एक अवसर हमें भी दो। कृपा करके अपने को ही बदलो। दूसरों की चिंता न करो। तुम बदले तो तुम्हारी बदलाहट से दूसरों को भी लाभ निश्चित होता है। और दूसरा कोई उपाय नहीं है।
दूसरा प्रश्न : मनुष्य-जीवन का संघर्ष क्या है? इस संघर्ष का लक्ष्य क्या है? मनुष्य जीवन का संघर्ष है मनुष्य होने के लिए। मनुष्य मनुष्य की तरह पैदा नहीं होता। मनुष्य केवल संभावना लेकर पैदा होता है। जन्म के साथ कोई मनुष्य नहीं होता। कुत्ते जरूर कुत्ते होते हैं, बिल्लियां बिल्लियां होती हैं। कबूतर कबूतर होते हैं, कौवे कौवे होते हैं। मगर कोई मनुष्य जन्म के साथ मनुष्य नहीं होता। मनुष्यता अर्जित करनी होती है। यही

मनुष्य का भेद है इस सारी पृथ्वी पर। यही मनुष्य की गरिमा है, गौरव है। और यही मनुष्य का संताप और पीड़ा।
तुम कुत्ते से यह नहीं कह सकते कि तुम पूरे कुत्ते नहीं हो। कहो, तुम्हीं को खुद भद्दा लगेगा कि यह बात ही क्या कह रहा है। सब कुत्ते पूरे कुत्ते हैं। लेकिन तुम किसी आदमी से कह सकते हो कि भाई, तुम पूरे आदमी नहीं हो। और इसमें कुछ असंगति नहीं होगी, कुछ गलती नहीं होगी।
अक्सर तो अधिक लोगों के संबंध में यही सत्य है कि वे पूरे आदमी नहीं हैं। कुत्ता तो पूरा का पूरा पैदा होता है। तुमने देखा? मनुष्य का बच्चा इस जगत में सबसे असहाय बच्चा है। हिरन का बच्चा पैदा हुआ और चला अपने काम पर। गाय का बच्चा पैदा हुआ और खड़ा हुआ। मनुष्य के बच्चे को अपने पैरों पर खड़े होने में पचास साल लगते हैं। पचहत्तर साल की उम्र में पच्चीस साल: एक तिहाई अपने पैर पर खड़े होने में लग जाते हैं। जब तक बेटा विश्वविद्यालय से न लौटे, नौकरी न करे, तब तक अपने पैर पर खड़ा नहीं होता। पच्चीस साल पैर पर खड़े होने में लग जाते हैं।
मनुष्य का बच्चा सबसे ज्यादा असहाय है। मनुष्य के बच्चे को छोड़ दो बिना मां-बाप के, एक बच्चा नहीं बचेगा। पशु-पक्षियों के बच्चे बच जाएंगे। वे पूरे के पूरे पैदा होते हैं। कुछ फिर और अर्जित नहीं करना है। आदमी के बच्चे को सब कुछ अर्जित करना है। उसे सब सीखना है, विकसित होना है, निखरना है, बनना है। आदमी का जीवन एक सृजनात्मक प्रक्रिया है।
तभी तो कोई कुत्ता कुत्ते से ऊपर नहीं उठ पाता। कुत्ते से नीचे भी नहीं गिरता, ख्याल रखना; ऊपर भी नहीं उठता। आदमी आदमी से नीचे भी गिर सकता है और आदमी से ऊपर उठ जाए तो गौतम बुद्ध। और आदमी भी हो जाए तो भी बड़ी सुगंध पैदा होती है।
मनुष्य का संघर्ष है मनुष्य होने के लिए। और जो मनुष्य हो जाता है उसे पता चलता है कि मैं परमात्मा हो सकता हूं अब। मनुष्य के जन्म पर जन्म होते हैं। सारे पशु एक बार जन्मते हैं, मनुष्य दो बार जन्मता है। इसलिए हमारे पास एक कीमती शब्द हैः द्विज--दुबारा जन्मा। ब्राह्मण को द्विज कहते हैं। सभी ब्राह्मण द्विज होते नहीं, प्रतीक मात्र है। मेरे लेखे जो द्विज हो उसको ब्राह्मण कहना चाहिए। सभी ब्राह्मणों को द्विज नहीं कहना चाहिए। जो द्विज हो उसको ब्राह्मण कहना चाहिए, फिर चाहे वह चमार ही क्यों न हो। द्विज का अर्थ है: जो दुबारा जन्मा। एक तो जन्म हुआ मां-बाप से। एक संभावना लेकर हम आए हैं कि मनुष्य हो सकते हैं। फिर मनुष्य हो गए, फिर दूसरा जन्म होता है स्वयं के भीतर, स्वयं के अंतस्तल में, स्वयं की अंतरात्मा में। उस दूसरे जन्म से कोई बुद्ध होता है, महावीर होता है, कृष्ण होता है। वह दूसरा जन्म मनुष्य को ब्राह्मण बनाता है। क्यों ब्राह्मण बनाता है? क्योंकि उस दूसरे जन्म से व्यक्ति ब्रह्मा को अनुभव करता है इसलिए ब्राह्मण हो जाता है। सभी ब्राह्मण द्विज नहीं होते, सभी द्विज ब्राह्मण होते हैं। मगर द्विज होना तो बड़ी दूर की बात है, हम तो पहले जन्म को ही पूरा नहीं कर पाते। हमारा पहला जन्म ही अधूरा रह जाता है। हम आदमी ही नहीं हो पाते।
डायोजनीज जिंदगी भर एक लालटेन लिए घूमता रहा। दिन हो कि रात, भरी सूरज
की दुपहरी में भी लालटेन लिए रहता था जलती। और कोई भी मिलता तो गौर से उसका चेहरा देखता लालटेन उठाकर। लोग पूछते, होश में हो? क्या कर रहे हो? वह कहता, मैं आदमी की तलाश कर रहा हूं।
और जब मर रहा था लोगों ने पूछा कि भई, जिंदगी हो गई--लालटेन रखे था अपने बगल में, जब मर रहा था--तुम्हें जिंदगी हो गई आदमी की तलाश करते, भरी दुपहरी में लालटेन लेकर खोजते थे, आदमी मिला? उसने कहा, आदमी तो नहीं मिला पर परमात्मा का धन्यवाद, है मेरी लालटेन चोरी नहीं गई, यही क्या कम है? मेरी लालटेन बच गई। ऐसे-ऐसे लोग मिले, कि मुझे लालटेन बचने का डर हो गया था। एक से एक पहुंचे हुए पुरुष मिले। मेरी लालटेन बच गई यही क्या कम है? आदमी तो नहीं मिला।
आदमी ही आदमी नहीं हो पाता। और आदमी हो जाए तो फिर दूसरा द्वार खुलता है।

एक समय था,
मुझे किसी की खोज नहीं थी खो भी जाऊं,
तो अंदर विश्वास कहीं था
मुझे खोज लेगा ही कोई
एक समय था,
जब मेरा कुछ खोया-सा था
और खोजता था मैं उसको
ले अंदर विश्वास कहीं पर
पा ही जाऊंगा तारों में, फूलों में दुनिया की अनगिन चलती-फिरती छायाओं में एक समय था,
अपना खोया पाने का संतोष मुझे था
पर मानव की छाती में
संतोष नहीं ज्यादा दिन टिकता
असंतोष अधिकारप्राप्त वासी जो उसमें वही जन्म लेने,
पलने, बढ़ने के कारण
उसे नहीं रहने देता है
सच पूछो तो मानव का संघर्ष नहीं है
खोए-चाहे को उपलब्ध प्राप्त करने में
है उस उद्धत अधिवासी को ही निकालकर
अपना घर खाली रखने में
कांटा आए या गुलाब की कलिका आए,
स्वागत पाए
एक तो प्रक्रिया है कि हम मनुष्य बनें। मनुष्य बनने की प्रक्रिया अस्मिता की प्रक्रिया है, अहंकार की प्रक्रिया है। फिर एक दूसरी प्रक्रिया है कि हम अहंकार से मुक्त हों, अहंकार के पार जाएं। और जो अहंकार के पार जाता है--
सच पूछो तो मानव का संघर्ष नहीं है
खोए-चाहे को उपलब्ध प्राप्त करने में
है उस उद्धत अधिवासी को ही निकालकर
अपना घर खाली रखने में
कांटा आए या गुलाब की कलिका आए,
स्वागत पाए
फिर एक घड़ी आती है जब तुम्हारे भीतर अहंकार छाप जमा कर बैठ जाता है, उस अहंकार से मुक्त होना पड़ता है। यह बहुत उल्टी प्रक्रिया मालूम होगी। ऐसे ही जैसे तुम सीढ़ी से चढ़ कर छत की तरफ जाते हो तो पहले सीढ़ी लगाते हो, सीढ़ी बनाते हो, फिर सीढ़ी पर चढ़ते हो। लेकिन फिर सीढ़ी पर ही बैठे नहीं रह जाते; नहीं तो छत पर कभी नहीं पहुंच पाओगे। छत पर पहुंचते हो तभी, जब तुम सीढ़ी को छोड़ देते हो। सीढ़ी को पीछे छोड़ देते हो। और समझदारों ने तो कहा है कि सीढ़ी को गिरा देना ताकि लौटने का कोई उपाय ही न रह जाए; ताकि यात्रा आगे ही आगे हो।
अहंकार एक सीढ़ी है। हम बच्चे को गरिमा सिखाते हैं उसकी अस्मिता की।
हम उसे कहते हैं तू है; तू विशिष्ट है। अपने को सम्हाल, अपने को निखार, अपने गौरव-गरिमा को बढ़ा। अपने को सिद्ध कर। फिर एक घड़ी आती है, हमें उससे कहना पड़ता है, अब यह अहंकार खूब हो गया, यह महत्वाकांक्षा खूब हो गई। अब इसे छोड़। अब यह सीढ़ी गिरा दे। अब अपने को खाली कर। अब यह जो उद्धत अधिवासी भीतर बैठ गया है, यह जो अहंकार, इसको भी जाने दे। अब इसको विदा कर दे। अब शून्य हो जा।
विरोधाभासी लगता है मार्ग, कि पहले अहंकार को बनाना पड़ता है, फिर उसको विदा करना पड़ता है। मगर यही मार्ग है। राह पर चलना होता है मंजिल पर पहुंचने के लिए। फिर मंजिल पर पहुंचने के लिए राह को छोड़ देना होता है।

ऐसे ही आधी यात्रा मनुष्य बनने की और फिर आधी यात्रा मनुष्य से मुक्त होने की। जिस दिन तुम मनुष्य हो जाओगे, धन्यभागी हो क्योंकि आधी यात्रा पूरी हुई। अब मंदिर बहुत दूर नहीं। तुम मंदिर के योग्य हो गए। अब दूसरी और भी कठिनतर चढ़ाई शुरू होगी--शिखर पर पहुंचने का अंतिम संघर्ष। अब मनुष्य को भी विदा कर देना होगा। अब तुम्हें सीखना होगा शून्य होनाः कि मैं ना-कुछ हूं। इसी को तो ध्यान कहते हैं, समाधि कहते हैं। अब तुम्हें निर्विचार होना होगा, निर-अहंकार होना होगा, निर्विकार होना होगा। अब तुम्हें बिल्कुल मिट जाना होगा कि तुम बचो ही न। और जिस घड़ी तुम बिल्कुल मिट जाओगे, उसी घड़ी तुम पाओगे, परमात्मा हो गए हो। इधर मिटे, उधर हुए। यह अंतिम आहुति है जो मनुष्य को देनी पड़ती है।
यही मनुष्य का संघर्ष हैः पहले मनुष्य बनो, फिर मनुष्य से मुक्त हो जाओ। मनुष्य के ऊपर बड़ा दायित्व है क्योंकि मनुष्य पर परमात्मा ने बड़ा भरोसा किया है। सारे पशुओं को पूरा-पूरा पैदा कर दिया है क्योंकि भरोसा नहीं है कि वे अपने से ऊपर बढ़ पाएंगे। आदमी को खाली छोड़ दिया, स्वतंत्रता दी है। अवसर दिया है कि तू अपने को बना, निर्मित कर। इस अर्थ में मनुष्य को परमात्मा ने स्रष्टा बनाया है कि तू अपना सृजन कर। और सृजन में आनंद है। और जो अपने को बना लेगा उसके आनंद की कोई सीमा नहीं है।
थोड़ा सोचो तो! जब एक मां एक बच्चे को जन्म देती है तो कैसी महिमा-मंडित
हो जाती है! कैसी आभा झलकने लगती है! जब तक स्त्री मां नहीं बनती तब तक उसमें एक आभा की कमी होती है; तब तक स्त्री कल जैसी होती है, फूल नहीं होती।
जब एक बच्चे को जन्म देती है तब पंखुड़ियां खुल जाती हैं, तब फूल हो जाती है।
तुमने गर्भवती स्त्री को देखा? उसके चेहरे पर एक दीप्ति आ जाती है।
उसके भीतर एक नया जीवन उमग रहा है, एक नया प्राण, एक नया प्रारंभ। परमात्मा ने उसे एक धरोहर दी है।
और जब कोई स्त्री मां बन जाती है तो सिर्फ बच्चे का ही जन्म नहीं होता;
वह एक पहलू है सिक्के का। दूसरा पहलू यह है कि एक मां का भी जन्म होता है। स्त्री स्त्री है, लेकिन मां बात ही और है। मातृत्व का जन्म होता है, प्रेम का जन्म होता है।
तुमने एक कवि की कविता को पूरा होते देखा? तब वह नाच उठता है। उसने कुछ बनाया। तुमने एक चित्रकार को अपने चित्र को पूरा करते देखा है? उसकी आंखें देखीं? कैसा विस्मय-विमुग्ध! भरोसा नहीं कर पाता कि मुझसे और यह हो सकता है? संगीतज्ञ जब सफल हो जाता है संगीत को जन्माने में तो उसके प्राण आनंद की बाढ़ से भर जाते हैं।
मगर ये सब छोटे सुख हैं। जब कोई व्यक्ति अपने भीतर बुद्धत्व को जन्माने में सफल होता है, उसके सामने ये सब छोटे सुख हैं। सारे संगीतज्ञ, सारे कवि, सारे चित्रकार, सारे मूर्तिकार भी इकट्ठे हो जाएं तो उसे एक आनंद का... कोई तुलना नहीं हो सकती। सब इकट्ठे हो जाएं तो भी उस आनंद के सामने बूंद की तरह हैं, वह आनंद सागर की तरह है।
अपने को सृजन करने का आनंद, अपने भीतर छिपी हुई संभावना को वास्तविक बना लेने का आनंद... । सृजन का अर्थ क्या है? सृजन का अर्थ हैः जो अदृश्य है। उसे दृश्य में लाना। अभी तक कविता नहीं थी जगत में और तुमने एक कविता बनाई अदृश्य में थी, उसे खींच कर दृश्य में लाए। शून्य में थी, उसे शब्द का परिधान दिया। अव्यक्त थी, उसे व्यक्त किया।
एक मूर्तिकार ने मूर्ति बनाई। अभी पत्थर अनगढ़ पड़ा था। किसी ने सोचा
भी न था कि इस पत्थर में कुछ हो सकता है। उसने छेनी उठाई और पत्थर में मूल्य आ गया और पत्थर में जीवन मालूम होने लगा। पत्थर में बुद्ध उठे कि मीरा उठी कि कृष्ण उठे, कि पत्थर में बांसुरी बजी, कि पत्थर में फूल खिले। जो अदृश्य था वह दृश्य हुआ।
सबसे बड़ा अदृश्य कौन है? परमात्मा सबसे बड़ा अदृश्य है; और जब तुम्हारे भीतर दृश्य हो जाता है तो सबसे बड़े सृजन की घटना घटती है। मनुष्य का संघर्ष यही सृजन है। परमात्मा को जन्म देना है।

तीसरा प्रश्नः वासना क्या है और प्रार्थना क्या है?

मेरे देखे, एक ही सीढ़ी के दो छोर--जैसे बीज और वृक्ष; जैसे अंडा और मुर्गी। वासना ही एक दिन पंख पा लेती है और प्रार्थना बन जाती है। वासना प्रार्थना है जन्म की प्रक्रिया में। वासना अंधेरे में टटोल रही है मार्ग प्रार्थना होने का। वासना भटकना है, मार्ग की खोज है, द्वार की तलाश है। इसलिए मेरे मन में वासना की कोई निंदा नहीं है।
मेरे मन में निंदा है ही नहीं; किसी भी बात की निंदा नहीं है। मेरे मन में सर्व स्वीकार है क्योंकि मैं देखता हूं, जब सब परमात्मा को स्वीकार है तो उसमें से कुछ भी अस्वीकार करना परमात्मा को अस्वीकार करना है।
मैंने सुना है, सूफी फकीर बायजीद एक पड़ोसी से बहुत परेशान था। सालभर
से उसके पड़ोस में था। वह बड़ा उपद्रवी था पड़ोसी। जब बायजीद ध्यान करने बैठता तब वह ढोल बजाने लगता; या बायजीद नमाज पढ़ता तो वह गालियां बकने लगता। बायजीद शिष्यों को समझाता तो वह कुछ उपद्रव मचा देता। कूड़ा-करकट इकट्ठा करके बायजीद के झोंपड़े में फेंक देता।
एक रात बायजीद प्रार्थना करा, प्रार्थना करके उठ रहा था, परमात्मा की झलक से भरा था। झलक इतनी स्पष्ट थी कि उसने कहा, हे प्रभु! इतनी कृपा की है कि मुझे आज झलक दी है, इतना और कर दो कि इस पड़ोसी से छुटकारा करो। और पता है परमात्मा की क्या आवाज बायजीद को सुनाई पड़ी? उसने कहा, बायजीद, इस आदमी को मैं पचास साल से बरदाश्त कर रहा हूं और तू तो अभी साल ही भर हुआ... ! और पचास साल तो इस जिंदगी के! पिछली जिंदगियों का तो हिसाब ही मत रख। अगर मैं इसे बरदाश्त कर रहा हूं और मैंने आशा नहीं छोड़ी और मैं आशा बांधे हूं कि यह भी बदलेगा। तू भी आशा न छोड़।
परमात्मा अगर वासना के विपरीत होता तो वासना होती ही नहीं। महात्मा विपरीत है इसलिए मैं कहता हूं, महात्मा गलत है। परमात्मा विपरीत नहीं है वासना के। हर बच्चे को वासना से सजा कर भेजता है, वासना भरकर भेजता है। वासना ऊर्जा है, शुद्ध ऊर्जा है, संपदा है। कहां लगाओगे इस पर सब कुछ निर्भर करेगा। यही वासना धन में लग जाएगी तो धन-कुबेर हो जाओगे। यही वासना पद के पीछे पड़ जाएगी तो किसी देश के राष्टपति हो जाओगे। यही वासना परमात्मा की दिशा में लग जाएगी तो प्रार्थना हो जाएगी।
वासना शुद्ध ऊर्जा है। वासना तटस्थ है। वासना अपने आप में कोई लक्ष्य लेकर नहीं आई है, लक्ष्य तुम्हें तय करना है। फिर तुम्हारी ऊर्जा उसी दिशा में बहनी शुरू हो जाती है। स्त्री को प्रेम करोगे तो वासना घर बसाएगी। परमात्मा को प्रेम करोगे, मंदिर बनेगा। परिवार को प्रेम करोगे तो छोटा-सा परिवार होगा सारे संसार के विरोध में। सारे संसार को प्रेम करोगे तो कोई विरोध में न होगा। सारा संसार तुम्हारा घर होगा। तुम पर निर्भर है। वासना प्रार्थना का बीज है। और जब तक वासना प्रार्थना नहीं बन जाती
है तब तक तुम्हें संसार में लौट-लौट कर आना पड़ेगा क्योंकि तुमने पाठ सीखा नहीं। फिर भेज दिए जाओगे कि और जाओ, फिर उसी कक्षा में भर्ती हो जाओ। जब तक तुम उत्तीर्ण न हो जाओ... । और उत्तीर्ण होने की कसौटी क्या है? जिस दिन तुम्हारी सारी वासना रूपांतरित हो जाए प्रार्थना में, जिस दिन परमात्मा के अतिरिक्त तुम्हें कुछ और दिखाई न पड़े। तुम चाहो तो परमात्मा को। फिर चाहे तुम किसी से भी संबंध जोड़ो, किसी को भी चाहो लेकिन हर चाहत में परमात्मा की ही चाहत हो। तुम्हारी पत्नी में परमात्मा दिखाई पड़े, तुम्हारे बेटे में परमात्मा दिखाई पड़े, तुम्हारे मित्र में परमात्मा दिखाई पड़े, तुम्हारे शत्रु में परमात्मा दिखाई पड़े।
इसलिए जीसस ने कहा है, शत्रु को भी प्रेम करना अपने जैसा। यह मत भूल जाना कि उसमें भी परमात्मा छिपा है। एक क्षण को भी यह बात विस्मरण मत करना, नहीं तो उतनी प्रार्थना चूक जाएगी; उतने तुम प्रार्थना से नीचे गिर जाओगे।
बिहिश्ते-रंगों-बू को दिल में मेहमां कर दिया तुमने

गमें-इम्रोज को ख्वाबे-परीशां कर दिया तुमने

जहाने-कैफो-कम के मरहलों में इक तबस्सुम से
खिरद को बे-नियाजे-सूदो-नुक्सां कर दिया तुमने
मुहब्बत की निगाहों ने उगाया रेत में सब्ज
हमारा दिल बयाबां था, खयाबां कर दिया तुमने
मिट्टी में वासना के कारण ही प्राण पड़ गए हैं, रेगिस्तान में मरूद्यान उगा है। इस जीवन में तुम्हें जितनी हरियाली दिखाई पड़ती है, सब वासना की है। पक्षी गीत गाते हैं, वे वासना के गीत हैं। कोयल अपने प्रेमी को पुकार रही है। मोर अपने प्रेमी के लिए नाच रहा है। वे जो उसने सुंदर पंख फैलाए हैं वे वासना के पंख हैं। वह मोर-पंखों का जो सौंदर्य है वह वासना का ही सौंदर्य है। फूल खिले हैं, पूछो वैज्ञानिक से; वे सब वासना के ही फूल हैं। उन फूलों में वृक्षों के रजकण हैं, वीर्यकण हैं। तितलियां अपने पैरों में लगा कर उन्हें पहुंचा देगी उनकी मंजिल तक।
अगर तुम गौर से देखोगे तो तुम चकित हो जाओगे। तुम जब गुलाब के फूल तोड़
कर परमात्मा के चरणों पर चढ़ाते हो तो तुमने गुलाब की वासना परमात्मा के पैरों पर चढ़ाई--चढ़ानी थी अपनी वासना।
मुहब्बत की निगाहों ने उगाया रेत में सब्ज
हमारा दिल बयाबां था, खयाबां कर दिया तुमने
किनारे-आरजू में फूल बरसा कर तबस्सुम के
मेरे जौके-सुखन को गुल-बदामां कर दिया तुमने
नशीली मदभरी आंखों की वे छलकी हुई बूंदें
मिजाजे-आबो-गिल में जिन्से-तूफां कर दिया तुमने
परमात्मा ने मिट्टी में जीवन पैदा कैसे किया? कैसे फूंके प्राण? किस सूत्र पर फूंके प्राण? वासना के सूत्र पर ही।
जवानी की हविस को बेकली बख्शी मुहब्बत की
मुहब्बत को तरक्की देकर ईमां कर दिया तुमने
पहले जवानी को, हविस को बेकली बख्शी मोहब्बत की। बेचैनी दी जवानी को वासना की।
जवानी की हविस को बकली बेक्शी मुहब्बत की
मुहब्बत को तरक्की देकर ईमां कर दिया तुमने
और फिर एक दिन मुहब्बत को ही बढ़ाया, बढ़ाया, चढ़ाया, चढ़ाया--ईमां कर दिया तुमने। उसी को धर्म बना दिया, उसी को प्रार्थना बना दिया।

अदाहो शुक्रिया क्या इस नजर की दिलनवाजी का
कि जिसको मजहरी के दिल में पैकां कर दिया तुमने
रबाबे-दिल में मेरे फाकाकश दुनिया के शेवन के
उसे अपनी मुहब्बत में गजलख्वां कर दिया तुमने
वे तुम्हारे भीतर जो अभी गीत उठ रहे हैं, शुरू में तो वासना के होंगे लेकिन वे ही गीत, जरा उनकी दिशा बदले, वे ही गीत तीर बन जाएं परमात्मा की तरफ तो प्रार्थना के हो जाएंगे।
इसलिए अक्सर प्रार्थना की गहराइयों में वासना के प्रतीक पाए जाते हैं। सिग्मंड फ्रायड यह नहीं समझ सका; उसे प्रार्थना का कुछ पता नहीं था। उसने समझा कि मीरां जैसे भक्तों ने जो बातें की हैं वे दबी हुई वासना की हैं। उसके समझने का भी कारण है।
तुमने भी भक्तों के वचन सुने हैं। कितने भक्तों की तो मैंने तुमसे बात की है। तुम्हें बार-बार कुछ बातें समझ में आती होंगी। मीरां कहती है कि सेज सजाई है, फूलों से सजाई है। प्यारे, तुम्हारी प्रतीक्षा करती हूं, कब आओगे? यह तो वासना का प्रतीक है। सेज फूलों से सजाना, प्रेमी की प्रतीक्षा! कि सेज सजाकर बैठी हूं और तुम नहीं आए। और रात बीत चली और सुबह होने के करीब है। क्या आज भी न आओगे?
मीरां की चर्चा नहीं की है फ्रायड ने क्योंकि मीरां का फ्रायड को पता नहीं था। लेकिन ईसाई फकीर--उनकी चर्चा की है। थेरेसा की चर्चा की है जो कि मीरां का ईसाई पर्यायवाची है, कि थेरेसा के मन में वासना है। कि वह कहती है

कि मुझे गले लगा लो। वह कहती है कि मैं तो जीसस, तुम्हारे ही विवाह में बंध गई हूं। मैंने तो तुमसे ही गांठ जोड़ ली है। तुम मेरे दुल्हा।
वह तो भला हो कि उसको कबीर का पता नहीं था, नहीं तो वह और झंझट खड़ी करता। क्योंकि स्त्री कहे जीसस को कि तुम मेरे दूल्हा, चलो, चलेगा। स्त्री है, क्षमा की जा सकती है। मगर कबीर, वे कहते हैं, "मैं तो राम की दुल्हनिया।" पुरुष होकर राम की दुल्हनिया! फ्रायड तो न मालूम क्या-क्या पढ़ लेता इसमें। कबीर की खूब फजीहत करवाता। बच गए कबीर हलाकान होने से। नहीं तो वह कहता, इसमें होमोसेक्सुआलिटी के लक्षण हैं। क्योंकि फ्रायड को हर चीज में वासना दिखाई पड़ती है।
और उसकी गलती भी नहीं है। हर चीज में वासना है। लेकिन उसे यह पता नहीं
है कि ऐसी भी घड़ियां आती हैं, जब वासना अपने से ऊपर उठती है, नये रंग लेती है, नये निखार लेती है, नये पंख खोलती है।
प्रतीक तो वही रहते हैं क्योंकि आदमी की भाषा कहां? और कहां से हम प्रतीक लाएं? अब कितना प्यारा प्रतीक है, कबीर जब कहते हैं कि मैं तेरी दुल्हनिया। कुछ कह रहे हैं जो और किसी ढंग से कहा नहीं जा सकता। इस जगत में प्रेम के संबंध से और कोई गहरा संबंध नहीं है। अब कैसे जतलाएं कि परमात्मा से हमारा क्या संबंध हो गया है! कैसे जतलाएं इस दुनिया को?
क्या कहें कि दुकानदार और ग्राहक का जो संबंध है वही परमात्मा का और हमारा संबंध है? जंचेगा नहीं। कि पार्टी और पार्टी के सदस्य का जो संबंध है वही परमात्मा का और हमारा संबंध है? वह भी जंचेगा नहीं क्योंकि पार्टी बदलने में देर कितनी लगती है? आयाराम, गयाराम! रामजी कभी इधर, रामजी कभी उधर। कुछ पता चलता नहीं। सांझ कहीं थे, सुबह कहीं। झंडा बदलने में देर कितनी लगती है! डंडे पर कोई भी झंडा लगा लिया। होशियार आदमी अपनी सूटकेस में सभी झंडे रखता है। जब जैसी जरूरत होगी!
कैसे कहें कि परमात्मा से जो हमारा संबंध हुआ वह किस तरह का संबंध है! नहीं, कबीर ठीक ही कह रहे हैं, कि वह संबंध सिर्फ प्रेम से ही कहा जा सकता है। उसकी ताजगी ऐसी है। उसे पति-पत्नी का संबंध भी नहीं कह सकते। क्योंकि पति-पत्नी का संबंध तो बासा हो जाता है और परमात्मा का संबंध सदा ताजा रहता है। सुहागरात चुकती ही नहीं।
अब फ्रायड अगर सुहागरात शब्द सुन ले तो एकदम कहेगा कि बस ठहरो, पहले इसका विश्लेषण होना चाहिए। सुहागरात! सुहागरात उससे कभी चुकती ही नहीं। मनुष्यों के संबंध में जो सुहागरातें आती हैं, आती हैं, चली जाती हैं। यहां तो सब चीज पुरानी हो जाती है। परमात्मा के साथ कोई चीज कभी पुरानी नहीं होती, सब सदा नई, ताजी। सुबह की ओस की तरह ताजी और स्वच्छ और कुंआरी! इसलिए कबीर यह नहीं कहते कि मैं तेरी पत्नी। जंचती नहीं बात। दुल्हनिया! अभी-अभी, ताजी-ताजी! अभी शायद घूंघट भी नहीं उठा। अभी गांठ बांधी ही गई है। शायद शहनाई अभी बज रही है। इतनी ताजी! अभी शायद मंत्रोच्चार चल ही रहा है। शायद वेदी की अग्नि भी अभी बुझी नहीं है। अभी मेहमान भी विदा हुए नहीं हैं। वह पुलक, ताजी पुलक! अभी-अभी खिली हुई कली, उससे ही तुलना दी जा सकती है। दुल्हन के हृदय से ही तुलना दी जा सकती है। उसकी छाती धड़क रही है। आनंद-विभोर है। रोआं-रोआं रोमांचित है। प्यारे का मिलन हो गया है। कितने दिनों की प्रतीक्षा है! कितने रातों का इंतजार! कितने आंसू! आज सब सफल हो गए हैं। वह घड़ी आ गई, परम घड़ी आ गई।
प्रेम से ही प्रार्थना समझाई जा सकती है। क्योंकि हमारे पास इस जगत में प्रेम से और गहरा कोई संबंध नहीं है।
तुम वासना के विपरीत मत हो जाना। वासना के पार जाना है लेकिन जो वासना
के विपरीत हो जाता है वह वासना के पार नहीं जा पाता। वासना में उलझ जाता है, संघर्ष में पड़ जाता है, द्वंद्व में पड़ जाता है। तुम तो वासना से मैत्री रखना। वासना का साथ ले लेना। जहां तक वासना ले जा सके वहां तक उसका उपयोग कर लेना। वासना की तरंग पर चढ़ जाना; जितनी दूर तक ले जा सके तुम्हारी नाव को, ले चलना।
और जब वासना आगे न ले जा सकेगी तब तुम पाओगे, एक और बड़ी तरंग आई प्रार्थना की। लेकिन वासना की यात्रा पहले पूरी हो जानी चाहिए, तभी

प्रार्थना की तरंग आती है। वासना तुम्हारे पास है, प्रार्थना तुम्हारा भविष्य है। वासना की सीमा तुम्हें पूरी करनी ही होगी। जो कच्चे भाग जाते हैं उनके जीवन में प्रार्थना कभी नहीं आती।
इसलिए मैं कहता हूं अपने संन्यासी को, संसार से भागना मत, संसार को पूरा जी लेना। परमात्मा ने भेजा है तो जीने के लिए भेजा है, भागने के लिए नहीं भेजा। परमात्मा भगोड़ों में भरोसा ही नहीं करता। और हम तो भगोड़ों में इतना भरोसा करते हैं कि जिसका हिसाब नहीं। हम तो भगोड़ों को बड़ा सम्मान देते हैं।
जरा सोचो, तुम्हारे तर्क की भ्रांति तो देखो! युद्ध से कोई भाग जाता
है तो तुम उसको कायर कहते हो और जीवन के युद्ध से जो भाग जाते हैं, उनको तुम महात्मा कहते हो। चले गए हिमालय, बैठ गए एक गुफा में, तुम उनके चरण छूने चले जाते हो। ये भगोड़े हैं। ये कमजोर हैं। ये इतने बलशाली नहीं थे कि जगत की चुनौती को झेल सकते।
लेकिन हम भगोड़ों का इतना आदर करते हैं कि हमने कृष्ण को नाम ही दे रखा हैः रणछोड़दास जी। रणछोड़दास जी के मंदिर भी हैं। रणछोड़दास का मतलब समझते हो? रण छोड़ भागे जो। भगोड़ेजी! मगर तुम्हारे सभी महात्मा रणछोड़दास जी हैं। तुम छोड़ कर मत भागना। जीना है, इस संघर्ष से गुजरना है। इस आग से गुजरकर ही निखरोगे, कुंदन बनोगे।
वासना ही धीरे-धीरे उस अनुभव में ले जाएगी जहां तुम पाओगे कि वासना अंधेरे में टटोलना था, प्रार्थना रोशनी है। वासना टटोलने जैसा था, प्रार्थना रोशन जगत है। मगर वासना में जो भी महत्त्वपूर्ण था वह प्रार्थना में बच जाता है; जो भी कचरा था वही जल जाता है। इसलिए कबीर कहते हैं, मैं तेरी दुल्हनिया। मीरां कहती है, मैंने सेज सजाई है, तुम आओ। प्यारे, तुम आओ। प्रीतम को पुकारती है।
यह सुराही, यह फरोग-ए-मै-ए-गुल रंग, यह जाम
चश्म-ए-साकी की इनायत के सिवा कुछ भी नहीं
तुम एक दफा वासना की कठिनाइयों से गुजर जाओ, अछूते निकल जाओ, फिर उसका प्रसाद बरसता है।
यह सुराही, यह फरोग-ए-मै-ए-गुल रंग, यह जाम
चश्म-ए-साकी की इनायत के सिवा कुछ भी नहीं
फिर उसका प्रसाद है। उनको मिलती है यह भेंट, जो वासना से पककर आते हैं;
जो वासना के जगत से इतना जीकर आते हैं कि अब वासना की उन पर कोई पकड़ नहीं रह जाती। अगर दबाई वासना, पकड़ जारी रहेगी। वासना भीतर से पकड़े रहेगी, पुकारती रहेगी। तुम बच न सकोगे। अगर वासना को निकल जाने दिया सहज, स्वाभाविक सरलता से, तुम एक दिन हलके हो जाओगे।
मेरे निरीक्षण में यह बात है और मनोवैज्ञानिक इस बात से राजी हैं कि अगर कोई व्यक्ति ठीक से, सम्यकरूपेण जीवन को जीए तो बयालीस साल की उम्र होते-होते वासना अपने आप प्रार्थना में रूपांतरित होने लगेगी। जैसे चौदह साल की उम्र में अचानक वासना जगती है वैसे ही अट्ठाईस साल की उम्र में वासना अपने पूरे शिखर को पहुंच जाती है। चौदह साल और--और बयालीस साल की उम्र में शिखर से नीचे उतर जाती है।
पश्चिम की शोधें भी इस बात के करीब आ रही हैं कि बयालीस साल के बाद मनुष्य की असली समस्या जीवन की नहीं होती, धर्म की होती है। बयालीस साल के बाद जो उलझनें आती हैं वे इस बात की हैं कि हम कैसे जीवन को धार्मिक अर्थ दें, कैसे जीवन को धार्मिक रंग दें! और अगर बयालीस साल तक धर्म का कोई रंग जीवन में न रहा हो तो आदमी विक्षिप्त होने लगता है।
कार्ल गुस्ताफ जुंग ने लिखा है कि मेरे पास जितने मरीज आए हैं उनमें मैंने सदा यह पाया है कि बयालीस साल या उसके बाद के मरीजों का असली सवाल मनोवैज्ञानिक नहीं है, आध्यात्मिक है।
जीवन को सहज जियो। तुम्हारे प्रश्न में इसी की गंध है। शायद तुम सोचते हो वासना अलग है, प्रार्थना अलग है। नहीं, प्रार्थना की ही प्राथमिकता है वासना; भूमिका है। यद्यपि भूमिका ही ग्रंथ नहीं है। भूमिका के पार जाना होगा।

वासना क ख ग है, बाराखड़ी है, वर्णमाला है। वर्णमाला पर ही नहीं रुक जाना है। कोई कालिदास की कविताएं सिर्फ वर्णमाला ही नहीं हैं, वर्णमाला से बहुत ज्यादा हैं। पिकासो के चित्र कोई रंग और कैनवास का जोड़ ही नहीं हैं, रंग अैर केनवॉस से बहुत ज्यादा हैं। जब कोई संगीतज्ञ वीणा बजाता है तो सिर्फ हाथ और तारों का ही जोड़ नहीं है, हाथ और तारों के बीच में कुछ अनहोना घट रहा है। नहीं घटना चाहिए ऐसा घट रहा है। कुछ असंभव हो रहा है। वासना तो वर्णमाला है। प्रार्थना उस वर्णमाला से बनाई गई कविता है। वासना तो ईंटों जैसी है। उन्हीं ईंटों से मकान भी बनता है तुम्हारा, वेश्या का घर भी बनता है उन्हीं ईंटों से और उन्हीं ईंटों से मंदिर भी बनता है, यह ख्याल रखना। ईंटें वही हैं, बनाने वाले पर सब निर्भर है।
उसकी कृपा होती है उस पर ही जो जीवन से गुजरता है बिना भागे। कहता है, जहां मुझे ले जाना है, जिन अंधेरों में मुझे ले जाना है, मैं जाऊंगा। जिन गड्ढों में मुझे गिरना है, मैं गिरूंगा। क्योंकि गड्ढों में अगर तू गिराता है तो इसीलिए गिराता होगा, ताकि मैं चलना सीख सकूं। बिना गड्ढे में गिरा कोई चलना सीखा है?
जरा सोचो कि कोई मां अपने बच्चे को गिरने ही न दे। फिर बच्चा चलना नहीं सीख पाएगा। गिरने देना होगा। उसके घुटने भी टूटेंगे, चमड़ी भी छिलेगी, कभी खून भी गिरेगा। उसे गिरने देना होगा। ऐसे ही वह एक दिन खड़ा होगा। गिर-गिर कर खड़ा होगा। खड़े होने के पीछे हजार बार गिरना जुड़ा है। घुटने के बल सरकेगा पहले। तुम यह मत कहना उससे कि यह ठीक नहीं, यह मनुष्य की गरिमा से नीचे है। घुटने के बल सरकता है मर्द बच्चा होकर? खड़ा हो! पहले दिन से तुम खड़ा करना चाहोगे, वह कभी खड़ा ही नहीं हो पाएगा। उसे घुटने के बल भी सरकने देना।
वासना ऐसी ही है जैसे प्रार्थना घुटने के बल सरक रही है। प्रार्थना
ऐसी ही है जैसे बच्चा खड़ा हो गया। अब सरकना नहीं पड़ता जमीन पर। अब योग्य हो गए पैर। अब मजबूत हो गए पैर।
परमात्मा जिन अंधेरों में ले जाए, जाना। श्रद्धावान वही है। उसी को मैं श्रद्धालु कहता हूं, जो भागता ही नहीं; जो कहता है, जो दिखाओगे, देखेंगे; जहां ले जाओगे, जाएंगे, जहां गिराओगे, गिरेंगे; जो भूल करवाओगे, करेंगे। तुम जो करोगे, जो तुम्हारी मर्जी है, होने देंगे। हम सब तुम्हारी मर्जी पर छोड़ते हैं। ऐसा आदमी एक दिन पककर आता है। उसी पकान में वह माधुर्य है जिसका नाम प्रार्थना है। प्रार्थना ऊपर से उतरती है।
वासना नीचे से ऊपर की यात्रा है। प्रार्थना ऊपर से नीचे की यात्रा है। आधी यात्रा तुम्हें करनी है वासना की, आधी यात्रा परमात्मा करेगा। एक कदम तुम चलो तो तालमुद कहती है कि परमात्मा हजार कदम चलता है।
और पहली बार जब तुम्हें परमात्मा की झलकें दिखाई पड़नी शुरू होंगी, तब तुम भी चौंकोगे। तुम्हें भी वही भ्रांति होगी जो फ्रॉयड को होती है। तुम भी कहोगे, यह क्या हो रहा है? यह क्या है? क्योंकि वे पहली झलकें भी तुम्हारे प्रेम के इशारों से भरी होंगी। वे पहली झलकें भी तुम्हारे प्रेम की अनुभूतियों से सिक्त होंगी।
मुझे धोखा न देती हों कहीं तरसी हुई नजरें।
तुम्हीं हो सामने या फिर वही तस्वीर-ए-ख्वाब आई?
बहुत बार लगेगा कि परमात्मा को अनुभव कर रहा हूं कि यह मेरी कोई वासना
उठ रही है? शुरू-शुरू में स्वाभाविक है यह भ्रांति। जल्दी ही भ्रांति मिट जाती है क्योंकि वासना के बाद तुम हमेशा अतृप्त छूटते हो। प्रार्थना के पहले भी तृप्ति है, मध्य में भी तृप्ति है, अंत में भी तृप्ति है। बुद्ध ने कहा है, मैं तुम्हें जो फल दे रहा हूं वह पहले भी मीठा है, मध्य में भी मीठा है, अंत में भी मीठा है।
वासना जो फल देती है, पहले बहुत मीठे, पीछे बहुत कड़ुवे हो जाते हैं। वासना के सब फल आज नहीं कल जहर हो जाते हैं। आश्वासन तो होता है अमृत का, मिलता है जहर। प्रार्थना मीठी ही मीठी है; मिठास है, मदिरा है।
और तुम फिक्र न करो, उसकी अनुकंपा अपार है। तुम एक बार उसके साथ चलो तो।

हमने तो ऐसियों से किनारा न किया
लेकिन तूने दिल आजुर्दा न किया
हमने तो की है जहन्नुम की तदबीर
मगर तेरी रहमत ने गवारा न किया
हमने तो ऐसियों से किनारा न किया--हमने तो बुरी बातें न छोड़ीं, न बुरे लोग छोड़े, न बुरी आदतें छोड़ीं। हम तो भोग-विलास में उतरे, गए।
हमने तो ऐसियों से किनारा न किया
लेकिन तूने दिल आजुर्दा न किया
लेकिन तू भी खूब छाती रखता है! तू कभी हारा नहीं। तूने कभी आशा न छोड़ी।
हम कितने ही बड़े गड्ढे में गिरे, तूने सदा आशा रखी कि हम गौरीशंकर पर कभी प्रतिष्ठित होंगे। तूने दिल दुखी न किया। तू निराश न हुआ। तू हताश न हुआ। हमने तो ऐसियों से किनारा न किया
लेकिन तूने दिल आजुर्दा न किया
हमने तो की है जहन्नुम की तदबीर
और हमने तो जो भी किया उससे नरक जाएं यह सीधी तार्किक निष्पत्ति है।
हमने तो की है जहन्नुम की तदबीर
मगर तेरी रहमत ने गवारा न किया
लेकिन तेरी करुणा कैसे बर्दाश्त करती? तेरी करुणा कैसे हमें नरक में गिरने देती?
वासना अगर श्रद्धापूर्ण हो तो एक दिन प्रार्थना तुम्हारे भीतर उतरेगी। उसकी अनुकंपा तुम पर बरसेगी। प्रार्थना आती है, लाई नहीं जाती। जो लोग थोप-थोपकर प्रार्थना ले आते हैं उनकी प्रार्थना का कोई भी मूल्य नहीं है। जो जबरदस्ती प्रार्थना करते रहते हैं क्योंकि करनी चाहिए--भय के कारण, लोभ के कारण, वे जानते ही नहीं कि प्रार्थना का अर्थ क्या है। उन्हें प्रेम का भी कुछ पता नहीं है।
इश्क है कैफे-बेखुदी, इसको खुदी से क्या गरज
जिसकी फिजा हो वस्लो-हिज्र, इश्क वो इश्क ही नहीं
जिसको लाभ और हानि, मिलन और विरह, नरक और स्वर्ग की चिंता बनी है उसे अभी प्रेम का पता ही नहीं है। प्रेम न तो लाभ की फिक्र करता है, न हानि की फिक्र करता है। न तो प्रेम भयभीत होता है स्वर्ग से, न लिप्सा से भरता है स्वर्ग की।
इश्क है कैफे-बेखुदी--इश्क में तो आदमी अहंकार को भूल ही जाता है; तभी
तो आनंद उमगता है। जहां अहंकार गया वहीं आनंद के झरने फूटते हैं। इश्क है कैफे- बेखुदी--यह तो आत्म-तल्लीनता का नाम है। इसको खुदी से क्या गरज? लोभ और भय तो सब अहंकार के हैं।
... इसको खुदी से क्या गरज
जिसकी फिजा हो वस्लो-हिज्र
और जिसको एक ही ख्याल बना है--यह कैसे पा लूं, वह कैसे पा लूं, ईश्वर कैसे मिल जाए, मोक्ष कैसे मिल जाए, वैकुंठ कैसे मिल जाए!
जिसकी फिजा हो वस्लो-हिज्र, इश्क वो इश्क ही नहीं
--उसे अभी पता ही नहीं कि प्रेम क्या है। प्रेम मांगता ही नहीं।
वासना मांग है, प्रेम दान है। प्रार्थना दान है। जब तुम प्रार्थना में भी कुछ मांगते हो परमात्मा से, तुम भूल गए। तुमने वासना को ही प्रार्थना का नाम दे दिया फिर। जब तक मांग है तब तक वासना है। और जब तक मांग है, तुम भिखारी हो। और ध्यान रखना, भिखारियों को परमात्मा नहीं मिलता, सम्राटों को मिलता है। मालिकों को मिलता है। मालिक है तो मालिकों को मिलता है। उस जैसे होओगे तो ही मिलेगा न! जैसे तो तैसा मिलेगा न!
वासना को जियो, अनुभव करो। जागरूक होकर वासना की पूरी प्रतीति लो। उसकी क्षणभंगुर सुख की झलक भी देखो और क्षण के पीछे आनेवाली लंबी अंधेरी रात, विषाद, दुख और पीड़ा को भी भोगो। वासना में कभी-कभी खिले हुए फूल को भी सूंघो और वासना के सारे कांटों को भी छिद जाने दो तुम्हारे हृदय की गहराई तक, ताकि तुम्हें वासना का पूरा रूप प्रकट हो जाए। इन्हीं थपेड़ों में तुम पक जाओगे। इसी पकान से एक दिन तुम पाओगे, आ गए बाहर।

वासना छोड़नी नहीं पड़ती, वासना के अनुभव से एक दिन वासना छूट जाती है।
और जिस दिन वासना छूट जाती है उसी दिन वही ऊर्जा जो वासना में संलग्न थी, मुक्त होती है; धूप के धुएं की भांति आकाश की तरफ उठती है। और जिस दिन तुम्हारे भीतर आकाश की तरफ उठना शुरू होता है उस दिन आकाश भी तुम्हारे ऊपर झुकना शुरू हो जाता है। उस मिलन का नाम ही स्वर्ग, मोक्ष, वैकुंठ, या जो तुम और नाम देना चाहो।

चौथा प्रश्नः क्या यह सत्य नहीं है कि अंत समय "रामनाम" के स्मरण से निश्चय ही मुक्ति हो जाती है?

धर्म इतना सस्ता नहीं है। काश धर्म इतना सस्ता होता तो फिर कोई जरूरत
ही न थी। फिर बुद्ध नाहक छह साल ध्यान की चेष्टा में रत रहे। नासमझ थे! तुम ज्यादा समझदार हो। फिर महावीर बारह वर्ष मौन रहे, पागल थे। तुम ज्यादा हुशियार! अंत समय में एक बार नाम ले लेंगे राम का।
पहली बातः जिन्होंने यह कहा है, तुम उनका अर्थ भी नहीं समझे। तुम कुछ
का कुछ समझ गए। तुम अर्थ का अनर्थ कर लिए हो। जरूर शास्त्रों में ऐसे वचन हैं लेकिन उनका अर्थ बड़ा और है।
ज्ञानियों ने कहा है कि अंत समय निर्णायक है। क्योंकि अंतिम समय में तुम्हारी नई जीवन-यात्रा का पहला बीज पड़ेगा। जब तुम मर रहे हो, जब तुम्हारी मृत्यु आ रही है तो नये जीवन का प्रारंभ हो रहा है। एक तरफ दरवाजा बंद हो रहा है, दूसरी तरफ दरवाजा खुल रहा है। तो अंतिम घड़ी बड़ी निश्चयात्मक घड़ी है। उस घड़ी तुम जो भी याद करोगे उसका परिणाम होने वाला है। अगर अंत घड़ी तुम हरिनाम को स्मरण कर लो तो निश्चय ही तुम्हारी यात्रा प्रभावित होगी।
ऐसा समझो, एक छोटा प्रयोग करो तो तुमको समझ में आ जाएगा। रात सोते वक्त जैसे-जैसे नींद उतरने लगे, हलकी-हलकी खुमारी आ गई है नींद की। अभी एकदम सो भी नहीं गए हो, एकदम जागे भी नहीं हो, मध्य में अटके हो; तब कोई भी एक विचार दोहराते रहना मन में। कोई भी एक विचार! "दो और दो चार, दो और दो चार, दो और दो चार"--और इसी को दोहराते-दोहराते सो जाना। तुम बड़े चौंकोगे, जब तुम सुबह उठोगे तो जो पहला विचार तुम्हें याद आएगा वह होगा, "दो और दो चार; दो और दो चार।" जो अंतिम था रात वही सुबह प्रथम हो जाएगा।
ठीक ऐसा ही मृत्यु और जन्म के बीच घटता है क्योंकि मृत्यु भी एक गहरी नींद है। मरते समय जो अंतिम विचार होगा वह जन्म के साथ पहला विचार हो जाएगा। और अगर हरि-स्मरण से अंत हो तो हरि-स्मरण से प्रारंभ होगा। और जिसका जीवन गर्भ में भी हरि-स्मरण से प्रारंभ हो जाए उसके जीवन में क्रांति तो हो ही जाएगी इसमें कोई शक नहीं।
मगर तुम कुछ और मतलब समझ गए हो। हरि-स्मरण अंत में कौन कर सकेगा? वही
कर सकेगा जिसने जीवनभर किया हो। जिसने जीवन भर दूसरी चीजों का स्मरण किया है वह मरते वक्त हरि-स्मरण कर सकेगा तुम सोचते हो? असंभव! जिसने सदा धन को ही सोचा, जिसको जीवन में बस एक ही संगीत संगीत मालूम पड़ा--रुपये की खनखनाहट; और जिसने सौंदर्य जाना तो एक--हरे नोट का सौंदर्य; उस आदमी को तुम सोचते हो मरते वक्त हरि-स्मरण आएगा? नोटों की गड्डियां दिखाई पड़ेंगी।
और दिखाई पड़नी बिल्कुल स्वाभाविक है, तर्कयुक्त हैं क्योंकि यही वह जिंदगी भर इकट्ठा किया, अब सब छूटा जा रहा हैं। इसी को इकट्ठा करने में मारे गए। गड्डियों पर गड्डियां दिखाई पड़ेंगी। वह धन जो इकट्ठा कर लिया है वह उसे दिखाई पड़ेगा। यह तिजोड़ी जो छूटी जा रही है, यह उसे दिखाई पड़ेगी। इस अंत घड़ी में हरि नाम का वह स्मरण करेगा कैसे?
अंत समय में हरि नाम का स्मरण तो तभी संभव है जब जीवन भर इसकी तैयारी
की गई हो। तुम क्या सोचते हो अचानक वृक्ष में फल लग जाएगा? बीज बोया हो, खाद डाली हो, पानी सींचा हो, वृक्ष पर बागुड़ लगाई हो, वृक्ष को बचाया हो हजार उपद्रवों से--जानवर हैं, बच्चे हैं, फिर तूफान हैं, आंधी हैं, तुषार है, पाला है, ओले हैं, इन सबसे बचाया हो तब कहीं एक दिन वृक्ष में फल लगते हैं।

जीवन भी एक वृक्ष है। अंत में हरि-नाम का फल तभी लग सकता है जब जीवन भर उसकी तैयारी की हो; जब सब भांति उसका आयोजन किया हो। तुम क्या सोचते हो ऊपर से कोई चिपका देगा हरिनाम? कि तुम मर रहे हो, कोई तुम्हारी खोपड़ी पर लिख देगा हरिनाम।

ऐसा ही हो रहा है। कोई तो मरता है, कोई दूसरा उसके कान में कह रहा है, "राम जपो राम"। दूसरा कह रहा है राम जपो राम। और उस आदमी को कुछ भी सुनाई भी नहीं पड़ेगा। सुनाई पड़ भी नहीं सकता है। लेकिन मतलब लोगों ने यही समझ लिया है।

शास्त्र जब कहते हैं तो ठीक ही कहते हैं कि अंत समय जो परमात्मा का स्मरण करेगा वह मुक्त हो जाएगा। लेकिन अंत समय कौन परमात्मा का स्मरण करेगा? वही करेगा अंत समय परमात्मा का स्मरण, जिसने जीवनभर स्मरण को साधा हो, सम्हाला हो। लेकिन लोग अपने मतलब की बात निकाल लेते हैं। तुम शास्त्र थोड़े ही पढ़ते हो, तुम खुद को शास्त्र में पढ़ते हो।

मैंने सुना, एक सर्कस कंपनी ने विज्ञापन छपवाया कि आज दिखाए जानेवाले सर्कस के शो में एक बिल्कुल नया खेल दिखाया जाएगा। यह विज्ञापन पढ़ कर सर्कस देखने के लिए भीड़ उमड़ पड़ी। सर्कस शुरू होने पर दर्शकों ने देखा कि एक सुंदर लड़की ने ओंठों पर लिपिस्टक लगा कर सिंह के पिंजरे में प्रवेश किया और सिंह ने अपनी जुबान से लड़की के ओंठों की लिपिस्टक पोंछ डाली।

यह खेल देखते वक्त सारे दर्शक स्तंभित हो गए। खेल खत्म होते ही तालियों की गड़गड़ाहट से शामियाना गूंज उठा। तभी लाउड-स्पीकर से आवाज आई, अगर इसी प्रकार का खेल करने की किसी दर्शक की हिम्मत हो तो वह सामने आ जाए। उसे पांच हजार रुपया पुरस्कार-स्वरूप दिया जाएगा। कुछ समय तो सन्नाटा छाया रहा, फिर एक दुबला-पतला नौजवान सामने आया और उसने चुनौती स्वीकार कर ली। उसे जब लिपिस्टक दी गई तो वह बोला कि मैं यह चुनौती स्वीकार करने के लिए तैयार हूं। मेरी शर्त यही है कि मैं सिंह की भूमिका निभाऊंगा। वैसे मेरा नाम भी सरदार भूटासिंह है।

ऐसी ही समझ होती है। कुछ पढ़ते हो, कुछ समझते हो। अपने मतलब की निकाल लेते हो। सरदार भूटासिंह ने कहा, पहले इस सिंह को निकाल पिंजड़े के बाहर करो, फिर मैं भीतर जाऊंगा और सिंह की भूमिका निभाऊंगा। नाम भी मेरा सरदार भूटासिंह है।

तुम शास्त्र तो पढ़ लेते हो, लेकिन शास्त्र कैसे पढ़ोगे? तुम्हारे पास ध्यान कहां जो शास्त्र का अर्थ दे सके? तुम्हारे पास भक्ति कहां जो शास्त्र तुम्हारे हृदय में गूंज पैदा कर सके? चालाकी है, बेईमानी है, पाखंड है, उसी में से तुम हिसाब निकाल लोगे। तुम पूछते हो, "क्या यह सत्य नहीं है कि अंत समय राम-राम के स्मरण से निश्चय ही मुक्ति हो जाती है?"

अंत समय स्मरण वही आएगा जिसका स्मरण जीवन भर रहा है।

मैंने सुना है, श्री 1008 महर्षि भूतनाथ मरे। मरणशय्या पर महर्षि पड़े थे। शिष्य इकट्ठे हो गए थे, सोचते थे कि कुछ गहरी बात कहेंगे। ऐसे जिंदगी भर ज्यादा बोले नहीं थे। क्योंकि भूतनाथ के गुरु उनको कह गए थे कि बोलना भर मत, नहीं तो भद्द हो जाएगी। चुप रहना! तेरे चुप रहने में ही लोग तुझे बुद्धिमान समझेंगे। तू बोला कि फंसा।

सो भूतनाथ चुप ही रहे थे। मगर उनकी चुप्पी का बड़ा प्रभाव पड़ा था लोगों पर। खोपड़ी में तो उनके बहुत कुछ चलता था। खोपड़ी पर किसका बस! गुरु भी कहे तो भी क्या होने वाला है! लेकिन ओंठ वे बंद रखे थे। उनकी ख्याति खूब हो गई थी। कई उनके शिष्य थे कि गुरु हो तो ऐसा! देखो कैसा मौन बैठा है! बोलता ही नहीं। मौनी ही तो मुनि कहलाते हैं। तो उन्होंने सोचा, मरते वक्त प्रार्थना की कि गुरुदेव, कुछ तो बोल जाओ! कोई संदेश दे जाओ।

डोल रहे थे भूतनाथ आधे जिंदा, आधे मुर्दा। धुंधला-धुंधला सा सब था। सब शिष्य पास आकर, कान लगाकर तत्पर हो गए। सन्नाटा छा गया। मालूम है भूतनाथ क्या बोले? बोले, अब हम तो जा रहे हैं, मुन्नीबाई का ध्यान रखना। हमारी बड़ी प्रेमी थी। और मुन्नीबाई थी गांव की वेश्या। यही घूमता रहा होगा खोपड़ी में। उस वक्त भी यही घूम रहा होगा कि मुन्नीबाई का क्या होगा! मुन्नालाल तो चले, मुन्नीबाई का क्या होगा?

कहां का हरिनाम! जिंदगीभर मौन रहे, मरते वक्त मुन्नीबाई याद आई।
लेकिन याद वही आएगा जो भीतर चलता रहा है। मरते क्षण तुम धोखा न दे पाओगे।
जिंदगी में भला धोखा दे लो, मौत तुम्हारी असलियत खोल देगी।
ऐसा ही हुआ सेठ चूहड़मल फूहड़मल के साथ। पढ़ लिया शास्त्र में कि अंत समय हरिनाम ले लो, प्रभुनाम ले लो; सो बेटे का नाम ही उन्होंने भगवानदास रख दिया। इतना तो पक्का था कि मरते वक्त बेटे को बुलाना पड़ेगा क्योंकि चाबी भी देनी पड़ेगी, तिजोड़ी भी संहलवानी पड़ेगी, आने के लिए इशारे भी देने पड़ेंगे आगे के लिए। तो इसी बहाने नाम परमात्मा का ले लेंगे।
इसीलिए तो लोग अपने बेटों का नाम भगवान के नाम पर रखते हैं। हिंदुओं में, मुसलमानों में सारे नाम सदियों से भगवान के नाम पर रख गए हैं। पीछे एक चालबाजी है। वह चालबाजी यह है कि चलो इसी बहाने जब भी बुलाया, "भगवानदास!" ऊपर वाले भगवान समझेंगे कि हमको बुला रहा है। ऐसे वहां भी खाते में लिखा- पढ़ी होती रहेगी। न बुलाना पड़ेगा, न कोई भजन-कीर्तन करना पड़ेगा। दिन में दो- चार-दस दफे तो बेटे को बुलाना ही पड़ेगा।
मगर पहले ही से बात बिगड़ गई। भगवानदास इसके पहले कि भगवानदास की तरह जाने जाते, भग्गू हो गए। भगवान ऊपर नाराज होने लगा। क्योंकि जब भी वह बुलाए बाप, "भग्गू!" बहुत गुस्सा आए भगवान को कि हद्द हो गई! यह सोचते थे कि खाताबही में पुण्य लिखा जाएगा, नरक की तैयारी होने लगी।
फिर मरने का वक्त आया, चूहड़मल फूहड़मल ने भग्गू को बुलाया, भग्गू आए भी। अब जैसे भग्गू होते हैं वैसे थे वे। पैंट पहना था संकरी मोहरीदार। छपी छींट की बुशशर्ट पहने थे। दिलीप कट बाल कटवाए हुए थे। चूहड़मल-फूहड़मल को आग लग गई। कहा, अरे भग्गू, नालायक, उल्लू के पट्ठे! बाप तो मर रहा है और तू हीरो बना घूम रहा है!
चूहड़मल-फूहड़मल अब तक नरक में पड़े हैं। क्योंकि तुम भगवान को कहोगे नालायक, उल्लू के पट्ठे तो फल पाओगे। ऐसी बातों में मत उलझना। ऐसी झंझटों से दूर रहना। ऐसे तो बिना ही पुकारे चले गए होते तो भी ठीक था।
और तीसरी घटनाः एक थे बाबा मुर्दानंद। "सीताराम-सीताराम" की रट लगाए रखते। बस, कुछ भी कहो वे सीताराम-सीताराम ही कहते। कोई कुछ भी कहे, वे सीताराम-सीताराम! उन्होंने एक तोता भी पाल रखा था। वह तोता भी दोहराता, सीताराम-सीताराम।" दोनों में कभी-कभी तो बिल्कुल छिड़ जाती प्रतियोगिता--"सीताराम-सीताराम।" तोता भी कहता, "सीताराम-सीताराम।" बाबा मुर्दानंद का गुण ही यह था कि वे एक टांग पर वर्षों खड़े रहे थे। वही उनकी खूबी थी, और उनमें कुछ था नहीं।
ऐसी खूबियों से तो लोग महात्मा हो जाते हैं। एक टांग पर खड़े रहे, गजब
कर दिया! ऐसे सब बगुले एक टांग पर खड़े हैं। और सब बगुले खादी पहनते हैं-- शुभ्र सफेद! सब बगुले गांधीवादी हैं।
ऐसे बाबा मुर्दानंद एक ही पैर पर खड़े-खड़े बड़े प्रसिद्ध हो गए थे। उनकी देखा-देखी तोता भी एक टांग पर खड़ा रहता था। आखिर बाबा मुर्दानंद का तोता था, कोई साधारण तोता नहीं था। और फिर जोश में आ जाता था। जब बाबा मुर्दानंद एक टांग पर खड़े होकर कहते, "सीताराम-सीताराम", तो वह भी एक टांग पर खड़ा होकर कहता, "सीताराम-सीताराम।" इसकी बड़ी महिमा थी। लोग आते, इसका दर्शन करने आते थे कि बाबा तो हैं ही पहुंचे हुए, तोता भी बड़ा पहुंचा हुआ है। तोते बड़े धार्मिक होते हैं। और धार्मिक लोग बिल्कुल तोते होते हैं।
फिर बाबा मुर्दानंद के मरने का वक्त आया। ऐसे तो वे मरे-मराए थे ही। मगर मरे-मराए हो तो भी मौत आती है। मौत छोड़ती ही नहीं पीछा। जिंदों को भी मारती है, मुर्दों को भी मारती है। मौत आ गई। शिष्य भी इकट्ठे हो गए, बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गईं पूरी गोबरपुरी भर गई बाबा मुर्दानंद के शिष्यों से। सब आखिरी संदेश पाने की इच्छा में आतुर हैं संदेश बाबा कुछ दे जाएं। जिंदगी भर एक टांग पर खड़े रहे। ऐसी तपश्चर्या न देखी न सुनी। और बाबा मुर्दानंद ने क्या कहा, पता है? उन्होंने कहा, हाय, मेरे तोते को चिउड़ा कौन खिलाएगा? मियां मिट्ठु बोल उठा "सीताराम-सीताराम!" और कहते हैं कि बाबा तो नरक गए, मियां मिट्ठु वैकुंठ चला गया, क्योंकि उसने मरते वक्त "सीताराम-सीताराम!"

बाबा मुर्दानंद अभी भी नरक में पड़े सोच रहे होंगे, मेरे तोते को चिउड़ा कौन खिलाएगा? नरक में करोगे भी क्या? जो यहां सोचा है उसी की जुगाली करनी पड़ती है। ख्याल करना, नरक में जुगाली होती है। जैसे भैंसें करती हैं न जुगाली! पहले घास चर लिया, फिर बैठी, फिर जुगाली कर रही हैं। संसार में चरना हो जो भी चरना हो, फिर नरक में जुगाली करनी पड़ती है। फिर उसी-उसी को चरो, बार-बार चरो। तोता तो चला गया मोक्ष।
मगर मुझे शक है इस कहानी पर। तोता भी कैसे मोक्ष जा सकता है? तोते को
भी क्या मतलब सीताराम से? क्या प्रयोजन? अर्थ भी तो पता नहीं है तोते को। निरर्थक इस उच्चार से क्या होता है? यंत्रवत तोता दोहराता है, "सीताराम-सीताराम।"
तो तुम यह भी मत सोचना कि मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि अगर जीवनभर अयास करोगे "सीताराम-सीताराम-सीताराम", तो मरते वक्त सीताराम निकल जाएगा। वह तोते जैसा होगा। अयास का मतलब यह नहीं है कि तुम सीताराम की रटंत लगाए रखो। अयास का अर्थ है, तुम परमात्मा की प्रतीति को अनुभव करना शुरू करो। तुम उसको धीरे-धीरे अपने से जोड़ो, अपने को उससे जोड़ो।
आकाश में तारे हों तो कभी लेटकर घास पर आकाश के तारों को देखो--शांत, मौन! तुम्हें उसकी छबि थोड़ी-थोड़ी झलकेगी। जब बसंत आए और सुगंधित हवाएं बहें तो कभी वृक्षों के तले जाकर बैठो, तुम्हें वहां परमात्मा की मौजूदगी थोड़ी अनुभव होगी। बसंत उसी की खबर लाता है। उसी से गुजरने के कारण तो कलियां फूल बन जाती हैं। वही पास से गुजरता है इसलिए तो मधुमास होता है। सूरज उगे सुबह तो "सीताराम-सीताराम" करके चूक मत जाना। नहीं तो लोग बस "सीताराम-सीताराम" कर रहे हैं, सूरज उग रहा है उसको देख ही नहीं रहे। परमात्मा द्वार पर उग रहा है और वे सीताराम-सीताराम में लगे हैं। सूरज उगे तो भर आंख देखना। यह उसका ही रंग, उसका ही ढंग, यह उसकी लाली, यह उसका प्रकाश!
ऐसा ही भीतर भी एक दिन सूरज उगता है। बाहर के सूरज को देखते-देखते भीतर की भी स्मृति जगेगी, सुधि जगेगी। रात आकाश में चांद हो तो चांद से थोड़ी गुफ्तगू करना, थोड़ा वार्तालाप करना। संगीत कहीं हो, सुनना; डुबकी मारना।
संगीत निकटतम ले जाता है परमात्मा के क्योंकि संगीत में भाषा नहीं होती, शब्द नहीं होते इसलिए गलत समझने का उपाय नहीं होता। न संगीत सच होता है न झूठ होता है, संगीत बस होता है। ऐसा ही परमात्मा भी है। तुम वीणा सुन कर डुबकी मार लेना। सुनते रहना; सुनते-सुनते सन्नाटा छा जाएगा। सुनते- सुनते तुम्हारे भीतर की वीणा भी झंकृत होने लगेगी। जब तुम्हारी भीतर की वीणा बाहर की वीणा के साथ झंकृत होने लगे, तब तुम्हें अहसास होगा, क्या अर्थ है परमात्मा का।
मैं तुमसे सीताराम-सीताराम जपने को नहीं कह रहा हूं। मैं कह रहा हूं
कि तुम जीवन में जितने उपाय से हो सके, जितने ढंग से हो सके, परमात्मा को याद करने के बहाने खोजो। हर बहाना उसकी याद का बना लो। हर बहाने से उसे पुकार लो। हर बहाने से अपने और उसके बीच धीरे-धीरे सेतु बनाते जाओ तो एक दिन मृत्यु की घड़ी में उसके अतिरिक्त और कोई भी न बचेगा। सब छूट जाएगा। वही संगी है, वही साथी है।
फिर तुम तोते की तरह, मियां मिट्ठु की तरह सीताराम-सीताराम नहीं कहोगे। कहना ही नहीं पड़ेगा। कहने की बात है क्या? कुछ दोहराने की बात है क्या? लेकिन तुम्हारा अंतस्तल भावाभिभूत होगा, उसकी सुवास से भरा होगा। तुम उसके संगीत में डूबे-डूबे विदा हो जाओगे। और जो उसके संगीत में डूबकर विदा हो गया उसके लिए मृत्यु अमृत बन जाती है। उसके लिए देह से छूटना दुख का कारण नहीं होता, आनंद का कारण होता है। उसे देह से छूटने का अर्थ मुक्ति होती है, स्वातंत्र्य होता है, परम स्वतंत्रता होती है। पूरा आकाश अपना हुआ। एक छोटे से घड़े में बंद थे, उससे मुक्त हो गए। सारा विराट अपना हुआ। एक छोटे आंगन से छूटे और सारा आकाश अपना। खोया कुछ भी नहीं, पाया सब। और वह आंगन भी इस सारे आकाश में सम्मिलित है ही; इसलिए वह कहीं गया नहीं।

ऐसे आनंद-भाव से नाचते हुए, मस्त, मगन, तृप्त, संतुष्ट, एक गहरे परितोष में अगर डूबते-डूबते तुम विदा हो जाओ तो इसका नाम है प्रभु-स्मरण।
मगर तुम तो शास्त्रों को अपने हिसाब से समझ लेते हो। तुम शास्त्रों
पर थोड़ी दया करो। शास्त्रों का अर्थ भी समझना हो तो शास्ताओं से पूछो, खुद अर्थ मत लगाओ। तुम्हारी चालबाजी, तुम्हारा पाखंड, तुम्हारी बेईमानियां, तुम्हारी होशियारियां शास्त्र के शब्दों को भी इरछा-तिरछा कर देंगी। उन पर ऐसी व्याख्या आरोपित कर देंगी कि अगर कृष्ण की किताब होगी तो कृष्ण सिर पीट लेंगे और बुद्ध की किताब होगी तो बुद्ध सिर पीट लेंगे।
लोगों ने ऐसे-ऐसे अर्थ लगा लिए हैं कि कृष्ण जरूर सोचते होंगे कि अगर मैं चुप ही रहा होता तो अच्छा था। कम से कम अनर्थ तो न होता। अब गीता की एक हजार टीकाएं हैं। जिसको जो मन हो वैसा अर्थ लगाओ। जिसको जो अर्थ डालना हो डाल दो। और कैसा मजा है, विपरीत अर्थ लोग निकालते हैं। कोई कहता है अद्वैतवाद है गीता में, कोई कहता है द्वैतवाद है; और दोनों अपना अर्थ निकाल लेते हैं। शंकराचार्य अपना अर्थ निकाल लेते हैं, रामानुज अपना अर्थ निकाल लेते हैं, निंबार्क अपना, वल्लभ अपना। सब अपना अर्थ निकाल लेते हैं। यह तो खूब मजा हुआ! या तो गीता में कोई अर्थ है ही नहीं, इसलिए जिसकी जो मर्जी हो निकाल लो। या फिर गीता इतना काव्यपूर्ण वक्तव्य है कि उसमें अर्थ तरल हैं, बहते हुए हैं। तुम जब तक तरल न हो जाओगे, बह न जाओगे उसके साथ तब तक तुम जो भी निकालोगे, गलत होगा। गीता तुम्हारे चित्त की शून्यता में प्रकट हो तो ही अर्थ का अनुभव होगा। अगर तुमने विचारपूर्वक अपनी बुद्धि लगाकर गीता के अर्थ निकाले तो तुमने गीता के साथ अनाचार किया, बलात्कार किया।
मैंने बहुत गीता की टीकाएं देखी हैं उनमें से अधिकतम बलात्कार हैं, जबरदस्ती है, तोड़-मरोड़ है। अर्थ पहले से ही तय किए बैठा है आदमी, अब गीता का भी सहारा लेना है। तो जिसको निकालना हो वही निकाल लो। शंकराचार्य ने संन्यास निकाल लिया गीता में से, कि सब छोड़ा--अकर्म। लोकमान्य तिलक को कर्म निकालना था, कर्म निकाल लिया--कि जूझो! छोड़ना नहीं है, कर्म से ही मुक्ति है।
तुम जरा देखो तो, जिसकी जो मर्जी! जीसस के वचनों के साथ यही हुआ है, मुहम्मद के वचनों के साथ यही हुआ है। यह सभी के वचनों के साथ हुआ है क्योंकि आदमी सब तरफ एक-सा बेईमान है। वह हिंदू हो कि मुसलमान कि जैन कि बौद्ध, कुछ फर्क नहीं पड़ता। बुद्धि बेईमान है। बुद्धि से अर्थ मत निकालो। हृदय ईमानदार है। हृदय को ही ईमान का पता है। हृदय श्रद्धालु है। मगर तुम्हारा हृदय तो सोया पड़ा है; उसे जगाओ। जब हृदय जगेगा तो तुमसे कभी भूल न होगी। तब तुम चकित हो जाओगे, जिंदगी की किताब में से तुम्हें अर्थ मिलने लगेंगे। एक पत्ता सूखकर गिरेगा और तुम्हारे सामने शास्त्रों के सार खुल जाएंगे। एक कली चटकेगी और फूल बनेगी और तुम्हारे सामने उपनिषद नाच उठेंगे। एक पक्षी आकाश में उड़ेगा और वेदों की सारी सुवास बिखेर जाएगा। रामकृष्ण को पहली समाधि अनुभव हुई थी, काली घिरी थी घटा। आषाढ़ के दिन! बादल नये-नये आए थे। घुमड़ कर घिरी थी घटा। और रामकृष्ण चले आ रहे थे, खेत से लौट रहे थे। और बगुलों की एक कतार सरोवर के किनारे... रामकृष्ण के आने की वजह से, बगुले बैठे होंगे, उड़े। बगुलों की एक शुभ्र कतार... होंगे दस-पंद्रह बगुले। पीछे काली घटा, उसमें से गुजर गई बगुलों की कतार, जैसे बिजली कौंध जाए। रामकृष्ण वहीं गिर पड़े जमीन पर आनंद-मग्न हो, विभोर हो। समाधि लग गई।
यह पहली समाधि है। वेद पढ़ते हुए नहीं लगी थी, गीता सुनते हुए नहीं लगी थी। "सीताराम-सीताराम" जपते हुए नहीं लगी थी। अजीब समाधि लगी!
घर उठा कर लाए गए। तरंगित हो रहे थे। रोआं-रोआं नाच रहा था। घंटों बाद आंख खुली। पूछा, क्या हुआ? रामकृष्ण ने कहाः मैं वही नहीं हूं जो था। पुराना गया! मैं कुछ और ही हो गया हूं। कैसे हुआ, नहीं जानता। बस इतना ही कह सकता हूं कि बगुलों कि कतार उड़ी। लोगों ने कहा, पागल! बगुलों की कतार तो हम भी उड़ते देखते हैं, हम को नहीं हुआ! काली घटाएं हमने भी देखी हैं, तू कोई नया है? तेरी उम्र भी क्या! हमारी तो जिंदगी हो गई।

रामकृष्ण की उम्र कुल तेरह वर्ष थी। तब। फिर हुआ कैसे यह? दूसरों ने
भी बगुले देखे थे उड़ते, काली घटाएं भी देखी थीं, मगर नहीं हुआ था। बुद्धि बीच में पर्दा थी। रामकृष्ण भोलेभाले थे, बहुत सरल-चित्त थे; एकदम सीधे- सादे थे। हृदय से देखा गया। हृदय की आंख, और बगुलों का उड़ना, और यह सफेद चांदी की कतार! यह बिजली का कौंध जाना! यह सौंदर्य! अभिभूत हो गए। गिर पड़े भूमि पर। आंखों से आनंद के आंसू बहने लगे। लोटने लगे आनंद में। नृत्य शुरू हो गया।
यही नृत्य बढ़ते-बढ़ते उन्हें परमहंस के पद तक ले गया। बेपढ़े-लिखे थे। दूसरी कक्षा तक पढ़े, लेकिन बड़े-बड़े ज्ञानी फीके पड़ गए। बड़े-बड़े पंडित दो कौड़ी के हो गए। रामकृष्ण की महिमा हृदय की महिमा है। सभी संतों की महिमा हृदय की महिमा है।
तुमसे मैं इतना ही कहूंगा, शास्त्र में क्या लिखा है इसको बुद्धि से व्याख्या मत करना, अन्यथा चूकोगे। पहले बुद्धि को विदा करो, पहले बुद्धि को नमस्कार करो, पहले बुद्धि को हटाओ और फिर शास्त्र हो कि जीवन हो, कहीं से भी परमात्मा पुकारेगा, आवाज सुनाई पड़ेगी।
परमात्मा पुकार ही रहा है, प्रतिपल पुकार रहा है। हर घड़ी उसकी पुकार तुम्हारे द्वार पर आती है। उसके हाथ तुम्हारे हृदय पर हर बार दस्तक देते हैं मगर तुम वहां नहीं हो। तुम कहीं और हो। तुम सिर में भटक गए हो। तुम विचारों के जंगल में खोए हो। तुम अपने घर पाए ही नहीं जाते। और परमात्मा को तुम्हारा एक ही पता याद है--तुम्हारा हृदय। वह वहीं आता है। वह बेचारा वहीं खोजे चला जाता है। और मिलन हो नहीं पाता। तुम अपने हृदय में उपस्थित हो जाओ, मिलन होगा। मिलन सुनिश्चित है।
आज इतना ही

नाम सुमिर मन बावरे
सातवां प्रवचन

नाम बिनु नहिं कोउकै निस्तारा

नाम सुमिर मन बावरे, कहा फिरत भुलाना हो।।
मट्टी का बना पूतला, पानी संग साना हो।
इक दिन हंसा चलि बसै, घर बार बिराना हो।।
निसि अंधियारी कोठरी, दूजे दिया न बाती हो।
बांह पकरि जम लै चलै, कोउ संग न साथी हो।।
गज रथ घोड़ा पालकी, अरु सकल समाजा हो।
इक दिन तजि जल जाएंगे रानी औ राजा हो।।
सेमर पर बैठा सुवना, लाल फर देख भुलाना हो।
भारत टोंट मुआ उधिराना, फिरि पाछे पछिताना हो।।
गूलर कै तू भुनगा, तू का आव समाना हो।
जगजीवनदास बिचारि कहत, सबको वहं जाना हो।।

नाम बिनु नहिं कोउकै निस्तारा।
जान परतु है ज्ञान तत्त तें, मैं मन समुझि बिचारा।
कहा भए जल प्रात अन्हाए, का भए किए अचारा।।
कहा भए माला पहिरे तें, का दिए तिलक लिलारा।
कहा भए व्रत अन्नहिं त्यागे, का किए दूध-अहारा।।
कहा भए पंचअगिन के तापे, कहा लगाए छारा।
कहा उर्धमुख धूमहिं घोंटें, कहा लोन किए न्यारा।।
कह भए बैठै ठाढ़ें तें, का मौंनी किहे अमारा।
का पंडिताई का बकताई, का बहु ज्ञान पुकारा।।
गृहिनी त्यागि कहा बनबासा, का भए तन मन मारा।
प्रीतिविहूनि हीन है सब कछु, भूला सब संसारा।
मंदिल रहै कहूं नहिं धावै, अजपा जपै अधारा।
गगन-मंडल मनि बरै देखि छवि, सोहै सबतें न्यारा।।
जेहि विस्वास तहां लौ लागिय, तेहि तस काम संवारा।
जगजीवन गुरु चरन सीस धरि, छूटि भरम कै जारा।।

सद चाक हुआ गो जाम-ए-तन, मजबूरी थी, सीना ही पड़ा
मरने का वक्त मुकर्रर था, मरने के लिए जीना ही पड़ा मैं उसकी नशीली आंखों की तल्ख़ाब सही.जहराब सही लेकिन फितरत खुद चाहती थी दिल प्यासा था पीना ही पड़ा कहती थी जुनूं जिसको दुनिया बिगड़ी हुई सूरत अक्ल की थी
फाड़ा था गरेबां तेरे लिए जब तू न मिला, सीना ही पड़ा
कुछ तुर्शी थी कुछ तल्ख़ी थी लेकिन जब खुद ही मांगी थी
तो मांगकर वापिस करने का मौका ही न था, पीना ही पड़ा
सद चाक हुआ गो जाम-ए-तन, मजबूरी थी, सीना ही पड़ा
मरने का वक्त मुकर्रर था, मरने के लिए जीना ही पड़ा।
मनुष्यों में अधिक मनुष्य ऐसे ही जी रहे हैं; मरने के लिए ही जी रहे हैं। जैसे जीवन में कुछ और न हुआ है, न हो सकता है। जैसे जीवन में कुछ और न हुआ है, न हो सकता है। जैसे जीवन एक लंबी निराश यात्रा है। जैसे जीवन एक मजबूरी है, एक असहाय अवस्था है; किसी तरह गुजारना है, बोझ की तरह ढोना है। उदास, भारी मन लोग अपनी-अपनी कब्र की तरफ बढ़े जा रहे हैं--जैसे बंदी हों; जैसे जंजीरों में--बेड़ियों में बंधे हों; जैसे कोई उपाय ही न हो मृत्यु से मुक्त होने का; जैसे उस परम जीवन को जानने की कोई सुविधा ही न हो, जिसका अंत नहीं आता।
यह भ्रांति है। जीवन एक अवसर है परम जीवन को पाने के लिए। मृत्यु पर जीवन का अंत नहीं है। और अगर मृत्यु पर जीवन का अंत हो तो समझ लेना कि तुम ठीक से जिए ही नहीं। वही मरता है जो ठीक से जीता नहीं। जो ठीक से जीता है

उसके लिए मृत्यु तो और बड़े जीवन का द्वार बन जाती है। और जो ठीक से नहीं जीता, ठीक से मरता भी नहीं उसे फिर-फिर जन्मना पड़ता है और फिर-फिर जन्मना पड़ता है और फिर-फिर मरना पड़ता है। इस पाठ को सीखना ही पड़ेगा। इसे बिना सीखे काम न चलेगा।
जीवन को लोगों ने मान रखा है, जैसे मिल ही गया है। मिला नहीं, मिल सकता है। खोजना पड़े, तलाश करनी पड़े। जो मिला है बीज की तरह, इसके लिए भूमि खोजो, इसके लिए खाद दो, इस पर श्रम करो, इस पर अपनी साधना बरसाओ तो यह बीज टूटे, अंकुरित हो, वृक्ष बने, इसमें फल आएं। तब तुम जानोगे कि जीवन कितनी बड़ी भेंट थी परमात्मा की।
लेकिन तुम ऐसे जी रहे हो इस महाअवसर को जैसे कोई दंड दिया हो; जैसे मजबूरी है। मरने की बात तय ही है तो अब क्या करें! किसी तरह जी लेंगे, राह देख लेंगे। आएगी, मौत, मर जाएंगे। जैसे मौत के अतिरिक्त और इस जीवन में कुछ भी न घटेगा। जन्म और मृत्यु के बीच अगर परमात्मा न घटे तो समझ लेना कि व्यर्थ ही जिए; अकारथ जिए। जिए ही नहीं। नाम ही था जीने का। कहने भर की बात थी।
दिल-ए-बरबाद को भी कहनेवाले दिल ही कहते हैं
खि.जां-दीदा चमन को भी चमन कहना है पड़ता ही
पतझड़ आ जाती है बगीचे में, एक पत्ता नहीं बचता, एक फूल नहीं बचता। उसको
भी लोग चमन कहते हैं।
दिल-ए-बरबाद को भी कहनेवाले दिल ही कहते हैं
और जो दिल बिल्कुल बरबाद हो गया, जिसमें दिल है ही नहीं, जहां दिल का कोई राग नहीं उठता, जहां दिल का कोई उत्सव नहीं है उसको भी दिल तो कहते ही हैं। शब्दों की ही बात है।
और जो दिल बिल्कुल बरबाद हो गया, जिसमें दिल है ही नहीं, जहां दिल का कोई राग नहीं उठता, जहां दिल का कोई उत्सव नहीं है उसको भी दिल तो कहते ही हैं। शब्दों की ही बात है।
जिसको हम जीवन कहते हैं वह कहना भर है। जीवन तो किसी बुद्ध का होता है, किसी जगजीवन का होता है, किसी नानक का, किसी जीसस का। जीवन तो थोड़े-से लोग जीते हैं। अधिकतर लोग जो जन्मते हैं और मरते हैं। और जन्मते और मरने के बीच में जो विराट अवसर मिलता है उसको ऐसे गंवा देते हैं जैसे मिला ही न हो। खोज सकते थे खजाना। ऐसी संपदा पा सकते थे जो फिर कभी छीनी न जाए, लेकिन गंवा देते हैं ऐसी संपदा को इकट्ठी करने में जिसका छिन जाना सुनिश्चित है; जिसको कोई भी बचा नहीं पाया; जिसे कोई अभी अपने साथ नहीं ले जा पाया। मौत आती है और तुम भिखारी के भिखारी जाते हो। बड़े से बड़ा सम्राट भी भिखारी की तरह जाता है।
बुद्ध ने जिस दिन घर छोड़ा, अपने सारथि से कहा था--क्योंकि सारथि दुखी था। बूढ़ा आदमी था। बुद्ध को बचपन से बढ़ते देखा था। पिता की उम्र का था। वह रोने लगा, उसने कहा, मत छोड़ो। कहां जाते हो? जंगल में अकेले हो जाओगे। कौन संगी, कौन साथी?
तो बुद्ध ने कहा, महल में भी कौन संगी था, कौन साथी था? धोखा था। महल में भी जंगल था। आज नहीं कल जंगल जाना ही होगा। और किन्हीं और कंधों पर चढ़कर जाऊं, इससे बेहतर है अपने ही पैरों से चला जाऊं। मरकर जाऊं, इससे बेहतर है जिंदा चला जाऊं तो शायद कुछ कर पाऊं।
सारथि ने बहुत समझाया: इतनी संपदा, इतना साम्राज्य छोड़कर कहां जाते हो? बुद्ध ने कहा, मौत आएगी। तू भी जानता है मौत आएगी। सभी जानते हैं मौत आएगी। और यह सब छिन ही जाएगा। जो छिन ही जाना है, उसे नासमझ पकड़ते हैं। जो छिन ही जाता, छिन ही गया। उसको पकड़ने का कोई सवाल नहीं है।
इस जिंदगी से समझदार लोग तो ऐसे गुजरते हैं जैसे कोई सराय से गुजरता है; इस जिंदगी में ऐसे ठहरते हैं जैसे कोई धर्मशाला में ठहरता है। सांझ आयी, रुक रहे, सुबह हुई, चल पड़े। मुसाफिरखाना है।
और जिसको यह जिंदगी मुसाफिरखाना दिखाई पड़ती है उसकी ही आंखें मोक्ष
की तरफ उठती हैं। क्योंकि अगर यह मुसाफिरखाना है तो फिर घर कहां है? तभी सवाल उठता है। अगर इस दुनिया की संपदा झूठी है तो फिर सच्ची संपदा कहां

है? क्योंकि हृदय में तलाश तो है। संपदा की तलाश है। किसके मन में नहीं है तलाश?
अगर इस जिंदगी की संपदा झूठी है तो फिर यह तलाश क्यों है? और फिर यह एकाध दिल में ही नहीं है, यह हर दिल में है। यह हर प्राण में छिपी है। यह हर प्राण के भीतर दबी है। यह अंगारा सबके भीतर है। तो कहीं न कहीं होगी असली संपदा भी। अगर इस जगत के पद व्यर्थ हैं तो फिर असली पद कहां है? कृष्णमूर्ति ठीक कहते हैं कि जो असार की भांति देख लेता है, उसकी सार
की खोज शुरू हो जाती है। जो असार को ही सार समझता रहता है उसकी तो सार की खोज कैसे शुरू होगी? जिसने नकली सिक्कों को असली समझ लिया वह असली की तलाश करेगा क्यों? वह तो मानता है, असली उसे मिल ही गए।
सारे सद्गुरुओं का संदेश अगर बहुत संक्षिप्त करना हो तो इतना सा है
कि जिसे तुमने जिंदगी समझा है वह असली जिंदगी नहीं है क्योंकि मौत उसे पोंछ जाएगी। असली को तलाशो। उसको खोजो, जो एक बार मिल जाए तो फिर कभी छीनी नहीं जा सकती। वही संपदा है; शेष सब तो विपदा है। वही संपत्ति है; शेष सब तो विपत्ति है। मेहनत बहुत उठानी पड़ती है और अंत में सब व्यर्थ जाता है। बहुत बार संतों के शब्द ऐसे लगते हैं कि अगर इन शब्दों को हम सुनते रहेंगे तो हमारी जिंदगी में जो थोड़ा और रस है, वह भी सूख जाएगा। हमारी जिंदगी में जो थोड़ी-बहुत खुशी है, वह भी कुम्हला जाएगी। कभी-कभी हम जो हंस लेते हैं, ये संत उसे भी छीन लेंगे।
अगर ऐसा तुमने समझा तो तुम संतों को समझे नहीं। वे तुमसे वही छीनना चाहते हैं जो है ही नहीं। तुम्हारी हंसी झूठी है; आंसुओं को छिपाने का उपाय है। तुम मस्ती का ढोंग कर रहे हो। तुम मस्त हो कैसे सकते हो? बिना परमात्मा को पिए कोई कभी मस्त हुआ ही नहीं। तुम्हारी मस्ती झूठी होगी। एक बार मेरे एक मित्र मेरे घर मेहमान हुए। झूठी ही उन्हें ठंडाई पिलाई और पिलाने के बाद कह दिया कि भंग थी उसमें। वे तो मस्त होने लगे। सारा परिवार हंसने लगा। जैसे-जैसे लोग हंसे... इस बात पर हंसे कि उन्हें तो कोई भंग पिलाई गई नहीं है, मगर वे मस्त होने लगे। जैसे-जैसे लोग हंसे, उनकी मस्ती भी बढ़ी। उन पर नशा छाने लगा। उनकी आंखें तक लाल हो गईं। कोई घड़ी-दो घड़ी के बाद तो वे बोले कि मुझे चक्कर आते हैं। सब घूमता हुआ मालूम पड़ता है। मैंने उनको कहा, महाराज, भंग तुम्हें किसी ने पिलाई नहीं, सिर्फ बात ही की है। यहां भंग है कहां? सिर्फ ठंडाई थी। सुनते ही नशा उतर गया। आंखें फिर ठीक हो गईं। वह जो घूमने लगा था मकान, वह फिर थिर हो गया।
तुम कभी अपने बाबत सोचना। उस दिन मैंने उनसे कहा था, ऐसी तुम्हारी जिंदगी की हंसी है, ऐसी तुम्हारी जिंदगी की खुशी है। मान बैठे हो। जरा लोग हंसते हैं, उनकी हंसी का खोखलापन तो देखो! हंसने योग्य तुम्हारे पास है क्या? रोने योग्य बहुत कुछ है, हंसने योग्य क्या है?
संत जरूर तुमसे खोखली हंसी छीन लेंगे; लेकिन सिर्फ इसलिए, ताकि असली फूलों की वर्षा हो जाए; कि तुम हंसो तो फूल झरें; कि तुम हंसो तो तुम्हारी हंसी में प्राण हों; कि तुम हंसो तो हंसी प्रवंचना न हो। तुमसे झूठी मस्ती छीन लेंगे ताकि तुम्हें सच्ची मस्ती दी जा सके। ऐसी मस्ती, जिसको फिर कोई छीन नहीं सकता।
यहां तो तुमने जो भी अभी इंतजाम कर रखा है, बड़ा धोखे का है। और तुम भली- भांति जानते हो। मगर मैं तुम्हारी मजबूरी भी समझता हूं, कि अब क्या करें! किसी तरह जीना तो है ही।
सद चाक हुआ गो जाम-ए-तन मजबूरी थी सीना ही पड़ा
चीथड़े-चीथड़े हो गई है जिंदगी, मगर मजबूरी है, सीनी पड़ती है। चार लोगों
को दिखाने योग्य तो बाहर का इंतजाम करना ही पड़ता है। चाहे घर कैसा ही हो, बैठकखाना तो सजाना ही पड़ता है। चाहे स्नान न किया हो, चाहे देह कितनी अपवित्र हो और चाहे मन कितने ही पापों से भरा हो तो भी ऊपर से पाउडर और सुगंध तो छिड़कनी ही पड़ती है।
सद चाक हुआ गो जाम-ए-तन, मजबूरी थी, सीना ही पड़ा
मरने का वक्त मुकर्रर था, मरने के लिए जीना ही पड़ा
--मगर यह भी कोई जीवन होगा?

संत तुमसे जो व्यर्थ है, जो झूठा है वह छीन लेना चाहते हैं। और अगर संतों के सत्संग में तुम उदास हो जाओ तो समझना कि तुम समझे नहीं; तो समझना कि तुम चूक गए। और अगर तुम्हारे संत उदास हों तो समझना कि संत नहीं हैं। संत का जीवन तो उल्लास होना चाहिए। वहां तो आनंद का राज होना चाहिए।
कोई किस तरह राज-ए-उल्फत छिपाए।
निगाहें मिलीं और कदम डगमगाए
जिसकी आंख परमात्मा से मिलने लगी हो उसके पैर न डगमगाएं? और जिसका प्रेम उससे लग गया हो वह अपने राज को छुपाना भी चाहे तो छुपा नहीं सकता। उसके रोएं-रोएं से प्रकट होगा। उसके शब्द-शब्द से झलकेगा। उसके ओंठ से जो शब्द भी बाहर आएगा, मधुसिक्त होकर आएगा। तो उसके शब्दों को पी लेंगे उनको भी नशा आने लगेगा।
चाल है मस्त, न.जर मस्त, अदा में मस्ती
जैसे आते हैं वे लोटे हुए मैखाने से
जो मंदिर गया, सच में मंदिर पहुंचा वह ऐसे ही लौटेगा जैसे मधुशाला से लौटता हो। मंदिर असली मधुशाला है। अगर वहां से मस्त होकर नहीं लौटे तो फिर कहां से मस्त होकर लौटोगे? अगर वहां से तुम्हारी चाल में नृत्य न आया तो फिर नृत्य कहां सीखोगे? अगर मंदिर ने तुम्हारे भीतर नाद न जगाया, तुम्हारे सोए तार न छेड़े, तुम्हारी वीणा न बजायी तो फिर कहां, फिर कैसे तुम जागोगे? कौन तुम्हें जगाएगा? कौन तुम्हें आनंद से भरेगा?
हमने यूं ही तो परमात्मा की परिभाषा सच्चिदानंद नहीं की है! ये तीन चीजें तो मिलनी ही चाहिए, वहीं सत्संग है। सत्य मिले, चैतन्य मिले, आनंद मिले, वहीं सत्संग है। जहां सच्चिदानंद मिले वहीं सत्संग है।
लेकिन तुम्हारे मंदिरों में बैठे हुए तुम्हारे साधु-संत भी उदास हैं। स्वभावतः ऐसे उदास और रुग्ण-चित्त लोगों के पास तुम बैठोगे, तुम भी उदास हो जाओगे। और तुम समझोगे कि शायद धार्मिक हो रहे हो।
हां, धर्म निश्चित ही झूठी हंसी छीन लेता है लेकिन इसीलिए, ताकि सच्ची हंसी पैदा की जा सके। धर्म निश्चित ही घास-पात को उखाड़ता है, ताकि गुलाबों की खेती हो सके। सिर्फ घास-पात को उखाड़कर बैठ गए इससे कुछ बगीचे नहीं बन जाते। और अगर तुम घास-पात उखाड़कर बैठ गए और कभी तुमने गुलाब बोए ही न, तो गुलाब आकाश से नहीं उतर आएंगे। और घास-पात फिर उग आएगा। कोई एक बार उखाड़ देने से घास-पात सदा के लिए समाप्त नहीं हो जाता। अगर घास-पात को सच ही समाप्त करना है तो पृथ्वी की जो ऊर्जा घास-पात बनती है उसे गुलाब बनाने में लगाना पड़ेगा।
हां, धर्म निश्चित ही झूठी हंसी छीन लेता है लेकिन इसीलिए, ताकि सच्ची हंसी पैदा की जा सके। धर्म निश्चित ही घास-पात को उखाड़ता है, ताकि गुलाबों की खेती हो सके। सिर्फ घास-पात को उखाड़ कर बैठ गए इससे कुछ बगीचे नहीं बन जाते। और अगर तुम घास-पात उखाड़कर बैठ गए और कभी तुमने गुलाब बोए ही न, तो गुलाब आकाश से नहीं उतर आएंगे। और घास-पात फिर उग आएगा। कोई एक बार उखाड़ देने से घास-पात सदा के लिए समाप्त नहीं हो जाता। अगर घास-पात को सच ही समाप्त करना है तो पृथ्वी की जो ऊर्जा घास-पात बनती है उसे गुलाब बनाने में लगाना पड़ेगा।
मैं यह कह रहा हूं कि तुम्हारी हंसी झूठ है क्योंकि तुम भीतर उदास हो, ऊपर से उधार हंसी को लेकर चिपका लेते हो। और बाजार में हर चीज बिकती है। हर चीज बिकती है, जिमी कार्टरवाली हंसी भी बिकती है। अयास कर ले सकते हो, मुखौटे लगा ले सकते हो।
तुम जरा लोगों को हंसते हुए तो देखो! उनकी आंखों में कोई आनंद नहीं होता और ओंठ एकदम फैल जाते हैं। इसको हंसी नहीं कह सकते, खींसे निपोरना! इस तरह की हंसी तुम्हें अक्सर मिलेगी... तुमने कभी आदमी की खोपड़ी देखी, मरे हुए आदमी की खोपड़ी? सिर्फ खोपड़ी! सब खोपड़ियां हंसती हुई मालूम पड़ती हैं। इसीलिए डर भी लगता है। अपने कमरे में एक खोपड़ी रखकर देखो दो-चार दिन। और सबसे ज्यादा भयावनी चीज लगती है खोपड़ी की हंसी। कि हंस किस बात पर रही है खोपड़ी? क्योंकि वे दांतें. . . ओंठ तो चले गए, चमड़ी तो सब समाप्त हो गई,

हड्डी-हड्डी बची है। दांत ही दांत दिखाई पड़ते हैं। सभी मुर्दे जिमी कार्टर हो जाते हैं।
तुम हंसोगे, लेकिन प्राणों में आनंद हो तो ही उसमें कुछ अर्थ होगा। तुम गाओगे, लेकिन यह ऊपर-ऊपर से सीखा गया गीत न हो। इसकी जड़ें तुम्हारी आत्मा में होनी चाहिए, तो इसमें रस बहेगा।
निश्चित ही संत तुमसे जो भी झूठा है, छीन लेना चाहते हैं। मगर यह आधा काम है। झूठा छीन लिया और सच्चा दिया नहीं, सच्चा मिला नहीं तो तुम और मुश्किल में पड़ जाओगे। तुम्हारी दशा त्रिशंकु की हो जाएगी--न यहां के रहे न वहां के; न घर के न घाट के। तुम बड़ी दुविधा में पड़ जाओगे। दुविधा में दोइ गए, माया मिली न राम। ऐसी दशा तुम्हारे तथाकथित धार्मिकों की हो गई है। और धर्म के नाम पर जो संत-महात्मा तुम्हारी छाती पर बैठ गए हैं वे केवल रुग्णचित्त लोग हैं; मानसिक रूप से विकृत लोग हैं, स्वस्थ नहीं। धर्म विकृत हाथों में पड़ गया है--हमेशा पड़ जाता है क्योंकि एक बड़ी शक्तिशाली, बड़ी क्षमताशाली दिशा है। रुग्ण-चित्त लोग उस पर कब्जा करने को उत्सुक होते हैं।
रुग्ण-चित्त हर चीज पर कब्जा करना चाहते हैं। जहां भी उन्हें लगता है
कि शक्ति का स्रोत है, दौड़ पड़ते हैं। रुग्ण-चित्त महत्त्वाकांक्षी होते हैं। धन की तरफ दौड़ते हैं, पद की तरफ दौड़ते हैं, अगर उन्हें लगे कि धर्म में भी शक्ति है वहां भी दौड़ते हैं और कब्जा कर लेते हैं।
पंडित हैं, पुरोहित हैं, इन्हें धर्म का कोई पता नहीं है। लेकिन धर्म
के माध्यम से लोगों के जीवन पर इनका कब्जा जम जाता है। शोषण करने की क्षनता हाथ में आ जाती है। ये खुद भी उदास हैं। ये बुरी तरह उदास हैं। इन्होंने अपनी उदासी को भी अच्छी व्याख्या दे ली है। ये कहते हैं, उदासी का मतलब वैराग्य।
मैं भी जानता हूं कि उदासी का अर्थ वैराग्य। लेकिन उदासी का गहरा अर्थ है, राग। संसार से विराग और परमात्मा से राग। उदासी का अर्थ अनासक्ति, ठीक; संसार से अनासक्ति, परमात्मा से आसक्ति। दूसरी बात क्यों नहीं कहते जो कि ज्यादा मूल्यवान है? व्यर्थ से विराग, यह तो ठीक ही है, लेकिन सार्थक से राग जगना चाहिए, नहीं तो सार क्या हुआ? पहले भी असार थे, घर में भी असार थे। वहां भी जिंदगी बोझिल थी, मंजिल में भी जिंदगी बोझिल है। और बोझिल हो गई। घर में थे तो कम से कम कुछ भ्रम भी थे, अब भ्रम भी न रहे। घर में थे तो कभी-कभी सपना भी देख लेते थे सौंदर्य का, सत्य का, अब वे भी सपने गए। अब सपनों का भी त्याग कर दिया। अब तुम बिल्कुल मरुस्थल होकर रह गए। अब तुम्हारी जिंदगी में कोई हरियाली नहीं होगी।
ठीक सत्संग में हरियाली घटनी ही चाहिए। ठीक सत्संग में मरुस्थल मरुद्यान बनना ही चाहिए।
तो ख्याल रखना, ये वचन एक स्वस्थ महात्मा के वचन हैं। और तुम समझोगे
कि ऐसा मैं क्यों कह रहा हूं। वचन ही तुम्हारे सामने सिद्ध कर देंगे कि अस्वस्थ महात्माओं के विपरीत हैं। ये वचन तुम्हें उदास करने को नहीं हैं। ये वचन तुम्हें आनंद से भरने को हैं।
नाम सुमिर मन बावरे
--ऐ पागल मन! प्रभु का स्मरण कर।
कहा फिरत भुलाना हो
--कहां इन व्यर्थ की चीजों में भूल रहा है? यहां किसी ने कभी कुछ पाया नहीं। यहां तू भी जिंदगी गंवा देगा।
संसार में लोग गंवाकर जाते हैं, कमाकर नहीं। अक्सर लेकिन हम समझते हैं कि लोग कमा रहे हैं। बाजारों में लोग कमाने में लगे हैं। पूछो तो जरा गौर से! क्या कमाकर ले जाओगे? क्या कमा रहे हो? गंवाकर जाओगे। एक संपदा थी भीतर, जिसको लुटाकर जाआगे। आत्मा बेच दोगे, ठीकरे खरीद लोगे। जीवन का परम अवसर जो परमात्मा का मिलन बन सकता था, उसमें कुछ कागज के नोट इकट्ठे कर लोगे।
और नोट यहीं पड़े रह जाएंगे। उन्हें तुम साथ न ले जा सकोगे। उन्हें कोई कभी साथ नहीं ले जा सका है। संसार की कोई भी वस्तु साथ नहीं जा सकती। धन की,

असली धन की परिभाषा क्या है? जो साथ जा सके। ध्यान ही साथ जा सकता है इसलिए ध्यान धन है।
बुद्ध बारह वर्ष बाद घर लौटे, उनकी पत्नी नाराज थी। उसने अपने बेटे को उनके सामने खड़ा कर दिया। कहा, राहुल, ये तेरे पिता हैं। ये घर छोड़कर भाग गए थे। अब मिल गए हैं। अब दुबारा कभी मिलना हो या न मिलना हो, इनसे अपनी वसीयत मांग ले।
यह मजाक था, व्यंग्य था। बुद्ध के पास अब क्या था वसीयत देने को? भिखारी थे। हाथ में सिर्फ एक भिक्षापात्र था। मां मजाक कर रही थी। मां व्यंग्य कर रही थी। अपने बेटे से कह रही थी, देख ले, ये हैं तेरे पिता। तू बार-बार पूछता था कि मेरे पिता कौन, मेरे पिता कौन हैं? यह जो भिखमंगा तुम्हारे सामने खड़ा है, यह तुम्हारा पिता है। इसने तुम्हें जन्म दिया और उत्तरदायित्व नहीं समझा और घर से भाग गया। अब इससे अपनी वसीयत मांग लो, अब दुबारा मिलना हो कि न मिलना हो। फिर यह आए, न आए।
लेकिन यशोधरा को पता नहीं था कि बुद्धों के साथ मजाक में भी जुड़ जाओ
तो मजाक महंगी पड़ जाती है। राहुल ने हाथ फैला दिए। मां कहती थी कि वसीयत मांग लो। मां यह दिखाना चाहती थी कि बुद्ध को समझ में आए कि तुम सिर्फ भिखमंगे हो गए हो, और क्या हुआ? पाया क्या? खोया बहुत। सम्राट थे, भिखमंगे हो गए। आज बेटा हाथ फैलाए खड़ा है तुम्हारे पास देने को एक पैसा भी नहीं है। यह क्या पाना हुआ? क्या कमाकर लौटे हो, मां यह कह रही थी।
लेकिन बुद्ध ने राहुल के फैले हुए हाथों में अपना भिक्षापात्र दे दिया और कहा, तेरी दीक्षा हो गई, तू भी भिक्षु हुआ। मेरे पास यही धन है देने को। मैं ध्यान लेकर लौटा हूं, ध्यान तुझे दूंगा।
और यशोधरा को कहा कि तुझे भी मेरा निमंत्रण है। मैं परम संपदा लेकर लौटा हूं, तू भी उसमें भागीदार बन। मैं गंवाकर नहीं लौटा हूं, कमाकर लौटा हूं। मेरी आंखों में फिर से देख। यह वही आदमी नहीं है जो तुझे छोड़कर गया था। मेरे हाथ के भिक्षापात्र को देखती है, मेरी आत्मा को देख। मेरी चारों तरफ झरती हुई आभा को देख। यह संगीत जो मेरे हृदय में बज रहा है, इसको सुन। क्रोध में थी यशोधरा। और क्रोध बिल्कुल स्वाभाविक था। लेकिन बुद्ध की
यह सिंहगर्जना! उसने अपने आंसू पोंछे, गौर से बुद्ध को देखा। यह प्रमाद! यह सौंदर्य! यह निश्चित ही दूसरा व्यक्ति है। देह वही है, आत्मा बदल गई है। यह गरिमा, यह गौरव-मंडित रूप, यह इस पृथ्वी का नहीं है। यह परलोक से उतरा है। यह दिव्य है।
पश्चिम के बहुत बड़े विचारक, इतिहासज्ञ एच. जी. वेल्स ने लिखा है कि इस पृथ्वी पर बुद्ध से ज्यादा ईश्वर-विहीन और ईश्वर-जैसा व्यक्ति दूसरा नहीं है। बुद्ध ईश्वर को मानते नहीं थे इसलिए ऐसा लिखा है। "सो गॉडलेस एंड सो गॉडलाइक" : इतना ईश्वरशून्य और इतना ईश्वर-जैसा!
झुकी यशोधरा, भिक्षुणी हो गई।
ध्यान धन है। ध्यान को ही भक्त कहते हैं, नाम-स्मरण। वह भक्ति का नाम है।
नाम सुमिर मन बावरे
नाम इशारा है, प्रतीक है। इसलिए किसी खास नाम को भी नहीं कहते हैं। यह नहीं कहते हैं कि राम को सुमिरो। क्योंकि राम को सुमिरो तो कृष्ण को स्मरण करनेवाला सोचता है कि पता नहीं, मैं भूल कर रहा हूं। अल्ला को स्मरण करनेवाला सोचेगा, पता नहीं, मुझे अल्लाह का स्मरण करना चाहिए कि राम का स्मरण करना चाहिए!
इसलिए संतों ने किसी नाम का उपायोग नहीं किया, सिर्फ कहा, नाम स्मरण करो, सब नाम उसी के हैं। इसलिए अल्लाह कहो तो, राम कहो तो, कृष्ण कहो तो। जो हृदय में बैठा हो गहरा, जिस शब्द से तुम्हारा राग लग जाए, जिस शब्द से तुम्हारी ज्योति जुड़ जाए, जिस शब्द से तुम्हारे तार संयुक्त हो जाएं वही कहो; उसी से राह मिलेगी।
और ख्याल रखना, हरेक को अपना शब्द खोज लेना पड़ता है। सभी शब्द एक जैसे हैं।

अंग्रेज कवि टेनिसन ने तो लिखा है कि मैं अपना ही नाम दोहराता हूं और मुझे इतनी परम शांति और ध्यान की अवस्था घनीभूत हो जाती है, जो मुझे किसी और से नहीं होती। मैं किसी को बताता भी नहीं हू क्योंकि लोग क्या कहेंगे कि पागल हो! बस, जब भी मुझे ध्यान करना होता है, मैं बैठ जाता हूं, पुकारने लगता हूं: "टेनिसन, टेनिसन, टेनिसन"। अपने को ही अपना नाम पुकारते देखकर एक सन्नाटा छा जाता है। पुकारनेवाला कोई और हो जाता है, टेनिसन कोई और हो जाता है। मैं साक्षी मात्र रह जाता हूं।
सभी नाम उसके हैं तो टेनिसन भी उसी का नाम है; अल्लाह ही क्यों और रहमान ही क्यों और राम ही क्यों? मगर जिससे राग लग जाए! राग, राग की बात है। किसी को कृष्ण का रूप प्यारा लगता है, बिल्कुल ठीक। क्योंकि सभी रूप उसी के हैं। कृष्ण का मोर-मुकुट बांधा हुआ रूप, ओंठों पर रखी बांसुरी, नृत्य की मुद्रा किसी को प्यारी लगती है। किसी को महावीर का रूप प्यारा लगता है। एक जैन ने कुछ दिन पहले संन्यास लिया। संन्यास लेते वक्त उन्होंने कहा, बस एक आज्ञा चाहता हूं कि मुझे जिन-प्रतिमा से बड़ा आनंद मिलता है, तो मैं जिन मंदिर जाता रहूं?
मैंने कहा, सब मंदिर उसके हैं। मेरे संन्यासी के तो सारे मंदिर हैं। मैं तुम्हे किसी मंदिर से नहीं तोड़ने को हूं, जोड़ने को हूं। जरूर जाते रहो। अगर तुम्हें महावीर की नग्न प्रतिमा में रस है--उसका अपना सौंदर्य है।
ख्याल करना, कृष्ण की सजी हुई प्रतिमा का अपना सौंदर्य है। सजावट का अपना सौंदर्य होता है। सादगी का भी अपना सौंदर्य होता है। महावीर की प्रतिमा बिल्कुल सादी है, उसमें कुछ भी नहीं सजा हुआ है। नग्न खड़े हैं। एक वस्त्र भी नहीं है। किसी को वह रूप मन भाता है। जो भा जाए।
मैंने उनको कहा कि जरूर तुम जाओ। अब उनका पत्र आया है, लेकिन जैनी नहीं आने देते। वे कहते हैं, पहले यह संन्यास छोड़ो। कहा, अब यह तुम समझो। मेरी तरफ से बाधा नहीं है। अब यह जैनों की नासमझी है कि वे किसी महावीर के प्यारे को महावीर की प्रतिमा तक न आने दें। अब यह उनकी मूढ़ता है। उनकी मूढ़ता के कारण महावीर भी अपने एक प्यारे से वंचित हो जाएंगे। लेकिन मेरी तरफ से कोई विरोध नहीं है।
जहां झुक सको वहां झुको। झुकना, समर्पण! संत नाम नहीं लेते। वे कहते हैं, यह नहीं बताते कि कौन-सा नाम, वे सिर्फ कहते हैं नाम-स्मरण करो। बड़ी अर्थपूर्ण है यह बात। जो भी तुम्हें प्यारा लगता हो वही स्मरण करो। स्मरण करो। जोर स्मरण पर है।
नाम सुमिर मन बावरे
ऐ पागल मन! और मन निश्चित पागल है क्योंकि इसने क्या-क्या स्मरण किया है!
थोड़ा सोचो तो, तुम्हारा मन क्या-क्या सोचता है, क्या-क्या स्मरण करता है! इसे विक्षिप्त न कहोगे तो और क्या कहोगे? सार्थक को छोड़कर निरर्थक पर ही भटकता फिरता है। एक घूरे से दूसरे घूरे पर घूमता रहता है।
रामकृष्ण कहते थे, मन चील की तरह है। उड़ती आकाश में है लेकिन नजर नीचे लगी रहती है कि किस कचरे के घूरे पर कौन-सा चूहा मरा पड़ा है।
उड़ता आकाश में है। मन कितनी ही ऊंचाइया ले, नजर उसकी नीचे लगी रहती है। मन से बहुत सावधान होना जरूरी है। मन विक्षिप्तता है। मन पागलपन है। और इस पागलपन से सिर्फ एक ही छुटकारा है कि किसी तरह तुम इस सारे पागलपन को परमात्मा के चरणों में समर्पित कर दो। उसके संस्पर्श से ही, उस समर्पण से ही, उसके पारस-स्पर्श से लोहा एकदम सोना हो जाता है और पागल मन एकदम बुद्धत्व। इसी ऊर्जा से, इसी विक्षिप्तता से विमुक्तता पैदा हो जाती है।
नाम सुमिर मन बावरे कहा फिरत भुलाना हो
नाम-स्मरण का दीया जल जाए तो फिर भूल-भटकन बंद हो जाती है। अभी तो हम अंधेरे में चले रहे हैं।
किसी की याद इस तरह से आयी है आज मेरे अंधेरे दिल में
कि जैसे उजड़ी सरा में आकर दिया मुसाफिर जला रहा हो

जैसे बहुत दिन की उजड़ी पड़ी हुई सराय हो, और कोई मुसाफिर आ जाए, रात ठहर जाए और दीया जलाए, ऐसी ही घटना घटती है पहली दफा जब परमात्मा का स्मरण तुम्हारे भीतर उतरता है। जन्मों-जन्मों से उजड़ी पड़ी हुई सराय है। खंडहर हो गए तुम। रोशनी से संबंध ही भूल गया है। रोशनी की पहचान ही भूल गई है। जब पहली दफा स्मरण का दीया जलता है, सुरति का दीया जलता है, जब पहली
दफा कोई ध्यान या भक्ति या प्रार्थना में लीन होने लगता है तो एक ज्योति उमगती है--ज्योति जो तुम्हारी ही ज्योति है; ज्योति जो तुम्हारे ही प्राणों में छिपी पड़ी है; ज्योति जिसे जगाना है।
जैसे चकमक के दो पत्थरों को टकरा दो, और ज्योति पैदा हो जाती है। पड़ी थी, पत्थरों में ही छिपी पड़ी थी। ऐसे ही व्यक्ति जब परमात्मा के नाम का स्मरण करता है तो यह छोटी-सी चकमक का पत्थर उस बड़े विराट चकमक के पत्थर से टकरा जाता है। ज्योति उमग आती है। उस ज्योति में चलना आनंद है, उल्लास है। उस ज्योति में चलना नृत्य है। उस ज्योति में चलना संगीत है। उस ज्योति में चलना जीवन है, महाजीवन, जिसका फिर कोई अंत नहीं आता।
अंधेरे में चलना मृत्यु में चलना है। इसीलिए तो मृत्यु को हम काला चित्रित करते हैं; वह सिर्फ प्रतीक है अंधेरे का। ऐसा मत सोचना कि यमदूत काले ही होते हैं; सब तरह के होते हैं, रंग-रंग के होते हैं। और ऐसा मत सोचना कि भैंसे पर ही बैठकर आते हैं, जमाने बदल गए। आज-कल मोटर-साइकिल पर आते हैं। फटफटी पर बैठकर आते हैं। अब क्या भैंस वगैरह पर बैठना! या रेल के इंजिन पर सवार होकर आते हैं। मगर रंग काला।
काला रंग प्रतीक है अंधकार का। मौत अंधकार में घटती है। मौत अंधकार
की घटना है, बस इतना अर्थ लेना। दीया जल जाए तो फिर मौत नहीं। प्रकाश अमृत है।
इसलिए ऋषियों ने उपनिषद्भ में गाया हैः "तमसो मा ज्योतिर्गमय:"तमसो
मा ज्योतिर्गमय:" मुझे तमस से ज्योति की ओर ले चलो। "मृत्योर्माच्च्209 च्च्मृतं गमय:" मुझे मृत्यु से अमृत की ओर ले चलो। "असतो मा सद्गमय: मुझे असत से सत की ओर ले चलो। ये तीनों पर्यायवाची हैं-- असत, मृत्यु, अंधकार पर्यायवाची हैं। ऐसे ही सत, प्रकाश, अमृत पर्यायवाची हैं।
अंधेरे को प्रकाश बना लो, और तुम्हारा जीवन व्यर्थ नहीं गया। तुमने अपने जीवन का उपयोग कर लिया।
नाम सुमिर मन बावरे कहा फिरत भुलाना हो
--अगर नहीं किया नाम का स्मरण तो तुम मिट्टी के पुतले हो और मिट्टी में
ही गिर जाओगे।
मट्टी का बना पूतला पानी संग साना हो
--और तुम कुछ भी नहीं हो। परमात्मा का संस्पर्श हो जाए तो तुम अमृत ज्योति हो। परमात्मा का संस्पर्श न हो तो, "मट्टी का बना पूतला पानी संग साना हो।" फिर इससे ज्यादा तुम कुछ भी नहीं हो।
जॉर्ज गुरजिएफ एक बहुत महत्वपूर्ण बात कहता था। वह कहता था, सभी आदमियों में आत्माएं नहीं होतीं। आत्मा तो तभी पैदा होती है आदमी में जब परमात्मा का संग-साथ होता है। नहीं तो दबी पड़ी रहती है संभावना मात्र, वास्तविकता नहीं। जैसे आग पड़ी चकमक में, जैसे वृक्ष पड़ा बीज में, बस ऐसे आत्मा सोयी पड़ी रहती है। जैसे ही परमात्मा का तुम स्मरण करते हो कि आत्मा जगने लगती है। स्मरण जागने की प्रक्रिया है।
मट्टी का बना पूतला पानी संग साना हो
इक दिन हंसा चलि बसै घर बार बिराना हो
और यह जो पक्षी तुम्हारे भीतर बसा है जीवन का अपरिचित, जिससे तुमने पहचान भी नहीं की, जिससे तुम्हारा परिचय भी नहीं हुआ, जिसको तुम जानते भी नहीं कौन है। यह हंस किस मानसरोवर से आता है और फिर किस मानसरोवर को लौट जाता है, तुम्हें कुछ पता भी नहीं है। मगर थोड़ी देर को एक वृक्ष पर आ बैठे हो, विश्राम किया हो, सराय में ठहर गए हो, इसी को घर मान लिया है, इसी देह को सब कुछ समझ लिया है, इससे तादात्म्य कर लिया है तो चूक जाओगे; तो मिट्टी मिट्टी में गिर जाएगी। अवसर व्यर्थ गया।

इक दिन हंसा चलि बसै घर बार बिराना हो
और एक दिन यह घर उजड़ा पड़ा रह जाएगा। और वह दिन कभी भी आ सकता है; आज भी आ सकता है, कल भी आ सकता है। किसी न किसी दिन तो आना है, जिस दिन हंसा उड़ चलेगा। उसके पहले कुछ तैयारी कर लो। उसके पहले इस हंस से पहचान कर लो।
जो इस हंस से पहचान कर लेते हैं उनको हम परमहंस कहते हैं। जो ठीक से जान लेते हैं, मैं कौन हूं, वे परमहंस हो गए। फिर इसी देह में रहते हैं लेकिन फिर देह धर्मशाला है, घर नहीं। लेकिन व्यर्थ की चीजों में बड़ा आकर्षण है। छोटे-छोटे खिलौनों में बड़ा रस है।
ऐ हमन.फस न पूछ जवानी का माजरा
मौज-ए-नसीम थी इधर आयी, उधर गई
जवानी आ जाती है, नये-नये खिलौने! बचपन के अलग खिलौने, जवानी के अलग खिलौने, बुढ़ापे के अलग खिलौने। तुम चकित होओगे जानकर, जैसे बच्चे गुड्डा- गुड्डियों का विवाह रचाते हैं, उन खिलौनों से खेलते हैं। जवान महत्त्वाकांक्षा के खिलौनों में खेलते हैंः बड़े मकान बनाने हैं, बड़ी तिजोड़ी भरनी है। बूढ़े भी खेल खेलते हैं। कोई माला फेर रहा है, कोई तिलक लगाए बैठा है, कोई पूजा कर रहा है--ये बुढ़ापे के खेल हैं। इन खेलों से धर्म का कोई संबंध नहीं है। जैसे बचपन के खेल व्यर्थ, वैसे जवानी के खेल व्यर्थ, वैसे बुढ़ापे के खेल व्यर्थ। धर्म का खेल से कोई संबंध नहीं है। खेल से जागो! सब खेल आते हैं, चले जाते हैं।
तुम देखते हो, बच्चों को बूढ़ों के खेल व्यर्थ मालूम होते हैं। बच्चे सोच भी नहीं पाते कि यह क्या बुड्ढा करता रहता है! आरती उतार रहे हैं। हंसते हैं बच्चे; स्वभावतः हंसते हैं। बूढ़े बच्चों पर हंसते हैं। बूढ़े सोचते हैं बच्चों के खेल व्यर्थ। क्या तुम गुड्डा-गुड्डी का विवाह रचा रहे हो! जवान दोनों पर हंसते हैं। बूढ़े जवानों पर हंसते हैं, जवान बूढ़ों पर हंसते हैं।
सब दूसरे के खेल को पहचान लेते हैं कि यह खेल है, अपना खेल भर दिखाई नहीं पड़ता। जिसको अपना खेल दिखाई पड़ जाता है वही जाग गया। फिर वह दूसरे पर नहीं हंसता, वह अपने पर ही हंसता है।
चंद्रकांत ने प्रश्न पूछा है कल कि दोनों बातें साथ-साथ घट रही हैं। रोना भी होता है और हंसी भी आती है। यह कैसा द्वंद्व हो रहा है!
ये दोनों साथ घट सकते हैं। चिंता न लेना चंद्रकांत! घबड़ाना मत कि कहीं विक्षिप्त तो नहीं हो रहा हूं? एक ही साथ दोनों बातें हो सकती हैं। रोना आ सकता है क्योंकि जिंदगी फिजूल जा रही है और हंसना भी आ सकता है कि कैसी फिजूल की चीजों में फिजूल जा रही है!
रोना-हंसना साथ-साथ आ सकते हैं, मगर अपने पर जिसको हंसना आने लगे और अपने पर जिसको रोना आने लगे वह करीब आने लगा घर के। दूसरों पर सभी हंसते हैं। जो अपने पर हंस लेता है उसके जीवन में धर्म की शुरुआत हुई। हंसना हो तो अपने पर हंसना। देखना हो तो अपनी मूढ़ता देखना। दूसरे की मूढ़ता देखने में कोई कठिनाई नहीं है। जहां नहीं होती वहां भी लोग देख लेते हैं। क्योंकि दूसरे को मूढ़ सिद्ध करने में बड़ा रस है, अहंकार की बड़ी तृप्ति है। और अहंकार सबसे बड़ी मूढ़ता है क्योंकि सबसे बड़ा झूठ है। तुम नहीं हो, परमात्मा है। मैं नहीं हूं, परमात्मा है। मेरा होना सिर्फ एक भ्रांति है, एक सपना है, एक ख्वाब है जो अंधेरे में और नींद में देखा गया। और सुबह होते, सूरज के निकलते ही ऐसे खो जाएगा कि खोजे से नहीं मिलेगा। तुम तलाशते फिरोगे और पता भी नहीं चलेगा। एक न एक दिन हंसा तो जाएगा। और तब सारा जग वीरान पड़ा नजर आएगा।
कब्रों के मना.जर ने करबट न कभी बदली
अंदर वही आबादी, बाहर वही वीराना
कब्र में जो बस जाते हैं वे करवट भी नहीं लेते फिर, ख्याल रखना। फिर करवट लेने की भी सुविधा नहीं रह जाती। अभी तो बहुत कुछ करने की सुविधा है, कर लो तो कर लो। कब्र में गए तो करबट भी न ले सकोगे।
कब्रों के मना.जर ने करवट न कभी बदली
अंदर वही आबादी, बाहर वही वीराना

अंदर बसे रहते हैं, मरे पड़े रहते हैं तो अंदर वही आबादी और बाहर वही वीराना।
एक गांव में गांव की म्युनिसिपल कमिटी विचार करती थी कि मरघट के चारों तरफ दीवाल उठाकर घेरा बना दिया जाए। मुल्ला नसरुद्दीन भी सदस्य था म्युनिसिपल कमिटी का। वह बीच में खड़ा हो गया, उसने कहा, यह बिल्कुल फिजूल है। मरघट पर दीवाल! क्यों पैसे खराब करना? इसमें कोई भी सार नहीं है। क्योंकि जो मरघट के भीतर हो गए हैं वे बाहर आना भी चाहें तो आ नहीं सकते। और जो बाहर हैं, जब तक जबरदस्ती न लाए जाएं, वे भीतर आएंगे नहीं। तो दीवाल बनाने की क्या जरूरत है? बाहरवाले तो बाहर भागे रहते हैं, वे तो मरघट से बचते हैं। और भीतर जो बसे हैं वे बस ही गए हैं। अब उनका कोई उपाय नहीं है बाहर आने का। तो दीवाल की जरूरत क्या है?
दीवाल के दो ही काम हो सकते हैं: या तो बाहर जो हैं उनको भीतर न आने दिया जाए, भीतर जो हैं उनको बाहर न आने दिया जाए। मरघट से कौन बाहर आता है? भीतर वही आबादी, बाहर वही वीराना! लेकिन मरघट में जाकर पता चलता है कि बाहर वीराना है। जहां कल तक जिंदगी समझी थी और जिंदगी के खूब सपने संजाए थे और जिंदगी के खूब रूप उठाए थे और बड़ी दौड़ें की थीं, बड़ी आपाधापी की थी। मरघट में गिरकर पता चलता है, अरे! वहां कुछ भी न था, सब वीराना था। जैसे सुबह जागकर रात का सपना वीरान हो जाता है। मगर तब तक तो बहुत देर हो चुकी। फिर पछताए होत का जब चिड़िया चुग गई खेत। जिनको जीते-जी मरघट दिखाई पड़ने लगता है उन्हें कुछ न कुछ करना पड़ता है।
बुद्ध अपने भिक्षुओं को मरघट भेज देते थे। जब पहले दीक्षा देते थे तो दीक्षा के बाद पहला काम यह था कि जाकर तीन महीने मरघट में रह आओ। यह भी अजीब बात थी। क्यों? क्योंकि तीन महीने ठीक से देख लो कि यह जिंदगी का सार क्या है। सुबह से सांझ तक मुर्दे आते हैं, रात भी मुर्दे आते हैं। दिन भी मुर्दे जलते हैं, रात भी मुर्दे जलते हैं। भिक्षु बैठा है, देख रहा है। दिन आते हैं, जाते हैं, मुर्दे आते रहते हैं, जलते रहते हैं।
कल इसी आदमी को बाजार में हंसते देखा था, परसों इसी आदमी के घर भीख मांगी थी, नरसों यह आदमी गाली दे रहा था किसी को। चले आ रहे हैं लोग। जब इसने परसों किसी को गाली दी थी तो इसे ख्याल भी नहीं हो सकता था कि बस दो दिन और। कल इसके घर के सामने भिक्षा मांगी थी, इसने कहा था, कल आना; और आज यह खत्म हो गया। अब इसके घर जाने पर यह मिलेगा भी नहीं।
ऐसे भिक्षु बैठा है, जलती हुई लाशें देखता है। इसी देह की इतनी चिंता
की थी, इतनी साज-संवार की थी, इतने सम्हाल-सम्हालकर चले थे कि कांटा न लग जाए। जरा-सा अंगारा छू जाता था, कितनी पीड़ा होती थी! और आज यही देह जलने लगी। और जो इसे ले आए हैं कंधे पर ये अपने प्रियजन हैं, भाई हैं, बंधु हैं, मित्र हैं। ये कहते थे कि हम जिंदगी-मरण में साथ देंगे। ये जल्दी से बांधकर ले आए हैं, आग पर चढ़ाकर वापिस भी लौट गए हैं। इनको और भी काम हैं दुनिया में, हजार काम पड़े हैं अभी। ये निपटारा कर गए हैं जल्दी।
तुमने देखा! किसी के घर में कोई मरता है तो घर के लोग तो रोने-धोने में
लग जाते हैं, मोहल्ले के लोग जल्दी से अर्थी बांधने लगते हैं। जल्दी करो! जितने जल्दी हो सके, छुटकारा, इस आदमी से छुटकारा करो। कल तक इसे पकड़कर बैठे थे, आज इससे इतनी जल्दी हो गई है छुटकारे की; इतनी तेजी मची है कि जल्दी से पहुंचाओ। जितनी जल्दी खत्म हो उतना अच्छा। मुर्दे को कौन घर में रखे? रहेगा तो बदबू देगा। और रहेगा तो भय पैदा करेगा।
मुल्ला नसरुद्दीन अपनी पत्नी से बात कर रहा था। उसकी बड़ी उत्सुकता थी
कि क्या होता है मरने के बाद! वह अपनी पत्नी से कह रहा था, हम दो में से जो कोई भी मरे पहले, वह इतना वादा कर दे कि अकर कम से कम दरवाजा खटखटा देगा और आवाज देकर कह देगा कि हां मैं हूं। जिंदगी जारी रहती है।
दोनों राजी हो गए। फिर थोड़ी देर बाद सोचकर मुल्ला बोला कि एक बात लेकिन ख्याल रखना, दिन में खटपटाना, रात में नहीं। पत्नी ने कहा, क्यों? मुल्ला ने कहा, रात में वैसे ही डर लगेगा। घर अकेला, और कोई भूत-प्रेत आकर दरवाजा खटखटाए! पर पत्नी ने कहा, मैं तुम्हारी पत्नी हूं, भूत-प्रेत नहीं।

उसने कहा, अरे अभी है वह बात ठीक, मगर मरने के बाद कौन किसका पति, कौन किसकी पत्नी!
तुम जरा सोचो, तुम्हारी पत्नी ही तुम्हें मिल जाए मरने के बाद प्रेत होकर तो तुम ऐसे भागोगे कि लौटकर भी नहीं देखोगे पीछे। और यही पत्नी थी जिससे तुमने कहा था कि मरेंगे तो साथ, जिएंगे तो साथ। दुःख-सुख सब साथ-साथ उठाएंगे।
हम यहां जो बातें एक-दूसरे से कर लेते हैं, जो संबंध बना लेते हैं, कैसे झूठे हैं! मौत आ जाती है और हमारे सारे झूठों को उघाड़कर रख देती है। एक दिन हंसा चलि बसै घर-बार बिराना हो
मैं क्या कहूं कि क्या थी उ.जरा तेरी मुहब्बत
इक नख्ल मिल गया था सहराए-जिंदगी में
कूकी न इक कोयल, बोला न इक पपीहा
कोई हुआ न साथी राधा का बेकसी में
कुछ ढेर राख के हैं, कुछ अधजली-सी लकड़ी
आया था इक मुसाफिर सहराए-जिंदगी में
बस इतनी ही खबर छूट जाती है पीछे--कुछ ढेर राख के हैं, कुछ अधजली-सी लकड़ी। जरा मरघट पर जाकर तो देखो! यही छूट जाता है पीछे।
कुछ ढेर राख के हैं, कुछ अधजली-सी लकड़ी
आया था इक मुसाफिर सहराए-जिंदगी में
कोई मुसाफिर आया था जिंदगी में, बस इतना सब पीछे छूट गया है। जैसे किसी वृक्ष के नीचे कोई मुसाफिर ठहर जाता है, खाना बना लेता है, फिर चल पड़ता है। एक टूटी-फूटी हंडी पड़ी है, दो-चार ईंटें पड़ी हैं जिनका उसने चूल्हा बना लिया था, कुछ जली-अधजली लकड़ियां पड़ी हैं। बस, इतना चिह्न छूट जाता है पीछे। इससे पता चलता है कि कोई मुसाफिर आया था, वृक्ष के नीचे ठहरा था, बस।
जिंदगीभर में भी तो इतना ही चिह्न छूटता है, इससे ज्यादा क्या! इसको जिंदगी कहते हो? इसको जिंदगी कहना चाहिए? क्या यह उचित है, जिंदगी जैसा प्यारा शब्द इस व्यर्थ की श्रृंखला को देना? नहीं, ज्ञानी कहते हैं, नहीं। निसि अंधियारी कोठरी दूजे दीया न बाती हो
इसको क्या खाक जिंदगी कहते हो! रात-दिन अंधेरा है।
निसि अंधियारी कोठरी दूजे दीया न बाती हो
न तो दीया है न बाती है, अंधेरा ही अंधेरा है।
बांह पकरि जम लै चलै, कोउ संग न साथी हो
और आज नहीं कल पकड़ लेंगे यमदूत और ले चलेंगे। न कोई संगी होगा, न कोई साथी होगा। सब पीछे छूट जाएंगे। सब दूर कभी देखे थे सपने, ऐसे मालूम होने लगेंगे। भरोसा भी आएगा कि कभी थे, कभी अपने थे; कभी संगी-साथी होने की बातें की थीं, एक-दूसरे को आश्वासन दिलाए थे। ऐसा लगेगा जैसे किसी सपने में देखी बातें हों, कि उपन्यास में पढ़ी कहानी हो कि कहीं कोई फिल्म देखी हो।
और हम कितना भरोसा दिलाते हैं एक-दूसरे को! यह भरोसा भी हम इसीलिए दिलाते हैं, नहीं तो जिंदगी एकदम खाली है। इन्हीं भरोसों से भरे रखते हैं। इन्हीं झूठे आश्वासनों से अपने को किसी तरह सम्हाले रखते हैं। क्या करे आदमी! किसी तरह जीना तो है! थेगड़े लगाते रहते हैं। झूठे आश्वासन, झूठे भरोसे, झूठे विश्वास एक-दूसरे को दिलाते रहते हैं, कि घबड़ाओ मत। तुम भी घबड़ा रहे हो, दूसरा भी घबड़ा रहा है लेकिन तुम कहते हो, घबड़ाओ मत, मैं तो हूं! मैं तुम्हारे साथ हूं।
ऐसा कहकर हम एक-दूसरे के घावों की मलहम-पट्टी करते रहते हैं। घावों को ढांकते रहते हैं। इससे घाव मिटते नहीं, यही घाव नासूर हो जाते हैं, यही घाव कैंसर बन जाते हैं। इन्हीं घावों में एक दिन आदमी डूब जाता है। इन्हीं मवादों में एक दिन आदमी डूब जाता है। जितने जल्दी तुम देख सको कि ये आश्वासन झूठे हैं उतना ही शुभ है।
बांह पकरि जम लै चलै कोउ संग न साथी हो

सदा से कहानियां यही कहती हैं कि बांह पकड़कर यमदूत ले जाते हैं। बांह पकड़कर क्यों? क्योंकि तुम जाना नहीं चाहते। मरते वक्त भी कोई जाना थोड़े ही चाहता है!
जबरदस्ती होती है, खींचातान करनी पड़ती है। यमदूत भी बिल्कुल छांट-छांटकर रखे जाते हैं, पहलवान किस्म के लोग--दारासिंग इत्यादि सब! उनका काम यही कि खींच-खींचकर ले जाएं। जाना कोई चाहता नहीं। मरते दम तक आदमी जोर से किनारा पकड़ता है; आखिरी क्षण तक किनारा पकड़े रहता है।
यह जो यमदूत खींचने की बात है, इसका यमदूतों से कोई संबंध नहीं है। न कहीं कोई यमदूत हैं, न कोई खींचनेवाला है। ये सिर्फ इस बात की खबर दे रहे हैं कि तुम इतने जोर से पकड़ते हो कि जब तक तुम खींचे न जाओ, तुम इस देह को छोड़ोगे ही नहीं। तुम मर भी जाओगे तो भी इसी देह में बने रहोगे।
इसलिए सारी दुनिया में देह को जल्दी दफना देने, आग लगा देने का उपाय
है ताकि तुम, तुम्हारा मोह उससे लगा न रह जाए। नहीं तो तुम देह के आसपास चक्कर काटोगे। तुम्हारा मन उसमें फिर भी लिप्त रहेगा। इतने दिन का साथ एकदम से कैसे भूल जाओगे? आखिरी दम तक चेष्टा करोगे कि लौट आऊं।
कभी-कभी कुछ लोग लौट भी आते हैं; मरकर भी लौट आते हैं। मोह भयंकर होता होगा। यमदूतों को भी हरा देते हैं; बचकर निकल आते हैं; फिर से आ जाते हैं। कभी-कभी ऐसी घटना घट जाती है। इन लोगों का शरीर से लगाव भारी होता होगा; इतना भारी कि टूटते-टूटते भी नहीं टूट पाता। एकाध धागा जुड़ा रह जाता है तो फिर लौट आते हैं।
लोग बूढ़े हो जाते हैं, सब तरह से जिंदगी व्यर्थ हो जाती है, फिर भी जिए चले जाते हैं। अस्पतालों में देखते हो, लोग लटके हैं, ग्लुकोज दिया जा रहा है, होश में भी नहीं हैं, एक टांग ऊपर लटकी है, एक नीचे लटकी है, हाथ कहीं बंधा है, पैर कहीं बंधा है, होश में भी नहीं हैं, खाना भी इंजेक्शन से दिया जा रहा है, लेकिन फिर भी आशा लगी है: और जी जाएं।
एक बड़ी महत्त्वपूर्ण एतिहासिक घटना है, तिब्बत में घटी। भरोसा न आए ऐसी घटना है, मगर घटी। आदमी के मोह के संबंध में खबर देती है। लामाओं का एक आश्रम तिब्बत में है, उस आश्रम का यही नियम था कि जो भी मरे, आश्रम के नीचे ही पहाड़ की गहराइयों में बड़ी खंदकें थीं। उन खंदकों में मरघट था, वहां लाश को डाल देते थे अंदर। गुफाएं थीं, खोह थी। चट्टान हटाकर लाश को नीचे डाल देते थे, चट्टान फिर लगा देते थे।
एक आदमी मरा, वह पूरा मरा नहीं था, अधमरा था। अभी होश कुछ-कुछ चला गया था, लेकिन लोगों ने जल्दी की होगी। मरे आदमी को जल्दी विदा करने की फिक्र थी। उन्होंने उठा दिया पत्थर और लामा को डाल दिया नीचे। कोई घंटे-दो घंटे वह होश में आ गया। अब उस चट्टान के नीच से कितना ही चिल्लाए, आवाज बाहर न जाए। और आवाज अगर जाए भी बाहर तो क्या तुम सोचते हो, कोई चट्टान हटाएगा? घबड़ाएंगे लोग कि पता नहीं भूत हो गया, प्रेत हो गया, क्या हो गया! और चट्टानें रख देंगे ऊपर कि किसी तरह अंदर ही दबा रहे, अब बाहर न निकल आए। अब यह आदमी बिल्कुल बूढ़ा था। और बड़ी मुश्किल में पड़ गया। भयंकर अंधकार! और वहां सैकड़ों लाशें सड़ चुकी थीं, उनकी भयंकर बदबू! भूख भी लगने लगी। चिल्लाता भी रहा तो और भूख लगने लगी। प्यास भी लगने लगी। तुम चकित होओगे जानकर, वह सड़ी हुई लाशों का मांस खाता रहा। और गुफा की दीवालों से जो आश्रम का नाली इत्यादि का गंदा पानी उतर आता था, उसको चाट-चाटकर पीता रहा। लाशों में जो कीड़े-मकोड़े पड़ गए थे वे भी खाने लगा। करेगा क्या? जिंदगी का मोह ऐसा है।
और बड़े आश्चर्य की बात है. . . और प्रार्थना करने लगा। बौद्ध भिक्षु! परमात्मा को कभी माना नहीं था, लेकिन अब प्रार्थना करने लग गया। ऐसी कठिनाइयों में लोग परमात्मा को मान लेते हैं। परमात्मा के सिवा अब कोई सहारा नहीं दिखाई पड़ता था उसे। और प्रार्थना क्या करता था? प्रार्थना ऐसी, जो कि बुद्ध-धर्म के बिल्कुल खिलाफ। जिंदगी भर बौद्ध भिक्षु रहा! प्रार्थना यह थी कि अब कोई आश्रम में मर जाए। क्योंकि जब कोई मरे तभी चट्टान हटे। न कोई मरे तो चट्टान हटनेवाली नहीं है। कोई मर जाए आश्रम में। सोचता था कौन मरे। और एक ही प्रार्थना चौबीस घंटे। काम भी दूसरा नहीं था

कि कोई मरे। हे भगवान, किसी को मार। किसी को भी मार, मगर जल्दी कर। ज्यादा देर हो गई तो मैं मर जाऊंगा।
आदमी को खुद जिंदा रहना हो तो वह किसी को भी मारने को तैयार हो जाए। यही तो सारे जिंदगी की गलाघोंट प्रतियोगिता है। सब एक-दूसरे का गलाघोंट रहे हैं। उस आदमी पर दया करना। उसने कुछ गलत प्रार्थना नहीं की। कितनी ही गलत मालूम पड़े, कितनी ही हिंसात्मक मालूम पड़े।
पांच साल बाद कोई मरा। कहते हैं न, देर है अंधेर नहीं। परमात्मा ने भी खूब देर से सुनी, पांच साल लग गए! सरकारी कामकाज! फाइल पहुंचते-पहुंचते भी तो समय लगता है। पहुंची होगी जब तक प्रार्थना, पांच साल बाद कोई मरा। चट्टान हटी। लोग तो दंग रह गए। जब उन्होंने चट्टान हटाई तो वह बाहर निकला आदमी। उसे देखकर एकदम घबड़ा गए। पहचान भी नहीं आया। सारे बाल शुभ्र हो गए थे। और बाल इतने बड़े हो गए थे कि जमीन छू रहे थे। दाढ़ी के बाल जमीन छू रहे थे। आंखें उसकी खराब हो गई थीं बिल्कुल क्योंकि पांच साल अंधकार में रहा। भयंकर बदबू उसकी देह से आ रही थी क्योंकि मांस सड़ा-सड़ाया, कीड़े-मकोड़े, गंदा पानी, यही उसका आहार था।
हो सकता है जब साधना करता था ऊपर तो सिर्फ दुग्धाहार करता रहा हो, उपवास करता रहा हो, शुद्ध फलाहार करता रहा हो। ऐसी ऊंची-ऊंची बातें सूझती हैं जब सुविधा होती है। लेकिन जहां सुविधा न हो वहां कोई उपवास करे! भरे पेट लोग उपवास करते हैं, भूखे पेट लोग उपवास करते। गरीब आदमी का धार्मिक दिन आता है तो उस दिन हलुआ-पूड़ी बनाता है। अमीर आदमी का धार्मिक दिन आता है तो उपवास करता है। जैनी अकारण उपवास नहीं करते, धन है तो उपवास करना पड़ता है। धार्मिक दिन--उपवास करना पड़ता है।
अब यह आदमी तो भूखा मर रहा था और उपवास का सोचा ही नहीं पांच साल इसने।
और इतना ही नहीं, जब वह बाहर निकला तो वह बहुत-से कपड़े साथ लेकर निकला। क्योंकि तिब्बत में रिवाज है कि जब कोई मर जाता है तो उसके साथ दो जोड़ी कपड़े भी रख देते हैं। तो उसने सब मुर्दों के कपड़े इकट्ठे कर लिए थे कि जब निकलूंगा. . . आदमी का मन! और तिब्बत में यह भी रिवाज है, जब कोई मरता है तो उसके साथ दस-पांच रुपए भी रख देते हैं। उसने सब रुपए भी इकट्ठे कर लिए थे। एक पोटली में रुपए बांधे हुए था और एक पोटली में सारे कपड़े बांधे हुए था। जब वे दोनों पोटलियां उसने बाहर खींची, लोगों ने कहा, यह क्या कर रहे हो? तुम अभी जिंदा हो? उसने कहा, मैं जिंदा हूं और भला-चंगा हूं। और यह पांच साल की मेरी कमाई है। एक पैसा नहीं छोड़ा है कहीं। सब ढूंढ डाला। काम भी नहीं था कोई दूसरा।
मर भी जाए आदमी, मुर्दाघर में भी पड़ा हो तो पैसा इकट्ठा करेगा। जिंदगीभर की आदतें ऐसी ही चली नहीं जातीं। फिर आदतों का सवाल परिस्थितियों से नहीं है, आदतों का सवाल मनःस्थितियों से है।
बांह पकरि जम लै चलै कोउ संग न साथी हो
गज रथ घोड़ा पालकी अरु सकल समाजा हो
दिन तजि चल जाएंगे रानी औ राजा हाे
--सब छूट जाएगा। राजा भी जाएंगे, रानियां भी जाएंगी, हाथी, घोड़े, धन-दौलत, सब पड़ी रह जाएगी।
सेमर पर बैठा सुवना--जैसे तोता सेमर के झाड़ पर बैठा हो. . . लाल फर देख भुलाना हो--सेमर के लाल फूल को देखकर समझता हो कि यह फल है। लाल है, सुर्ख है, रसभरा है।
सेमर पर बैठा सुवना लाल फर देख भुलाना हो
मारत टोंट मुआ उघिराना फिरि पाछे पछिताना हो
--लेकिन सेमर का फूल, उस पर चोंच मारी, फल के लिए मारी थी लेकिन सिर्फ कपास उड़ गई, कुछ हाथ न लगा।
ऐसी यह जिंदगी है। जहां तुम फल देख रहे हो, सेमर का फूल है। चोंच मारोगे, फूल उघड़ जाएगा, कपास उड़ जाएगी, हाथ कुछ भी न लगेगा। पीछे बहुत पछताओगे। अभी से देख लो इस सेमर के फूल को। अभी से पहचान लो।
गुलर के तु मुनगा तू का आव समाना हो

और अपने को कुछ विशिष्ट मत समझो। इस जगत में इतनी-इतनी योनियां हैं, इतने-इतने प्राणी हैं। इनमें कुछ अकड़ो मत कि मैं मनुष्य हूं, कुछ खास हूं। खास तो तुम तभी हो सकते हो जब तुम परम जीवन के सूत्र को पकड़ लो। उसके पहले तो तुम भी गूलर के भुनगे हो। तुम्हारी स्थिति भी कीड़े-मकोड़े से ज्यादा नहीं है।
अपने को विशिष्ट समझने की आदत छोड़ दो। वह अहंकार बाधा ही डालता है। उस अहंकार से कोई सहारा नहीं मिलता, अड़चन पड़ती है। अपने को भी तब तक कीड़ा- मकोड़ा ही समझो जब तक परमात्मा से मिलन न हो जाए। उसका मिलन ही तुम्हें वैशिष्ट्य देगा। और उसका मिलन तभी हो सकता है जब तुम विसर्जित हो गए हो, तुम जा चुके। तभी वह आता है।
जगजीवनदास बिचारि कहत सबको वहं जाना हो
--और सबको वहां जाना है, तैयारी कर लो। बिना तैयारी मत जाओ। धर्म वहां जाने की तैयारी है।
हम शिक्षा देते हैं लोगों को जीवन की। पच्चीस साल तक युवकों को पढ़ाते हैं विश्वविद्यालय में, किसलिए? ताकि वे ठीक से जी सकें। रोटी-रोजी कमा सकें, पद-प्रतिष्ठा पा सकें, सम्मानपूर्वक जी सकें। यह आधी है। मृत्यु के संबंध में क्या? उसकी शिक्षा कौन देगा?
पूरब ने दूसरी शिक्षा भी खोजी। अब तो पश्चिम के मनोवैज्ञानिक भी इसका विचार करने लगे हैं कि मृत्यु का भी शिक्षण होना चाहिए। आदमी को मरने की कला भी आनी चाहिए। जीने की कला आधी कला है। और आधी कला से आदमी आधा-आधा रह जाता है, द्वंद्व में रह जाता है। आधी कला और भी आनी चाहिए। उसी आधी कला को हम संन्यास कहते हैं कि मरने की कला भी सीख लो। जीने की कला भी सीखो और मरने की कला भी सीखो। जब दोनों कलाएं तुम्हें आ जाएंगी तब तुम पाओगे कि तुम्हारे भीतर एक पूर्णता का जन्म हुआ, तुम समग्र हुए, तुम सधे। तुम्हारे भीतर संतुलन आया, सम्यक्त्व पैदा हुआ। उसी सम्यक्त्व का नाम बोध है, समाधि है, संबोधि है।
जगजीवनदास बिचारि कहत सबको वहं जाना हो
जब जाना ही है तो तैयारी कर लो। जब उस यात्रा पर निकलना ही है तो ऐसे बिना तैयारी किए मत निकल जाना, कुछ कलेवे का इंतजाम कर लो, कुछ पाथेय जुटा लो।
क्या होगा पाथेय, जो मृत्यु के बाद साथ आएगा? जब देह जल जाएगी चिता पर, तुम्हारे साथ कौन जा सकेगा? नाम सुमिर मन बावरे! प्रभु का स्मरण तब भी साथ रह सकता है। उस स्मरण को आग नहीं जलाती। उस स्मरण को पानी नहीं डुबाता। उस स्मरण को नष्ट करने का उपाय ही नहीं है। वह अविनाशी है, अविनश्वर है। वही तुम्हारा स्वरूप है।
नाम बिनु नहिं कोउकै निस्तारा
--इसलिए ख्याल रखो, परमात्मा के बिना किसी का भी निस्तार नहीं है। इसके पहले कि सब सूख जाए, तुम अपने जीवन-रस से परमात्मा की स्मृति को गहन कर लो।
कोई धड़कन है न आंसू न उमंग
वक्त के साथ ये तूफान गए
ये सब चले जाएंगे, इसके पहले इनका उपायोग कर लो। इसके पहले कि तूफान जाए, अपनी पताका उड़ा लो। इसके पहले कि यह हवा समाप्त हो जाए, अपनी नाव छोड़ दो। इसका उपयोग कर लो।
तलब के सहरा में चप्पे-चप्पे पै हैं मेरे नक्शे-पाके-मुह रें
अगर्चे मैं इस हविसकदे से गु.जर गया था मुसाफिराना
इतना ही ख्याल रखो कि यह जो तृष्णा का मरुस्थल है इसमें तुम्हारे पैर
के चिह्न तो छूटेंगे ही। बुद्ध के भी छूटते हैं, बुद्धुओं के भी छूट हैं।
लेकिन बुद्ध के ऐसे छूटते हैं जैसे कोई मुसाफिराना ढंग से गुजर गया हो।
पीछे लौटकर बुद्ध नहीं देखते; चिह्नों में जकड़े नहीं जाते। तुम तो एकेक पैर को ऐसे उठाते हो मजबूरी में! हर पैर को यमदूतों को आकर उठवाना पड़ता है।
तुम तो कुछ छोड़ना ही नहीं चाहते, सब पकड़ रखना चाहते हो।

जवान आदमी जवान ही रह जाना चाहता है, बूढ़ा नहीं होना चाहता। बूढ़ा मरना नहीं चाहता। जो जहां है वहीं अकड़ जाना चाहता है, वहीं रह जाना चाहता है थिर होकर। और जगत अथिर है। बदलना तो पड़ेगा। जो जन्मा है उसे मरना पड़ेगा। जो जवान है, बूढ़ा होगा।
इसकी तैयारी कर लो। तैयारी क्या है इसकी? इसकी तैयारी है, धीरे-धीरे अपने भीतर उतरो। धीरे-धीरे अपने भीतर शांत बैठो। धीरे-धीरे अंतरतम से परिचय बनाओ, वहां तुम साक्षी को पाओगे। वही साक्षी बचता है। फिर तो तुम्हारी लाश भी जब चढ़ायी जाएगी चिता पर, तो भी तुम साक्षी रहोगे।
मंसूर का जब सिर काटा गया तो वह हंस रहा था। किसी ने भीड़ में से पूछा
कि मंसूर, हंसते क्यों हो? तो उसने कहा, मैं इसलिए हंसता हूं कि तुम भी देख रहे हो मेरा सिर काटा जा रहा है और मैं भी देख रहा हूं कि मेरा सिर काटा जा रहा है। मेरी हंसी तुम्हारी हंसी से ज्यादा गहरी है क्योंकि तुम उसको मार रहे हो जो मैं हूं ही। तुम उसको मार रहे हो जो अपने आप ही मर जाता है; जिसको मारने की कोई जरूरत ही नहीं थी। इतनी मेहनत करने की आवश्यकता नहीं थी। तुम उसको मार रहे हो जिसको बहुत समय हुआ, मैं छोड़ ही चुका। तुम उस घर को गिरा रहे हो जिसका अब मैं वासी नहीं हूं, इसलिए मैं हंस रहा हूं। तुम मुझे तो छू भी न पाओगे।
कृष्ण ने कहा न! "नैनं छिंदतिं शस्त्राणि!" उस भीतर छिपे हुए प्राण को शस्त्र छेद नहीं पाते। "नैनं दहति पावकः"। उस भीतर छिपी हुई आत्मा को, उस मुझको आग भी नहीं जला पाती। मगर कैसे उसकी पहचान हो?
कौन हमारा दर्द बंटाए कौन हमारा थामे हाथ
उनके नगर में जगमग, अपने देश में रात ही रात
कैसे? वहां तो सब जगमग है। वहां सब प्रकाश ही प्रकाश है। परमात्मा यानी प्रकाश और हम यानी अंधकार। अहंकार अंधकार है, प्रार्थना प्रकाश है। कौन हमारा हाथ थामे?
हम पुकारें। हम प्रार्थना की तरफ धीरे-धीरे-धीरे-धीरे झुकें। गुनगुनाते-गुनगुनाते आ जाएगी। आते-आते आ जाएगी। नाम सुमिर मन बावरे!
नाम बिनु नहिं कोउकै निस्तारा
और ध्यान रखना, किसी का निस्तार नहीं है।
जान परतु है ज्ञान तत्त तें मैं मन समुझि बिचारा
उसका स्मरण करने से ही आत्मदर्शन होता है, ज्ञान होता है; तत्त्व की प्रतीति होती है कि क्या है और क्या नहीं है। उसके नाम के उठने के साथ ही तुम्हारे भीतर मशाल जल जाती है।
मआल-ए-सो.ज-.गमहा-ए-निहानी देखते जाओ
भड़क उट्ठी है शम्म-ए-िं.जदगानी देखते जाओ
और जब उसके प्रेम में, उसकी प्रार्थना में, उसकी अभीप्सा में, उसकी वासना में भीतर की लौ भड़कती है--भड़क उट्ठी है शम्म-ए-िं.जदगानी देखते जाओ। तो तुम्हारे भीतर से एक पुकार भी उठेगी। दूसरों को भी तुम बुला लोगे कि जाओ और देख लो; जो मेरे भीतर हुआ है वही तुम्हारे भीतर भी हो सकता है।
तुम हो आए हो तो शक्ल-ए-दर-ओ-दीवार है और
कितनी रंगीन मिरी शाम हुई जाती है
दिन की तो बात ही क्या कहो, रात भी बड़ी रंगीन हो जाती है। अंधेरा भी बड़ा ज्योतिर्मय हो जाता है।
तुम जो आए हो तो शक्ल-ए-दर-ओ-दीवार है और--तो सब बदल गया। दुनिया बदल गई। कारागृह मंदिर हो गया। कितनी रंगीन मिरी शाम हुई जाती है।
तब सब रंगीन हो जाता है। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, धार्मिक व्यक्ति
का सारा जीवन उत्सव के रंग से भरा होता है। धार्मिक जीवन का स्वाद ही उत्सव है, महोत्सव है। अगर ऐसा न हो तो समझना कि कहीं चूक हो गई है। उदास होने लगो तो समझना कि कहीं भटक गए। परमात्मा के साथ तो नृत्य है।
कहा भए जल प्रात्त अन्हाए. . .
कुछ न होगा कि रोज-रोज सुबह उठे, ब्रह्ममुहूर्त में नहाए, इससे कुछ भी
न होगा। ऊपर-ऊपर की बातों से कुछ भी न होगा, भीतर स्नान होना चाहिए। नाम

सुमिर मन बावरे! यही तो भीतर के स्नान की कला है। ध्यान यानी भीतर का स्नान। उससे आत्मा नहाती है, स्वच्छ होती है।
कहा भए जल प्रात अन्हाए का भए किए अचारा
और कितने तरह के क्रियाकांडों में लोग लगे हैं। आचरण साध रहे हैं; ऐसा करना, वैसा करना, यह खाना, वह खाना, यह छोड़ना। कोई नमक छोड़े बैठा है, कोई घी छोड़े बैठा है। किसी ने कुछ, किसी ने कुछ। इतनी छोटी-छोटी बातें तुम जो कर रहे हो, इनसे क्या सार है? यह देह जिसमें घी जाता है, जल जाएगी; फिर चाहे घी डालो और चाहे न डालो। यह देह जिसमें नमक जाता है, मिट्टी में मिल जाएगी; फिर नमक डालो कि न डालो।
तुम्हारे आचरण देह से भीतर जाते नहीं। और जाना है देह के भीतर। पाना
है देह के भीतर। खोजना है उसे जो देहातीत है। आचरण तो देह का ही होता है। स्नान कर लिया, रामनाम चदरिया ओढ़ ली। बैठ गए, उपवास कर लिया एक दिन। कभी घी छोड़ दिया, कभी नमक छोड़ दिया।
कहा भए माला पहिरे तें का दिए तिलक लिलारा
माला भी डाल ली तो कुछ होगा नहीं; जब तक कि तुम उसकी माला के मनके न बन जाओ। और क्या हुआ अगर तिलक भी लगा लिया! ये सब बाहर के प्रतीक हैं, इन पर रुक मत जाना।
और यह मत सोचना कि जगजीवनदास कह रहे हैं कि नहाना बंद करो। क्योंकि ऐसे मूढ़ भी हैं। वे यही सोच लेते हैं कि अरे, बिल्कुल ठीक, कहा भए जल प्रात अन्हाए! तो छोड़ो-छाड़ो झंझट। ब्रह्ममुहूर्त में उठने की भी झंझट मिटी, नहाने की भी झंझट मिटी।
जगजीवनदास यह नहीं कह रहे हैं कि नहाना मत; इतना ही कह रहे हैं कि नहाना देह का नहाना है। और देह की स्वच्छता सुंदर है, अपने आप में ठीक है, मगर यह मत सोच लेना कि इतने से ही भीतर का स्नान हो गया। गले में माला डाली, ठीक है। स्मरण रखना, ऐसे उसके गले की माला तुम्हें बन जाना है। जैसे धागे में पिरो दिए हैं ये मनके, ऐसे ही उसके धागे में तुम पिरो जाना। वह सूत्रधार है, तुम मनका बन जाना। यह तुम्हें स्मरण दिलाती रहे माला। इतना मत सोच लेना कि माला पहन ली तो सब हो गया।
का दिए तिलक लिलारा--और तिलक लगा लिया उससे क्या होगा? लेकिन यह नहीं
कह रहे हैं कि तिलक मत लगाना। तिलक तो प्रतीक है, प्यारा प्रतीक है। तिलक तो खबर देता है छठवें चक्र की, आज्ञाचक्र की।
तिलक तुम्हें याद दिलाता रहता है आज्ञाचक्र की, कि इस जगह पहुंचना है। काम-ऊर्जा को इस जगह लाना है। उसके नीचे पांच और चक्र हैं। तुम्हारी वासना की सारी शक्ति उठते-उठते-उठते-उठते दोनों भ्रूवों के मध्य में आ जाए, भ्रूमध्य में आ जाए। तिलक उसका प्रतीक है कि याद भ्रुदिलाता रहे। रोज तिलक लगाओगे, याद रहेगी। तिलक दिनभर लगा रहेगा, स्मरण दिलाता रहेगा। उसकी सुगंध, उसकी ठंडक तुम्हें याद दिलाती रहेगी कि ऊर्जा यहां आनी है, ऊर्जा यहां लानी है, सुमिरन यहां लाना है।
इसलिए उसको आज्ञाचक्र कहते हैं। क्योंकि जो भी चीज वहां पहुंच जाती
है वह पूरी हो जाती है। वहां से जो आज्ञा निकलती है वह पूरी हो जाती है। जब तक तुमने परमात्मा को आज्ञाचक्र से याद नहीं किया तब तक याद बेकार है। वहां याद होनी चाहिए। जब वहां ध्यान पहुंचता है, ध्यान पूरा हो जाता है। वहां पहुंचते ही तुम साधारण नहीं रह जाते, तुम भाग्यविधाता हो जाते हो। तब तुम जो कहते हो वही हो जाता है। तुम जो बोलोगे वही हो जाएगा।
कहा भए व्रत अन्नहिं त्यागे का किए दूध-अहारा
कुछ होगा नहीं सिर्फ इतने से कि अन्न त्याग दिया, उपवास कर लिया, कि दूध का आहार कर लिया। और ख्याल रखना, कि वे यह नहीं कह रहे हैं कि दूध कुछ बुरा है, मत लेना; कि उपवास बुरा है, मत करना। मगर उतने पर रुकना मत। आगे जाना है, और आगे जाना है। प्रतीक के आगे जाना है।
जैसे रास्ते के किनारे लगे मील के पत्थर होते हैं, जिन पर लिखा रहता है: "दिल्ली--पचास मील दूर।" इनका उपयोग है। ये व्यर्थ नहीं हैं। मगर कोई यहीं बैठ जाए कि आ गई दिल्ली, लगा लिया छाती से पत्थर को, तो पागल है।

नक्शे का उपयोग है लेकिन नक्शा असलियत नहीं है। और इसका मतलब यह नहीं
है कि नक्शे जला दो। नक्शे काम के हैं, मगर इसका यह भी मतलब नहीं है कि नक्शे ही बैठकर. . . बैठे हैं और मजा ले रहे हैं। नक्शे में कुछ मजा नहीं है, इस बात को ख्याल रखना।
बाहर का सारा आचरण जब तक तुम्हें पार ले जाने में सहयोगी न हो रहा हो,
तब तक व्यर्थ है। अगर पार ले जाने में सीढ़ी बन रहा हो तो बड़ा सार्थक है। कहा भये पंचअगिन के तापे कहा लगाए छारा
भस्म लगाने से क्या होगा? अग्नि तापने से क्या होगा? लेकिन भस्म लगाने का अर्थ समझते हो? उसका अर्थ है: मिट्टी हूं, यह याद बनी रहे। मिट्टी मिट्टी में गिर जाएगी। इसके पहले कि मिट्टी मिट्टी में गिर जाए, मैं मिट्टी में कुछ खोज लूं जो मिट्टी नहीं है। मृण्मय में चिन्मय को खोज लूं।
इसलिए राख लगाता है साधु। वह यह कह रहा है कि बाकी सब राख है। मगर कुछ लोग हैं कि वे राख ही लगाकर मस्त हो गए हैं। बस, वे बैठे हैं राख लगाए। वे कहते हैं, जो करना था कर लिया। राख लगा दी। तुमने कभी देखा है, राख लगानेवाले साधु भी दर्पण रखते हैं। राख लगा रहे हैं और दर्पण? और श्रृंगार भी कर रहे होते तो समझ में आता था कि दर्पण सार्थक मालूम होता है। लेकिन राख लगा रहे हैं दर्पण रखकर! हद हो गई मूढ़ता की।
मैं एक दफा टेन में यात्रा कर रहा था। एक साधु मेरे साथ डब्बे में थे। फट्टी लपेट रखी थी उन्होंने। काफी लोग उन्हें छोड़ने आए थे स्टेशन पर। बस, उनके पास एक टोकरी थी, उसमें दो फट्टियां और थीं। फट्टीबाबा ही वे कहलाते थे। उनकी बड़ी प्रसिद्धि! मेरे साथ वे ही थे और मैं था। मैं आंख बंद करके लेट रहा। उन्होंने अपनी टोकरी, जिसमें दो फट्टियां थीं, जल्दी से उठाई फट्टियां अपनी देखीं कि सब ठीक-ठाक! अब दो फट्टियां ही हैं, मगर सब ठीक-ठाक है? मतलब कोई चूक-चाक तो नहीं गया, कोई चोरी इत्यादि तो नहीं ले गया! फिर फट्टियों के नीचे कुछ नोट रखे होंगे। वे भी उन्होंने गिनती करके वापिस रख दिए।
और बार-बार मेरी तरफ देखते भी रहे कि मैं आंख बंद किए हूं, सो भी रहा हूं, मैंने उनसे कहा, आप बिल्कुल बेफिक्र रहो, मैं आंख बंद किए हूं। मैं देख ही नहीं रहा। आप चाहे नोट गिनो, चाहे फट्टियां गिनो, मैं देख ही नहीं रहा। आपको जो करना है आप करो। आपकी फट्टी, आपके नोट। मुझे क्या लेना-देना? मैं तो बिल्कुल आंख बंद किए पड़ा हूं। न मैंने देखा न मैं देख रहा हूं।
तो बड़े हैरान हुए; थोड़े बेचैन भी हो गए। हर स्टेशन पर पूछते वे, भोपाल
कब आएगा। मैंने उनसे कहा कि यह बोगी भोपाल ही कटनी है। इसलिए आप लाख उपाय करो, यह बोगी भोपाल के आगे नहीं जा सकती। आप घबड़ाओ मत, सुबह छह बजे भोपाल आएगा। आप बार-बार पूछो मत। मगर उनकी बेचैनी! तीन बजे रात मैंने उनको फिर देखा कि फिर उठकर वे पूछ रहे हैं। तब मैंने कहा, हद हो गई! भोपाल में ऐसा रखा भी क्या है? सोइएगा नहीं? न सोओगे, न सोने दोगे।
और पांच बजे ही से वे तैयार होने लगे। अब तैयारी करने को भी कुछ नहीं था। और जब मैंने उनको देखा कि जाकर वे आईने के सामने खड़े होकर फट्टी बांध रहे हैं, तब निश्चित मन में बड़ी दया उठी। यह तो दया योग्य स्थिति हो गई। ऐसा बांधा, फिर नहीं जंची तो फिर वैसा बांधा। तैयारी कर रहे हैं। वे लेनेवाले लोग आएंगे भोपाल पर तो वे अपनी तैयारी में लगे हुए हैं। और पीछे लौट-लौटकर मेरी तरफ भी देखते जाते हैं कि कहीं मैं देख तो नहीं रहा। मैंने कहा, भाई, मैं तुमसे कह चुका, मैं देखता ही नहीं। आंख ही बंद रखता हूं। तुम्हें जो करना हो, करो। फट्टी तुम्हारी, देह तुम्हारी, दर्पण सरकारी, मैं बीच में कौन बोलनेवाला? तुम बांधो मजे से। जितनी बार खोलना है खोलो और बांधो। और जिस तरह तुम्हें बांधना है वैसा बांधो।
आदमी अद्भभुत है। और आदमी का मन इतना मूढ़ है, इतना पागल है कि बाहर की व्यर्थ की बातों में बहुत ज्यादा रस ले सकता है। राख भी लगा सकता है और राख श्रृंगार बन सकती है। बस, चूक गए। राख का प्रतीक था, कि शरीर राख से ज्यादा नहीं है यह याद रहे, यह पहचान रहे!

वह जो आग जलाकर बैठ जाता है फकीर, वह इस बात का प्रतीक है कि आज नहीं कल
आग में गिरना है, मौत करीब आ रही है। यह चिता है। अगर यह चिता की याद दिलाए तुम्हारे सामने लगी धूनी, तो सार्थक है। और अगर यह तुम्हारी नक्शे की ही पूजा बन जाए, कि हम तो धूनी लगाकर बैठेंगे; कि बिना धूनी के नहीं बैठ सकते. . .। धूनी तुम्हारी पूजा बन जाए, आचरण बन जाए तो चूक हो गई; तो तुमने प्रतीक को सब कुछ समझ लिया।
कहा ऊर्धमुख धूमहिं घोंटें कहा लोन किए न्यारा
कहा ऊर्धमुख धूमहिं घोंटें कहा लोन किए न्यारा
--नहीं होगा कुछ लाभ--नमक छोड़ो, यह करो, वह करो।
कहा भए बैठै ठाढ़ें तें का मौनी किहे अमारा
कुछ नहीं होगा, खड़े रहो कि बैठे रहो। कि एक टांग पर खड़े रहो, कि सदा के लिए खड़े हो जाओ, कि सदा के लिए बैठ जाओ, कि लेटो ही मत कि सोओ ही मत, इन सबसे कुछ भी न होगा। ये सब प्रतीक हैं। वह जो आदमी खड़ा रहता है वह सिर्फ यह कह रहा है कि मैं होश सम्हालूं। ऐसा होश सम्हालूं, जैसे शरीर खड़ा है, ऐसा मेरा होश खड़ा हो जाए। कि मैं मूर्च्छित न रहूं। वह जो रीढ़ सीधे करने पासन में बैठा है, वह यह कह रहा है, ऐसे मेरा भीतर चैतन्य बैठ जाए, पासन जैसा स्थिर हो जाए। मगर भीतर तो चल रहा है सब पागलपन है बाहर पासन लगा है तो कुछ सार नहीं है।
का पंडिताई का बकताई का बहु ज्ञान पुकारा
--कितना ही सीख लो शास्त्रों से, सब बकवास है।
गृहिनी त्यागि कहा बनबासा का भए तन-मन मारा
घर छोड़कर भाग जाओ जंगल में, कुछ सार न होगा। तन को मारो, मन को मारो, कुछ सार न होगा। यह वचन बड़ा क्रांतिकारी है। का भए तन-मन मारा--तन और मन को मारने से कुछ भी न होगा। ये रोग के लक्षण हैं। ये आत्मघाती आदमी के लक्षण हैं। ये विक्षिप्त आदमी के लक्षण हैं। तन और मन को मारना नहीं है, तन और मन के पार जाना है। इनको सीढ़ी बनाना है। यह तन मंदिर है परमात्मा का। इसमें परमात्मा छिपा है, उसे खोज लेना है। इस देह का कोई कसूर नहीं है। इस देह ने तुम्हारा कुछ बुरा नहीं किया है, इसको सताने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह देह तो तुम्हारी मित्र है।
प्रीतिविहूनि हीन है सब कछु भूला सब संसारा
यह वचन याद रखना, खूब रससिक्त है। हृदय में खुद जाए।
प्रीतिविहूनि हीन है सब कछु--यह सब तुम करते रहो लेकिन जब तक परमात्मा
से प्रीति नहीं लग गई है, तब तक सब व्यर्थ है। और प्रीति लग गई तो सब सार्थक है। असली चीज प्रीति है। नाम सुमिर मन बावरे।
प्रीतिविहूनि हीन है सब कछु भूला सब संसारा
तेरी आंखों को ऐ दीवानी राधा, कौन समझाए!
झड़ी बांधे न सावन की, कि फागुन का महीना है
जो कोयल कूक उठती है तो दिल में हूक उठती है
धुआं होने नहीं पाता, कोई यूं भी सुलगता है
प्रीति जब सुलगे ऐसी कि जैसे कूक उठती है ऐसी हूक उठे; कि जैसे सावन की झड़ी लगती है ऐसे आंसुओं की झड़ी लगे। परमात्मा के लिए कोई रोए, पुकारे तो फिर सब सार्थक है। फिर मिट्टी भी छू दे ऐसा आदमी तो सोना हो जाती है। और जिसके जीवन में परमात्मा की प्रीति नहीं है वह सोना भी छू दे तो मिट्टी हो जाती है।
प्रीतिविहूनि हीन है सब कछु भूला सब संसारा
और इतनी ही बात भूल गई है, प्रीति भूल गई है, और सब याद है। बिना प्रीति
के सब किए जा रहे हैं। कर्तव्य की तरह किए जा रहे हैं। पूजा भी कर आते हैं, आरती भी उतार लेते हैं, मूर्ति के सामने सिर भी पटक आते हैं और प्रीति का कुछ भी पता नहीं है।
और प्रीति ही असली चीज है। न जाओ कभी मंदिर, अगर हृदय में प्रीति है, मंदिर तुम्हारे पास आएगा। तुम जहां हो वहां मंदिर है। मत करो पूजा, तुम जो करोगे वही पूजा है। कबीर ने कहा है, उठूं-बैठूं सो परिक्रमा। अब कहां जाऊं मंदिर-वंदिर? यहीं उठता-बैठता हूं, वहीं परिक्रमा हो जाती है क्योंकि वही

तो है। उसके सिवा कोई भी नहीं है। खाऊं-पिऊं सो सेवा। अब क्या भगवान को भोग लगाना! भीतर भी वही बैठा है। तो जो खाता-पीता हूं, उसी को भोग लग जाता है।
कबीर ठीक कह रहे हैं। यही जाननेवालों की अनुभूति है।
मंदिल रहै कहूं नहिं धावै अजपा जपै अधारा
वह तुम्हारे भीतर बैठा है, तुम्हारे घर में बैठा है, तुम्हारे मंदिर में बैठा है। मंदिल रहै कहूं नहिं धावै। वह जाता ही नहीं तुमसे बाहर कहीं।
तुम कहां जा रहे हो उसे खोजने? काबा, काशी, कैलास--तुम कहां जा रहे हो? वह तुम्हारे बाहर कभी गया नहीं, जाता नहीं। तुम्हारे भीतर ही विराजमान है। भीतर चलो।
अजपा जपै अधारा--और इसके जाप के लिए तुम्हें कुछ मंत्रों इत्यादि की जरूरत नहीं है, प्रीति काफी है। जस पनिहार धरे सिर गागर! कुछ याद करने के लिए दोहराने की जरूरत नहीं है कि बैठे हैं; राम-राम-राम-राम-राम जप रहे हैं। इतने लोग राम-राम जपेंगे तो कुछ राम की भी तो ख्याल करो! उसका सिर भी घूमने लगेगा। उसका सिर फटा जा रहा होगा। भक्त उसकी जान ले रहे होंगे।
एक आदमी मरा, जो राम-राम खूब जपता था। जब मरा तो परमात्मा के सामने ले जाया गया। उसी दिन गांव की वेश्या भी मरी जिसने कभी राम का नाम जाप किया ही नहीं था। वेश्या को तो परमात्मा ने कहा, ले जाओ स्वर्ग और इन सज्जन को पहुंचाओ नरक। वह आदमी तो बहुत नाराज हुआ। उसने कहा, कुछ गलती हो रही है। यह क्या अन्याय है? मैं चौबीस घंटे राम-राम जपता था, माला फेरता था, और मुझे नरक भेजा जा रहा है? परमात्मा ने कहा, इसीलिए। तूने मुझे जिंदगी में एक मिनिट चैन न लेने दी। राम-राम, राम-राम! तू मेरी छाती खा गया। इस वेश्या ने मुझे कभी नहीं सताया।
तुम जरा ख्याल करो, प्रीति. . .! तुम क्या कहते हो ओंठों से, यह सवाल नहीं है, तुम्हारे हृदय की भाव दशा क्या है।
मंदिल रहै कहूं नहिं धावै अजपा जपै अधारा
गगन-मंडल मनि बरै देखि छवि, सोहै सबतें न्यारा
और तुम अगर शांत होकर, मौन होकर भाव ही भाव में स्मरण करोगे तो जल्दी
ही तुम पाओगे, गगन-मंडल में, तुम्हारे भीतर के आकाश में उसकी ज्योति प्रकट होती है; उसकी छवि प्रकट होती है। सोहै सबतें न्याराऔर वह जो सबसे अद्वितीय है उसका दर्शन होता है। अदृश्य दृश्य होता है।
जेहि विस्वास तहां लौ लागिय तेहि तस काम संवारा
और उतने दूर तक ही तुम्हारी यात्रा होगी जितने दूर तक तुम्हारी श्रद्धा है। इसलिए श्रद्धा को ही ख्याल में लेना। और बाकी सब बातें गौण हैं। नमक खाओ कि घी खाओ कि न खाओ, ये सब बातें गौण हैं। उतने दूर तक यात्रा होगी जितने दूर तक श्रद्धा है।
जेहिं विस्वास तहां लौ लागिय--बस, जहां तक श्रद्धा है वहां तक तुम जा सकोगे। अगर श्रद्धा पूर्ण है तो एक क्षण में यात्रा पूरी हो जाती है। पहले कदम पर ही मंजिल आ जाती है।
... तेहि तस काम संवारा
जगजीवन गुरु चरन सीस धरि छूटि भरम कै जारा
श्रद्धा कहां सीखोगे?
--जगजीवन कहते हैं, मैंने तो गुरु चरणों में सिर रखकर सीखी। मैंने तो अपने को वहां समर्पित करके सीखी।
श्रद्धा कैसे भीतर तुम्हारे उमगेगी? कोई जला हुआ दीया दिखाई पड़े। कोई खिला हुआ फूल दिखाई पड़े तो तुम्हें भरोसा आए कि मेरा फूल भी खिल सकता है, मेरा दीया भी जल सकता है। श्रद्धा तर्क की बात नहीं है, सत्संग का परिणाम है।
सत्संग करो। खोजो किसी ऐसे आदमी का साथ, जिसकी मौजूदगी में तुम्हें लगता हो कि कुछ ऐसा है, जो जानने योग्य है; कुछ ऐसा है जो पाने योग्य है। जिसकी मौजूदगी निमंत्रण बन जाती हो अज्ञात का। जो तुम्हारी आंखों में देखे तो तुम चल पड़ो किसी यात्रा पर। क्योंकि तुम्हें परमात्मा का कोई पता नहीं है, लेकिन जिसको पता हो उसकी आंखों में भी उस परमात्मा की झलक होती

है। जिसने उसे देखा हो उसके पास बैठने में भी उसकी तरंगें तुम्हें तरंगायित करेंगी।
सत्संग एक अनूठा प्रयोग है जहां श्रद्धा जनमती है। श्रद्धा सत्संग का
फल है।
जगजीवन गुरु चरन सीस धरि छूटि भरम कै जारा
सारे भरम से मैं छूट गया। सारे भ्रम से छूट गया। अपनी बुद्धि, अपना सिर, अपना सोच-विचार, अपना तर्क, सब गुरु के चरणों में रख दिया। वहां से श्रद्धा उमगी। और श्रद्धा के पंखों पर जो सवार हो गया वह चल पड़ता है; वह पहुंच जाता है।
नाम सुमिर मन बावरे कहा फिरत भुलाना हो

आज इतना ही।

नाम सुमिर मन बावरे
आठवां प्रवचन

संन्यास परम भोग है

पहला प्रश्नः अल्बेयर कामू का कथन है: "इंसान सदैव अपनी सच्चाइयों का शिकार होता है। एक बार सत्यों को स्वीकार करके वह उनसे अपने को मुक्त नहीं कर पाता।"
सत्य की यह कैसी परिभाषा? और आप तो रोज-रोज यही दोहराते हैं कि अपना सत्य ही मुक्त करता है।

नरेंद्र! अल्बेयर कामू एक विचारक है, द्रष्टा नहीं है। विचार सदा ही अंततः निराशाजनक होता है। विचार की निष्पत्ति नकारात्मक है। विचार को उसके तार्किक अंत तक ले जाया जाए तो नास्तिकता के अतिरिक्त हाथ और कुछ भी नहीं लगता। विचार का स्वरूप "नहीं" है। "नहीं" शब्द में विचार की प्रक्रिया समा जाती है। विचार "हां" को जानता ही नहीं।
इसलिए विचारक की यह मजबूरी है कि जितना सोचेगा उतना ही उदास होता जाएगा। क्योंकि जितना सोचेगा उतने जीवन के भ्रम टूटेंगे। सिर्फ भ्रम ही टूटेंगे और जीवन के सत्यों का उसे कुछ भी पता नहीं चलेगा। भ्रम टूटने से रिक्तता हाथ लगती है। और रिक्तता वही नहीं है जिसे जानने वालों ने शून्य कहा है। शून्य तो बड़ा भरा-पूरा होता है, बड़ा रस-विभोर होता है; रस से सरोबोर होता है। रिक्तता में कुछ भी नहीं है, खालीपन है। जो था वह भी गया। पुराने से हाथ छूट जाता है और नए की उपलब्धि नहीं होती।
जैसे किसी के हाथ में कंकड़-पत्थर थे और उसने मान रखा था कि हीरे हैं। मानने में कम से कम मजा तो था। उसके लिए तो हीरे ही थे। सम्हालकर रखता था, तिजोड़ी में छिपाकर रखता था। उसे तो यह भरोसा था कि हीरे हैं। कभी जरूरत होगी तो काम आ जाएंगे। उसका "कल" अंधकारपूर्ण नहीं था, उसका भविष्य रोशन था, हीरों की जगमगाहट से भरा था, यद्यपि थे कंकड़-पत्थर; कभी काम आनेवाले नहीं थे। मगर उसकी आशा तो जगी-जगी थी! आश्वासन तो था! सपना उसके लिए अभी सच था।
विचार बता देगा कि ये कंकड़-पत्थर हैं। सोचो उस आदमी की दशा, जिसे यह पता चल जाए कि उसकी तिजोड़ी में केवल कंकड़-पत्थर हैं; पूर्ण रूप से पता चल जाए कि ये कंकड़-पत्थर हैं--सपना टूट जाए। उसके साथ ही आशा गई। उसी के साथ उत्साह गया, भविष्य अंधकारपूर्ण हो गया।
ऐसी विचार की स्थिति है। ध्यान के अतिरिक्त हीरों का तो पता ही नहीं चलेगा। ध्यान विधेय है; वह अस्तित्व में ले जाता है। विचार निषेध है; वह तुम्हारे भ्रमों को तोड़ देता है। विचार का उपयोग किया जा सकता है लेकिन ध्यान की सेवा में; ध्यान के सेवक की तरह। अगर किसी ने विचार को मालिक बना लिया तो पछताएगा; बहुत पछताएगा।
अल्बेयर कामू इसीलिए कह रहा है कि सत्य बहुत खतरनाक है, उनसे सावधान रहना। क्योंकि जिसके भी जीवन के भ्रम टूट जाते हैं उसका जीना मुश्किल हो जाता है।
ऐसा ही समझो कि कोई आदमी मंदिर में पूजा करता है; मानता है, उसकी पूजा परमात्मा तक पहुंच रही है। मानता है तो मस्त है। फिर विचार जगे, सोचने लगे कहां परमात्मा, कैसा परमात्मा! कभी देखा तो नहीं। किसने देखा? यह पत्थर की मूर्ति है जिसके सामने मैं पूजा कर रहा हूं। यह मैं ही बाजार से खरीद लाया हूं। यह आदमी की बनायी हुई मूर्ति है। परमात्मा तो वह है जिसने आदमी को बनाया। और यह कैसा परमात्मा, जिसको आदमी ने बनाया? यह परमात्मा नहीं हो सकता।
पूजा का थाल गिर जाए हाथ से। फूल बिखर जाएं। प्रार्थना खंडित हो गई।
इस आदमी के जीवन में अमावस आ गई। चांद तो कभी था ही नहीं, अमावस ही थी, मगर चांद को मान रखा था। मानने में भी मजा था; वह मजा भी गया।
इसके जीवन में भ्रम टूटा, यह आधा काम है। अब इसके आगे विचार की प्रक्रिया समाप्त हो जाती है। इसके आगे ध्यान की प्रक्रिया शुरू होती है।

बाहर भगवान नहीं है, मंदिर में भगवान नहीं है, मूर्ति में भगवान नहीं है।
यह पूजा का थाल व्यर्थ हुआ। ये सब पत्थर पा लिए कि हीरे नहीं थे, मान्यता थी। सब मान्यताएं उखड़ गईं।
अगर यहीं कोई रुक गया तो आत्मघात के अतिरिक्त और कुछ बचता नहीं।
जिएगा भी तो मरा-मरा जिएगा। ध्यान यहीं से शुरू होता है। अब भीतर मुड़ो।
बाहर के मंदिर व्यर्थ हो गए, अब भीतर के मंदिर में तलाशो। विचार व्यर्थ हो गया, विचार ने अपना काम पूरा कर दिया, अब निर्विचार को काम करने दो।
कामू निर्विचार की तरफ नहीं जाता। वह पश्चिम की मजबूरी है। पश्चिम विचार से ऊपर नहीं जाता। ध्यान पूरब की महिमा है। हमने भी खूब विचार किया है। इतना विचार किया है कि विचार बिल्कुल व्यर्थ हो गया। विचार को बिल्कुल निचोड़ लिया है।
लेकिन वहीं हम रुके नहीं। वहीं हमने परिसमाप्ति नहीं मानी। वहीं से हमने शुरुआत मानी असली यात्रा की। तीर्थयात्रा वहीं से शुरू हुई है। फिर हमने निर्विचार में झांका। फिर हम चुप हुए, मौन हुए। फिर हमने आंखें बंद कीं और आंखें बंद करके देखा। तर्क छोड़ा, सिर्फ देखा। भीतर साक्षी बने। सोचा नहीं, देखा। देखा कि क्या है भीतर? यह मैं कौन हूं? यह मेरा अस्तित्व क्या है? यह मेरा चैतन्य क्या है? उस दर्शन से फिर आशा के फूल खिलते हैं। उस दर्शन से हीरों की खदान मिल जाती है। उस दर्शन से अपना साम्राज्य मिल जाता है। विचार भ्रम तोड़ता है, ध्यान सत्य को देता है।
अल्बेयर कामू अकेला नहीं है ऐसा कहने वाला। नीत्शे ने भी कहा है कि जिस दिन आदमी के सारे भ्रम टूट जाएंगे उस दिन आदमी जी न सकेगा। आदमी के भ्रम मत तोड़ो, आदमी विक्षिप्त हो जाएगा। उसको अपने भ्रमों में जीने दो। करने दो उसे पूजा-पाठ, जपने दो उसे मंत्र, फेरने दो उसे माला, मानने दो उसे आकाश में किसी परमात्मा को, रहने दो भयभीत नरक से, भरा रहने दो लोभ से स्वर्ग के प्रति, करने दो कामना अप्सराओं की, स्वर्ग में बहते हुए शराब के झरनों की। उसके जीवन में उत्साह रहेगा। हैं सब बातें फिजूल, लेकिन इससे क्या लेना-देना है? मस्त रहेगा। डोलता रहेगा। ऐसे मस्त रहते-रहते मर जाएगा। मिट्टी मिट्टी में मिल जानेवाली है; न कोई स्वर्ग है, न कोई मोक्ष है; न कोई परमात्मा है न कोई आगे जीवन है। मगर कहो मत। आदमी के पैर के नीचे की जमीन मत खींच लो।
और नीत्शे ने ऐसे ही नहीं कह दिया यह। उसके खुद के पैर के नीचे की जमीन खिसक गई। उसने बहुत सोचा। इस पृथ्वी पर जो सोचनेवाले लोग हुए हैं उनमें नीत्शे अग्रणी विचारक हैं। कामू इत्यादि उसके पीछे ही चलने वाले लोग हैं; उसी की छोटी-छोटी धाराएं हैं। नीत्शे स्वयं भी पागल हो गया। जब उसके सारे भ्रम टूट गए तो कैसे जियोगे? विक्षिप्त न हो जाओगे तो क्या करोगे? धन व्यर्थ है, प्रेम व्यर्थ है, परमात्मा भी व्यर्थ हो गया। पद व्यर्थ है, प्रतिष्ठा व्यर्थ है। सब कुछ व्यर्थ हो गया, अब जियोगे कैसे? अब या तो अपने को मार डालो... ।
तो कामू ने कहा है कि वास्तविक आध्यात्मिक समस्या एक ही है कि आदमी आत्महत्या क्यों न करे? क्यों जिए? और अगर अल्बेयर कामू की तर्कसारणी को हम स्वीकार करें तो जरूर यह प्रश्न ही सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। ईश्वर नहीं, मोक्ष नहीं, तो सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न ही यह है कि आदमी जिए ही क्यों? जब सब व्यर्थ है तो चुपचाप मर जाने में ज्यादा सार है। क्यों इतना ऊहापोह? क्यों इतनी आपाधापी? क्यों यह चिंता, बेचैनी? क्यों यह दुःखस्वप्नों का जाल? क्यों न चुपचाप गिर जाएं मिट्टी में और सो जाएं सदा को? क्यों न शांत हो जाएं? क्यों ये मन के सारे तनाव और चिंताएं खींचते फिरें?
या तो आत्महत्या कर लें, और अगर आत्महत्या करने में भय लगता हो तो विक्षिप्तता बचती है। वही नीत्शे को हुआ। नीत्शे विक्षिप्त होकर मरा। तो अपने अनुभव से कह रहा है। जब वह विक्षिप्त हो गया था तब भी कभी-कभी बीच में जब उसे होश आता था तो वह यही कहता था: मनुष्यों के भ्रम मत तोड़ो। मैंने अपने भ्रम तोड़े और सिवा पागलपन के कुछ भी हाथ न लगा। मनुष्य को जीने दो

उसके भ्रमों में। मनुष्य बिना भ्रमों के नहीं जी सकता। भ्रम उसका आधार है, उसकी बुनियाद है।
लेकिन यह बात अधूरी है। और ध्यान रखना, अधूरे सत्य... सच्ची है मगर अधूरी है; अधूरे सत्य असत्यों से भी ज्यादा भयंकर होते हैं। तुमसे छीन तो लेते हैं कुछ, लेकिन तुम्हें देते कुछ भी नहीं। तुम्हारे हाथ में कांटा था, वह तो छिन जाता है लेकिन फूल नहीं आता। माना कि कांटा दुख भी दे रहा था तो भी कम से कम कुछ तो हाथ में था! दुःख ही सही, अकेले तो नहीं थे! कुछ व्यस्त होने का उपाय तो था। वह भी गया। बीमारी ही सही. . .।
इस बात को ख्याल रखो कि मनुष्य रिक्तता की बजाय बीमारियां पसंद करेगा। कम से कम भरा रहता है। रिक्तता की बजाय उलझनें पसंद करेगा। कम से कम उलझा तो रहता है। रिक्तता तो बहुत भयानक है, बहुत घबड़ानेवाली है। रिक्तता में जिसने भी झांका वह पागल हो जाएगा। उसने एक ऐसे जगत में देख लिया जहां कोई अर्थ नहीं है।
कामू और उस जैसे विचारकों का जन्म पश्चिम में हुए दो महायुद्धों के बाद हुआ। पहला महायुद्ध हुआ, पश्चिम के बहुत-से भ्रम टूट गए। फिर दूसरा महायुद्ध हुआ और उसने सारे भ्रम तोड़ डाले। उसने मनुष्य की पाशविकता उघाड़कर रख दी, उधेड़कर रख दी। उसने बता दिया कि मनुष्य मनुष्य नहीं है, यह बिल्कुल जंगली पशु है। मनुष्यता केवल ऊपर का आवरण है। खोल ओढ़ रखी इसने। भेड़िए ने भेड़ की खाल ओढ़ रखी है।
जो पश्चिम ने देखा दूसरे महायुद्ध में वह इतना भयानक था, इतना दुखांत था... । कैसे आदमी काटे गए, कैसे स्त्रियों का बलात्कार किया गया, कैसे बच्चे जलाए गए! और फिर हिरोशिमा में पूर्णाहुति हुई। अणुबम पर जाकर युद्ध अपना पूर्णविराम पाया। इतनी भयंकर हिंसा न कभी हुई थी, न कभी सोची गई थी। और आदमी ऐसा करेगा? आदमी, जिसको कि शास्त्र कहते हैं, बस देवताओं से एक कदम नीचे, एक सीढ़ी नीचे!
दूसरे महायुद्ध ने सिद्ध कर दिया कि आदमी पशुओं से एक सीढ़ी नीचे है। पशु भी इतने भयंकर नहीं हैं। तुम जानते हो न! कोई पशु अपनी ही जाति के पशुओं को नहीं मारता। कुत्ते कुत्ते की हत्या करते नहीं पाए जाते; न भेड़िए भेड़ियों की हत्या करते हैं, न सिंह सिंहों को मारते हैं। सिर्फ आदमी अकेला प्राणी है सारी पृथ्वी पर, जो आदमी को मारता है। कोई पशु-पक्षी अपनी जाति को नहीं मारते। और दूसरी जातियों को भी मारते हैं तो सिर्फ भोजन की दृष्टि से, भूख के कारण। शिकार खेलने नहीं जाते। आदमी अकेला है जो शिकार खेलता है। कोई सिंह शिकार नहीं खेलता।
सुनी है मैंने कहानी कि एक सिंह और खरगोश एक होटल में पहुंचे। खरगोश
ने नाश्ते का ऑर्डर दिया। वेटर ने पूछा, "और आपके मित्र के लिए क्या लाऊं?" खरगोश ने कहा कि "अगर मेरे मित्र को नाश्ते की जरूरत होती तो मैं उनके साथ हो ही नहीं सकता था। वे नाश्ता कर ही चुके होते। वे बिल्कुल भरे पेट हैं इसलिए तो मैं उनके साथ हूं।"
सिंह मारता तभी है जब भूखा हो। सिर्फ आदमी खेल में भी मारता है; मारने में भी रस लेता है। मारने में एक कुत्सित रस है। ध्वंस में एक कुत्सित रस है।
दूसरे महायुद्ध ने आदमी की पाशविकता इस बुरी तरह से प्रकट कर दी कि उसका सब परमात्मा, उसके मंदिर-मस्जिद, उसके चर्च, सब झूठे हो गए। और एक बात साथ हो गई कि अच्छी-अच्छी बातों के पीछे भी मनुष्य अपनी बुराइयों को ही छिपाए खड़ा है। बातें करता है चर्च की, इंतजाम करता है जिहाद का, धर्मयुद्ध का। बातें करता है शांति की, फिर कहता है शांति की रक्षा के लिए युद्ध करना होगा। मजा देखो! शांति की रक्षा के लिए युद्ध करना होगा। बातें करता है प्रेम की, लेकिन अगर इसके प्रेम को ठीक से देखो तो हिंसा से बदतर, घृणा से बदतर। इसके प्रेम का शिकंजा जिसके गले पर पड़ जाता है, उसकी ही फांसी लग जाती है। प्रेम सिर्फ कारागृह बनाता हुआ मालूम पड़ता है।
आदमी बातें बड़ी अच्छी करता है। बस, बातें करने में कुशल हो गया है। भीतर बड़ी नग्नता है; और बड़ी भयंकर नग्नता है। ऊपर-ऊपर सम्हला दिखता है, भीतर बिल्कुल पागल है।

इसीलिए अल्बेयर कामू, सार्त्र और उस जैसे विचारकों ने एक निराशा का दर्शनशास्त्र पश्चिम को दिया: "अस्तित्ववाद।" पूर्ण निराशा का शास्त्र है। आदमी के भ्रम मत तोड़ो।
इसलिए कामू कहता है कि इंसान सदैव अपनी सच्चाइयों का शिकार होता है। उसे सच्चाइयां बताओ ही मत। उसे चुपचाप जीने दो अपने भ्रम में। भ्रम मधुर है। सपना प्रीतिकर है। उसको सपना देखने दो, तोड़ो मत उसका सपना। तोड़ दोगे, फिर उसे सुलाना मुश्किल हो जाएगा। फिर तुम पछताओगे कि इसको जगाया क्यों? फिर उसे वापिस नींद में पहुंचाना बहुत कठिन है। एक बार नींद टूट गई तो फिर कोई उपाय उसे सुलाने का नहीं है।
इसलिए उसे सोने दो, चुपचाप सोने दो। उसे अपने सपने देखने दो, उसे अपना भ्रम देखने दो। पूजने दो पत्थर, जाने दो काबा। मानने दो भूत-प्रेत--जो उसे मानना हो। गंडे-ताबीज, पूजा-प्रार्थना--जो उसे करना हो करने दो। उसे सत्य मत कहो क्योंकि सत्य भयानक है। ऐसा उनको अनुभव हुआ; क्योंकि जो सत्य युद्धों में प्रकट हुआ वह भयानक था।
अहरमन हंस पड़ा इस तर्जे-जहां बानी पर
कंगूरे झुक गए, ईवानों के हिलने लगे दर
किस कदर-बे-बसो-कम माया नजर आता है
गरां कद्र को महदूद किया जाता है
फिक्रे-इंसानी की इस दर्जा मुजैय्यन शहकार हर्पे बरबादिए-तहजीब हुआ जाता है
अपने इन हाथों ने अपना ही गला घोंट दिया काफिलेवालों ने खुद काफिले को लूट लिया हमने चाहा था कि इस कूवते-बे-पायां से
अपनी खुद-साख्ता दोजख को बना लें जन्नत
न कि उम्मीद जो कुछ थी भी वही मिट जाए
जिसे-कुर्बानी की दुनिया में रही क्या कीमत
फटके जर्रे भी फना हो गए, कुछ कर न सके
दामने-जीस्त ही कर गए, भर न सके
हमने अणु भी तोड़ लिया-- जर्रे भी फना हो गए। हमने अणु भी तोड़ िया, इतनी शक्ति पैदा कर ली मगर फायदा क्या हुआ?
फटके जर्रे भी फना हो गए, कुछ कर न सके
दामने-जीस्त ही कर गए, भर न सके
आदमी की जिंदगी की जेब और खाली हो गई, भरी नहीं। सोचा तो हमने कुछ और था। हमने चाहा था कि उस कूवते-बे-पायां से--विज्ञान के द्वारा दी गई शक्ति से, इस महान शक्ति से...
हमने चाहा था कि इस कूवते-बे-पायां से
अपनी खुद-साख्ता दोजख को बना लें जन्नत
--कि हम इस नरक को, नरक जैसी पृथ्वी को स्वर्ग जैसा बना लेंगे, मगर बात कुछ और हुई। थोड़े-बहुत सपने भी थे स्वर्ग के, वे भी नष्ट हो गए। पृथ्वी और नरक हो गई।
अहरमन हंस पड़ा इस तर्जे-जहां बानी पर
शैतान हंसने लगा आदमी को देखकर। हंसने लगा क्योंकि इतना तो शैतान भी चेष्टा करता तो आदमी को बरबाद नहीं कर सकता था। आदमी तो एक कदम आगे निकल गया।
अहरमन हंस पड़ा इस तर्जे-जहां बानी पर
कंगूरे झुक गए ईवानों के हिलने लगे दर
--सब कंप गया। सारे मंदिर कंप गए, सारे महल कंप गए।
ऐसे दूसरे महायुद्ध के बाद जो छाया पड़ी पश्चिम के चित्त पर, उस छाया
का परिणाम है अस्तित्ववाद। अस्तित्ववाद कहता है, मत कहो आदमी से उसके सत्य। एक बार सत्य जान लेगा तो फिर तुम बहुत पछताओगे। आदमी को बचकाना ही रहने दो; उसे प्रौढ़ मत बनाओ।
मगर यह बात अधूरी है। हमने और आगे भी तलाश की है। जहां कामू और सार्त्र रुक गए हैं वहां बुद्धों ने प्रवेश किया है। उन्होंने विचार के

पार ध्यान में झांका। रिक्तता मिट जाती है, पूर्ण का अवतरण होता है। ध्यान परम आलोक से भर जाता है। शाश्वत जीवन की प्रतीति होने लगती है। मान्यता नहीं; मान्यता के तो बुद्ध भी खिलाफ हैं, मैं भी खिलाफ हूं। मान्यता तो तोड़नी ही होगी। लेकिन कामू डरता है कि मान्यता टूट गई तो फिर क्या होगा? कोई डरने का कारण नहीं है। मान्यता टूट जाए तो हम आदमी को जानने की तरफ ले चलेंगे।
मेरे देखे तो जगत में जो निराशा फैली है, यह सूरज के पहले रात का घना
हो जाना है; और कुछ भी नहीं है। सुबह होने के पहले रात खूब काली हो जाती है, बस इतना ही। इस निराशा से कुछ निराश होने की जरूरत नहीं है। यह निराशा एक बड़ी आशा का जन्म बनेगी।
इसलिए पश्चिम में ध्यान की तलाश शुरू हुई है। विचार ले आया आखिरी कगार पर। अब लौटने का कोई उपाय नहीं है। जीवन के सारे खिलौने टूट गए। जीवन की सारी मान्यताएं उखड़ गईं। अब किताबों में भरोसा नहीं है आदमी को। अब आदमी ध्यान की तलाश में निकला है।
मुझसे लोग पूछते हैं कि भारत के लोग ध्यान में इतने उत्सुक कयों नहीं है? भारत अभी निराश नहीं है। भारत ने अभी कुछ देखा नहीं। भारत पहले महायुद्ध से भी बच गया, दूसरे महायुद्ध से भी बच गया। भारत ने महाभारत के बाद कोई युद्ध ही नहीं देखा है।
और महाभारत भी कभी हुआ कि नहीं, पता नहीं। और हुआ भी हो तो छोटी-मोटी लड़ाई! क्योंकि कुरुक्षेत्र में भूमि इतनी नहीं है कि बहुत बड़े युद्ध हो सके। अठारह अक्षौहिणी सेनाएं तो वहां खड़ी भी नहीं हो सकतीं, जितनी लिखी हैं। लड़ने की तो बात दूर, खड़ा होना ही असंभव है। लड़ने के लिए थोड़ी जगह तो चाहिए! भाग-दौड़ के लिए कोई उपाय चाहिए। हाथी-घोड़ों के लिए कोई जगह चाहिए, रथों के लिए कोई जगह चाहिए। वहां इतनी जगह नहीं है। कुरुक्षेत्र छोटी-सी जमीन है।
भारत ने, पश्चिम ने जो मनुष्य की नग्नता देखी है, वह नहीं देख पाया। और भारत अभी इतना दरिद्र है कि विचार भी नहीं कर पाया, ध्यान कैसे करें? अभी विचार में भी हीन है। अभी तो भारत अपनी मान्यताओं में डूबा हुआ है, अभी सपने देख रहा है।
अभी भारत में संत-महात्मा उसको व्यर्थ की पिटी-पिटायी पुरानी बातें दोहराए चले जा रहे हैं। उसको अभी लगाए जा रहे हैं हवन में, यज्ञ में। अभी भी करोड़ों रुपए खर्च किए जाते हैं। विश्वशांति के लिए यज्ञ हो रहा है! एक पति-पत्नी में तो शांति करवा कर दिखला दो यज्ञ से। विश्वशांति करने चले हो. . . जरा मूढ़ता की कुछ तो सीमा रखो।
और कितने यज्ञ हो गए, विश्वशांति होती ही नहीं। फिर भी तुम्हें समझ में नहीं आती कि तुम्हारे यज्ञों से विश्वशांति नहीं हो सकती। लेकिन भारत अभी इसी तरह की बातों में लगा हुआ है। आग में गेहूं फेंकता है, घी उड़ेलता है, सोचता है विश्वशांति हो जाएगी।
और न केवल गैर पढ़े-लिखे लोग, पढ़े-लिखे लोग भी व्यर्थ की बातें खोजते हैं। वे कहते हैं कि इससे इस तरह का धुआं उठता है कि उस धुएं से शांति के बादल बन जाते हैं। सारी दुनिया में शांति का वातावरण हो जाता है। और मजा यह है कि वे जो पुजारी यज्ञ करते हैं, वे ही यज्ञ के बाद लड़ते हैं कि किसको ज्यादा मिल गया, किसको कम मिला। बादलों का असर उन पर भी नहीं होता, जिन धुएं के बादलों की बात हो रही है।
और विज्ञान के इस युग में इस तरह की बातें बच्चों की किताबों में हों
तो चलेगा, परियों की कथाओं में हों तो चलेगा। अगर तुम्हारे यज्ञ से ऐसा धुआं पैदा होता है तो बड़ा आसान है मामला। दो आदमी लड़ रहे हों, वहां जाकर यज्ञ का धुआं छोड़कर देखो; लड़ाई और बढ़ जाएगी। वे दोनों तुम पर भी टूट पड़ेंगे कि तुम यह धुआं यहां क्यों ले आए? तुमने समझा क्या है? तुम जरा प्रयोग करके तो देख लो। कहीं भी युद्ध इस तरह बंद हो सकते हैं--घी के जलाए धुएं से और तुम्हारे मंत्रोच्चारों से? और मंत्रोच्चार करनेवाले इतनी कलह में हैं जिसका कोई हिसाब नहीं। उनका सारा काम लड़ाई झगड़ा है। लेकिन भारत अभी इस तरह

की बातों में उलझा है। अभी विचार की भी क्षमता नहीं है, इसलिए ध्यान की तो बात ही अलग।
यहां आते हैं भारतीय मित्र। उनमें से अधिक तो सिर्फ देखने आते हैं कि दूसरे क्या कर रहे हैं। भेद साफ है: पश्चिम से जो भी आता है वह भाग लेना चाहता है। वह कहता है, हम भागीदार होना चाहते हैं, हम अनुभव करना चाहते हैं। भारतीय मित्रों में से थोड़े-से ही--जो विचार की क्षमता को उपलब्ध हुए हैं, और जिन्हें दिखाई पड़ना शुरू हुआ है कि विचार के आगे जाना जरूरी है, वे सम्मिलित होते हैं। बाकी तमाशबीन होते हैं। बाकी वे कहते हैं, हम खड़े होकर देखेंगे कि क्या हो रहा है। और खड़े होकर सोचते हैं कि समझ गए वे कि ध्यान क्या है। वे सोचते हैं बात उनकी समझ में आ गई कि यही ध्यान है। ध्यान भीतरी घटना है, बाहर से देखने का कोई उपाय नहीं है।
इसलिए भारत की उत्सुकता ध्यान में नहीं है, भारत की उत्सुकता धन में है। और तुम लाख कहो कि भारत धार्मिक देश है। कभी रहा होगा, अभी तो नहीं है। और कभी रहा होगा यह भी संदिग्ध है। क्योंकि तुम तो अभी भी यही दोहराए चले जा रहे हो, यही तुम सदा दोहराते रहे हो कि हम धार्मिक हैं।
तुमने धार्मिक होने को मान्यता की बात बना ली है, विश्वास की बात बना
ली है। धार्मिक होना विश्वास की बात नहीं है, धार्मिक होना एक जीवंत रूपांतरण है। जब तक तुम्हारे सारे विश्वास गलकर न गिर जाएं, और तुम्हारी सब धारणाएं न गिर जाएं तब तक तुम जानने के मार्ग पर कदम नहीं उठा सकते। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, अल्बेयर कामू ठीक कहता है। वहां तक तो तुम जाओ, मगर वहां रुक मत जाना। रुके तो गलती होगी। उससे आगे जाना है। अल्बेयर कामू तुमसे छीन लेगा, जो-जो व्यर्थ है। फिर उसके बाद ही तुम्हारे जीवन में सार्थक की खोज शुरू होगी। कंकड़-पत्थर तो कंकड़-पत्थर हो गए, अब हीरे कहां हैं? हीरे भी हैं। और हीरे तुम्हारे भीतर हैं, कंकड़ पत्थर बाहर हैं।
बाहर जो है, सब अधर्म है--तुम्हारे तीर्थ भी, तुम्हारे मंदिर-मस्जिद भी; तुम्हारे पंडित-पुरोहित भी; तुम्हारे मंत्र-यज्ञ-हवन भी। बाहर जो है, सब पाखंड है। अगर परमात्मा को खोजना है तो भीतर खोजो। अकेले चलो। एकला चलो रे। अपने भीतर चलो। जहां कोई न रह जाए, कोई दूसरा न रह जाए, दूसरे की छाया भी न रह जाए; जहां कोई विचार की तरंग न रह जाए, जहां सब निर्विचार हो, उसी निर्विचार चैतन्य में तुम जानोगे कि ईश्वर है। ईश्वर ही है। और फिर वह ईश्वर हिंदुओं का ईश्वर नहीं है, और न मुसलमानों का ईश्वर है, न ईसाइयों का ईश्वर है। वह मात्र ईश्वर है।
और तब श्रद्धा का आविर्भाव होता है। श्रद्धा ज्ञान से उपलब्ध होती है। विश्वास अज्ञान में उत्पन्न होता है। और विश्वास को श्रद्धा मत समझ लेना। विश्वास धोखा है। इसलिए मैं तुममें विश्वास पैदा नहीं करवाना चाहता। मैं तो तुम्हें श्रद्धा देना चाहता हूं, विश्वास छीन लेना चाहता हूं। विश्वास झूठा सिक्का है; श्रद्धा जैसा लगता है। झूठे सिक्के को लगना ही चाहिए ठीक सिक्के जैसा, तभी तो चल सकता है बाजार में; नहीं तो चलेगा कैसे? ठीक असली सिक्के जैसा मालूम पड़ना चाहिए। वैसा ही विश्वास मालूम पड़ता है।
विश्वास ने आदमी को बहुत भरमाया है, बहुत भटकाया है। और कामू ठीक कहता है, अगर विश्वास छीन लोगे, आदमी घबड़ा जाएगा। इसलिए विश्वास केवल वे ही छीनने में समर्थ हैं, उन्हीं को छीनना चाहिए जो श्रद्धा दे सकते हों। सदगुरु ही केवल विश्वास छीन सकता है। क्योंकि उसे भरोसा है कि जब तुम रिक्त हो जाओगे तो तुम्हें शून्य होने की कला भी सिखा देगा।
और रिक्तता और शून्यता पर्यायवाची शब्द नहीं हैं। भाषाकोश में पर्यायवाची हैं, जीवन के कोष में नहीं हैं। रिक्तता का मतलब है, कुछ भी नहीं है। शून्य का मतलब है, सब कुछ का स्रोत है। शून्य विधायक शब्द है। शून्य में पूर्ण समाया हुआ है, सोया हुआ है, प्रच्छन्न है। रिक्त में कुछ भी नहीं है। रिक्तता सिर्फ खाली है। रिक्तता में कोई कैसे जिएगा?
इसलिए कामू भी ठीक कहता है कि अगर आदमी रिक्त हो गया तो फिर जीयोगे कैसे? फिर अपना ही सत्य मार डालेगा; फिर उससे छुटकारा पाना मुश्किल है।

मैं तुमसे उसके आगे की बात कह रहा हूं। मैं तुमसे कह रहा हूं, यह असत्य नहीं है, यह केवल असत्य का छूटना हुआ। यह केवल असत्य का छूटना सत्य का हो जाना नहीं है। पैर से कांटा निकल गया, इसका यह मतलब नहीं है कि तुम्हारे हाथ में फूल आ गए। पैर से कांटा निकल गया, वह अच्छा हुआ। कांटा चुभा रहता तो फूल को खोजना मुश्किल था। पैर में कांटा चुभा था, चलते कैसे? अब पैर स्वस्थ हैं, अब तुम चल सकते हो। अब फूल की खोज हो सकती है। विचार का कांटा निकल जाए तो ध्यान का फल खोजा जा सकता है। इसलिए समस्त ध्यानियों ने निर्विचार को समाधि कहा है।
सत्य तो मुक्त करता है। तुमने जिसे सत्य मान रखा है वह सत्य नहीं है। इसलिए जब तुम थोड़े जागोगे, थोड़ा सोचोगे तो पहले तो घबड़ाहट आएगी।
मेरे पास आने में वही तो घबड़ाहट है, वही तो डर है। मेरे पास बहुत लोग आना चाहते हैं और भय के कारण नहीं आ पाते। निरंतर मुझे पत्र मिलते हैं लोगों के कि हम आना चाहते हैं, मगर डर लगता है, कहीं आप हमारे विश्वास न छीन लें।
विश्वास तो छीनने ही पड़ेंगे। जगह खाली करनी पड़ेगी। सिंहासन खाली करना पड़ेगा कचरे से, तभी परमात्मा आएगा; तभी विराजेगा तुम्हारे भीतर।
मैं जो कर रहा हूं, दोनों प्रक्रियाएं उसमें सम्मिलित हैं। इसलिए विचार से मैं कुछ झिझकता नहीं हूं। विचार करने को मैं राजी हूं। जितने दूर तक विचार ले जा सकता है उसके साथ चलने को राजी हूं। इसलिए बहुत-से लोग मेरे विचारों में ठीक नीत्शे का खतरा पाते हैं। और ठीक है उनका पाना। उतने दूर तक वे सच हैं लेकिन और थोड़े आगे चलो। मेरी तो समझ ही यही है कि नीत्शे अगर पूरब में पैदा हुआ होता तो बुद्ध होता। बुद्ध की क्षमता का आदमी था। विचार उतना ही प्रगाढ़ था, उतना ही प्रखर था। वैसी ही धार थी जैसी बुद्ध की। लेकिन बस, विचार पर ही रुक गया। विचार ध्यान न बन पाया। और व्हीं अटकाव हो गया। मैं राजी हूं नीत्शे से जहां तक नीत्शे जाता है, लेकिन उससे भी आगे मैं चलता हूं।
तो ठीक कहता हूं, नीत्शे, फ्रायड कि आदमी भ्रमों में जीता है। उसके साथ ऐसा मत करना कि तुम भ्रम छीन लो; नहीं तो वह जिएगा कैसे? जैसे छोटे बच्चे के खिलौने छीन लो तो छोटा बच्चा जिएगा कैसे? लेकिन क्या तुम सोचते हो, ऐसी प्रौढ़ता नहीं आती कभी जब खिलौने बच्चा खुद ही छोड़ देता है? फिर भी तो तुम जीते हो बिना खिलौनों के। एक दिन ऐसा लगता था कि बच्चा बिना खिलौनों के नहीं जी सकता। रात भी अपने खिलौने अपने साथ छाती से लगाकर सोता है। सुबह होते ही पहले अपने खिलौने को तलाशता है। पर हम जानते हैं कि कल प्रौढ़ हो जाएगा, यह खिलौना आज जो इतना प्यारा है, किसी दिन कोने में पड़ा रह जाएगा, कचरेघर में फेंक दिया जाएगा। इसे फिर इसका ध्यान भी न आएगा।
ऐसे ही तुम्हारे विश्वास हैं; बचपन के खिलौने हैं। उन्हें तो छोड़ना
ही होगा। पीड़ादायी भी है उन्हें छोड़ना। कष्ट भी होगा। कांटा निकाला जाता है तो भी तो तकलीफ होती है। मवाद भरी हो और उसे निकालना हो देह से तो भी तो तकलीफ होती है। सभी तरह की सर्जरी तकलीफ की होती है। और यह तो देह की ही सर्जरी नहीं है, आत्मा की सर्जरी है। लेकिन एक बार सारी मवाद निकल जाए, सारे भ्रम गिर जाएं तो तुम तैयार हो जाओगे उड़ान भरने को। हां, वहीं रुकोगे तो कामू की बात सत्य हो जाएगी। वहां रुकना मत; उससे आगे जाना है। जब तक शून्य न मिल जाए, समाधि न मिल जाए तब तक रुकना ही मत। समाधि है; और तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है।
दूसरा प्रश्न : एक बार स्वामी मनोहरदास वेदांती हमारे गांव आए। आपके संबंध में चर्चा होने पर कहने लगे, उनका सब अललटप्पू है। इसी प्रकार आर्यसमाज के प्रचारक भिक्खु ने जब आपकी माला देखी तो कहने लगे, उनका संन्यास युवकों को फ्रस्टेशन की तरफ ले जा रहा है। इन दोनों महानुभावों ने आम सभाओं में इन बातों को कई रूपों में दोहराया। इन्हें आपसे क्या परेशानी हो सकती है?
वेदांत, मुझसे इन्हें परेशानी नहीं होगी तो किससे इन्हें परेशानी होगी? स्वाभाविक है। मैं उनकी जड़ें काट रहा हूं। उनकी नाराजगी बिल्कुल

स्वाभाविक है। मैं उनके सारे धंधे को नष्ट किए दे रहा हूं, उनके व्यवसाय की मूल आधारशिलाएं गिरा रहा हूं।
मैं सिर्फ ऊपर-ऊपर हमला नहीं कर रहा हूं, मेरा हमला गहरा है। अगर मैं इतना ही कहूं कि ऊपर-ऊपर का कुछ भेद करना है। तुम ऐसे कपड़े पहनाते हो भगवान को, मैं ऐसे कपड़े पहनाऊंगा भगवान को। तुम इस तरह खड़ा करते हो, मैं इस तरह खड़ा करूंगा। तुम आंखें खुली रखते हो, मैं आंखें बंद रखूंगा भगवान की। तुम कहते हो तीन चेहरे हैं, मैं कहूंगा चार हैं। अगर इस तरह का झगड़ा होता तो ऊपर-ऊपर का झगड़ा था; उसमें कोई अड़चन की बात नहीं थी। इस तरह के झगड़े किसी तरह का कोई भेद पैदा नहीं कर पाते।
बुद्ध के बाद पच्चीस सौ साल में फिर से एक बार एक घटना घट रही है। बुद्ध के समय में ऐसा हुआ था कि सारे पंडित-पुरोहित, सारे साधु-संत, सारे महानुभाव-महात्मा बुद्ध के खिलाफ हो गए थे। सारे के सारे! एक बात पर राजी हो गए थे कि बुद्ध गलत हैं।
ऐसा फिर हो रहा है। एक बात पर तुम्हारे साधु-संत, महानुभाव-महात्मा, पंडित-पुरोहित राजी होते जा रहे हैं--मेरे विरोध में एकदम राजी हैं। उनके आपस में कितने ही झगड़े हों, आपस में कितने ही विवाद हों... अब वेदांती और आर्यसमाजी का आपस में बहुत विवाद है, लेकिन एक संबंध में कम से कम वे राजी हैं--मेरे विरोध में राजी हैं। मैं इससे भी खुश होता हूं कि चलो इतनी एकता आयी, यह भी क्या कम है? कुछ एकता तो आयी; किसी बहाने सही! मैं निमित्त बना, यह भी अच्छा; है यह भी सौभाग्य। चलो, इसी कारण वे इकट्ठे हो जाएं।
तुम कहते हो, एक सज्जन ने कहा कि मेरा... उनका सब अललटप्पू है। यही तो उन्होंने बुद्ध के लिए कहा है। यही उन्होंने महावीर के लिए कहा है। कुछ नई बात वे नहीं कह रहे हैं। जो बात उनकी समझ में नहीं आती वह अललटप्पू मालूम होती है।
नास्तिक यही बात तो आस्तिकों के संबंध में कहते हैं कि ईश्वर इत्यादि
सब अललटप्पू। है ही नहीं; सब बकवास है। चार्वाकों ने क्या कहा है? चार्वाकों ने यही तो कहा है कि यह सब पंडितों-पुरोहितों की बकवास है, अललटप्पू है। कहीं कोई ईश्वर नहीं है। मरने के बाद कोई लौटना नहीं है। पागलो, इनकी बातों में मत पड़ना। ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्। डरो ही मत। ऋण भी लेकर पीना पड़े तो घी पियो क्योंकि लौट कर कौन आता है! किसको चुकाना है! कौन चुकानेवाला, कौन लेनेवाला, कौन देने वाला? सब मर गए, सब मिट्टी में मिल गए। पंडित-पुरोहितों की बकवास में मत पड़ो। न कोई पुण्य है, न कोई पाप है, सब अललटप्पू है।
यही तो चार्वाक ने कहा। चार्वाकों की समझ में नहीं बात आयी परलोक की।
यही तो मार्क्स ने कहा है धार्मिकों के संबंध में। यही तो फ्रायड ने कहा है धार्मिकों के संबंध में।
जो बात जिसकी समझ में नहीं आती है, वह सोचता है कि होनी ही नहीं चाहिए।
क्योंकि यह तो मानने को तैयार ही नहीं होता कि कोई बात ऐसी भी हो सकती है।
जो उसकी समझ के आगे हो। अपनी समझ और किसी बात से छोटी पड़ती हो ऐसा तो अहंकार मानने को राजी नहीं होता। तो दूसरा उपाय यही है कि यह बात ठीक होगी ही नहीं। यह बात गलत ही होगी। जो मेरी समझ के बाहर है वह कैसे ठीक हो सकती है? मेरी समझ कसौटी है।
अब तुम कहते हो कि स्वामी मनोहरदास वेदांती हमारे गांव आए। आपके संबंध में चर्चा होने पर कहने लगे, उनका सब अललटप्पू है। ठीक ही कह रहे हैं। क्योंकि मैं जिस समाधि की बात कर रहा हूं, जिस शून्य की बात कर रहा हूं, मैं जिस श्रद्धा की बात कर रहा हूं, वह उनकी समझ में नहीं आयी होगी। आ जाती तो अपने को वेदांती कहलवाते? आ जाती तो किताबों से बंधते? आ जाती तो विशेषण लगाते?
जिसकी बात समझ में आ जाएगी उसके सारे विशेषण गिर जाएंगे। जो शून्य को समझ लेगा, अब शून्य पर कैसे विशेषण लगाओगे? शून्य वेदांती होगा कि आर्यसमाजी होगा? शून्य तो बस शून्य होगा। शून्य में भेद नहीं होगा। शून्य जैन होगा कि हिंदू होगा? शून्य तो बस शून्य होगा।

तुम यहां इतने लोग बैठे हो। तुम सब सोच रहे हो तो तुम सब अलग-अलग हो। कोई हिंदू है तो हिंदू ढंग से सोच रहा है। कोई मुसलमान है तो मुसलमान ढंग से सोच रहा है। कोई ईसाई है तो ईसाई ढंग से सोच रहा है। लेकिन अगर तुम सब निर्विचार होकर बैठ जाओ यहां; न हिंदू सोचे, न ईसाई सोचे, न जैन सोचे। अगर सब असोच की शांत अवस्था में हो जाएं तो फिर क्या भेद होगा? क्या हिंदू का शून्य अलग होगा मुसलमान के शून्य से? शून्य तो बस एक ही प्रकार का होगा। विचार में भेद होते हैं; निर्विचार में भेद नहीं होते। मन में भेद होते हैं, अमन में कैसे भेद? उन्मनी दशा में कैसे भेद? जहां मन ही न रहा वहां सब भेद गए।
उनको लगा होगा अललटप्पू। उनकी समझ से ऊपर जाती होगी। इतनी उनकी उड़ान
न होगी। और जहां तक तो संभावना इस बात की है कि उन्हें पता भी न होगा कि मैं क्या कह रहा हूं। ऐसे लोग हैं जो मुझे पढ़ते भी नहीं और मेरे संबंध में वक्तव्य देते हैं। उन्हें पता भी नहीं होगा कि यहां क्या हो रहा है। अज्ञान में वक्तव्य देना बहुत आसान है। जानकर वक्तव्य देनेवाला आदमी झिझकेगा, सोचेगा, विचारेगा, अनुभव करेगा। अगर वे ईमानदार हों तो उन्हें आकर यहां अनुभव करना चाहिए। अनुभव करके कहना चाहिए अललटप्पू। एक घूंट तो आकर पीना चाहिए, थोड़ा स्वाद लेना चाहिए। स्वाद से घबड़ाहट है। यहां पास आने में भी भय है।
मेरी किताबें भी तुम्हारे साधु-संत पढ़ते हैं तो छिपाकर पढ़ते हैं। किसी को पता न चल जाए कि मेरी किताब पढ़ रहे हैं। इतना भय? इतनी नपुंसकता? इतनी कमजोरी? साधु होने चले हो? जीवन की महायात्रा पर निकले हो और इतना कमजोर मन कि किसी को पता न चल जाए! पढ़ भी लेते हैं तो बताते नहीं कि उन्होंने मेरी किताब पढ़ी है। और मैं जो करने को कह रहा हूं वह तो कर ही नहीं सकते क्योंकि उसमें तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी।
एक जैन मुनि ने मुझे पत्र लिखा है कि आप कहते हैं, मुझे बात भी जंचती है, ध्यान करना भी चाहता हूं लेकिन इतने जोर-जोर से श्वास लूंगा, सबको पता चल जाएगा। और सबको पता है कि यह किसका ध्यान है। तो मैं यह भी नहीं कह सकता कि पंतजलि को पढ़कर कर रहा हूं कि. . .। यह तो सबको जाहिर है। बस, जोर से श्वास ली कि उन्होंने कहा, बिगड़ा यह आदमी।
मैंने उनको कहा कि आप सुना है कि बंबई आते हैं--तब मैं बंबई था--तो आप यहीं आकर कर लेना। वे बंबई भी आ गए। बड़ी बेचारों को चोरी करनी पड़ी। किसी और के घर जा रहे हैं ऐसा बताकर मुझसे मिलने आए। मुझसे कहा कि किसी को पता न चले। हम ऐसे ही बीच में आ गए हैं। बताकर कुछ और निकले हैं।
अब जैन मुनि को मुझसे मिलने में झूठ बोलना पड़े तो बड़ी दयनीय दशा हो गई। कहा, आपकी बातें ठीक भी लगती हैं और हम वर्षों से कोशिश करके ध्यान की हार भी चुके हैं। अब एक आपमें ही आशा है कि शायद ध्यान लग जाए; और तो हमारा लगता नहीं। तो हम आकर रोज सुबह-सुबह घूमने निकलेंगे, यहां आकर ध्यान कर जाएंगे। एक पंद्रह दिन आकर आपके पास ध्यान कर लेना है। मगर किसी को पता न चले। चोरी-चोरी कर लेना है।
मैंने कहा, पंद्रह दिन तुम चोरी-चोरी कर लोगे, मगर पंद्रह दिन से कुछ
हो नहीं जाएगा। स्वाद लगेगा, करना तो फिर आगे भी पड़ेगा। कैसे करोगे? कहां करोगे? पता तो चलने ही वाला है। इसको छिपाया नहीं जा सकता।
पंद्रह दिन करके भी गए। और बड़े आनंदित होकर गए। जीवन में शायद कभी उछले-कूदे नहीं होंगे, नाचे नहीं होंगे, उछले, कूदे, नाचे। फिर मुझे पत्र लिखवाया कि बड़ा रस आया लेकिन आगे तो जारी रख नहीं सकते। अब और झंझट में हम पड़े। अब हमें मालूम है कि किस दिशा से यात्रा करनी चाहिए, मगर हम कर नहीं सकते।
मनोहरदास वेदांती से तुम्हें पूछना था, कभी गए हो वहां? कभी उस सरोवर
से एकाध घूंट पिया है? कभी उस मधुशाला में सम्मिलित हुए हो? थोड़ी बूंदें पड़ी हैं कंठ में? क्या वहां घट रहा है वह देखा है?
लेकिन जो समझ में नहीं आता या जिसको हम समझना नहीं चाहते उसको अललटप्पू कह देना बहुत आसान है। इससे केवल उनकी बुद्धि का पता चलता है, और

कुछ भी नहीं। बहुत संकीर्ण दायरे की बुद्धि होगी। आकाश की, विराट की बातें उनको अललटप्पू मालूम हो रही हैं।
और जिसको मेरी बात अललटप्पू मालूम हो रही है उसे वेदांत की बात भी अललटप्पू मालूम होनी चाहिए--अगर वह ईमानदार है। क्योंकि मैं जो कह रहा हूं वह शुद्ध वेदांत है। इतना शुद्ध है कि उस पर वेदांत का विशेषण भी नहीं लगाया जा सकता। ब्रह्म की बात भी उसे अललटप्पू मालूम होनी चाहिए। शायद अनजाने उनके मुंह से उनकी आत्मा का भाव निकल गया है। वे जो बातें कर रहे होंगे वेदांत की, उनको भी वे अललटप्पू ही समझते होंगे। लेकिन वह धंधा है, करना पड़ता है। वही उनकी आजीविका है; उसी से जी रहे हैं।
तो कहे जाते हैं लेकिन भीतर से असली स्वर बाहर आ गया है; मेरे बहाने बाहर आ गया है। अगर मेरी बातें अललटप्पू हैं तो सारे उपनिषद्भ झूठे हो जाएंगे। फिर उपनिषदों का सत्य क्या बचेगा? क्योंकि मैं जो कह रहा हूं वह उपनिषदों की सुवास है; उनका सार है, इत्र है। सारे वेद व्यर्थ हो जाएंगे। क्योंकि वेदों में जो कुछ भी है, जो कुछ भी मूल्यवान है वही मैं कह रहा हूं। सारे बुद्धपुरुष अललटप्पू हो जाएंगे।
उनसे फिर तुम्हारा वेदांत, मिलना हो जाए तो उनसे कहना, पुनर्विचार करो। अपने बुद्धि के थोड़े द्वार-दरवाजे खोलो। थोड़ा पहचानो, समझो। लेकिन वे भरे होंगे कूड़ा-करकट से। वे भरे होंगे तथाकथित ज्ञान से। तथाकथित ज्ञान का बड़ा उपद्रव है।
मैं अमृतसर में था और एक वेदांत सम्मेलन में बोलने गया था। मुझसे पहले एक वेदांती स्वामी हरिगिरी बोले। मैं उनके बाद बोला, वे बहुत मुश्किल में पड़ गए। वे बीच में उठकर खड़े हो गए और कहा कि ये बातें गलत हैं। और में जो कह रहा था वह यही कह रहा था कि परमात्मा को कोई बाहर से नहीं जनवा सकता, भीतर से जानना होगा। स्वयं ही जानना होगा।
तो उन्होंने एक बड़ी प्रसिद्ध कहानी कही। उनको पता नहीं था वे किससे उलझ रहे हैं। क्योंकि कहानी के संबंध में कोई मुझसे न उलझे यही अच्छा है। उन्होंने बड़ी प्रसिद्ध कहानी कही। तुम्हें मालूम होगी, वेदांती निरंतर कहते रहते हैं, कि दस आदमियों ने नदी पार की। वर्षा की नदी थी, पूर आयी नदी थी। फिर उस पार जाकर उन्होंने गिनती की तो प्रत्येक अपने को गिनना भूल गया। गिनती नौ होती थी। वे रोने लगे बैठकर कि एक खो गया। फिर वहां से कोई ज्ञानी निकला। होगा कोई वेदांती! उसने देखी हालत, उसने कहा, क्यों रोते हो? उन्होंने कहा, हम दस नदी पार किए थे, अब नौ रह गए। एक कोई डूब गया है, उसके लिए रो रहे हैं। उसने नजर डाली, दस के दस थे। उसने कहा, जरा गिनती करो तो उन्होंने गिनती की। पकड़ में आ गई भूल कि हरेक अपने को छोड़े जा रहा है। तो उसने कहा, देखो, अब इस तरह गिनती करो: मैं एक चांटा मारूंगा पहले को, तब तुम बोलना, एक; दूसरे को मारूं तो बोलना, दो; तीसरे को मारूं तो बोलना, तीन। मैं चांटा मारते जाऊंगा, तुम बोलते जाना आंकड़े। ऐसा वह मारता चला चांटा। और जब दसवें को मारा तो वह बोला, दस। वे बड़े हैरान हुए। उन्होंने कहा कि चमत्कार कर दिया आपने।
हरिगिरी जी ने बताया लोगों को कि देखो, दूसरे ने बताया तब उनको बोध हुआ। अगर यह वेदांती वहां से न निकलता, कोई। बोध करवानेवाला न होता तो वे नौ ही के नौ रहते और रोते ही रहते। अब उन्होंने सोचा कि बात खतम हो गई। मैंने उनसे पूछा कि यह तो बताइए कि जब इन्होंने नदी पार की, उसके पहले गिनती इन्होंने कैसे की थी? यह कहानी जरा अब आगे ले चलें। नदी जब इन्होंने पार की तो गिनती की थी? उनको कहना पड़ा कि हां, गिनती की थी, दस थे। गिनती कैसे की थी? नदी पार करने में ही भूल गए गिनती करना!
जरूर किसी और की मान ली होगी। किसी और ने कहा होगा, तुम दस हो। खुद गिना होता तो कैसे भूल जाते? फिर भी गिन लेते। किसी और ने कह दिया होगा कि तुम दस हो। मान लिया होगा। मान्यता से चले होंगे कि हम दस हैं, फिर गड़बड़ खड़ी हुई। मान्यता से जो चलेगा, गड़बड़ खड़ी हो जाती है। क्योंकि जब जानने का सवाल आएगा तब चूक हो जाएगी। इसलिए चूक हुई। दूसरे के बताने से ही भूल हुई, मैंने उनसे कहा। वह वेदांती इनको पहले भी कोई मिल गया होगा उस तरफ भी। वेदांती दोनों किनारों पर रहते हैं। और जहां तक तो संभावना है, यही सज्जन

रहे होंगे पहले भी, जिन्होंने उनको बताया था कि तुम दस हो। यह दूसरे की बतायी बात थी इसलिए बह गई पानी में। यह अपनी जानी बात होती तो कैसे बहती? अपना जानना ही ज्ञान है। दूसरा जो जना देता है, वह जानकारी है। जानकारी तो उधार है। और जितने लोग उधारी से भरे हैं। उनको बड़ा डर रहता है कि कहीं जाननेवाला कोई आदमी न मिल जाए। नहीं तो एकदम उनकी रोशनी फीकी पड़ जाती है। एकदम मुश्किल खड़ी हो जाती है।
अब मिल जाए कहीं तुम्हें मनोहरदास वेदांती तो उनको कहना, चले चलो। आमना-सामना हो ले। पता चल जाए कि अललटप्पू क्या है। अगर मैं अललटप्पू हूं तो इस जगत में जो भी महत्वपूर्ण बातें कही गई हैं, सब अललटप्पू हो जाएंगी। मेरे डूबने में सब वेद, सब कुरान, सब उपनिषद्भ डूब जाएंगे। मेरे सही होने में वे सही हैं। मैं गवाह हूं। मैं उनका साक्षी हूं। और जो मैं तुमसे कह रहा हूं, अपने अनुभव से कह रहा हूं। यह गिनती मैंने किसी और से नहीं सीखी है। यह किसी और ने मुझे नहीं बताया है कि तुम दस हो। यह मैंने जाना है। इसे छीन लेने का कोई उपाय नहीं है। यह स्वानुभव है।
उन्हें कहना, आ जाओ। ले आना उनको। यहां थोड़ा उछलेंगे-कूदेंगे; थोड़ा गाएंगे-नाचेंगे; थोड़ी नींद टूटेगी। और जो अभी वेदांती का रंग लगा रखा है वह बह जाएगा। और वह बह जाए तो अच्छा। तो फिर भीतर का रंग प्रकट होना शुरू होता है। और तुम कहते हो, दूसरे सज्जन हैं आर्यसमाज के प्रचारक आर्य भिक्खू। जब आपकी माला देखी तो कहने लगे, उनका संन्यास युवकों को फ्रस्टेशन की तरफ ले जा रहा है। मेरा संन्यास अगर युवकों को विषाद की तरफ ले जाएगा तो फिर कौन-सा संन्यास उन्हें आनंद की तरफ ले जा सकता है? इस बात के लिए भी प्रमाण देने होंगे? मेरे संन्यासी से ज्यादा आनंदित संन्यासी पृथ्वी पर कभी हुआ है? मेरे संन्यासी से ज्यादा स्वतंत्र संन्यास की कोई धारणा कभी पृथ्वी पर जन्मी है? मेरे संन्यासी को उदास होने का तो कोई कारण ही नहीं है। क्योंकि उससे मैं संसार भी नहीं छीनता। उससे मैं कुछ छीनता ही नहीं हूं। उसे सिर्फ जगाता हूं; या कहो कि उसकी नींद छीनता हूं। पुराना संन्यास विषाद ला सकता है। पुराना संन्यास विषाद से जन्मता है और विषाद में ले जाता है।
पुराना संन्यासी, पुराने ढब का संन्यासी उदास आदमी होता है--हारा-थका, बेचैन, डरा हुआ, भयभीत, हर छोटी-छोटी चीज से डरा हुआ। मेरा संन्यासी तो किसी बात से डरा हुआ नहीं है। पुराना संन्यासी तो अपराध-भाव से भरा हुआ होता है कि यह किया तो गलती हो जाएगी, यह किया तो गलती हो जाएगी।
मेरे संन्यासी को तो मैंने कोई अपराध पैदा करने का उपाय नहीं दिया है। मैंने तो सिर्फ उसे कहा है, सहज प्रतिपल अपने बोध से जीना। और तुम्हारा बोध तुम्हें जो करने को कहे, करना। फिर चाहे सारी दुनिया एक तरफ हो, तुम फिकर न लेना।
परमात्मा ने तुम्हें जो जीवन दिया है वह जीने के लिए दिया है। पुराना संन्यास तो जीवन से भयभीत है, डरा हुआ है, घबड़ाया हुआ है। सुंदर स्त्री दिख जाए तो पुराना संन्यास थरथराने लगता है, कंपने लगता है, पसीना-पसीना होने लगता है। मेरे संन्यासी को तो भय का कोई कारण नहीं है क्योंकि मैंने कहा है, सुंदर स्त्री में परमात्मा के सौंदर्य को देखना। वहां भी झुकना, वहां भी पूजा का भाव रखना। वहां भी उसी की महिमा है, उसी का रंग है, उसी का रूप है, उसी का रस है। अगर सुंदर फूल में परमात्मा देख सकते हो तो आदमी का कसूर क्या है? एक सुंदर आदमी में क्यों नहीं देख सकते? एक सुंदर स्त्री में क्यों नहीं देख सकते?
अगर मेरा संन्यास फैला... और फैलेगा; क्योंकि विधायक है। जीवन के स्वीकार पर खड़ा है। तो जैसे तुम फूल के सौंदर्य की प्रशंसा करते हो वैसे ही किसी दिन पुरुषों के, स्त्रियों के सौंदर्य की भी प्रशंसा कर सकोगे। और प्रशंसा में जरा भी अपराध और भय का भाव नहीं होगा। क्योंकि परमात्मा की ही प्रशंसा है। हम किसी की भी स्तुति करें, उसी की स्तुति है। नदी किसी भी दिशा में बहे, सागर पहुंच जाती है। सभी स्तुतियां उसी की तरफ पहुंच जाती हैं। स्तुति मात्र उसकी है।

मैंने तुम्हें भोजन से नहीं तोड़ा है कि तुम यह मत खाना, यह मत पीना; कि अगर कहीं तुमने यह खा लिया तो पाप हो जाएगा, नरक में पड़ोगे।
कैसे-कैसे लोग हैं! कोई आलू खा लेगा तो नरक में जाएगा। कोई निर्दोष टमाटर से डरा हुआ है। अब टमाटर से ज्यादा निर्दोष प्राणी देखा तुमने दुनिया में? टमाटर बेचारा! एकदम भोला-भाला। इससे भोली-भाली कोई चीज ही नहीं होती। इसको खाने से तुम कैसे नरक चले जाओगे? लेकिन टमाटर खाने से कुछ लोग डरते हैं। उसका रंग मांस जैसा है। बस रंग ही मांस जैसा है, घबड़ाहट हो गई; भय हो गया।
डरने की तो तुम बात ही मत पूछो कि लोग किस-किस चीज से डरते हैं। अगर तुम सारे डरों को इकट्ठा कर लो तुम्हें इसी वक्त मरना पड़े; तुम जी नहीं सकते। क्वेकर ईसाई हैं, वे दूध पीने से डरते हैं। तुम कहोगे, यह तो हद हो गई। वे दही नहीं खाते, वे मक्खन नहीं छूते क्योंकि यह हिंसा है।
बात में अर्थ तो है। क्योंकि गाय के थन में जो दूध है, वह उसके बच्चों
के लिए है, तुम्हारे लिए नहीं है। तुम्हें किसने हक दिया कि तुम उसके बच्चों का दूध छीनकर पी जाओ। जरा सोचो तो कि यही तुम्हारी स्त्रियों के साथ किया जाए, कि बच्चे को तो दूध न मिले और कोई भी आकर बच्चे की मां का दूध पी जाए तो इसको हिंसा कहोगे कि नहीं कहोगे? तुम गाय का दूध पी रहे हो बड़े मजे से, कह रहे हो दुग्धाहार कर रहे हैं और बछड़े का क्या हुआ?
लोग बछड़ों को मार डालते हैं और गाय को धोखा देने के लिए झूठा बछड़ा खड़ा
कर देते हैं। घास-फूस का बनाकर बछड़ा खड़ा कर देते हैं गाय को धोखा देने के लिए। क्योंकि असली बछड़ा रहेगा तो कुछ तो पी ही जाएगा। थोड़ा न बहुत तो पीएगा ही। आखिर जिंदा रखना है तो कुछ न कुछ तो उसको देना ही पड़ेगा। तो झूठा बछड़ा खड़ा कर दिया। हद हो गई बेईमानी की! आदमियों को धोखा दो, दो; गाय को भी धोखा देने लगे? और एक तरफ से गौमाता भी कहते हो उसको। माता ही को धोखा दे रहे हो, उसकी जेब काट रहे हो। और आंदोलन भी बड़ा चलाते हो कि गौहत्या नहीं होनी चाहिए। और गौ को चूसे जा रहे हो। तुम्हारी गौओं की हालत देखते हो? हड्डी-हड्डी हो रही हैं और खींचे जा रहे हो उनका दूध, जितना खींच सकते हो; जिस तरह खींच सकते हो।
क्वेकर कहते हैं, दूध खून का हिस्सा है। इसीलिए तो दूध पीने से खून बढ़ जाता है। तो दूध खून है। दूध पीना खून पीना है। यह तो पाप हो गया। अब मारे गए! अब क्या करोगे? दही ले नहीं सकते, दूध ले नहीं सकते, घी ले नहीं सकते, मक्खन ले नहीं सकते। गए सब रसगुल्ले! गए सब संदेश! सारी मिठाइयां पाप हो गईं।
तुम जरा सारे धर्मों का हिसाब तो लगाकर देख लो। कुछ नहीं बचेगा खाने को। उधर जैन तेरापंथी है, वह नाक पर पट्टी बांधे बैठा है कि हिंसा न हो जाए। श्वास से हिंसा हो रही है। गरम श्वास से कीड़े-मकोड़े हवा में छोटे- छोटे मर जाते हैं, वे मर न जाएं। लेकिन तुम्हारे जीने में ही हिंसा हो रही है। तुम्हारे शरीर के भीतर प्रतिपल न मालूम कितने जीवाणु मर रहे हैं। वे ही तो जीवाणु मरकर तुम्हारे बाल बनकर निकलते हैं, नाखून बनकर निकलते हैं। इसलिए तो बाल को काटने से दुःख नहीं होता क्योंकि वे मरे हुए जीवाणु हैं। नाखून काटने से दुःख नहीं होता, खून नहीं बहता क्योंकि वे मरे हुए जीवाणुओं की लाशें हैं; हड्डियां हैं। तुम्हारे भीतर प्रतिपल लाखों जीवाणु मर रहे हैं। और इसलिए तो रोज भोजन की जरूरत है ताकि नया भोजन नए जीवाणु दे दे।
एकेक शरीर में सात-सात करोड़ जीवाणु हैं। पूरी बस्ती हो तुम। पुराने शास्त्रों ने ठीक ही तुमको पुरुष कहा है। पुरुष का मतलब है, पुर के बीच में बसा। एक पूरा नगर तुम्हारे चारों तरफ है। सात करोड़! बंबई भी छोटी है। सात करोड़ जीवाणु, उनके बीच में आप बसे हैं। और उनमें प्रतिपल मरना हो रहा है, जीना हो रहा है, सब चल रहा है। चलते हो, उठते हो, बैठते हो, उसमें हिंसा हो रही है। करवट लेते हो, उसमें हिंसा हो रही है। श्वास लेते हो, उसमें हिंसा हो रही है। जियोगे कैसे? अगर तुम सारे धर्मों का हिसाब करके चलो तो जी ही नहीं सकते। और ये ही धर्म अब तक आदमी को सिखाते रहे हैं। आदमी की जिंदगी में जहर घोल दिया है।

मैं तो आदमी की जिंदगी को मुक्ति दे रहा हूं। मैं तो तुमसे कह रहा हूं,
जो परमात्मा ने दिया है उसे भोगो। और मैं तो तुमसे यह कह रहा हूं, कोई मरता ही नहीं। आत्मा अमर है। कहां की हिंसा, कैसी हिंसा? चिंता छोड़ो। शांति से, सरलता से, स्वभाव से जियो। और इस जीवन को परमात्मा की भेंट समझकर अनुग्रह मानो। इस भेंट में ही परमात्मा को खोजो। अगर संगीतज्ञ को खोजना हो तो उसके संगीत में ही खोजना पड़ेगा। अगर सन्नाटा को खोजना हो तो उसकी सृष्टि में ही खोजना पड़ेगा। अगर कवि को खोजना हो तो उसके काव्य में ही खोजना पड़ेगा, और कहां पाओगे? वहीं से सूत्र मिलेंगे, वहीं से सेतु बनेगा।
मैं तो जीवन के अहोभाव, जीवन के परम स्वीकार, जीवन के आनंद, जीवन के उत्सव को दे रहा हूं मेरे संन्यासी को। मेरे संन्यासी फ्रस्टेशन में पड़ रहे हैं, विषाद में पड़ रहे हैं, इससे ज्यादा मूढ़ता की कोई बात हो सकती है? हां, मेरे संन्यासियों को देखकर पुराने संन्यासी बड़े फ्रस्टेशन में पड़ रहे हैं, यह जरूर सच है। उनके प्राण बड़ी मुश्किल में पड़ रहे हैं। वे बड़े बेचैन हो रहे हैं कि यह कैसा संन्यास? उनकी बेचैनी यह है कि यह तो हद हो गई, हम इतना छोड़-छाड़कर मोक्ष पहुंचेंगे और ये बिना छोड़े-छाड़े पहुंच जाएंगे! यहां भी मजा करेंगे और वहां भी!
और मैं तुमसे कहे देता हूं कि जो यहां मजा करेगा वही वहां भी मजा करेगा। क्योंकि मजे का अयास करना होता है। और जो यहां मजा नहीं करेगा, वहां भी मजा नहीं करेगा। क्योंकि यहां अगर उसने गैर-मजे का अयास कर लिया तो बड़ी मुश्किल में पड़ेगा।
तुम्हारे पुराने ढब के संन्यासियों को नरक में ज्यादा शांति मिलेगी। उनके ज्यादा अनुकूल होगा। यहां उनको कांटों की खुद ही सेज बनानी पड़ती है, वहां शैतान के शिष्य बना देंगे। यहां उनको ही आग जलाकर बैठना पड़ता है और भभूत लगानी पड़ती है, वहां शैतान के. . .अच्छी मालिश करेंगे। और भभूत से ही मालिश करेंगे और खूब भभूत लगा देंगे--ऐसी कि उतरे ही नहीं। अंगारों सहित मालिश कर देंगे। खूब त्याग-तपश्चर्या करवा देंगे।
उनको नरक ही मौजूं पड़ेगा, स्वर्ग नहीं मौजूं पड़ सकता। स्वर्ग में वे करेंगे क्या? बड़ी मुश्किल में पड़ेंगे। स्वर्ग में अप्सराएं हैं और शराब के झरने हैं। और कल्पवृक्ष हैं। कल्पवृक्ष के नीचे जरा बैठकर तुम्हारा संन्यासी करेगा क्या--पुराने ढब का? मेरे संन्यासी को तो कोई दिक्कत नहीं है। मगर पुराने ढब का संन्यासी कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर करेगा क्या? कि हे प्रभु, पत्थर गिराओ! कि थोड़ी तपश्चर्या और करवाओ! कल्पवृक्ष किस काम का? पुराने संन्यासी अगर स्वर्ग पहुंचे होंगे तो कुल्हाड़ियां लेकर उन्होंने सब कल्पवृक्ष काट डाले होंगे अब तक। जंगल साफ कर दिया होगा। फिर से वृक्षारोपण करना पड़ेगा।
मैं एक संन्यास दे रहा हूं जो सहज है--स्वाभाविक; आनंद जिसका अनुशासन है। मेरा संन्यास और फ्रस्टेशन में ले जा रहा है लोगों को या मेरा संन्यासी फ्रस्टेशन में जा रहा है, इससे ज्यादा व्यर्थ, असंगत बात क्या हो सकती है? हां, मगर आर्यसमाजियों को पड़ गई होगी अड़चन। उनको बड़ी अड़चन है। यहां शंकराचार्य किसी मठ के कोई मित्र ले आया था द्वार पर। ले आया था मुझे मिलाने। गाड़ी मैं उन्हें बैठा हुआ छोड़कर वह पूछने आया दफ्तर में अंदर कि कब मिलना हो सकता है? लेकिन इसी बीच सब गड़बड़ हो गई। एक विदेशी संन्यासी अपनी पत्नी का हाथ हाथ में लिए दरवाजे से प्रविष्ट हुआ। दोनों मस्त! गीत गुनगुनाते हुए! शंकराचार्य को आग लग गई। जब तक उनका शिष्य वापिस पहुंचा व्यवस्था करके मिलने की, वे बोले, इसी वक्त चलो। इस जगह से हटो! यह कैसा संन्यास है! संन्यासी और स्त्री का हाथ हाथ में लिए?
तुम सोचते हो, अगर ये शंकराचार्य स्वर्ग पहुंच जाएं और देख लें कि रामचंद्र जी सीता जी के साथ खड़े हैं, एकदम झपट्टा मारकर अलग कर देंगे दोनों को, हटो! शर्म नहीं आती? राम होकर और सीता जी का हाथ पकड़े हो? तुमने समझा क्या है, जगजननी सीता! छोड़ो हाथ!
यह संन्यासी के कारण बड़ी अड़चन होगी वैकुंठ में। यह कृष्ण महाराज तो एकदम छीन-छान लेगा उनका मोर-मुकुट और बंसी-वंसी की छोड़ो! यह नहीं चलेगा। ये किनकी स्त्रियां तुम्हारे आसपास नाच रही हैं? तुमको मालूम है कि सोलह

हजार स्त्रियां कृष्ण की, उनमें उनकी स्त्रियां कौन थीं? एक रुक्मिणी के सिवा और कोई ब्याही हुई स्त्री नहीं थी। बाकी ये हजारों स्त्रियां उनके पास नाचीं किसी प्रेम में डूबकर, किसी आनंद में लीन होकर।
मैं तो कृष्ण को वापस लौटा रहा हूं। मैं तो संन्यास के ओंठों पर फिर बांसुरी रख रहा हूं। संन्यास गाता हुआ होना चाहिए। अगर गाते हुए परमात्मा तक पहुंच सकते हो तो क्यों रोते हुए जाते हो? अगर नाचते हुए पहुंच सकते हो तो क्यों चलते हुए जाना? और अगर परमात्मा भी नाचता हुआ. . . और मैं कहता हूं कि नाचता हुआ है। जरा चारों तरफ प्रकृति को देखो, वह परमात्मा का प्रतीक है--नाचती हुई प्रकृति, सब तरफ मौज से भरी प्रकृति। सब तरफ झरने बह रहे हैं, फूल खिल रहे हैं; वास उड़ रही है, बादल घिर रहे हैं, चांद तारों से भरा आकाश है। इस सबसे तुम्हें याद नहीं पड़ती कि परमात्मा महात्मा तो नहीं है। परमात्मा खूब रंग-रंगीला है। रसो वै सः। रसपूर्ण है, रस का स्रोत है, सच्चिदानंद है।
लेकिन आर्यसमाजी को यह बात न जंचेगी। उसे यह बात पसंद ही नहीं पड़ेगी। हां, उसे देख क र फ्रस्ट्रेशन पैदा हो जाएगा। मेरे संन्यासी को देखेगा तो उसको जलन और ईर्ष्या पैदा हो जाएगी। वह यह बरदाश्त नहीं कर सकता। वह चाहता है, लोग दुःखी हों। वह दुख को आदर देता है। ये सब दुःख का सम्मान करनेवाले लोग हैं। जितना जो दुःखी होता है उसको उतना आदर देता है। कहता है, यह उतना बड़ा तपस्वी है। जो जितना अपने को सताता है, गलाता है, जो अपने मन को-तन को खूब मारता है, कोड़े फटकारता है, उसको उतना सम्मान। तपश्चर्या उसका लक्ष्य है। त्याग उसका लक्ष्य है।
मेरे संन्यास का लक्ष्य है, परम भोग। और मैं सीधी-सादी बातें कर रहा हूं; कहीं कुछ छिपाना नहीं है, सीधी बात हैः परम भोग। मैं अगर तुम्हें परमात्मा की तरफ ले जाना चाहता हूं तो इसलिए नहीं कि भोग बुरा है बल्कि इसलिए कि तुमने जिसको भोग जाना है वह भोग ही नहीं है। इसी जीवन में परम भोग घट सकता है। मैं तुम्हारे जीवन से सुख को छीन नहीं लेना चाहता, तुम्हारे जीवन में सुख को गहराना चाहता हूं, घना करना चाहता हूं।
तो यह बात तो बड़ी बेमौजूं है। वेदांत, तुम्हारा मिलना अगर फिर हो जाए आर्यसमाजी सज्जन से, आर्य भिक्षु से, तो उनसे निवेदन करना। और फिर तो तुम मेरे संन्यासी हो। तुम्हें वहीं जवाब देना था। तुम्हें एकदम खड़े होकर नटराज शुरू कर देना था। हाथ पकड़ लेना था कि आओ, नाचें। वहीं समझ में आ जाता कि फ्रस्टेशन में कौन है। खिलखिलाकर हंसना था, आनंदित होना था, निमंत्रण देना था कि आओ, हम नाचें। यहां तक तुम्हें प्रश्न लाने की जरूरत ही न थी, उत्तर वहीं देना था। और उत्तर जीवंत होना चाहिए।
तीसरा प्रश्न : प्रेम की इतनी महिमा है तो फिर मैं प्रेम करने से डरता क्यों हूं? इसीलिए, क्योंकि इतनी महिमा है। और तुम्हारे संस्कार तुम्हें इतनी महिमा तक जाने से रोकते हैं। प्रेम विराट है और तुम्हारे संस्कारों ने तुम्हें क्षुद्र बनाया है, छोटा बनाया है, ओछा बनाया है। प्रेम भोग है और तुम्हारे संस्कारों ने तुम्हें त्याग सिखाया है। प्रेम आनंद है और तुम्हारे संस्कार कहते हैं, उदासीन हो जाओ। प्रेम रस है और तुम्हारे संस्कार रस-विपरीत हैं इसलिए तुम भयभीत होते हो।
और फिर तुम इसलिए भी भयभीत होते हो कि प्रेम के रास्ते पर अहंकार की आहुति देनी होती है। अपने सिर को काटकर चढ़ाना होता है। अपने को खाना होता है। जैसे बूंद सागर में गिरे, ऐसे प्रेम के सागर में गिरना होता है।
फिर भय लगता है कि प्रेम इतना विराट है, इतना बड़ा आकाश! और तुम पिंजरे में रहने के आदी हो गए हो। तुमने देखा कभी? पिंजरे में बंद पक्षी को अगर तुम दरवाजा भी खोल दो तो बाहर नहीं निकलता।
मैंने तो सुना है, एक सराय में एक आदमी एक रात मेहमान हुआ। कवि था। और दिन भर सुबह से उसने सुना, तोता एक, बड़ा प्यारा तोता बंद है; सराय के दरवाजे पर लटका है। और दिनभर चिल्लाता है, "स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! स्वतंत्रता!" कवि को बड़ी बात जंची। कवि था, उसके हृदय में भी स्वतंत्रता का मूल्य था। उसने सोचा, हद हो गई! मैंने तोते बहुत देखे; कोई कहता, राम-

147

राम, कोई कुछ जपता, कोई कुछ, मगर स्वतंत्रता की याद करनेवाला तोता पहली दफा देखा।
इतना भावाभिभूत हो गया कि रात जब सब सो गए दूसरे दिन तो वह उठा और उसने पिंजरा खोल दिया उसका और कहा, "प्यारे, उड़ जा। अब रुक मत।" मगर तोता उड़ा नहीं। पिंजरे के सींखचों को पकड़कर रुक गया। कवि के हृदय में बड़ी दया आ गई थी। स्वतंत्रता का ऐसा प्रेमी! उसने हाथ डालकर तोते को बाहर निकालना चाहा तो तोते ने चोंचें मारीं उसके हाथ में, लहूलुहान कर दिया। वह निकलना नहीं चाहता।
मगर कवि तो कवि होते हैं। पागल तो पागल हैं! उसने तो निकाल ही दिया तोते को, चाहे चोट मारता रहा तोता, चिल्लाता रहा। और मजा यह था, चोटें मार रहा था, बाहर निकलता नहीं था, सींखचे पकड़े था और चिल्ला रहा था, "स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! स्वतंत्रता!" मगर कवि ने भी निकालकर. . . उसकी एक न सुनी "स्वतंत्रता, स्वतंत्रता, स्वतंत्रता।" निकालकर उसको स्वतंत्र कर ही दिया। निश्चिंत आकर सो गया कवि अपने कमरे में। हृदय का भार हलका हो गया। लेकिन सुबह जब उसकी आंख खुली, तोता पिंजरे में बैठा था। वह दरवाजा बंद करना पिंजरे का रात भूल गया। तोता फिर वापिस आ गया था और सुबह से फिर रट लगा रहा था। और पिंजरे का द्वार खुला था। रट लगा रहा था, "स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! स्वतंत्रता!"
ऐसी तुम्हारी दशा है। तुम प्रेम की मांग भी करते हो मगर पिंजरे में तुम्हारी रहने की आदत भी हो गई है। तुम प्रार्थना की मांग भी करते हो मगर बस तोतों की तरह रट रहे हो। यह वास्तविक तुम्हारे प्राणों की प्यास हो तो अभी घटना घट जाए।
प्रेम खतरनाक मार्ग है। अपने को गंवाना पड़ता है तब कोई प्रेम को पाता है। इतनी कीमत चुकानी पड़ती है। सस्ता सौदा नहीं है, महंगा सौदा है। अपने को खोने की तैयारी चाहिए। जब इतनी तैयारी हो--
दिलो-दिमाग को रो लूंगा आह कर लूंगा
मैं तेरे इश्क में सब कुछ तबाह कर लूंगा
जब इतनी तैयारी हो तो प्रेम और उसकी महिमा का स्वाद मिलना शुरू होता है।
फिर प्रेम रुलाता भी बहुत है। क्योंकि आज तुम प्रेम करोगे तो आज थोड़े
ही प्रेमी मिल जाएगा! लंबी विरह की रात्रि आएगी तब मिलन की सुबह होती है। विरह की रात्रि का भी डर होता है। इसलिए लोग प्रेम करने से घबड़ाते हैं कि कौन विरह को सहेगा! समझदार आदमी इस तरह की बातों में पड़ते ही नहीं। क्योंकि उसमें पीड़ा है।
कोई ऐ "शकील" देखे यह जुनून नहीं तो क्या है
कि उसी के हो गए हम जो न हो सका हमारा
न मालूम कितनी रातों यहीं रोना पड़ेगा--कि उसी के हो गए हम जो न हो सका हमारा। तुमने चाहा और प्रेम उसी वक्त थोड़े ही घट जाता है! प्रेम परीक्षाएं मांगता है, कसौटियां मांगता है। प्रेम की विरह की अग्नि से गुजरना पड़ता है तभी तुम योग्य के लिए पात्र हो पाते हो; तभी तुम प्रेम को पाने के अधिकारी हो जाते हो।
कोई ऐ "शकील" देखे यह जुनून नहीं तो क्या है
कि उसी के हो गए हम जो न हो सका हमारा
यह पागलपन नहीं तो और क्या है? पागलपन मालूम होता है प्रेम।
समझदार बच जाते हैं, इस पागलपन की तरफ नहीं जाते। समझदार धन कमाते हैं, प्रेम नहीं। समझदार दिल्ली की यात्रा करते हैं, प्रेम की नहीं। समझदार और सब करते हैं, प्रेम से बचते हैं क्योंकि प्रेम पागलपन है। और पागलपन है ही। बुद्धि की सब सीमाओं को तोड़कर, बुद्धि की सारी व्यवस्थाओं को तोड़कर प्रेम उमगता है। इसलिए तुम डरते होओगे। विचारशील आदमी होओगे। कहूं किससे मैं कि क्या है शबे-गम, बुरी बला है
मुझे क्या बुरा था मरना अगर एक बार होता

प्रेमी को कितनी बार मरना पड़ता है इसका पता है? बार-बार मरना पड़ता है,
हर बार मरना पड़ता है। हर बार विरह जब घेरती है, मौत घटती है। इंच-इंच मरना पड़ता है।
कहूं किससे मैं कि क्या है शबे-गम, बुरी बला है--वह जो विरह की लंबी रात है, बड़ी खतरनाक है।
मुझे क्या बुरा था मरना अगर एक बार होता--एक बार मर जाता तो भी कोई बात थी। मरते हैं, मरते हैं। जी भी नहीं पाते, मर भी नहीं पाते। प्रेमी की बड़ी फांसी लग जाती है। प्रेम फांसी है; मगर फांसी के बाद ही सिंहासन है। याद करो जीसस की कहानी। सूली लगी, और सूली के बाद ही पुनरुज्जीवन। प्रेम सूली है।
और जिसने प्रेम नहीं जाना उसे भक्ति से तो मिलना कैसे हो पाएगा? प्रेम भक्ति का बीज है। भक्ति प्रेम का फूल है। प्रेम ही प्रगाढ़ होते-होते एक दिन भक्ति बनता है। जो प्रेम से वंचित रह गया, वह भक्ति से वंचित रह जाएगा। और अगर भक्ति करेगा तो उसकी भक्ति थोथी होगी, औपचारिक होगी, क्रियाकांड होगी, पाखंड होगी, दिखावा होगी, धोखा होगी।
बरस रही है हरीमे-हविस में दौलते-हुस्न
गदाए-इश्क के कासे में इक नजर भी नहीं
न जाने किसलिए उम्मीदवार बैठा हूं
इक ऐसी राहपै जो तेरी रहगुजर भी नहीं
बहुत बार ऐसा लगेगा कि कहां बैठा हूं, किसकी राह देख रहा हूं? न कोई आता, न कोई जाता। कहीं ऐसा तो नहीं है एक ऐसी राह पर बैठा हूं जहां से परमात्मा का निकलना होने ही वाला नहीं है! जहां से प्रेमी गुजरेगा ही नहीं!
न जाने किसलिए उम्मीदवार बैठा हूं
इक ऐसी राहपै जो तेरी रहगुजर भी नहीं
कभी तुझे गुजरते भी नहीं देखा। कभी तेरे पैरों की चाप भी नहीं सुनी। मैं कहीं ऐसा व्यर्थ बैठे-बैठे व्यर्थ ही तो नहीं हो जाऊंगा?
प्रेम बड़ी प्रतीक्षा मांगता है, बड़ा धीरज मांगता है। और जिनके पास धीरज की कमी है वे प्रेम के रास्ते पर नहीं जा सकते। और यहां तो सारे लोग जल्दी में हैं। अभी हो जाए कुछ, इसी वक्त हो जाए कुछ, मुफ्त में हो जाए कुछ, उधार हो जाए कुछ। न तो कोई कीमत चुकाने को राजी है, न कोई प्रतीक्षा करने को राजी है, न कोई विरह के आंसू गिराने को राजी है।
हम भी तस्लीम की खू डालेंगे
बे-नियाजी तेरी आदत ही सही
प्रेमी को तो कहना पड़ता है, अगर तेरा उपेक्षाभाव तेरी आदत है तो रहे तेरी आदत, सम्हाल तू अपनी आदत। हम भी तस्लीम की खू डालेंगे--हम भी धैर्य की आदत डालेंगे।
हम भी तस्लीम की खू डालेंगे
बे-नियाजी तेरी आदत ही सही
तू रख अपनी आदत बेपरवाही की। मतकर चिंता हमारी, मत ले खोज-खबर, मत देख हमारी तरफ। तू कर उपेक्षा जितनी कर सकता हो। हम अपने धीरज से तेरी उपेक्षा को हराएंगे।
लंबी यात्रा है विरह की, आंसुओं की। मगर जो हिम्मत कर लेता है, पूरी हो जाती है। और जिसे एक बार थोड़ा-सा भी स्वाद लग जाता है प्रेम का, फिर लौट नहीं पाता। फिर सिर गंवाना हो तो सिर गंवाता है। फिर जो गंवाना हो, गंवाने को राजी होता है।
जीते-जी कूचः-ए-दिलदार से आया न गया
उसकी दीवार का सर से मिरे साया न गया
एक बार उसकी दीवाल की छाया भी तुम पर पड़ जाए तो फिर चाहे जान रहे कि जाए, तुम उसके दीवाल के साए को छोड़कर जा न सकोगे।
तुम तो मंदिर भी हो आते हो, लौट आते हो। तुम्हारा मंदिर झूठा है। उसके मंदिर जाकर कोई कभी लौटा है? जो गया सो गया। जो गया सो उसके मंदिर का हिस्सा हो गया।

जीते-जी कूचः ए-दिलदार से आया न गया
प्रेमी की गली से कोई जिंदा लौटता है?
उसकी दीवार का सर से मेरे साया न गया
इतनी हिम्मत नहीं है इसलिए प्रेम की महिमा सुन लेते हो, बुद्धि से समझ
भी लेते हो, फिर भी भीतर-भीतर डरे रहते हो।
यह हाल था शब-ए-वादा कि ता-ब-रहगुजर
हजार बार गया मैं, हजार बार आया
कितनी बार जाना पड़ता है देखने द्वार पर कि कहीं प्रेमी आ तो नहीं गया? विरह की रात्रि में पत्ता भी खड़कता है तो गलता है, उसी का आगमन हो रहा है। हवा का झोंका आता है तो लगता है, उसी का आगमन हो रहा हैं। राह से कोई अजनबी गुजर जाता है तो लगता है, वही आ गया।
यह हाल था शब-ए-वादा कि ता-ब-रहगुजर
हजार बार गया मैं, हजार बार आया
--सोने की फिर चैन नहीं। प्रेम में जो पड़ा वह जागा।
इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, दो मार्ग हैं परमात्मा तक जाने के। एक मार्ग है, ध्यान। ध्यान का अर्थ है, जागो। जो जागेगा वह प्रेम करने लगेगा। जागा हुआ आदमी घृणा नहीं कर सकता क्योंकि जागे हुए आदमी को दिखाई पड़ता है, सब एक है। मैं ही हूं। यहां किसी को चोट पहुंचाना अपने ही गाल पर चांटा मारना है। यहां किसी को दुख देना अपने को ही दुख देना है। जागे हुए पुरुष को दिखाई पड़ता है, एक का ही विस्तार है, एक ही परमात्मा सबमें छाया है। प्रेम अपने आप पैदा होता है।
दूसरा रास्ता है प्रेम का। प्रेम करो और तुम जाग जाओगे क्योंकि प्रेमी सो नहीं सकता। उसकी प्रतीक्षा में पलक लगे कैसे? उसकी राह देखनी पड़ती है, कब आ जाए, किस क्षण आ जाए, किस द्वार से आ जाए, किस दिशा से आ जाए।
प्रेम हिम्मत की बात है, दुस्साहस की बात है।
तुम पूछते हो, "प्रेम की इतनी महिमा है तो फिर मैं प्रेम करने से डरता क्यों हूं?" इसीलिए डरते हो। महिमा का तुम्हें थोड़ा-थोड़ा बोध होने लगा है। आकर्षण पैदा हो रहा है, कशिश पैदा हो रही है। प्रेम पुकार दे रहा है। और अब भय पकड़ रहा है। अच्छे लक्षण हैं, भय की मानकर रुकना मत। भय के बावजूद प्रेम की पुकार सुनना और प्रेम के स्वर को पकड़कर चल पड़ना।
प्रेम परमात्मा का आयाम है। निकटतम कोई मार्ग अगर परमात्मा के पास ले जानेवाला है तो प्रेम है। ध्यान का मार्ग लंबा है और रूखा-सूखा है; मरुस्थल जैसा है। प्रेम का मार्ग बहुत हरा-भरा है। प्रेम के मार्ग पर गंगा बहती है, मरुस्थल नहीं है। छोड़ो अपनी नौका गंगा में। भय तो पकड़ता है। जब भी कोई नई यात्रा को निकलता है, नए अभियान को, अज्ञात अनजान की खोज में, भय स्वाभाविक है। लेकिन स्वाभाविक भय का अर्थ यह नहीं है कि उसके कारण रुको।

अंतिम प्रश्नः प्यारे ओशो, एक लहर उठी थी और किनारे से टकराने के पहले
ही सम्हल गई। और फिर से वही लहर वापस मझधार में डूब गई। उस क्षण का क्या कहूं! डूबने में आनंद घना होकर छा गया और भीग गई। प्रेम-सागर में डूबकर पुनः गाती हूं, "झमकि चढ़ जाऊं अटरिया री।"

तरु! जो तुझे हो रहा है, मुझे पता है। धीरे-धीरे औरों को भी पता होना शुरू हो जाएगा।
वाकिफ है जोश इश्क से अपने तमाम शहर
और हम यह जानते हैं कि कोई जानता नहीं
प्रेम का तो पता चलना शुरू हो जाता है। प्रेम तो प्रकट होने लगता है। प्रेमी की चाल बदल जाती है, चलन बदल जाता है, उठना-बैठना बदल जाता है, भाव-भंगिमा बदल जाती है। प्रेम घटता है तो पता चलने ही लगता है। प्रेम को छुपाने का उपाय नहीं है।
पड़ा था सूना सितार दिल का
हुई अचानक यह जाग तुमसे
जो जिंदगी रोग बन चुकी थी

वह बन गई है आज राग तुमसे
यह मेरे जीवन की रागिनी क्या
प्रेम की यह मीठी बांसुरी क्या
यह दान तुमने दिया है साजन
मिला है मन को यह राग तुमसे
परमात्मा को धन्यवाद दो। उसके अनुग्रह में झुको। और जितने अनुग्रह में झुको उतनी ही और प्रेम की वर्षा होगी।
उनके ओंठों में है कैसी मै-ए-गुल रंग "सुरूर"
देखिए कब वह घड़ी आए कि हम तक पहुंचे
--परमात्मा मदिरा है।
उनके ओंठों में है कैसी मै-ए-गुल रंग "सुरूर"
--उसके ओंठ अमृत से भरे हैं।
देखिए कब वह घड़ी आए कि हम तक पहुंचे
--जितने झुकोगे उतने जल्दी घड़ी आ जाएगी। जो बिल्कुल झुक गया उसकी घड़ी
आ गई। जरा भी झुकोगे तो बूंदाबांदी शुरू हो जाएगी। अगर बिल्कुल झुक गए तो वह भी तुम पर झुक आता है। झुकि आयी बदरिया सावन की!
इक जाम में घोली है बेहोशी-ओ-हुश्यारी
सर के लिए गफलत है, दिल के लिए बेदारी
और जैसे-जैसे यह मस्ती छाएगी, वैसी-वैसी एक हैरानी की बात समझ में आएगी-- सर के लिए गफलत है। सर तो बेहोश होने लगेगा। दिल के लिए बेदारी--और दिल होश से भरने लगेगा। मस्तिष्क तो सोने लगेगा, खोने लगेगा, हृदय जागने लगेगा।
साधारणतः खोपड़ी जगी हुई है, हृदय सोया हुआ है। विचार, तर्क जगे हुए हैं, प्रेम सोया हुआ है। जैसे-जैसे कोई परमात्मा के अनुग्रह में डूबता है वैसे-वैसे बुद्धि तो सोने लगती है, हृदय जागने लगता है। हृदय के जागने को ही मैं श्रद्धा कहता हूं। बुद्धि तुम्हें विश्वास दे सकती है, श्रद्धा नहीं। श्रद्धा स्वाद है हृदय का।
इक जाम में घोली है बेहोशी-ओ-हुश्यारी
--और एक प्याली में दोनों बातें घोली हैं।
इक जाम में घोली है बेहोशी-ओ-हुश्यारी
सर के लिए गफलत है दिल के लिए बेदारी
जिससे सिर तो सो जाएगा और जिससे हृदय सदा के लिए जाग जाएगा। हृदय का जागरण जगत में परमात्मा का अनुभव है।
तरु, तू ठीक ही कहती है कि उस क्षण का क्या कहूं! डूबने में आ नंद घना होकर छा गया और भीग गई। उस क्षण के संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। या कुछ ऐसी बातें कही जा सकती हैं--
ख्वाबीद: तरन्नुम है खामोश कयामत है
रफ्तार की शोखी में गंगा की मतानत है
जज्बात की बेदारी जाहिर है रगो-पैसे
तालाब के पानी में बहता हो कंवल जैसे
ख्वाबीद: तरन्नुम है-- स्वप्निल संगीत है। इतना सूक्ष्म है कि स्वप्न जैसा मालूम होता है, सत्य नहीं मालूम होता। अनाहत का नाद ऐसा ही है। ख्वाबीद: तरन्नुम है खामोश कयामत है--सारा अस्तित्व ऐसा चुप है जैसे कयामत हो गई; जैसे सृष्टि का अंत हो गया; जैसे प्रलय आ चुकी, महाप्रलय घट गई।
ख्वाबीदः तरन्नुम है खामोश कयामत है
रफ्तार की शोखी में गंगा की मतानत है
और फिर भी जीवन में एक आनंद है, एक नृत्य है; जैसे गंगा नाचती हुई सागर
की तरफ चली हो।
जज्बात की बेदारी जाहिर है--और भावनाएं जग गई हैं, विचार सो गए हैं।
जज्वाब की बेदारी जाहिर है रगो-पैसे। और ऐसा भी नहीं है कि हृदय के भीतर ही भीतर है, रोएं-रोएं में है, रग-रग में है, अंग-अंग में है।
जज्बात की बेदारी जाहिर है रगो-पैसे--एक-एक रोआ खबर दे रहा है उसकी।

तालाब के पानी में बहता हो कंवल जैसे--और जैसे तालाब के पानी पर एक कमल थिर हो और बहता हो।
नहीं, उस क्षण के संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। तालाब के पानी में बहता हो कंवल जैसे। मगर यह भी कुछ नहीं कहना है। हमारे सब प्रतीक छोटे पड़ जाते हैं। हमारे सब प्रतीक ओछे पड़ जाते हैं। भाषा लंगड़ी हो जाती है। व्याकरण का दिवाला निकल जाता है। उस क्षण को तो जो जानता है, वही जानता है। लेकिन वह क्षण जिसके जीवन में आना शुरू हो जाता है उसके जीवन में परमात्मा ने प्रवेश शुरू किया। एक-एक किरण धीरे-धीरे घने सूरज बन जाते हैं। एक-एक बूंद सागर बन जाते हैं।
और उसकी अटरिया पर तो हम चढ़ ही रहे हैं। झमकि चढ़ जाऊं अटरिया री। यह तो ख्याल ही तब आता है जब सीढ़ियों पर पैर पड़ने लगते हैं। तब दो-दो सीढ़ियां एक साथ छलांग लगा जाने का मन होता है। झमकि चढ़ जाऊं अटरिया री। उमंग में, उत्साह में, आनंद में। कोई होश रह जाता है चढ़ने का? छलांगें लगती हैं। क्रम टूट जाते हैं, छलांगें घटती हैं।
जगजीवन का यह वचन: "झमकि चढ़ जाऊं अटरिया री" बड़ा प्यारा है। मैं तुम्हें जो संन्यास दिया हूं वह ऐसा ही है--झमककर चढ़ जाए अटरिया। नाचता हुआ, गीत गाता हुआ, परम आनंद में लीन।

आज इतना ही।

नाम सुमिर मन बावरे
नौवां प्रवचन

तीरथ-ब्रत की तजि दे आसा

सुनु सुनु सखि री, चरनकमल तें लागि रहु री।
नीचे तें चढ़ि ऊंचे पाउ मंदिल मगन मगन ह्व गाउ।।
दृढ़करि डोरि पोढ़िकरि लाव इत-उत कतहूं नाहीं घाव।।
सत समरथ पिय जीव मिलाव नैन दरस रस आनि पिलाव।।
माती रहहु सबै बिसराव आदि अंत तें बहु सुख पाव।।
सन्मुख ह्वै पाछे नहिं आव जुग-जुग बांधहु एहै दाव।।
जगजीवन सखि बना बनाव अब मैं काहुक नाहिं डेरांव।।

तीरथ-ब्रत की तजि दे आसा।
सत्तनाम की रटना करिकै, गगन मंडल चढ़ि देखु तमासा।।
ताहि मंदिल का अंत नहीं कछु, रबी बिहून किरिन परगासा।
तहां निरास बास करि रहिए, काहेक भरमत फिरै उदासा।।
देऊं लखाय छिपावहुं नाहीं, जस मैं देखउं अपने पासा।
ऐसा कोऊ शब्द सुनि समुझैं, कटि अध-कर्म होइ तब दासा।।
नैन चाखि दरसन-रस पीवै, ताहि नहीं है जम की त्रासा।।
जगजीवन भरम तेहि नाहीं, गुरु क चरन करै सुक्ख-बिलासा।।

सखि, बांसुरी बजाय कहां गयो प्यारो।।
घर की गैल बिरसिगै मोहितें, अंग न बस्त्र संभारो।।
चलत पांव डगमगत धरनि पर, जैसे चलत पतवारो।।
घर आंगन मोहिं नीक न लागै, सब्द-बान हिये मारो।
लागि लगन में मगन बाहिसों, लोक-लाज कुल-कानि बिसारो।।
सुरति दिखाय मोर मन लीन्हों, मैं तो चहों होय नहिं न्यारो।
जगजीवन छबि बिसरत नाहीं, तुमसे कहों सो इहै पुकारो।।

जीवन एक समस्या नहीं है, अन्यथा उसका समाधान हो जाता। जीवन प्रश्न होता तो उत्तर खोजा जा सकता था। जीवन पहेली होती तो बूझ लेते। जीवन एक रहस्य है; बूझने का कोई उपाय नहीं, जीने का उपाय है, मदमस्त होने का उपाय है, पीने का उपाय है, समझने का-सूझने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए दर्शनशास्त्र हार जाता है। दर्शनशास्त्र की खोज व्यर्थ खोज है। सदियों- सदियों में आदमी ने सोचा है, खूब सोचा है; बहुत से प्रश्न और बहुत से उत्तर खड़े किए हैं, लेकिन न तो कोई प्रश्न जीवन की गहराई को छूता है और न कोई उत्तर जीवन की गहराई को छूता है। जीवन स्वाद की बात है। जीवन शराब है; पियोगे तो जानोगे। पियोगे, मदमस्त होओगे तो पहचानोगे।
यहीं दर्शन और धर्म का भेद है। दर्शन सोचता है, धर्म पीता है। अब प्यास लगी हो तो जल के संबंध में सोचने से क्या होगा? और जल के संबंध में सब पता भी चल जाए तो भी प्यास बुझेगी नहीं। असली सवाल जल के संबंध में जानना नहीं है, असली सवाल है जल को कंठ से उतार लेना।
फिर क्या तुम सोचते हो जो व्यक्ति जल के संबंध में कुछ भी नहीं जानते उनकी प्यास नहीं बुझती? पीते हैं तो बुझती है। अज्ञानी की बुझ जाती है पीने से और ज्ञानी की भी नहीं बुझती है सिर्फ जानने-सोचने-विचारने से। धर्म डुबकी लगाने का उपाय है। दर्शन किनारे पर बैठकर विचार करता है, धर्म नाव छोड़ देता है सागर में। तूफानों से टकराता है, चुनौतियों को स्वीकार करता है और उन्हीं चुनौतियों, उन्हीं आंधियों से आत्मा का जन्म होता है, अनुभव का जन्म होता है।
आज जगजीवन के अंतिम सूत्र हैं; और बड़े प्यारे।
सुनु सुनु सखि री, चरनकमल तें लागि रहु री

अपने शिष्यों को कह रहे हैं, अपने मित्रों को कह रहे हैं। क्योंकि धर्म की खोज में शिष्य मित्र ही हैं। इसलिए सखि शब्द का प्रयोग कर रहे हैं।
शिष्य की तरफ से गुरु कितने ही दूर मालूम पड़े, गुरु की तरफ से शिष्य दूर नहीं समझा जाता। शिष्य गुरु के चरणों में झुकता है। झुकने में रहस्य है, झुकने में कुछ पाने की विधि छिपी है, कुंजी है। लेकिन गुरु तो जानता है कि जो मैं हूं वही तू है। मुझमें-तुझमें जरा भी भेद नहीं है। गुरु तो शिष्य के बुद्धत्व को उसी तरह पहचानता है जैसे अपने बुद्धत्व को पहचानता है। बुद्ध ने कहा है, जिस दिन मैं बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ, सारा अस्तित्व बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया। जिसकी आंख खुल गई और जिसे प्रकाश दिखाई पड़ गया अपने भीतर, उसे सब तरह प्रकाश दिखाई पड़ जाता है। शिष्य की दशा ऐसी है कि प्रकाश उसके भीतर है और उसे पहचान नहीं है। गुरु को तो उसके भीतर का प्रकाश भी दिखाई पड़ता है।
इसीलिए जगजीवनदास ने ठीक ही किया है कि शिष्यों को "सखि" कहकर संबोधन दिया है--सुनु सुनु सखि री। हे सहेली, सुन।
सखा कहते, सखि क्यों कहा? मित्र कहते, सहेली क्यों कहा? क्योंकि धर्म
की खोज में प्रत्येक व्यक्ति को स्त्रैण हो जाना पड़ता है। धर्म की खोज में पुरुष की गति ही नहीं है। ख्याल रखना, जब मैं कहता हूं पुरुष की गति नहीं है, तो मेरा मतलब यह नहीं है कि पुरुष वहां नहीं पहुंचते। जगजीवनदास खुद भी पुरुष थे। पुरुष भी वहां पहुंचते हैं। लेकिन पहुंचते वहां जिस ढंग से हैं, उस ढंग को स्त्रैण ही कहा जा सकता है। भेद समझें।
पुरुष से अर्थ है: अहंकार, अस्मिता, मैं-भाव। स्त्री से अर्थ है: विनम्रता, झुकने की क्षमता, निअर्हंकार। पुरुष से अर्थ है: आक्रमण, विजय की यात्रा, अभियान। स्त्री से अर्थ है: प्रतीक्षा, प्रार्थना, धैर्य। पुरुष सत्य की खोज में निकलता है, स्त्री सत्य के आने की प्रतीक्षा करती है। पुरुष प्रेयसी की खोज में पहल करता है, स्त्री प्रेमी की राह देखती है। स्त्री प्रेम का निवेदन भी नहीं करती अपनी ओर से, चुपचाप प्रतीक्षा करती है। स्त्री के मुंह से प्रेम का निवेदन भद्दा भी लगता है। पुरुष की ओर से निवेदन उचित है। पुरुष पहल करे यह उचित है।
परमात्मा की खोज में जो निकले हैं वे अगर पुरुष की अकड़ से चले तो नहीं पहुंचेंगे। परमात्मा पर आक्रमण नहीं किया जा सकता और न परमात्मा को जीता जा सकता है। और पुरुष तो जीतने की भाषा में ही सोचता है। परमात्मा के समक्ष तो हारने में जीत है। वहां तो जो झुके, उठा लिए गए। वहां तो जो गिरे वे शिखर पर चढ़ गए।
तुमने कहावत सुनी है कि उसकी कृपा हो जाए तो लंगड़े भी पर्वत चढ़ जाते हैं। मैं तुमसे कहता हूं उसकी कृपा ही उन पर होती है जो लंगड़े हैं। लंगड़े ही पर्वत चढ़ते हैं। जिनको अकड़ है अपने पैरों की और अपने बल का भरोसा है, वे तो घाटियों में ही भटकते रह जाते हैं। अंधेरे की घाटियां अनंत हैं। जन्मों-जन्मों तक भटक सकते हो। ईश्वर को पाना हो तो ईश्वर पुरुष है, उसकी प्रतीक्षा करना हमें सीखना होगा। प्रार्थना और पुकार, सुरति और सुमिरन; मगर प्रतीक्षा!
भक्त को स्त्री के गर्भ जैसा होना चाहिए--लेने को राजी, लेने को आतुर, अपने भीतर समाविष्ट करने को उत्सुक, प्रार्थनापूर्ण। अपने भीतर नये जीवन को उतारने के लिए द्वार खुले हुए हैं। लेकिन जीवन को खोजने हम जाएं तो जाएं कहां? परमात्मा की तलाश करें तो कहां करें, किस दिशा में करें? जाननेवाले कहते हैं, सब जगह है। न जानने वाले कहते हैं कहां है, दिखाओ। भक्त जाए तो कहां जाए? खोजे तो कहां खोजे? एक तरफ जाननेवाले हैं, वे कहते हैं, रत्ती-रत्ती में वही, कण-कण में वही; वही है और कोई भी नहीं। और एक तरफ न जाननेवाले हैं, वे कहते हैं कि और सब कुछ है, परमात्मा नहीं है। भक्त इन दोनों के बीच खड़ा है। न उसे पता है कि सब जगह है, और न ही वह ऐसे अहंकार से भरा है कि कह सके कि कहीं भी नहीं है। क्योंकि वह कहता है, मुझे पता ही नहीं, मैं कैसे कहूं कि कहीं भी नहीं है? ऐसी अस्मिता मेरी नहीं।

तो भक्त क्या करे? भक्त प्रतीक्षा करे, प्रार्थना करे, रोए-गाए, नाचे, पुकारे। पुकार को ऐसा गहन करे, पुकार उसके प्राणों में ऐसी गहरी उतर जाए कि उसका रोआं-रोआं पुकारे, उसकी श्वास-श्वास पुकारे और अगर कहीं परमात्मा है तो आएगा, जरूर आएगा। अगर कहीं परमात्मा है तो आंसू व्यर्थ नहीं जाएंगे, पुकारें सुनी जाएंगी। और जितनी गहरी पुकार होगी उतनी त्वरा से सुनी जाएगी, शीघ्रता से सुनी जाएगी। अगर कोई पूरे प्राण से पुकार सके तो इसी क्षण घटना घट सकती है।
इसलिए जगजीवनदास "सखा" शब्द का उपयोग नहीं करते। कहते हैं, "सुनु सुनु सखि री।" ए सखि सुन! चरनकमल तें लागि रहु री।"
परमात्मा तो दिखाई नहीं पड़ता लेकिन उसके चरण सब जगह दिखाई पड़ते हैं। परमात्मा तो विराट है, पर उसके चरण सब जगह दिखाई पड़ते हैं। क्या अर्थ हुआ, चरण सब जगह दिखाई पड़ते हैं? अर्थ हुआ कि अगर झुकना हो तो कहीं भी झुक सकते हो।
एक गुलाब का फूल खिला, जिसको झुकने की कला आती है, झुक जाएगा। चमत्कार
घट रहा है, मिट्टी गुलाब का फूल बन गई और तुम अंधे की तरह जा रहे हो बिना झुके, बिना नमस्कार किए?
मिट्टी गुलाब का फूल बन गई है, और बड़ा जादू होता है कहीं? साधारण-सी मिट्टी में ऐसी सुवास उठी है, और किस चमत्कार की प्रतीक्षा करते हो जब तुम झुकोगे? अगर तय ही कर लिया हो न झुकने का तो बात और, अन्यथा पल-पल, प्रतिकदम पर झुकने के लिए अवसर है। सूरज निकला, अब तुम किस प्रतीक्षा में खड़े हो? और परमात्मा की महिमा कैसे प्रकट होगी? उसके चरण और कहां पाओगे? और आकाश तारों से भर गया और तुम झुकोगे नहीं तो तुम कहां झुकोगे, कैसे झुकोगे? मैं बहुत चमत्कृत हो जाता हूं यह देखकर कि लोग जाकर मंदिरों में झुक जाते है, जो आकाश को तारों से भरा देखकर नहीं झुकते। इनका मंदिर में झुकना झूठा होगा, निश्चित झूठा होगा। यह सच नहीं हो सकता। इसमें हार्दिकता नहीं हो सकती। आदमी की बनाई हुई मूर्ति में इन्हें क्या दिखाई पड़ सकता है? अगर परमात्मा की बनाई हुई मूर्तियों में इन्हें कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा है। इतने अंधे! ये संगमरमर की एक बनी प्रतिमा के सामने झुकते हैं, उसमें हृदय होगा? आदतवश झुक जाते होंगे। बचपन से झुकाए गए होंगे इसलिए झुक जाते होंगे मां-बाप ने कहा होगा, झुको, इसलिए झुक जाते होंगे, भय के कारण झुक जाते होंगे; डर के कारण--कि कहीं नरक न हो, कहीं दंड न मिले। या लोभ के कारण झुक जाते होंगे कि झुकने से स्वर्ग मिलेगा, पुरस्कार मिलेंगे। कि क्या बिगड़ता है, थोड़ी खुशामद कर ली। परमात्मा को भी राजी रखना उचित है। फिर जो करना है करते रहो लेकिन उसे भी राजी रखते रहो।
थी वह शायद अपनी ही बेचारगी की एक पुकार
जिसको अपनी सादालौही से खुदा समझा था मैं
लोग अपने भय, कमजोरी, नपुंसकता के कारण झुक जाते हैं और समझ लेते हैं
कि हम खुदा के सामने झुक रहे हैं।
थी वह शायद अपनी ही बेचारगी की एक पुकार
जिसको अपनी सादालौही से खुदा समझा था मैं
अज्ञान है; तुमने प्रार्थना समझी है उसे? वहां प्रार्थना बिल्कुल नहीं है, प्रेम बिल्कुल नहीं है। सरासर झूठ है। क्यों? क्योंकि अगर आंखों में प्रेम होता तो इन पास खड़े वृक्षों के पास तुम्हारे झुकने का मन न होता? कोयल कूकती और तुम न झुकते? मोर नाचता और तुम न झुकते? आकाश बादलों से भर जाता और तुम न झुकते? चांदनी के फूल झर-झर झरते और तुम न झुकते? कोई हंसता और तुम न झुकते? मिट्टी में और हंसी? किस चमत्कार की प्रतीक्षा कर रहे हो? उसके चरण-कमल प्रत्येक पल हैं, प्रत्येक स्थल पर हैं। एक-एक रेत के दाने पर उसके हस्ताक्षर हैं, लेकिन संवेदनशीलता चाहिए।
जगजीवन कहते हैं
सुनु सुनु सखि री चरनकमल तें लागि रहु री
--उसके चरणकमलों में लग जाओ। उसके चरणकमलों का विस्तार सब तरफ है। उसका चेहरा तो बहुत दूर है, विराट है लेकिन उसके पैर हरेक के पास हैं। और जो भी झुकना जानता है उसे उसके पैर मिल जाते हैं। पैरों को खोजकर फिर हम

झुकेंगे ऐसा मत सोचो। झुकने की कला सीखो, और पैर मिले। तुम जहां झुके वहां मंदिर उठा। तुमने जहां अपना सिर जमीन पर टेका, वहीं काबा है। तुमने अगर जमीन को चूम लिया तो तुमने उसके चरण चूम लिए; तुमने उसे ही चूम लिया। तुम्हें काबा का पत्थर चूमने जाने के लिए उतने दूर की यात्रा करने की जरूरत नहीं है। तुम जहां झुक जाओगे, वहीं हज हो गई। वहीं तुम हाजी हो गए। लेकिन झुकना न आता हो तो तुम काबा भी पहुंचकर क्या करोगे? जो जिंदगी
भर न झुका हो, जो चांद-तारों के सामने न झुका हो वह काबा जाकर भी क्या करेगा? कवायत हो जाएगी। सिर झुका लेगा मगर भीतर का अहंकार तो खड़ा ही रहेगा; शायद सिर झुकाने से और अकड़ जाएगा। अहंकारी अगर काबा हो आए तो और अहंकारी हो जाएगा। थोड़े और आभूषण मिल गए अहंकार को। हाजी होकर लौट आया। तीर्थयात्रा कर आए अहंकारी तो और अकड़ जाता है। थोड़ा पुण्य कर ले तो अहंकार में और थोड़ी सी-संपदा बढ़ गई, और थोड़ा पोषण मिल गया अहंकार को। यह तो उलटी बात हो गई। यह झुकना न हुआ। यह तो अकड़ने के लिए तुमने धर्म का भी उपयोग कर लिया। तुमने धर्म के माध्यम से भी अपने को अकड़ा लिया। और जितने तुम अकड़े उतने तुम परमात्मा से दूर हुए। जितने तुम झुको उतने तुम उसके करीब हो। अगर तुम परिपूर्णता से झुक जाओ तो तुम्हारे हृदय के भीतर वह विराजमान है। अभी तो सीधा-सीधा देखना कठिन होगा। अभी तो परोक्ष से खोजना होगा। अभी प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। इसलिए झुको। झुकने में उसके चरणों पर तुम्हारे हाथ पड़ेंगे। धीमे-धीमे, आहिस्ता-आहिस्ता क्रमशः तुम्हें तुम्हारी पहचान बढ़ेगी। उसके चरणों की गंध तुम्हारे नासापुटों में भरने लगेगी। इसलिए उसके चरणों को कमल कहते हैं। उसके चरण बड़े सुगंधित हैं। अपूर्व उनकी सुगंध है। उसके चरण बड़े कोमल हैं, बड़े सुंदर हैं। अपूर्व उनका सौंदर्य है। उसके चरण बड़े चमत्कारी हैं जैसे कीचड़ से कमल का होना--यह चमत्कार है, ऐसे कीचड़ में भी वह छिपा है। जो झुकता है वह कीचड़ में भी हीरा पा लेता है। अभी सीधे तो देखना संभव नहीं है।
एक प्रेमी ने अपनी प्रेयसी के पास पत्रवाहक को भेजा, नामावर भेजा और पत्रवाहक को कहा:
मजा लेंगे हम देखकर तेरी आंखें
उन्हें खूब तू नामावर देख लेना
सीधे तो हम जा नहीं सकते। अभी सीधी अपनी प्रेयसी की आंखें नहीं देख सकेंगे उसका चेहरा नहीं देख सकेंगे लेकिन तू जा रहा है संदेशवाहक, गौर से चेहरे को देख लेना। सौंदर्य को खूब पी लेना मेरी प्रेयसी के, कि तू जब आएगा तो हम तेरी आंखों को देखकर आनंद ले लेंगे।
मजा लेंगे हम देखकर तेरी आंखें
उन्हें खूब तू नामावर देख लेना
--प्रेम का ही विस्तार है भक्ति। प्रेम का ही परिष्कार है भक्ति।
आज उनकी नजर में कुछ हमने सबकी नजरें बचाकर देख लिया
सीखी यहीं मेरे दिले-काफिर ने बंदगी
रबे-करीब है तो तेरी रहगुजर में
--तुमने अगर किसी को भी प्रेम किया है तो तुम जान ही जाओगे।
सीखी यहीं मेरे दिले-काफिर ने बंदगी
ऐसे तो आदमी सभी काफिर की तरह पैदा होते हैं, सभी धर्मविहीन पैदा होते हैं। झुकने की बात सीखनी पड़ती है।
सीखी यहीं मेरे दिले-काफिर ने बंदगी
--प्रेम के रास्ते पर ही प्रार्थना सीख ली जाती है।
रबे-करीब है तो तेरी रहगुजर में
और जहां से प्रेम गुजरता है उसी राह पर परमात्मा भी गुजरता है। प्रेम
की राह और परमात्मा की राह दो राहें नहीं हैं। अभी परमात्मा का तो तुम्हें पता नहीं है लेकिन प्रेम का तो थोड़ा-थोड़ा पता है। चलो प्रेम से ही शुरू करें। जितना अपने पास है उस संपदा से ही तो शुरू करोगे न! एक कौड़ी भी पास हो तो करोड़ों रुपयों को खींच ला सकती है। प्रेम तुम्हारे पास है, पर्याप्त है। इतनी पूंजी से हो जाएगा काम। काफिर में ईमान जग जाएगा। न झुकनेवाला

झुकना सीख जाएगा। विचार तिरोहित हो जाएंगे। विचारों की ऊर्जा भावनाओं में रूपांतरित हो जाएगी।
नीचे तें चढ़ि ऊंचे पाउ
--जगजीवन कहते हैं, नीचे हो जाओ तो ऊंचे पहुंच जाओ।
ठीक यही तो जीसस ने कहा है: जो पीछे खड़े होंगे वे आगे पहुंच जाएंगे।
और अभागे हैं वे लोग जो आगे होने की कोशिश में हैं क्योंकि पीछे पड़ जाएंगे। यहां जिसने पहाड़ चढ़ना चाहा वे घाटियों में भटकते रह गए; और जो झुके रहे और जिन्होंने जीवन को स्वीकार कर लिया, जैसा था वैसा स्वीकार कर लिया, वहीं से जिन्होंने पुकार दी, आवाज दी, वे पर्वत-शिखरों पर चढ़ गए हैं, वे ऊंचाई जीवन की पाने में सफल हो गए हैं।
नीचे तें चढ़ि ऊंचे पाउ
--हो जाओ नीचे, झुक जाओ।
चरनकमल तें लागि रहु री
--लग जाओ उसके चरणों से। नीचे से नीचे हो जाओ।
मंदिल गगन मगन ह्व गाउ
--और एक बार तुम्हें झुकना आ जाए तो तुम्हारे भीतर वह जो शून्य है वह गीत गाने लगे; तुम्हारे भीतर वह छुपी हुई जो समाधि है, नाचने लगे।
पग घुंघरू बांध मीरां नाची रे!
तुम भी नाच सकते हो। सब तुम्हारे पास भी उतना ही है जितना किसी मीरा
के पास। लेकिन एक कला तुम्हें नहीं आ रही, जरा झुकना नहीं आ रहा। पुरुष वहीं अकड़ा खड़ा है। इसलिए मैं फिर कहता हूं, स्त्री हुए बिना कोई सत्य तक नहीं पहुंचता है।
और स्त्री होने से मेरा मतलब स्त्री की देह से नहीं है। क्योंकि स्त्री की देह भी हो और भीतर अकड़ हो तो यह तो पुरुषता हुई। पुरुष की भी देह हो और भीतर अकड़ न हो तो यह स्त्रैणता हो गई।
इस बात को ही प्रतीक-रूप से कहने के लिए हमने बुद्ध की, महावीर की, राम की, कृष्ण की जो प्रतिमाएं बनाई हैं वे तुमने गौर से देखी हैं? उन सारी प्रतिमाओं में बड़ा स्त्रैण माधुर्य है। उनमें पुरुष का भाव प्रकट नहीं होता। तुमने विचार किया कभी कि बुद्ध की दाढ़ी-मूंछ कहां है? महावीर की दाढ़ी-मूंछ का क्या हुआ? कृष्ण की दाढ़ी मूंछ का क्या हुआ? राम की दाढ़ी-मूंछ का क्या हुआ? ये कभी बूढ़े हुए कि नहीं? या तो इन सबके भीतर पुरुष हारमोन की कमी थी, जिसकी वजह से इनके चेहरे पर बाल नहीं उगे; और या फिर यह काव्य का प्रतीक है।
यह प्रतीक है। बाल तो उगे जरूर। बुद्ध भी बूढ़े हुए, अस्सी वर्ष के होकर मरे। लेकिन हमने उनके बुढ़ापे की प्रतिमा नहीं बनाई। क्यों? उनके भीतर जो जीवन था वह सदा युवा रहा। उनकी ताजगी कभी फीकी न पड़ी। वे सुबह की ओस जैसे ताजे ही रहे। और देह तो वे नहीं थे। हमने उनकी आत्मा की चिंता ली। आत्मा सदा युवा है। देह का युवा होना तो बड़ा भ्रामक है। आज युवा, कल बूढ़ी हो जाएगी। आज जीवन, कल मृत्यु। और भीतर तो जीवन की सतत धारा है। दाढ़ी-मूंछ उनको भी थीं लेकिन हमने अपनी मूर्तियों में उनको नहीं बनाई--जानकर। हम एक प्रतीक की तरह उपयोग कर रहे हैं। हम स्त्रैण भाव को प्रकट कर रहे हैं। हम इसके द्वारा यह सूचना दे रहे हैं कि तुम भी जब समर्पण की ऐसी स्त्रैण दशा में होओगे तो परमात्मा तुम्हारे भीतर उतरेगा।
नीचे तें चढ़ि ऊंचे पाउ, मंदिल गगन मगन ह्व गाउ
और एक बार झुक जाओ तो तुम्हारे भीतर का मंदिर, शून्य मंदिर तुम्हें मिल जाए। शून्य आकाश तुम्हारे भीतर भी है, वैसा ही जैसे बाहर है। और बाहर का आकाश और बाहर के तारे और बाहर का चांद और बाहर के सूरज उस भीतर के आकाश और भीतर के चांद-तारों और सूरजों के सामने फीके हैं। बाहर तुमने जो देखा है वह प्रतिफलन है--जैसे दर्पण में देखा हो। भीतर तुम जो देखोगे वह असली है। बाहर उसी की छाप है, छाया है। बाहर भीतर की छाया है। और जो भीतर को देख लेता है वह गाएगा नहीं तो क्या करेगा? गाता है ऐसा कहना ठीक नहीं है, उससे गीत फूटते हैं।

इसलिए हमने कहा है कि वेद अपौरुषेय है। अपौरुषेय का अर्थ? जिन्होंने गाए उन्होंने नहीं गाए; उनके भीतर परमात्मा गुनगुनाया है। पुरुष की छाप नहीं है उन पर। आदमी के हस्ताक्षर नहीं हैं उन पर। वह वाणी परमात्मा की है। क्योंकि जो गानेवाले थे वे तो इतने झुक गए थे कि मिट गए थे; थे ही नहीं। बांस की पोंगरी हो गए थे। फिर जो स्वर उठे बांस की पोंगरी से, जिसने उस बांस की पोंगरी को बांसुरी बना दिया, जिन अदृश्य ओंठों से वे स्वर उठे, वे परमात्मा के हैं।
एक तो गीत है, जिसे तुम गाते हो। तुम्हारा गीत तुमसे बड़ा नहीं होता, तुम्हारा गीत तुमसे छोटा होता है; बहुत छोटा होता है। और तुम्हारा गीत अक्सर झूठ होता है। तुम ही झूठ हो। तुम्हारे भीतर आंसू भरे रहते हैं और बाहर तुम गीत गाते रहते हो। तुम्हारे भीतर रोना चलता रहता है और ओंठों पर मुस्कुराहट चलती रहती है।
मजबूरी है। जीवन से ऐसा समझौता करना पड़ता है। रोते रास्तों से गुजरोगे, नाहक ही दया के पात्र हो जाओगे। तो सज-संवर कर अपने, रोने को भीतर छिपाकर, अपनी छाती में ढांककर, मुंह पर झूठी मुस्कुराहटें फैलाकर निकल पड़ते हो।
जिनके जीवन में प्रेम बिल्कुल नहीं है वे प्रेम का गीत गाकर अपने को समझा लेते हैं, सांत्वना कर लेते हैं। जिनके जीवन में संगीत बिल्कुल नहीं है, वे बाहर की वीणाओं के तार छेड़-छेड़कर सोचते हैं कि संगीत मिल गया। मनुष्य तो जो भी करेगा, मनुष्य से छोटा होगा। और चूंकि मनुष्य झूठ हो गया है, मनुष्य के होने का ढंग ही झूठ है, पाखंड है। बाहर कुछ, भीतर कुछ। और बचपन से ही यह कथा शुरू हो जाती है। हम बच्चों को भी समझाने लगते हैं कि बाहर से कुछ, भीतर से कुछ। हम बच्चों से कहते हैं, घर में मेहमान आते हैं, अभी शोरगुल मत करना। अब अगर उनके भीतर शोरगुल हो रहा हो तो अब झूठ होना शुरू हुआ। मेहमान हैं तो वे दबाकर बैठे रहेंगे। ऊपर से कुछ दिखाते रहेंगे, भीतर कुछ।
मैं एक घर में मेहमान था। वे मुझे लेकर पास के एक सरोवर पर गए सांझ के समय। सरोवर सुंदर था। वे उतरकर कुछ खरीदने गए, उनका छोटा बच्चा और मैं, दोनों गाड़ी में बैठे रहे। ठंडी-ठंडी हवा! छोटा बच्चा, उसको झपकी आ गई, वह गिर पड़ा। गिरा तो उसके सिर में चोट भी लग गई गाड़ी के स्टयरिंग वील से। उसे उठाकर मैंने बिठा दिया। मुझे लगे कि वह रोना चाहता है मगर रोता नहीं। अब खुद ही नहीं रोना चाहता तो मैं भी क्या करूं? मैंने कहा, बैठा रहे।
वह बैठा रहा। आधा घंटे बाद उसके पिता लौटे। उनके आते ही से रोने लगा। मैंने कहा, देख, अब बेईमानी की बात है। आधा घंटे पहले तू गिरा था। उसने कहा, गिरा तो आधा घंटा पहले था मगर आपकी तरफ देखा और ऐसा लगा, कोई सार नहीं है रोने से। मैंने पूछा, अब तुझे दर्द हो रहा है? उसने कहा, अब दर्द नहीं हो रहा। फिर क्यों रो रहा है तू? मगर अब रोने में ठीक मालूम पड़ता है क्योंकि पिता आ गए हैं।
अब यह बच्चा झूठ होने लगा। जब रोना चाहेगा तब रोएगा नहीं, जब रोने की कोई जरूरत नहीं होगी तब रोएगा। द्वंद्व शुरू हुआ। पाखंड शुरू हुआ।
हम लोगों से कहते हैं, ईमानदारी से परमात्मा पर विश्वास करो। अब यह झूठ की बात है। अगर ईमानदारी शब्द का प्रयोग करते हो तो विश्वास किया नहीं जा सकता। क्योंकि जिसका पता नहीं उस पर कैसे विश्वास करें? और हम कहते हैं, ईमानदारी से परमात्मा पर विश्वास करो।
इस्लाम तो ईमान शब्द का अर्थ ही धर्म करता है। "ईमानदारी से विश्वास करो, ईमान लाओ"। अब झूठ की बात हो रही है। परमात्मा का पता नहीं है, और ईमान ले आए तो यह बेईमानी हो गई। जब परमात्मा का पता होगा तब ईमान आएगा। वह ईमानदारी होगी। जब अनुभव होगा तब भरोसा होगा। उस भरोसे का नाम श्रद्धा है।
यह तो श्रद्धा जिसे हम कहते हैं, झूठी है, नकली सिक्का है; है नहीं। मूल से यह भी बेईमानी का विचार है। मूल से ही झूठ है। और जहां मूल में झूठ हो जाए वहां सारे पत्ते झूठ न हो जाएं तो और क्या हो? हमारी जड़ें झूठ पर खड़ी हैं।

हम लोगों को कुछ सिखा रहे हैं जिससे वे अपने आसपास एक तरह का रूप बना रखते हैं, एक मुखौटा। भीतर की हमें पहचान ही नहीं हो पाती फिर। हम बाहर ही बाहर जीने लगते हैं। फिर हम रोते हैं तो भी छिछला। आंसू शायद आंख से ही आते हैं, हृदय से नहीं आते। हंसते हैं तो भी छिछला। ओंठ पर ही फैली होती है हंसी--लिपस्टिक के रंग की तरह।
अब देखते हो लिपस्टिक का रंग? ओंठ सूर्ख हों यह समझ में आता है। ओंठों में जीवन हो, लाली हो, यह समझ में आता है, लेकिन लिपस्टिक पोतकर चल रहे हो। किसको धोखा दे रहे हो? शर्म भी नहीं उठती। संकोच भी नहीं होता। ओंठ लाल होते, ठीक बात थी; होने चाहिए। ओंठ स्वस्थ हों, जीवंत हों, उनमें खून बहता हो, रसधार बहती हो, ठीक है, समझ में आनेवाली बात है। लेकिन रंग ऊपर से पोतकर चले--!
मगर यह हमारी पूरी जिंदगी का ढंग है। लिपस्टिक में हमारी आदमी की पूरी कथा छिपी है। वह उसकी पूरी कहानी है। वही उसकी व्यथा भी है। क्योंकि झूठ, सब झूठ है। सब दिखावा है।
जब तुम किसी से कहते हो, मैं प्रेम करता हूं, तब भी तुम शायद कह ही रहे हो। तुम्हारा कोई प्रयोजन नहीं है। शायद तुमने सोचा भी नहीं है। यह कहने की आदत हो गई है।
तो आदमी तो गीत भी गाएगा तो झूठ होंगे। एक ऐसा भी गीत है जो आदमी नहीं गाता, आदमी से गाया जाता है; उसी गीत का नाम धर्म है। एक ऐसा भी नृत्य है जो आदमी नहीं नाचता, आदमी के द्वारा नाचा जाता है; उसी नृत्य को अपौरुषेय कहा है।
जैसे वेद के वचन अपौरुषेय है, मैं तुमसे कहना चाहता हूं, मीरां का नृत्य भी अपौरुषेय है; यद्यपि किसी ने यह बात इसके पहले कही नहीं है। क्योंकि कौन मीरां को, स्त्री को इतना गौरव दे! उसका नृत्य भी अपौरुषेय है; उतना ही अपौरुषेय जितने वेद के वचन; जितनी कुरान की आयतें।
अपौरुषेय का अर्थ इतना ही होता है कि अब अहंकार नहीं है, अब मैं नहीं हूं। अब गाए तो वही गाए, नाचे तो वही नाचे। बैठे तो वही बैठे, उठे तो वही उठे। सब उसका है। मैं सब तरफ से झुक गया हूं, उसका हो गया हूं।
मंदिल गगन मगन ह्व गाउ
और एक मगनता आती है, एक मस्ती आती है, एक नशा छा जाता है। एक नशा, जो फिर कभी उतरता नहीं। एक नशा, जो अंगूरों का नहीं है, आत्मा का है। एक नशा, जो बाहर से भीतर नहीं ले जाना पड़ता, भीतर से बाहर की तरफ आता है।
बाहर से शराब मत पियो। लेकिन एक ऐसी शराब है जो भीतर से बाहर की तरफ बहती है; उसे जरूर पियो। उसके संबंध में तो शराबी हो ही जाना चाहिए। सच तो यह है कि बाहर की शराब भी आदमी इसीलिए पीता है कि उसे भीतर की शराब की तलाश है।
क्या तुम्हें यह पता है कि शराब की सबसे पहले खोज साधुओं ने की? सबसे पहले शराब ढाली गई ईसाई आश्रमों में। अब भी ढाली जाती है। जैसे चाय को बौद्धों ने खोजा--बौद्ध भिक्षुओं ने, वैसे शराब को ईसाई भिक्षुओं ने खोजा। यह आश्चर्य की बात है कि ईसाई भिक्षुओं ने पहाड़ों में बसे अपने आश्रमों में शराब की सबसे पहले खोज की। सबसे पुरानी शराब, सबसे कीमती शराब आज भी ईसाई आश्रमों से उपलब्ध होती है। सैकड़ों वर्ष पुरानी शराब उनके तलघरों में रखी है।
कैसे खोजा साधुओं ने शराब को? क्यों खोजा? और शराब के प्रति इतना आकर्षण क्यों है सारी दुनिया में। शराब किसी कमी की पूर्ति करती है। क्षणभर को ही सही, मगर कुछ झलक देती है। झलक झूठी है; प्रवंचना है, भ्रांति है। मगर फिर भी झलक जिसकी है उसके संबंध में हमारी कोई एक आंतरिक आकांक्षा है।
हम सब मस्त होकर जीना चाहते हैं। यह हमारी अंतरतम अभीप्सा है कि हम मस्त होकर जिएं। कि हमारे जीवन में मस्ती का स्वर हो, नाद हो। कहां से पाएं मस्ती? दो ही तरह मिल सकती है: या तो बाहर के नशे जो थोड़ी देर के लिए मस्त कर देंगे और फिर कल सुबह सिरदर्द भी छोड़ जाएंगे, शरीर को भी तोड़ जाएंगे,

रुग्ण भी कर जाएंगे। बड़ी कीमत! और मस्ती भी कुछ बहुत गहरी मस्ती नहीं, सिर्फ बेहोशी है; मस्ती नहीं है, मस्ती का धोखा है।
एक भीतर की मस्ती है, जिसमें बेहोशी नहीं होती, होश होता है। जब भीतर
की शराब तुम्हारे जीवन में बहनी शुरू हो जाती है तो तुम मस्त होते हो। और जैसे-जैसे मस्ती बढ़ती है, वैसे-वैसे होश बढ़ता है। अगर बेहोशी बढ़े तो कहीं कुछ भूल हो गई। होश बढ़ना चाहिए। क्योंकि बुद्धत्व तो होश से ही उपलब्ध होगा। मस्ती भी बढ़ेगी, नृत्य भी बढ़ेगा, गीत भी उठेंगे, शांति भी बढ़ेगी, जागरूकता भी बढ़ेगी, प्रेम भी बढ़ेगा, ध्यान भी बढ़ेगा।
प्रेम और ध्यान जब साथ-साथ बढ़ते हैं, अर्थात मस्ती और होश साथ-साथ बढ़ते हैं, तब समझना कि ठीक दिशा में चल पड़े हो। तब तुम्हारा दिशा सूचक यंत्र ठीक-ठीक तरफ इशारा कर रहा है। अब आगे बढ़े चलो। यही द्वार है।
मंदिल गगन मगन ह्व गाउ
दृढ़करि डोरि पोढ़िकरि लाव, इत-उत कतहूं नाहीं घाव
मन तो यहां-वहां दौड़ता है। अब डोरी बांध लो। मन को बांध लो, दृढ़ करके बांध लो। उसी परमात्मा के साथ फेरे डाल लो। इसे यहां-वहां न भागने दो। दृढ़करि डोरि पोढ़िकर लाव--कहीं भी भाग जाए, पकड़कर ले आओ। समझा बुझाकर वापस ले आओ। फिर स्मरण करो प्रभु का। फिर झुको, फिर याद जगाओ। ऐसे जगाते- जगाते एक दिन रस का झरना फूट पड़ता है। खोदते-खोदते-खोदते जैसे एक दिन जलस्त्रोत मिल जाते हैं जमीन में, ऐसे ही जगाते-जगाते अपने भीतर रसस्त्रोत मिल जाते हैं।
इत-उत कतहूं नाहीं घाव--अभी तो मन बहुत भागता है। इधर भागता है, उधर भागता; फिर बिल्कुल नहीं भागता। फिर तो मस्त होकर बैठा रहता है। फिर तो पी लिया कि फिर कहां जाना है। किसलिए जाना है? जिसकी तलाश थी, घर में ही मिल गया। जिस संपदा को खोजने सारी दिशाओं में दौड़ते थे, वह अपने भीतर ही पा लिया।
नहीं तो मन दौड़ता ही रहता है। मन न मालूम कितनी तरकीबें करता रहता है।
मन कहता है, यह भी पा लो, वह भी पा लो, यहां भी हो आओ, वहां भी हो आओ। विकल्प पर विकल्प खड़े करता है।
अभी शबाब है कर लूं खताएं जी भरके
फिर इस मकाम पे उम्र-ए-रवां मिले, न मिले
मन कहता है, अभी तो कर लो। यह भी कर लो, वह भी कर लो। फिर क्या पता उम्र का! कब बचो, न बचो; यह जवानी रहे न रहे।
तुम जरा देखते हो, मन का तर्क और जो मन के बाहर गए हैं उनका तर्क एक ही आधार पर खड़ा है। बुद्ध कहते हैं, जागो, क्योंकि यह जिंदगी चली जाएगी हाथ से। इस जिंदगी में ज्यादा समय मत गंवाओ। यह रेत का घर है, इसमें अपने को ज्यादा व्यस्त मत करो। असली घर बनाना है तो समय खराब मत करो। यह जिंदगी तो जा रही है। यह तो गई। यह तो देखते-देखते चली जाएगी। यह तो सपना है।
मन भी यही कहता है कि यह जिंदगी जा रही है। इसके पहले निकल जाए, भोग लो। देखते हो? दोनों का तर्क एक है। मन भी यही कहता है कि जिंदगी दो दिन की है; चार दिन की है ज्यादा से ज्यादा। भोग लो। क्या पता, फिर मौका मिले न मिले। अभी शबाब है कर लूं खताएं जी भरके
लोग चलो इसको खता ही कहते हैं, बुरा ही कहते हैं, पाप ही कहते हैं, कहने दो। अभी शबाब है--अभी जवानी है।
... कर लूं खताएं जी भरके
फिर इस मकाम पे उम्र-ए-रवां मिले न मिले
फिर यह मकाम दुबारा आए कि न आए; फिर उम्र मिले न मिले, बचे न बचे।
तर्क का आधार एक ही है। इसी तर्क के आधार पर चार्वाक कहता है, भोग लो। इसी तर्क के आधार पर बुद्ध, महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट कहते हैं, जाग लो। तर्क दुधारी तलवार है। तर्क से बड़े सावधान होकर चलना। और मन बड़ा कारीगर है। मन बड़ा कुशल है। तर्क तो ऐसा देता है जो बुद्धों का है लेकिन नतीजा ऐसा पकड़ा देता है जो बुद्धुओं का है। तर्क बिल्कुल साफ-सुथरा, नतीजा बिल्कुल गलत।
सत समरथ पिय जीव मिलाव...

एक ही चीज इस जगत में है--सत्य भी देगी, सामर्थ्य भी देगी, प्रेम से भी
भर देगी, और वह है: परमात्मा के साथ प्रेम की डोरी दृढ़ हो जाए। परमात्मा से मिलन हो जाए।
... नैन दरस रस आनि पिलाव
और जब उसकी आंखों से तुम्हारी आंखों में रस उतरने लगे, जब उसकी आंखें
और तुम्हारी आंखें एक भाव-भंगिमा में लीन हो जाएं, एकात्म सध जाए, जब तुम उससे जरा भी भिन्न अपने को अनुभव न करो, तब तुमने शराब पी।
तू जो जाहिद मुझे कहता है कि तोबा कर ले
क्या कहूंगा जो कहेगा कोई पीना होगा
--तू तो कहता है, कसम खा ले न पीने की, लेकिन एक वक्त आएगा जब परमात्मा कहता है, पियो।
तू तो जाहिद मुझे कहता है कि तोबा कर ले
क्या कहूंगा जो कहेगा कोई पीना होगा
अपने हाथों से दिया यार ने मीना मुझको
--एक घड़ी आती है जब परमप्यारा अपने ही हाथ से प्याली भरकर देता है।
अपने हाथों से दिया यार ने मीना मुझको
रुख्सत-ऐ-तोबा कि लाजिम हुआ पीना मुझको
उस दिन मुझे सारी कसमें छोड़ देनी पड़ीं। सारे व्रत-नियम छोड़ देने पड़े।
जब उस प्यारे ने ही हाथ से भरकर दी प्याली तो इंकार तो नहीं किया जा सकता। इसलिए जो व्यक्ति सच में पहुंच गया है, अगर फिर भी उदास दिखता हो, तो समझना कि पहुंचा नहीं। अभी प्यारे ने प्याली भरकर दी नहीं।
किसी के नैन बोले भी, अबोले भी
भृकुटी में बंक चितवन धनुष भी है, तीर भी है
तरल आंसू तरल मोती, हृदय की पीर भी है
किसी के नैन चंचल और भोले भी
उडुप उस पार मन की थाह छूने को तरे हैं
कि वे इस पार उमड़े ज्वार में डूबे भरे हैं
किसी के नैन डोले भी, अडोले भी
कभी इन लोचनों से वे नैन मिल-जुल गए हैं
कभी ये अश्रु उनके आंसुओं में घुल गए हैं
तुला पर नेह की तौले, अतौले भी
किसी के नैन बोले भी, अबोले भी
--जब उन परम आंखों से मिलन होता है तो वे बोलती भी नहीं हैं और बोलती भी हैं।
किसी के नैन बोले भी, अबोले भी
तरल आंसू तरल मोती, हृदय की पीर भी है
किसी के नैन चंचल और भोले भी
परमात्मा विरोधाभासी है। वह समस्त विरोधों का संगम है। वहां स्त्री- पुरुष एक हो जाते हैं। इसलिए हमने अर्धनारीश्वर की प्रतिमा बनाई--आधा पुरुष, आधा नारी। वहां रात और दिन एक हो जाते हैं।
इसलिए हमने संध्याकाल को प्रार्थनाकाल चुना है। क्योंकि संध्या में रात और दिन एक हो जाते हैं। ब्रह्म शब्द को हमने नपुंसकलिंग में रखा है; न पुरुष न स्त्री। क्योंकि वहां सारे द्वंद्व खो जाते हैं, सारा द्वैत खो जाता है।
कि वे इस पार उमड़े ज्वार में डूबे भरे हैं
किसी के नैन डोले भी, अडोले भी
कभी इन लोचनों से वे नैन मिल-जुल गए हैं
कभी ये अश्रु उनके आंसुओं में घुल गए हैं
तुला पर नेह की तौले, अतौले भी
परमात्मा को पा भी लिया जाता है और पाकर यह भी पाया जाता है कि बहुत पाने को शेष रह गया। उसे जितना पाओ उतना ही पाने को शेष रहता मालूम होता है। हम पूर्ण से पूर्ण को भी निकाल लें तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रह जाता है, उपनिषद्भ कहते हैं।

तुला पर नेह की तौले, अतौले भी
किसी के नैन बोले भी, अबोले भी
--लेकिन वे दो आंखें, इस अस्तित्व की आंखें जब तुम्हारी आंखों से मिल जाती हैं तो मस्ती छाती है।
नैन दरस रस आनि पिलाव--तो रसमग्न हो जाते हो तुम। बाढ़ आती है रस की।
माती रहहु सबै बिसराव...
--फिर तो सब भूल जाता है। फिर भूलना नहीं पड़ता। फिर तो एक मदमस्ती, एक मतवालापन।
माती रहहु सबै बिसराव आदि अंत तें बहु सुख पाव
फिर मिले वह सुख जो पहले भी था और अंत में भी है; जो स्त्रोत है और गंतव्य भी; जो मूल है और अंत भी; जो उद्गम भी है हमारा, जहां से हम आए हैं, हमारा घर, और जो हमारी आखिरी मंजिल भी।
... आदि अंत तें बहु सुख पाव
सन्मुख ह्व पाछे नहिं आव
इतना ही ख्याल रखना कि घबड़ा मत जाना, डर मत जाना। एक बार वे आंखें तुम्हारी आंखों में झांकें तो घबड़ा कर लौट मत पड़ना। ध्यान की घड़ी से बहुत घबड़ाकर लौट जाते हैं। प्रेम की आखिरी घड़ी से बहुत लोग घबड़ाकर लौट आते हैं। क्योंकि लगता है, मैं गया! मैं गया! कि अब मैं गया; कि यह तो मृत्यु हुई; कि अब बचना संभव नहीं है; कि अब तो मैं डूबा।
घबड़ाकर लौट मत आना। ठीक कहते हैं जगजीवन। सन्मुख ह्व पाछे नहिं आव। हिम्मत रखना। पीछे कदम मत रखना एक भी। उसके सामने पड़ गए तो और करीब जाना है।
... जुग-जुग बांधहु एहै दांव
यही तो जिंदगी-जिंदगी से दांव लगाने की प्रतीक्षा की थी। अब मौका आ गया, अब लौट मत आना। यही दांव, अपने को पूरा दांव पर लगा देना। जरा भी बचाना मत। इंच भर बचाया कि चूक गए। क्योंकि इंच भर बचाया तो उतनी तुमने खबर दे दी कि श्रद्धा कम है। और पूर्ण श्रद्धा हो तो ही पूर्ण तुम्हारा मेहमान बनेगा। जरा-सी भी श्रद्धा अपूर्ण हुई तो चूक हो जाएगी। इंच भर की भी दूरी रह गई परमात्मा और तुममें तो चूक हो जाएगी। फिर इंच भर की दूरी कोसों की दूरी हो सकती है, अनंत कोसों की दूरी हो सकती है। जब एक बार सन्मुख पड़ जाओ तो लौटना मत।
ये बहुत प्यारे शिष्यों से कहे हुए वचन हैं, जो पहुंच रहे हैं करीब।
जब सद्गुरु ऐसे वचन बोलता है तो अकारण नहीं बोलता है, हर किसी से नहीं बोलता है। ये बातें हर किसी से कहने की नहीं हैं। ये बाजार में नहीं कही जातीं। ये भीड़-भाड़ में नहीं कही जातीं। ये उनसे कही जाती हैं जो पहुंच रहे हैं।
सन्मुख ह्व पाछे नहिं आव, जुग-जुग बांधहु एहै दांव
बाद एक उम्र के मैखाने में आए हैं रियाज
आप बैठे हैं बचाए हुए दामन कैसा!
इतनी मुश्किल से तो आए मधुशाला में, अब दामन बचाए बैठे हो? अब तो छोड़ो
सब फिक्रें। पी उठो। नाच उठो। कितने जन्मों से इसकी प्रतीक्षा की थी। अब लौट मत आना, कदम पीछे मत ले लेना। क्योंकि ध्यान रखना, आखिरी समय तक भी कदम पीछे लिया जा सकता है। जब तक तुम मिट ही नहीं गए हो तब तक कदम पीछे लिया जा सकता है।
... जुग-जुग बांधहु एहै दांव
जगजीवन सखि बना बनाव...
यह मौका बन गया। यह अवसर आ गया। जुग-जुग दांव की प्रतीक्षा थी, अब दांव
की घड़ी आ गई जगजीवन सखि बना बनाव। अब यह मौका चूक मत जाना, यह अवसर खो मत देना।
... अब मैं काहुक नाहिं डेरांव
अब तो सोच लेना, अब मैं किसी चीज से नहीं डरता। मौत हो तो मौत सही। परमात्मा के चरणों में मरना परमात्मा के बिना जीने से लाख गुना बहुमूल्य है। उसके चरणों में मिट जाना बचने से बहुत बेहतर है। जीसस ने कहा है, याद

करो, कि जो अपने को बचाएगा, मिट जाएगा; और जो मिटने को राजी है, बच गया। कबीर ने कहा है, यह कुछ अजीब यात्रा है। यहां जो बचते हैं, डूब जाते हैं; जो डूब जाते हैं, बच जाते हैं।
पूछिए मैकशों से लुत्फ-ए-शराब
यह मजा पाकबाज क्या जानें
इस संबंध में लेकिन हर किसी की सलाह लेने मत चले जाना। इस संबंध में उनकी ही सलाह लेना जो मिट गए हों, जो डूब गए हों।
पूछिए मैकशों से लुत्फ-ए-शराब
--अगर इस शराब का लुत्फ, इसका रस पूछना हो तो पियक्कड़ों से पूछना।
यह मजा पाकबाज क्या जानें
--जिन्होंने कभी पी ही नहीं उनसे मत पूछना। और मजा ऐसा है कि जिन्होंने कभी नहीं पी, वे सलाहें देते रहते हैं। जिनको परमात्मा का कुछ पता नहीं वे सलाहें देते रहते हैं।
दो दिन पहले एक महिला ने मुझे आकर कहा कि मैं क्या करूं? आपने जो ध्यान
की विधि दी है, उससे परम आनंद हो रहा है, लेकिन मेरा डॉक्टर कहता है, यह विधि बंद कर दो, नहीं तो पागल हो जाओगी। अब मैं क्या करूं? मैंने उससे कहा, डॉक्टर से जाकर पूछना, उसने कभी ध्यान किया है? उसने या उसके बाप-दादों ने--किसी ने कभी ध्यान किया है? बाप-दादों ने किया होता तो ये पैदा नहीं हो सकते थे।
ध्यान किया है? ध्यान किया हो तो सलाह देनी चाहिए। डॉक्टर को क्या पता ध्यान का! और तेरा अपना अनुभव कह रहा है कि तू मस्त हो रही है। वह कहती है, वही मस्ती की वजह से तो मेरे पति को शक हो रहा है कि मैं पागल हो रही हूं। इसीलिए तो डॉक्टर के पास ले गए कि तू डॉक्टर के पास चल। वे कहते हैं, तू अकेली बैठी-बैठी मुस्कुराती है, यह बात ठीक नहीं है।
और महिला कहने लगी कि मैं अकेले बैठकर ऐसी मस्त हो जाती हूं कि सबके सामने मुस्कुराऊं तो लोग पागल समझेंगे, सो अकेले में मुस्कुराती हूं। क्योंकि सबके सामने मुस्कुराना, लोग कहेंगे पता नहीं क्यों, क्या कारण है, क्यों मुस्कुरा रही है। तो मैं एकांत में. . . और मेरे पति जांच-पड़ताल करते रहते हैं। खिड़कियों से झांकते, इधर-उधर से देखते, मैं कुछ ऐसा तो नहीं कर रही हूं कि जिस. . .। सबके सामने नहीं करती क्योंकि झंझट खड़ी होगी। एकांत में जो मुझे करने जैसा होता है. . .।
तो पति को शक होता है कि तू अकेले में मुस्कुराती है, कभी रोती है, कभी झर-झर तेरे आंसू गिरते हैं। और एक दिन उन्होंने मुझे अकेले में आपसे बातें करते पकड़ लिया। आपकी तस्वीर रखे दो-दो बातें हो रही थीं। बस, फिर तो पक्का हो गया कि अब तेरा दिमाग खराब हो गया है। उन्होंने कहा, अब इसी वक्त डॉक्टर के पास चल। अब मैं मस्त हो रही हूं। जिंदगी में पहली दफा मुझे मजा आ रहा है। डाक्टर कहता है, ध्यान बंद कर दो नहीं तो पागल हो जाओगी।
डाक्टर को क्या पता ध्यान का? और डाक्टर को क्या पता कि ऐसे भी पागलपन हैं जो बुद्धिमानियों से लाख गुना बेहतर हैं। ऐसे भी पागलपन हैं जो सौभाग्यशालियों को ही मिलते हैं। रामकृष्ण भी पागल थे, और मीरा भी पागल थी और बुद्ध भी पागल थे।
तुम जानते हो बुद्धू शब्द कैसे पैदा हुआ? बुद्ध की वजह से पैदा हुआ।
जब बुद्ध सारा महल, धन, दौलत, पत्नी, परिवार छोड़कर चले गए तो लोगों ने कहा कि ये देखो बुद्धू। फिर जब भी कोई ऐसा करने लगा तो उन्होंने कहा, तुम भी हो गए बुद्धू? होश सम्हालो, अकल में आओ। बुद्ध एकांत बैठकर, शांत बैठकर, बोधिगया में ध्यान को उपलब्ध हो गए, समाधि को उपलब्ध हो गए। तो जहां भी कोई आदमी चुपचाप बैठ जाए झाड़ के नीचे आंख बंद करके, उन्होंने कहा देखो, ये बुद्धू होने चले। बुद्धू शब्द पैदा हुआ इसलिए--बुद्ध की निंदा में। चिकित्सकों का बस चलता तो उन्होंने बुद्ध को भी ठीक कर लिया होता। अच्छा हुआ चिकित्सकों से बच गए। और ऐसा नहीं था कि चिकित्सक नहीं पहुंचे; पहुंचे। जहां बुद्ध गए वहीं झंझट थी। शुरू-शुरू में तो बहुत झंझट थी।
क्योंकि बुद्ध बड़े परिवार से आते थे। सारे देश में उनके पिता का नाम था।
और सारे देश में खबर पहुंच गई कि बेटा भाग गया है। राज्य को छोड़ दिया था

उन्होंने अपने ताकि पिता परेशान न करें। नहीं तो आदमियों को भेजेंगे, खुद आएंगे, खींचतान मचेगी, पत्नी आकार रोएगी, कुछ उपद्रव होगा। राज्य छोड़ दिया। दूसरे राज्य में चले गए थे।
लेकिन दूसरे राजा को जब खबर मिली... तो वह बचपन का साथी था बुद्ध के पिता का। साथ-साथ पढ़े थे, धनुर्विद्या साथ सीखी थी। उसने सोचा कि हो गया होगा, बेटा है, नाराज हो गया होगा, कुछ बात हो गई होगी। और मैं जानता हूं शुद्धोदन को। क्रोधी आदमी हैं, कुछ कह दिया होगा। तो वह आया; उसने बुद्ध को कहा, तू फिक्र मत कर। अगर पिता से नहीं बनती, कोई चिंता की बात नहीं। मुझे अपना पिता मान। यह भी राज्य तेरा है। तू महल चल। यह राज्य तेरे राज्य से बड़ा है। मेरी एक ही बेटी है, उससे तेरा विवाह करवा देता हूं। तू इसका मालिक हो जा। भागने की क्या जरूरत है? छोड़ने की क्या जरूरत है?
बुद्ध उनको लाख समझाए कि मैं किसी से नाराज नहीं हूं, पिता से झगड़कर नहीं आया हूं। लेकिन लोग कैसे मानें! झगड़ कर ही लोग भागते हैं। किसी क्रोध में ही लोग भागते हैं। उस राजा ने कहा, मुझे यह बात समझ में नहीं आती। अगर क्रोध भी नहीं है, झगड़ा भी नहीं हुआ... पत्नी से झगड़ा हुआ है? क्या बात है? बुद्ध ने कहा, बात कुछ नहीं है, यही है कि वहां बात कुछ थी नहीं इसलिए चला आया छोड़कर। वहां कुछ सार नहीं था। बात की तलाश में निकला हूं कि जिंदगी में कुछ बात हो जाए। ऐसे ही खाली-खाली न चला जाऊं। उस राजा ने कहा, मेरी समझ में नहीं आती। तुम पागल तो नहीं हो? सारी दुनिया धन की तलाश कर रही है, तुम धन छोड़कर आ गए हो? मैं अपने चिकित्सक को भेज दूंगा। वह तुम्हारी जांच-पड़ताल कर लेगा, कुछ अड़चन हो, कुछ कठिनाई हो। बुद्ध को वहां से भागना पड़ा कि यह झंझट आयी।
कुछ नई बात नहीं है। लेकिन जिन्होंने कभी ध्यान नहीं किया वे भी सलाह देने लगते हैं। अब ठीक है, अगर कोई बीमारी हो तो चिकित्सक की सलाह लेना, लेकिन अगर जूते में पैबंद लगवाना हो तो तुम डाक्टर के पास नहीं जाते, चमार के पास जाते हो; वह विशेषज्ञ है। और अगर कपड़े फट गए हों और कपड़े सिलाने हों तो दर्जी के पास जाते हो।
एक भिखारी पश्चिम के बहुत बड़े धनपति, कुबेर, रथचाइल्ड के घर भीख मांगने आया--पांच बजे सुबह। हिंदुस्तान हो तो चल भी जाए। ब्रह्ममुहूर्त समझते हैं लोग पांच बजे सुबह। पश्चिम में पांच बजे सुबह कोई किसी के घर आकर दरवाजा खटखटाए... और उसने बड़ा शोरगुल मचाया भिखमंगे ने। रथचाइल्ड उठा, उसने पूछा कि भाई, यह भी कोई वक्त है भीख मांगने का? उस भिखारी ने क्या कहा पता है? उसने कहा, मैं भीख मांगने आया हूं, सलाह मांगने नहीं। और तुम मुझे सलाह क्या दोगे! किसी को अगर धन कमाने की सलाह लेनी हो तो तुमसे सलाह लेनी चाहिए, और किसी को अगर भीख मांगने की सलाह लेनी हो तो मुझसे लेनी चाहिए। जिंदगी हो गई, बापदादों से यह काम चल रहा है। यह हमारा पुश्तैनी धंधा है। पांच बजे आओ तो जरूर भीख मिलती है क्योंकि आदमी इतना परेशान हो जाता है कि कुछ न कुछ देकर जल्दी टालता है। तुम हमें मत सिखाओ। हम अपनी कला हम जानते हैं।
भिखमंगा भी कह सकता है दुनिया के करोड़पति से कि तुम मुझे सलाह मत दो क्योंकि यह मेरा अनुभव है। डॉक्टर से पूछ तो लेना, कि तुम्हें कुछ अनुभव है ध्यान का? तुमने कभी इस पागलपन का थोड़ा स्वाद लिया है? अगर लिया हो तो तुम्हें कुछ अधिकार है सलाह देने का।
जगजीवन सखि बना बनाव. . .
जगजीवन कहते हैं, यह बनाव बन गया है। यह अवसर आ गया है मस्त होने का। मौका छोड़ो मत। कितनी बार तो सौदा बनते-बनते बिगड़ गया है।
बाजार-ए-मुहब्बत में कमी करती है तकदीर
बन-बनके बिगड़ जाता है सौदा मेरे दिल का
मगर अब इस बार बनाव बन गया है, छोड़ो मत। गुरु भी मिल गया, सत्संग भी मिल गया, ध्यान की अभीप्सा भी तुम्हारे भीतर है, प्रेम की आकांक्षा भी जगी है, परमात्मा को पाने की धीमे-धीमे एक लहर मन में उठ रही है, एक प्यास जग रही है।

जगजीवन सखि बना बनाव--अब तो सब भय छोड़ दो। अब तो डुबकी मार जाओ। डूबो
तो तरो।
तीरथ-ब्रत की तजि दे आसा
और व्यर्थ की बातों में मत पड़ना। नहीं तो आदमी बड़ा चालबाज है। मन बड़ा हुशियार है। मन कहता है कि ठीक है, परमात्मा को खोजना है? चलो तीरथ कर आएं, व्रत कर लें। ध्यान भर से बचो, सत्संग से बचो। तो मन कहता है, और सब करो। तीर्थ जाना है, तीर्थ हो आओ। काशी जाओ, काबा जाओ, कैलाश जाओ। चल पड़ो, केदारनाथ-बद्रीनाथ की यात्रा कर आओ। यह सब करो, कोई हर्जा नहीं है। क्योंकि इससे कोई मन नहीं मिटता।
तुम चाहे केदारनाथ जाओ, चाहे बद्रीनाथ जाओ, कोई मन नहीं मिटता। यह तो
मन की ही भागदौड़ है--इत-उत कतहूं नहीं धाव। यह मन तो यहां-वहां भगाता है। वह कहता है यह कर लो, वह कर लो। चलो दान कर दो। बहुत ही ज्यादा झक सवार हो गई हो, उपवास कर लो। और क्या करोगे? चलो, चार दिन भूखे रह जाओ। अकल आ जाएगी अपने आप। चार दिन भूखे रहोगे, अपने आप समझ में आ जाएगा। रास्ते पर लौट आओगे।
जगजीवनदास कहते है, तीरथ- की तजि दे आसा। सब आशाए ंछोड़ो। तीर्थ और व्रत से कभी कुछ नहीं हुआ है।
सत्तनाम की रटना करिकै, गगन मंडल चढ़ि देखु तमासा
अगर एक कोई चीज से कभी होता रहा है दुनिया में, कुछ भी महत्त्वपूर्ण घटा है, परमात्मा उतरा है तो वह सत्यनाम से। उसकी ही रटना से। उसकी ही स्मृति को जगाए-जगाए-जगाए-जगाए, उसी की याद में घुलते-घुलते, मिटते-मिटते-- गगन मंडल चढ़ि देखु तमासा। और तब कोई अपने भीतर के शून्याकाश में बैठ जाता है। और वहां से देखता है रहस्य, तमाशा सारे जगत का।
यह अस्तित्व बड़ा रहस्य है। इसलिए मैंने कहा, जीवन समस्या नहीं है, रहस्य है। ठीक जगह से देखोगे तो चमत्कृत हो जाओगे। यहां हर छोटी बात चमत्कार है। एक बीज का फूटना, हरी पत्तियों का निकल आना! देखते हो, और क्या चमत्कार होगा? और तुम मदारियों के चमत्कारों में पड़े हो। कोई आदमी हाथ से राख निकाल देता है, तुम इसको चमत्कार मान रहे हो। और राख से फूल निकल रहे हैं, उनमें तुम चमत्कार नहीं देख रहे। तुम अंधे हो बिल्कुल। तुम्हें होश नहीं है।
चारों तरफ चमत्कार ही चमत्कार घट रहे हैं। सारा अस्तित्व चमत्कारों
का जमघट है। लेकिन ठीक जगह बैठ जाओ तो दिखाई पड़े। ठीक परिप्रेक्ष्य चाहिए। ठीक ऊंचाई चाहिए।
गगन मंडल चढ़ि देखु तमासा
और जो लोग तीरथ-व्रत, मंदिर-मस्जिद में उलझ जाते हैं वे गगन-मंडल तक नहीं पहुंच पाते। वे छोटे-छोटे आंगन में घिर जाते हैं, उस विराट आकाश को कैसे पाएंगे? जैसे कोई हिंदू हो गया, कोई मुसलमान हो गया, कोई ईसाई हो गया। फिर इनमें भी और छोटे घरों में घर हैं--कोई ब्राह्मण हो गया, कोई शूद्र हो गया। फिर ब्राह्मणों में भी और घरों में घर हैं; कोई देशस्थ है, कोई कोकणस्थ है। और घरों में घर बनाते जाते हैं लोग। छोटी से छोटी चूहों की खोलें रह जाती हैं, तब उनको चैन पड़ता है। जब तक आदमी चूहा न हो जाए तब तक उसको चैन नहीं पड़ता। बस एक जरा-सी खोल रह जाए, उसी में अपना जिए, निकलकर बाहर आ जाए, भीतर हो जाए, जीता रहे। विराट आकाश को कैसे पाओगे?
दीवार से घिरा था हरम का कुसूर क्या?
पैदा अगर हदूद में वुसअत न हो सकी
काबा का कोई कसूर नहीं है, दीवाल से घिरा है। अगर काबा जानेवाले के हृदय में विशालता पैदा न हो सकी तो कसूर काबा का नहीं है। जाहिर बात है कि काबा दीवाल से घिरा है।
दीवार से घिरा था हरम का कुसूर क्या?
पैदा अगर हदूद में वुसअत न हो सकी
मंदिरों में जाओगे, हदों से घिरे हैं। उनकी सीमाएं हैं; उन सीमाओं में तुम्हारा हृदय भी सीमित हो जाएगा। खोजो कोई, जो असीम हो। खोजो कोई जगह जहां हिंदू हिंदू न रहे, मुसलमान मुसलमान न रहे। खोजो कोई जगह जहां गोरा

गोरा न हो, काला काला न हो। खोजो कोई जगह जहां चीनी चीनी न हो, हिंदुस्तानी हिंदुस्तानी न हो। खोजो कोई जगह जहां विशालता जन्म ले रही हो, जहां आकाश जैसा फैलाव हो। उस जगह तुम भी विशाल हो सकोगे। तब तुम देख सकते हो गगन-मंडल पर चढ़कर तमाशा।
ताहि मंदिल का अंत नहीं कछु रबी बिहून किरिन परगासा
और वह जो अंतर का आकाश है उसका कोई अंत नहीं है, उसकी कोई सीमा नहीं है। और वहां बड़े चमत्कार हैं। बड़े से बड़ा चमत्कार यह हैः रबी बिहून किरिन परगासा। वहां प्रकाश बहुत है और सूरज है ही नहीं। वहां बिना स्रोत के प्रकाश है। बिन बाती बिन तेल! वहां दीया जल रहा है, न बाती है और न तेल है। वहां ऐसा प्रकाश है जो शाश्वत है।
किरण वह बोली नहीं
नाचती रही
थिरकता रहा जल
उन्मत्ता आकाश
उलट गिरा सरोवर में
पवन ताल देता रहा
मौन एक सूनापन रहा अविचल
--तुम चुप हो जाओ, झील जैसे शांत हो जाओ। किरण वह बोली नहीं
नाचती रही
थिरकता रहा जल
उन्मन्त आकाश
उलट गिरा सरोवर में
पवन ताल देता रहा
मौन एक सूनापन रहा अविचल
सब कुछ होता रहे तुम्हारे चारों तरफ, बीच केंद्र पर तुम अविचल हो जाओ, मौन हो जाओ तो तुम देख पाओगे रहस्य जगत का; अनुभव कर पाओगे। और वह अनुभव ही परमात्मा का अनुभव है। रहस्य का अनुभव परमात्मा का अनुभव है।
तहां निरास बास करि रहिए...
--छोड़ दो धर्म इत्यादि की आशा; निराश होकर वहां वास कर लो अपने भीतर।
... काहेक भरमत फिरै उदासा
फिर तुम्हारे जीवन में उदासी न रहेगी। बड़ा अद्भभुत वचन है। कहते हैं, बाहर से निराश हो जाओ तो तुम्हारे जीवन से उदासी चली जाए। उल्टी बात कहते मालूम पड़ते हैं। एक ही वचन में कहते हैं--
तहां निरास बास करि रहिए, काहेक भरतम फिरै उदासा
वहां सब तरह से निराश होकर बैठ जाओ भीतर, और सब उदासी मिट जाएगी। बड़ा विरोधाभासी वचन है, मगर बड़ा बहुमूल्य भी। सच यह है कि सत्य को कहने का एक ही ढंग हैः विरोधाभास। और सत्य को कहने का कोई ढंग ही नहीं है।
निराश का अर्थ होता हैः अब बाहर कोई आशा न रही। सब देख लिया, सब परख लिया, असली बाहर है ही नहीं। बिल्कुल निराश हो गए बाहर से।
लोग बाहर से निराश नहीं होते। एक चीज से निराश होते हैं तो दूसरी चीज में आशा टांग देते हैं। दुकान से निराश हुए, मंदिर पकड़ लिया; खातेबही से ऊबे, गीता पकड़ ली, कुरान लिया। मगर चलते हैं बाहर ही बाहर। खातेबही भी उतने ही बाहर थे जितने गीता और कुरान हैं। और दुकान भी उतनी ही बाहर थी जितना मस्जिद और मंदिर है। कोई भेद नहीं है। एक उपद्रव से छूटे, दूसरे उपद्रव में समाविष्ट हो गए। एक जेल से निकल भी न पाए थे कि जल्दी से दूसरे में घुस जाते हैं। चूहा एक पोल से निकला, दूसरी पोल में गया। खुला आकाश रुचता ही नहीं। आदत हो गई है जंजीरों में रहने की। कारागृह में पड़े होने का हमारा स्वभाव हो गया है।
बाहर से बिल्कुल निराश हो जाओ। न तो दुकान से मिलता है, न मंदिर से मिलता है; न खाते बही में कुछ है, न शास्त्रों में कुछ है। जब कोई इतना निराश हो जाता है कि बाहर पकड़ने को कुछ बचता ही नहीं, तभी कोई भीतर जाता

है। और भीतर जाते ही से आशाएं पूरी हो जाती हैं। सारी आशाएं फलवती हो जाती हैं। सब मिल गया, जिसको जन्मों-जन्मों तक खोजा था। फिर कैसी उदासी?
देऊं लखाय छिपावहुं नाहीं. . .
क्या प्यारी बात कही है जगजीवन ने! कि दिखा दूं सब तुम्हें अगर राजी हो; छिपाऊं कुछ भी नहीं।
बुद्ध ने भी कहा है अपने शिष्यों को, मेरी मुट्ठी खुली है। मैंने तुमसे कुछ छिपाया नहीं है। सब कह दिया है। जो समझदार हैं, समझ लेंगे, जाग जाएंगे, पहुंच जाएंगे। जो नासमझ हैं वे इसी विचार में पड़े रहेंगे--क्या करना, क्या नहीं करना, क्या अर्थ था बुद्ध का, क्यों ऐसा कहा था? उसमें से अपने मतलब की बातें निकालते रहेंगे, चुनाव करते रहेंगे।
देऊं लखाय छिपावहुं नाहीं. . .
--जरा भी छिपाऊंगा नहीं। जो है, सब पूरा दिखा दूं।
जस मैं देखऊं अपने पासा--जैसे मैं उसे अपने पास देख रहा हूं ऐसा तुम्हें भी दिखा दूं। तुम्हारे भी वह इतने ही पास है, मगर मेरी सुनो।
ऐसा कोऊ सब्द सुनि समुझैं, कटि अध-कर्म होइ तब दासा
--अगर तुम्हें मेरा शब्द समझ में आ जाता हो तो मैं इतनी ही बात कह रहा हूं कि तुम झुक जाओ; तुम मिटने को राजी हो जाओ और शेष सब अपने से हो जाएगा। नैन चाखि दरसन-रस पीवै. . .
--और तुम झुको तो अभी दरसन-रस पीयो।
. . . ताहि नहीं है जम की त्रासा
--और जिसने उस अमृत-रस को पी लिया परमात्मा के, उसकी आंख में आंख डालकर
एक बार देख लिया उसको मृत्यु का भय मिट जाता है क्योंकि उसे अमृत का पता चल गया। उसे चल ही गया कि मैं अमृत हूं। अमृत मेरा स्वभाव है।
जगजीवनदास भरम तेहि नाहीं, गुरु क चरन करै सुक्ख-बिलासा
उसको फिर कोई भ्रम नहीं रह जाता। फिर तो गुरु के चरण में परम आनंद को, परम भोग को उपलब्ध होता है। करै सुक्ख-बिलासा। सुनते हो ये शब्द?
धर्म तुम्हें दुःख देने को नहीं है। धर्म तुमसे कुछ छुड़ाने को नहीं है। धर्म तुम्हें परम भोग की कला देता है। धर्म तुम्हें जीवन के परम विलास में ले जाता है। तुम परमात्मा को भोग सको, इसके योग्य बनाता है। अगर राजी हो--जैसा कहते हैं जगजीवनदासः ऐसा कोऊ शब्द सुनि समुझैं। अगर मेरी बात तुम्हारी समझ में आती हो--देऊं लखाय छिपावहुं नाहीं, जस मैं देखउं अपने पासा। क्योंकि वह इतने पास है कि दिखाने में कोई अड़चन ही नहीं है। तुम देखने भर को राजी भर हो जाओ। जरा तुम आंख खोलो। बस, जरा आंख खोलो; जरा घूंघट उठाओ।
हालांकि पहली बार ही घूंघट उठा लेने से सदा के लिए घूंघट नहीं उठ जाएगा। आदतें बड़ी पुरानी हैं। परदा गिर-गिर जाएगा। आदतें बड़ी पुरानी हैं। तुम देख-देख कर भी आंख बंद कर लो-लोगे। जैसे कोई सूरज की तरफ देखे, आंख झपक जाए। वह तो परम प्रकाश है। तो बहुत बार ऐसा होगा--
सखि, बांसुरी बजाय कहां गयो प्यारो
--सुनाई पड़ेगी बांसुरी--यह रही, यह रही। हाथ में आते-आते छूट जाएगी। स्वर सुना था, बिल्कुल पास आकर नाच गया था और फिर दूर निकल गया।
सखि, बांसुरी बजाय कहां गयो प्यारो
घर की गैल बिसरिगै मोहितें, अंग न वस्त्र संभारो
यह क्या हुआ? यह कौन मुझे बांसुरी सुना गया? यह कौन मेरा घूंघट उठा गया? यह किसने मेरे पैरों में घूंघर बांधी? यह कौन मुझे एक नये जीवन का दर्शन दे गया--एक नई पुलक, एक नया उत्साह, एक नया रस, एक नया अर्थ। यह कौन? और कहां गया?
सखि, बांसुरी बजाय कहां गयो प्यारो
जब परमात्मा की पहली बार छवि दिखाई पड़ती है तो जीवन का असली आनंद भी शुरू होता है और असली पीड़ा भी। उसके पहले तो आनंद भी नकली था और पीड़ा भी नकली थी। सभी कुछ नकली था। तुम हंसे थे तो नकली था, रोए थे तो नकली था। तुम्हारे फूल भी झूठे थे, तुम्हारे कांटे भी झूठे थे। परमात्मा को देखने के साथ आनंद भी असली होता है और पीड़ा भी होती है असली। भक्त ही जानता है उस

पीड़ा को। क्योंकि जैसे ही झलक मिलती है, आनंद से भर जाता है और जैसे ही झलक खो जाती है, गहन अंधकार हो जाता है; ऐसा, जैसा कभी नहीं था।
घर की गैल बिसरिगै मोहितें...
यह क्या हो गया? जिसको मैंने अब तक अपना घर समझा था उसकी गैल बिसर गई।
... अंग न वस्त्र संभारो
याद ही नहीं रही कि वस्त्रों को सम्हालूं। वस्त्र ढलक गए हैं नीचे।
घर का रास्ता भूल गया। घर ही भूल गया जिसको अब तक घर समझा था अपना। अपना परिचय भूल गया। मैं कौन हूं, यही बात खतम हो गई। यह क्या हो गया? यह कौन बांसुरी बजा गया? यह कौन-सा नया स्वर सुना कि सब पुराने स्वर फीके पड़ गए, व्यर्थ हो गए? और फिर यह नया स्वर कहां खो गया है?
वो आए भी तो बबूले की तरह आए-गए
चिराग बनके जले जिनके इंतजार में हम
आयी हवा, गई हवा। एक झोंका आया, आयी सुगंध आकाश की और चला गया। अब मन कभी न लगेगा संसार में। संसार तो व्यर्थ हो गया। अब संसार में शोरगुल ही शोरगुल दिखाई पड़ेगा। जिसने उसकी बांसुरी सुन ली, एक बार भी सुन ली, एक स्वर भी कान में पड़ गए, उसके लिए सब संगीत शोरगुल हो गए।
घर की गैल बिसरिगै मोहितें, अंग न वस्त्र संभारो
आईने में देखो अपनी सूरत
नजरों में झिझक, जबां में लुकनत
पिंदार में बेखुदी की हालत
कहते हैं इसी को क्या मुहब्बत
चितवन के झुकाव में इशारा
आंखों में है आज दिल तुम्हारा खामोशी में गुफ्तगू की शिद्दत कहते हैं इसी को क्या मुहब्बत? मतवाली नशीली अंखड़ियों से आंखों की हसीन खिड़कियों से फिर झांक रही है एक हकीकत कहते हैं इसी को क्या मुहब्बत? सीने में इक आग-सी लगी है
एक हूक-सी दिल में उठ रही है। एक दर्द है और उसमें लज्जत
कहते हैं इसी को क्या मुहब्बत?
ओंठों पर घुटी-घुटी-सी आहें
बहकी-बहकी हुई निगाहें
खोयी-खोयी हुई तबियत
कहते हैं इसी को क्या मुहब्बत?
सखि, बांसुरी बजाय कहां गयो प्यारो
घर की गैल बिसरिगै मोहितें, अंग न वस्त्र संभारो
चलत पांव डगमगत धरनि पर, जैसे चलत पतवारो
यह क्या हो गया है मुझे? यह मैं डगमगाने लगी। ये रास्ते पर मेरे पैर ऐसे पड़ने लगे जैसे शराबी के पैर। घर की सुध खो गई, वस्त्रों का होश न रहा। अपने ही पैर सम्हाले नहीं पड़ते हैं। यह मुझे क्या हो गया?
रोकती ही रह गई मासूम दूर अंदेशियां
उनके लब पर मेरा जिक्रे-नात्माम आ ही गया
है जहां इश्क को हविस को ऐतराफ-ए-बेकसी
तल्खी-ए-हस्ती के कुर्बां वो मुकाम आ ही गया
जैसे सागर से छलक जाए मचलती मौज-ए-मैं
कांपते ओंठों पे उनके मेरा नाम आ ही गया
एक बार परमात्मा के ओंठों पर तुम्हारा नाम आ जाए। जब तुम खूब पुकारोगे, खूब पुकारोगे तो वह भी पुकारेगा। वही अर्थ है: सखि, बांसुरी बजाय कहां गयो प्यारो।

तुमने तो बहुत पुकारा। एक बार परमात्मा तुम्हें जब पुकारता है, तुम्हारी पुकार जब इस योग्य हो जाती है तो परमात्मा पुकारता है।
जो तेरे पास से आता है, मैं पूछं हूं यही
क्यों जी कुछ जिक्र हमारा भी वहां होता था?
जब सुना तुम भी मुझे याद किया करते हो
क्या कहूं, हद न रही कुछ मेरी हैरानी की
तुमने ही थोड़े परमात्मा को पुकारा है। यह आग एक तरफ से लगी नहीं है। अगर एक तरफ से लगी हो तो व्यर्थ है। दूसरी तरफ भी आग इतनी ही धधक रही है। परमात्मा भी तुम्हें पुकार रहा है। लेकिन तुम जब खूब गहनता से पुकारोगे तो उसकी पुकार तुम्हें सुनाई पड़ेगी। और तब तुम यह भी जानोगे, वह तुमसे भी पहले से तुम्हें पुकार रहा था।
जैसे सागर से छलक जाए मचलती मौज-ए-मै
कांपते ओंठों पे उनके मेरा नाम आ ही गया
बस, एक बार उसके ओंठों पर नाम आ जाए तो सुन ली बांसुरी।
चलत पांव डगमगत धरनि पर, जैसे चलत पतवारो
घर आंगन मोहिं नीक न लागै...
अब ये छोटे-छोटे घर और ये छोटे-छोटे आंगन और ये छोटी-छोटी सीमाएं, मुझे अच्छी नहीं लगतीं।
घर आंगन मोहिं नीक न लागै, सब्द बान हिए मारो
--ऐसी तुमने चोट की है, ऐसा बाण मारा है मेरे हृदय पर, ऐसी पीड़ा से भर दिया है मेरा हृदय।
लागि लगन में मगन बाहिसों, लोग-लाज कुल-कानि बिसारो
--अब तो उसके सिवा कोई और याद आती नहीं। लागि लगन में मगन बाहिसों--बस उसकी ही याद में मगन हूं। उसकी ही याद में डूबी हूं।
--लोक-लाज कुल-कानि बिसारो--सब मर्यादा गई, सब व्यवस्था गई, सब अनुशासन गया, सब लोकलाज गई, लोग क्या कहेंगे इसकी चिंता गई।
सुरति दिखाय मोर मन लीन्हो. . .
--और एक बार अपनी झलक दिखाकर मेरे मन को मोह लिया।
. . . मैं तो चहों होय नहिं न्यारो
--अब तो एक ही चाह भीतर जलती है कि एक क्षण को भी दूर न होना पड़े। यह छबि
एक क्षण को भी हटे न आंखों से।
जगजीवन छबि बिसरत नाहीं, तुमसे कहों सो इहै पुकारो
जगजीवन कहते हैं, छबि बिसरती नहीं, भूलती नहीं अब। एक जमाना था कि याद करते थे और याद नहीं आती थी। एक वक्त था कि परमात्मा को याद करते थे और याद नहीं आती थी और अब एक वक्त है कि लाना चाहो तो भूलती नहीं। जब ऐसा वक्त आ जाए कि परमात्मा को भुलाना भी चाहो और न भूल सको तो समझना कि घर आ गया; तो समझना कि पहुंच गए मंजिल पर।
तुमसे कहों सो इहै पुकारो
जगजीवन कहते हैं, इसलिए पुकार-पुकार कर तुमसे कह रहा हूं, घबड़ाओ मत। जैसी तुम्हारी हालत है, मेरी हालत भी थी एक दिन, कि याद करना चाहता था और याद नहीं आती थी। और अब मैं तुमसे कहता हूं, अब भुलाना चाहता हूं तो भुला नहीं पाता हूं। तुम्हें पुकार-पुकार कर कहता हूं।
देऊं लखाय छिपावहुं नाहीं, जस मैं देखउं अपने पासा
ऐसा कोऊ शब्द सुनि समुझैं...
कोई सुन ले, कोई समझ ले, इसलिए पुकार रहा हूं। तुमसे कहों सो इहै पुकारो।
और इसका एक अर्थ और भी हो सकता है। तुमसे कहों सो इहै पुकारो-- तुम्हारे बहाने मैं उनके लिए भी पुकार पुकार कर कह रहा हूं जो पीछे आएंगे। तुमसे कह रहा हूं, ताकि यह पुकार गूंजती रहे। तुम तो निमित्त हो। तुम जाग जाओ तो ठीक; नहीं तो कोई और जागेगा।
मैं तुमसे बोल रहा हूं। लेकिन तुम्हारे बहाने और लाखों लोगों से बोल रहा हूं जो यहां नहीं हैं। जो अभी जमीन के अलग-अलग कोनों पर कहीं हैं; उन तक

भी पुकार पहुंच जाएगी। और जो कल आएंगे, उन तक भी पुकार पहुंच जाएगी। तुम बहाने हो।
और तुम सौभाग्यशाली भी हो कि तुम निमित्त बने हो इस पुकार के। तुम्हारे माध्यम से यह पुकार औरों तक भी पहुंचेगी। इसका पुण्य तुम्हारा भी पुण्य है। तुम सुन लो तो अच्छा; तो तुम भी जाग जाओ। तुम न भी सुने तो भी तुम एक पुण्य कार्य में भागीदार हुए ही हो। उतना पुण्य तुम्हारा है। जगजीवन छबि बिसरत नाहीं, तुमसे कहों सो इहै पुकारो
--ताकि पुकार कायम रहे; ताकि आवाहन कायम रहे। कभी भी कोई भूला-भटका खोज
पर निकलेगा तो ये रास्ते के दीये उसको रोशनी दें। कभी कोई भूला-भटका परमात्मा की याद करेगा तो ये शब्द उसका सहारा बन जाएंगे।
सुनते हो? चलत पांव डगमगत धरनि पर। पैर डगमगाते हैं, होश खो गया है, इसी को तो पागलपन कहते हैं। इसी को मैंने कहा, एक ऐसा पागलपन भी है जो तुम्हारी बुद्धिमानी से हजार गुना कीमती है। तुम्हारी बुद्धिमत्ता दो कौड़ी की है उस पागलपन के मुकाबले, जो मीरां को पकड़ता है, जगजीवन को पकड़ता है, बुद्धों को पकड़ता है।
जिस पागलपन से दूसरे लोग जीवन को नष्ट कर लेते हैं, समझदार लोग उसी पागलपन का उपयोग कर लेते हैं, मंजिल की सीढ़ियां चढ़ जाते हैं। कोई धन के पीछे पागल है; यह पागल जरूर है। कोई पद के पीछे पागल है; यह पागल जरूर है। ऐसे पागलों को तुम्हें देखना हो तो दिल्ली-कभी-कभी चले गए। दिल्ली दर्शनीय है। देश के सब बड़े से बड़े पागल तुम्हें वहां मिल जाएंगे। अगर दुनिया भर के पागलों को पकड़ना हो तो दस-पच्चीस जो बड़ी-बड़ी राजधानियां हैं उन पर घेरा डालकर ताले डाल देना चाहिए। सारे पागल पकड़ में आ जाएंगे। असल में राजधानियों को पागलखानों में बदल देना चाहिए। वहां चिकित्सक बिठा देना चाहिए।
पद का पागलपन कैसी दौड़ है! कुछ भी हो जाए, पहुंचना है। कुर्सी पर चढ़ना है। कौन गिरेगा, कौन मिटेगा, क्या होगा, कोई फिक्र नहीं है बस, कुर्सी पर पहुंचना है। और जो पहुंच गया, फिर वह कहता है, कुर्सी से चिपकना है। अब कोई कितना ही खींचे, अब कुर्सी नहीं छोड़नी। अब तो मर जाएंगे तभी अर्थी उठेगी। जो कुर्सी पर नहीं पहुंचा है वह दौड़ में लगा है, जो पहुंच गया वह पकड़ने
की दौड़ में लगा है, कहीं छूट न जाए। क्योंकि और लोग चले आ रहे हैं। चली आ रही है भीड़ चिल्लातीः "सिंहासन छोड़ो"। दूसरे भी उसी दौड़ में हैं। पास भी जो खड़े हैं, मित्र भी जो मालूम पड़ रहे है। वे भी इसीलिए खड़े हैं कि मौका मिल जाए तो एक धक्का दे दें। तुम चारों खाने चित्त गिरो कुर्सी से तो वे कुर्सी पर चढ़ जाएं। तुम भी जानते हो, वे भी जानते हैं।
राजनीति में कोई किसी का मित्र नहीं होता। राजनीति में सभी शत्रु होते हैं। राजनीति में कोई मित्र हो कैसे सकता है? महत्वाकांक्षी से कैसी मित्रता? वह तो जब मौका पाएगा, पीठ में छुरा भोंक देगा। इसलिए राजनीतिक जब एक-दूसरे की पीठ में छुरा भोंकें तो तुम चौंका मत करो। यह बिल्कुल नियम के अनुकूल हो रहा है। यही होना था। यही होना चाहिए। राजनीति का यह पूरा का पूरा अर्थ है।
धन का पागल है कोई। वह कहता है, धन इकट्ठा करें, इतना इकट्ठा करें कि किसी के पास न हो। और फिर मर जाएगा। यह पागलपन है, सच में पागलपन है। मीरां का पागलपन तो महान बुद्धिमत्ता है। क्योंकि उसने एक ऐसा पद पाया, एक ऐसा न्यारा पद, जो किसी से छीनना नहीं पड़ता--पहली बात। मीरां को मिलता है लेकिन किसी का छिनता नहीं। दूसरी बात--एक बार मिल जाए तो कोई छीन सकता नहीं। महत्वाकांक्षा नहीं है उसमें, संघर्ष नहीं है, प्रतियोगिता नहीं है, स्पर्धा नहीं है। और ऐसा धन पाया जो मौत भी नहीं छीन पाएगी। देह जल जाएगी चिता पर और धन साथ जाएगा।
ध्यान ऐसा धन है, प्रेम ऐसा पद है। ध्यान और प्रेम के इस मिलन का नाम परमात्मा है। जहां तुम्हारे भीतर ध्यान और प्रेम का मिलन होता है, वहीं परमात्मा प्रकट होता है। पागल तो हो जाओगे तुम परमात्मा के साथ भी। पैर डगमगाएंगे। लेकिन यह पागलपन और है।
मैं खुदा को पूजता हूं, मैं खुदा से रूठता हूं

यह वो नाजे-बंदगी है जिसे पूछिए खुदा से
कभी वह भी जिंदगी थी कि खुदा खजिल था मुझसे
कभी यह भी जिंदगी है कि खजिल हूं मैं खुदा से
तू वह जुल्फ शाना परवर जिसे खौफ है हवा का
मैं वह काकुले-परेशां जो संवर गई हवा से
कुछ लोग हैं, वे कंघी से सम्हाले गए बालों की तरह हैं। तू वह जुल्फ शाना पर जिसे खौफ है हवा का। कंघी से सम्हाला हुआ बाल हवा से डरता है, हवा आएगी और बालों को बिखरा देगी।
तू वह जुल्फ शाना परवर जिसे खौफ है हवा का
मैं वह काकुले-परेशां...
और मैं हवा में झूलती बालों की वह लट हूं... मैं वह काकुले-परेशां जो संवर गई हवा से। जिसे हवाएं आती हैं तो संवार जाती हैं।
एक ऐसा पागलपन है--राजनीति का, धन का, यश का, जो तुम्हें गिरा जाता है;
जो तुम्हें दो कौड़ी का कर जाता है; जो तुम्हें कीड़े-मकोड़े की हैसियत दे जाता है; जो तुम्हें पशुओं से नीचे उतार जाता है। और एक ऐसा पागलपन है जो तुम्हें सम्हाल जाता है; जिसकी डगमगाहट सम्हलने का ही दूसरा नाम है। और जो तुम्हें सीढ़ियां चढ़ा देता है परमात्मा की; जो तुम्हें मनुष्य से ऊपर उठा जाता है। एक पागलपन है जो तुम्हें मनुष्य से नीचे गिरा देता है और एक पागलपन है जो तुम्हें मनुष्य से ऊपर उठा देता है। इस दूसरे पागलपन की तलाश करो। इस दूसरे पागलपन को खोजो। इस पागलपन का ही नाम भक्ति है।
ये सूत्र भक्ति के सूत्र हैं। जगजीवन के सूत्रों को समझना, सोचना, विचारना। मगर इतने से ही कुछ न होगा। पीना पड़ेगा। अनुभव करना होगा। और अनुभव हो सकता है। तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है। न करो तो तुम्हारे अतिरिक्त और कोई कसूरवार नहीं। कर सकते थे, नहीं किया। तुम्हें स्वतंत्रता है न करने की। लेकिन दोष किसी और को मत देना। दोषी तुम्हीं हो। जगजीवन सखि बना बनाव, अब मैं काहुक नाहिं डेरांव
अब चूको मत मौका। यह बनाव बन गया। यह बनते-बनते बड़ी मुश्किल से बनता
है बनाव। यह बन गया बनाव।
तुम यहां बैठे हो मेरे सामने। तुम्हारे भीतर परमात्मा मुझे उतना ही दिखाई पड़ रहा है जितना अपने भीतर। तुम्हें दिखाई नहीं पड़ रहा। तुम्हें दिखाई न भी पड़े तो भी है। तुम्हें सभी दिखाई नहीं पड़ता जो है। तुम्हारे देखने की क्षमता बहुत छोटी है। तुम केवल बाहर ही देखना जानते हो, आंखें बंद करके देखना नहीं जानते। तुम विचार के माध्यम से देखना जानते हो, तुम निर्विचार के माध्यम से देखना नहीं जानते।
लेकिन बनाव बन गया है। तुम एक ऐसे आदमी के साथ बैठे हो जो निर्विचार
से देखना जानता है; जो आंख बंद करके देखना जानता है। मेरी भी मुट्ठी खुली है। मैं तुम्हें सब देने को राजी हूं, बस तुम लेने को राजी हो जाओ।
सन्मुख ह्व पाछे नहिं आव, जुग-जुग बांधहु एहै दांव
कौन जाने कितने जन्मों से तुम सत्संग की तलाश करते थे। अब यह बनाव बन गया। अब लौट मत जाना। अब पैर पीछे न डालना। अब विमुख मत हो जाना।
देऊं लखाय छिपावहुं नाहीं, जस मैं देखउं अपने पासा
ऐसा कोऊ सब्द सुनि समुझैं...
तुममें से जो भी समझ रहा हो वह जीना शुरू करे। जियो तो ही तुम सबूत दोगे कि समझे। पीना शुरू करे। यह मधुशाला है, मंदिर नहीं। यहां भी हम शराब ही ढाल रहे हैं। लेकिन शराब ऐसी जो डुबा कर उबारती है; जो बेहोश करके होश देती है; जिसमें पैर डगमगा गए तो बस आ गई धन्यभाग की घड़ी, सम्हल गए; जिसमें डगमगा जाना संयम का दूसरा नाम है; जिसमें डगमगा जाना साधना की फलश्रुति है।

आज इतना ही।

नाम सुमिर मन बावरे
दसवां प्रवचन

प्रार्थना को गजल बनाओ

पहला प्रश्नः मैं नाचता भी हूं, रोता भी हूं। ध्यान में बड़ा आनंद आता है, पर कभी-कभी एक प्रश्न दिल को मरोड़ जाता है: आखिर यह साधना, ध्यान, ईश्वर-प्राप्ति की जरूरत भी क्या है?

राजकिशोर! जीवन जरूरत ही तो नहीं है, जरूरत से कुछ ज्यादा भी है। और जिसका जीवन केवल जरूरतों का जोड़ है उसने जीवन जाना ही नहीं। वह व्यर्थ ही जन्मा, व्यर्थ ही जिया। जरूरत अर्थात व्यवसाय। जरूरत के पार ही है जीवन का काव्य।
गुलाब के फूल की क्या जरूरत है? गेहूं की जरूरत है, गुलाब की तो कोई जरूरत नहीं। लेकिन गेहूं ही गेहूं जिस जीवन में हो और गुलाब न हो उस जीवन की व्यर्थता समझ में आती है या नहीं? दुकान ही दुकान जीवन में हो और मंदिर न हो तो गुलाब चूक गया। तो सुबह उठे, दफ्तर गए, कमाया, सांझ लौट आए, खाया- पीया, सो गए।
यह तो सब ठीक है। जरूरत है, करना पड़ेगा। जीना है तो आजीविका भी चाहिए; रोटी भी चाहिए, रोजी भी चाहिए। लेकिन इस सारे जीवन के भीतर सुवास कहां से आएगी, सौंदर्य कैसे पैदा होगा? कुछ तो जीवन में ऐसा हो जो जरूरत के बाहर है। जिसकी करने की कोई जरूरत नहीं है और फिर भी हम करते हैं। वहीं से, ठीक वहीं से परमात्मा से संबंध जुड़ता है।
परमात्मा की कोई भी जरूरत नहीं है। परमात्मा के बिना काम मजे से चल रहा है। सच तो यह है, परमात्मा के बिना काम ज्यादा मजे से चलता है, ज्यादा सुविधा से चलता है। क्योंकि फिर बेईमानी करो तो कोई अड़चन नहीं, चोरी करो तो कोई अड़चन नहीं, झूठ बोलो तो कोई अड़चन नहीं।
परमात्मा की मौजूदगी से अड़चन ही होती है, लाभ क्या है? बेईमानी मुश्किल हो जाएगी। अंतःकरण कचोटेगा। जैसे-जैसे परमात्मा से संबंध जुड़ेगा वैसे-वैसे तुम पाओगे, बहुत-सी बातें करनी असंभव हो गईं, जो कल तक बिल्कुल सुगम थीं। झूठ ऐसे बोले थे कि पता ही न चला था। जबान झूठ बोलने की आदी थी। अगर परमात्मा से संबंध जुड़ेगा तो कोई जबान को भीतर खींच लेगा। झूठ बोलने जाओगे, जबान रुक जाएगी। बोलना भी चाहोगे तो न बोल पाओगे। तुम्हारे बावजूद तुम्हें कोई खींच लेगा, हटा लेगा। चोरी करने जाओगे, न कर पाओगे। धोखा देना चाहोगे और देना असंभव हो जाएगा। धोखा देने की बजाय धोखा खा लेना ज्यादा सुगम मालूम पड़ेगा।
तो परमात्मा की जरूरत तो कोई भी नहीं है। लेकिन फिर तुम जरा अपने जीवन
के संबंध में सोच लो। तुम्हारी जिंदगी में फिर क्या होगा? फूल तो नहीं हो सकते, रुपए-पैसे होंगे, तिजोड़ी होगी, बैंक में तुम्हारा खाता होगा। लेकिन तुम्हारी जिंदगी में काव्य कहां से आएगा? तुम नाचोगे कैसे? तुम गीत कैसे गुनगुनाओगे? "पग घुंघरू बांध मीरां नाची रे"--ऐसा तुम कैसे कह पाओगे? क्या तुम सोचते हो मीरां जब पैरों में घुंघरू बांधकर नाची, तो कोई जरूरत थी? इसके बिना न चलता? इससे कोई अड़चन पड़ रही थी? इतने तो लोग थे, लाखों-करोड़ों तो लोग थे जो बिना पग में घुंघरू बांधे जी रहे थे, मजे से जी रहे थे। लेकिन मीरां के जीवन में जो सुगंध है और मीरां के जीवन में जो उल्लास है, जो उत्सव है, वह तो और लोगों के जीवन में नहीं है। मीरां के चेहरे पर जो आभा है, आंखों में जो गहराई है, हृदय का जो रंग है, वहां सदा दीये जल रहे हैं, दीवाली है। और सदा गुलाल उड़ायी जा रही है, होली है। वैसा हृदय तो लोगों के पास नहीं है।
जिंदगी दीवाली और होली के बिना हो सकती है, अड़चन क्या है? लेकिन जिंदगी होली और दीवाली के बिना कहने को ही जिंदगी होगी। रूखा-सूखा झाड़ भी हम झाड़ ही कहते हैं। न पत्ते आते कभी, न फूल लगते कभी, न फल होता कभी। बांझ वृक्ष को भी हम वृक्ष कहते हैं। ऐसी ही होगी बांझ जिंदगी।

और तुम्हारे साथ तो और भी अड़चन होगी। तुम कहते हो, मैं नाचता भी हूं, रोता भी हूं, ध्यान में बड़ा आनंद आता है। अब तुम आनंद को भी जरूरत बनाना चाहते हो? सिक्कों में ढालना है आनंद को? तिजोड़ी में बंद करना है आनंद को? आनंद के माध्यम से पद की, प्रतिष्ठा की यात्रा पूरी करनी है?
आनंद का कोई भी उपयोग नहीं किया जा सकता। और वही मूल्यवान है जिसका उपयोग न किया जा सके। सुबह सूरज उगेगा और प्राची लाल हो उठेगी और पक्षी गीत गाएंगे, इस परम सौंदर्य का क्या उपयोग करोगे? न इससे भूख मिटेगी, न प्यास बुझेगी। इसलिए तो बहुत-से लोग सुबह के सौंदर्य को देखना ही बंद कर दिए हैं। जरूरत ही क्या है? उन्हें सिर्फ नोटों में सौंदर्य दिखाई पड़ता है।
रात आकाश तारों से भर जाता है और अनंत-अनंत लोग हैं जो आंखें उठाकर आकाश की तरफ देखते नहीं। उनके सामने भी सवाल यही है कि जरूरत क्या है? वे जमीन पर ही आंखें गड़ाए हुए, कहीं जमीन पर कोई ठीकरा मिल जाए उसी की तलाश में लगे रहते हैं। वे कूड़ा-करकट के घूरों पर बैठे हुए खोजते रहते हैं कि शायद कुछ काम का हाथ में लग जाए। लेकिन आकाश तारों से भरा हो और तुम भी आंख खोलकर देखो, तुम्हारे भीतर का आकाश भी तारों से भर जाए।
तो जरूरत तो कुछ भी नहीं है। इसके बिना चल सकता था। लेकिन इसके बिना चलने में कोई अर्थ ही न था, कोई गरिमा न थी, कोई गौरव न था, कोई रस नहीं था। तुम फिर एक मशीन हो। अगर जरूरत में ही तुम्हारी जिंदगी पूरी हो जाती है तो तुम एक मशीन हो। तुम्हारा काम मशीन भी कर देती, और तुमसे बेहतर कर देती। आदमी और मशीन का फर्क कब शुरू होता है? ऐसे तो कार को भी भोजन की जरूरत होती है। ईंधन चाहिए होता है, पानी भी चाहिए होता है, तेल भी चाहिए होता है, पेटरेल भी चाहिए होता है, हि.फाजत भी चाहिए होती है। बस, इतना ही तुम्हारा जीवन होगा. . .। कार नाच नहीं सकती, गीत भी नहीं गा सकती। आकाश तारों से भरेगा तो तारों के साथ संबंध भी जोड़ नहीं सकती। सुबह सूरज उगे कि न उगे, कार को कुछ पता भी न चलेगा।
और ऐसे ही बहुत लोगों ने तय कर लिया है जीना। मशीन की तरह जी रहे हैं। मनुष्य कहां हैं, मशीनें हैं। और तुम्हारी जिंदगी में मनुष्य की शुरुआत हुई, अंकुर फूटा है।
तुम कहते हो, "नाचता भी हूं, रोता भी हूं। ध्यान में बड़ा आनंद आता है,
पर कभी-कभी एक प्रश्न दिल को मरोड़ जाता है. . .।"
यह प्रश्न कहां से आ रहा है? यह प्रश्न तुम्हारी बुद्धि से आ रहा है। बुद्धि ध्यान से डरती है, बुद्धि आनंद से डरती है। बुद्धि हमेशा लाभ की भाषा में सोचती है; फायदा क्या है?
मेरे पास लोग आते हैं, वे पूछते हैं, ध्यान करेंगे तो लाभ क्या होगा? जैसे लाभ रुपयों में बताया जा सके कि तुमको लाख रुपए मिलेंगे, कि करोड़ रुपए मिलेंगे। मैं उनसे कहता हूं, तुम नाच सकोगे, तुम आह्लादित हो सकोगे। तुम्हारे जीवन में उत्सव उतरेगा। तुम जान सकोगे, तुम कौन हो। वे कहते हैं, यह सब तो ठीक है लेकिन लाभ क्या होगा?
जीवन प्रयोजन पर ही समाप्त हो जाए अधार्मिक जीवन है। धर्म तो निष्प्रयोजन है; वह तो आह्लाद है। इसलिए इस देश में हमने धार्मिक व्यक्ति के जीवन को लीला कहा है। लीला का अर्थ होता है, जिसमें कोई प्रयोजन नहीं है।
कृष्ण क्यों बांसुरी बजा रहे हैं? नोटों की वर्षा हो जाएगी? कृष्ण क्यों रास रचा रहे हैं? यह तारों के नीचे, तारों की छांव में यह गोपियों का नृत्य! ये कृष्ण के गीत! इसका सार क्या है? इसको भुनाने जाओगे तो बाजार में भुना सकोगे? यह रात फिजूल जा रही है, यह बेकार जा रही है।
बर्टेंड रसेल ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि वह एक बार आदिवासी कबीले को देखने गया. . .और बर्टेंड रसेल इस सदी का बड़े से बड़ा विचारक था और बड़े से बड़ा गणितज्ञ। हिसाब-किताब पूछना हो तो रसेल से पूछ सकते हो। इस सदी में जो गणित के ऊपर सबसे महत्त्वपूर्ण किताब लिखी है वह रसेल ने लिखी है: प्रिंसिपिया मैथमेटिका"। कहते हैं दस-पच्चीस लोग ही उस किताब को समझ सकते हैं।

गणितज्ञ, विचारक, नोबेल पुरस्कार-विजेता, जगद्विख्यात चिंतक--और आदिवासियों का रात तारों की छाया में नाच देखकर मोहित हो गया, और उसकी आंखें आंसुओं से भर गईं। और उसने अपने संस्मरणों में लिखा है उस दिन मुझे लगा कि मेरी जिंदगी में कुछ भी नहीं है। मेरा सब मुझसे ले लो, मगर ऐसा ही है मैं भी नाच सकूं वृक्षों के नीचे; इसी उत्फुल्लता से, इसी सरलता से, इसी निर्दोष भाव से, तो मुझे सब मिल जाएगा। मेरा सब ले लो और मुझे नाच वापिस दे दो।
मगर नाच ऐसे तो मिलता नहीं है वापिस। कहने भर से नहीं मिलता। हमने इतने पत्थर इकट्ठे कर लिए हैं अपने पैरों के आसपास, कि नाचना मुश्किल हो गया है। हमने इतनी चट्टानें इकट्ठी कर ली हैं हृदय के आसपास कि झरना बहना बंद हो गया है।
कहने भर से तो नहीं होगा। चट्टानें हटानी होंगी। वही हम यहां कर रहे हैं। जो प्रयोग यहां चल रहा है वह तुम्हारे हृदय से चट्टानें अलग करने का प्रयोग है; तुम्हारे पैरों में बंधे हुए पत्थर हटाने का प्रयोग है, ताकि तुम हल्के हो सको। तुम्हारे सिर का बोझ हल्का हो सके। ताकि फिर तुम नाच सको। फिर से देख सको वृक्षों की हरियाली। फिर से सुन सको पक्षियों के गीत। फिर कोयल बोले तो तुम्हारे प्राण भी कुहुक उठें। और नदी का दर्शन करो तो तुम्हारे भीतर भी प्रवाह आ जाए।
लाभ कुछ भी नहीं है; वह मैं तुम्हें पहले चेता दूं। लाभ कुछ भी नहीं है। न तो तुम दिल्ली पहुंचोगे, न प्रधानमंत्री बन जाओगे। न तुम्हारे पास कोई अहंकार को भर लेने के लिए साधन बढ़ जाएंगे।
और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम जिंदगी के काम-धाम को छोड़ दो। काम-धाम की अपनी जरूरत है, मगर कभी संगीत भी सुनो। श्रम के समय श्रम, संगीत के समय संगीत। धन की जगह धन, ध्यान की जगह ध्यान। दोनों को मिश्रित मत करो। और मैं फिर तुम्हें याद दिला दूं बार-बार कि मैं कोई धन का विरोधी नहीं हूं। मेरे मन में दरिद्रता का कोई सम्मान नहीं है। इस देश में सदियों से दरिद्र का सम्मान किया गया है इसलिए यह देश दरिद्र है। यह देश दरिद्र रहेगा, जब तक दरिद्र का सम्मान रहेगा। मेरे मन में दरिद्र का कोई सम्मान नहीं है। दरिद्रता का मेरे मन में कोई मूल्य नहीं है।
तो मैं तुम्हें यह नहीं कह रहा हूं कि दरिद्र हो जाओ, कि भीख मांगने लगो; कि धन कमाने से क्या होगा; कि दुकान करने से क्या होगा--यह मैं तुमसे नहीं कह रहा हूं। मैं तो कह रहा हूं, दुकान करने से बहुत कुछ होता है। साध्य तो ध्यान है। धन हो तो तुम ध्यान कर सकोगे सुगमता से। धन न हो तो बहुत मुश्किल हो जाएगी।
भूखे भजन न होई गोपाला। भूखा आदमी भजन कैसे करे? भूख ही भूख उठती है, भजन कैसे उठे? चिंता ही चिंताएं हैं उसके ऊपर, प्रार्थना में बैठे तो कैसे बैठे? उधर बच्चा रो रहा है, उधर पत्नी बीमार पड़ी है, वर्षा आ गई है और छप्पर गिरा जा रहा है और तुम प्रार्थना करोगे? असंभव है। ऐसी अपेक्षा तुमसे करना भी अमानवीय है। और इस देश में तुमसे अमानवीय अपेक्षा की गई है कि तुम प्रार्थना करो, कि तुम ध्यान करो।
मैं दरिद्रता का पक्षपाती नहीं हूं। दरिद्रता रोग है, महारोग है; उसे मिटाना ही है। लेकिन फिर भी मैं साम्यवादियों से राजी नहीं हूं कि दरिद्रता मिट गई तो सब मिट गया।
मेरी स्थिति तुम्हें समझने के लिए बहुत सूक्ष्म विचार करना पड़ेगा। मैं तुम्हारे तथाकथित अध्यात्मवादियों से राजी नहीं हूं कि आदमी नंगा रहे, भूखा रहे, प्यासा रहे, उपवासा रहे, सूखता रहे, गलता रहे और ध्यान करता रहे। यह रुग्ण चाह है। यह विक्षिप्तता है। यह आदमी से असंभव की आकांक्षा करनी है।
मैं साम्यवादियों से भी राजी नहीं हूं कि बस, गरीबी मिट जाए, धन मिल जाए, भोजन मिल जाए, मकान मिल जाए, कार हो, रेडियो हो, टेलीविजन हो, बात खत्म हो गई! और क्या चाहिए? मैं दोनों से राजी नहीं हूं और दोनों से राजी हूं।
दोनों आधे-आधे हैं।

मेरे हिसाब में धन होना चाहिए, जरूर होना चाहिए। पूरा श्रम करो धन पाने के लिए। लेकिन धन पाने में ही धन का अंत नहीं है। जब धन मिल जाए तो तुम्हारे पास सुविधा है। सब संगीत खोजो, अब साहित्य खोजो, अब धर्म खोजो। अब तुम्हारे पास धन ने व्यवस्था दे दी है कि तुम एक घर में पूजागृह बना सकते हो। अब तुम एक घड़ीभर को शांत बैठकर चुप हो सकते हो। तुम एक घड़ीभर नाच सकते हो। अब नाचो! अब गाओ! और तुम चकित हो जाओगे कि तुम्हारे धन में भी सार्थकता आ गई तुम्हारे ध्यान के कारण। तुम्हारा धन भी काम आ गया।
इस जगत में बाहर हमें जो भी मिल सकता है वह सब साधन है, साध्य भीतर है।
और ध्यान रखना, यह तो कभी पूछना ही मत कि साध्य किसलिए? क्योंकि साध्य का मतलब ही होता है, जो अंतिम है। वह किसी चीज का और साधन नहीं है; जो आखिरी है।
परमात्मा अंतिम है। इसलिए परमात्मा को तुम किसी और चीज का साधन नहीं बना सकते। सभी चीजें उसके लिए साधन बना लेनी हैं। देह भी उसी के साधन में लगा देनी है, धन भी लगा देना है, जीवन भी लगा देना है, मन भी लगा देना है, हृदय भी लगा देना है। विचार, भावनाएं, सब उसी पर समर्पित कर देनी हैं। लेकिन यह तो भूलकर मत पूछना कि उसका क्या उपयोग है? क्योंकि वह जो अंतिम है। अंतिम साध्य को ही हम परमात्मा कहते हैं--जिसके लिए सब किया जाता है और जिसमें हम आनंद की डुबकी लगाते हैं।
तुमने कभी पूछा, आनंद का सार क्या है? आनंद का सार आनंद। प्रेम का सार क्या है? प्रेम का सार प्रेम। लेकिन धन का सार धन नहीं है। धन का तो कुछ उपयोग करना पड़ेगा तो सार है। नहीं तो तुम्हारे पास धन था कि नहीं था, बराबर था।
इसलिए तो कंजूस आदमी दुनिया में सबसे दया का पात्र है। उसके पास धन है
और सार नहीं है। कृपण के पास धन है, लेकिन धन का उपयोग करना नहीं जानता वह। वह धन के ऊपर सांप की तरह कुंडली मारकर बैठ जाता है। ठीक ही कहती हैं कहानियां कि कृपण आदमी मर जाता है तो फिर अपनी तिजोड़ी पर कुंडली मारकर सांप बनकर बैठ जाता है, भूत हो जाता है। वह जिंदगी में ही भूत था। मरकर उसको होने की जरूरत ही नहीं। वह जिया ही नहीं कभी। मरा ही हुआ था।
मैंने सुना है, एक आदमी ने अपने बगीचे में सोने की ईंटें गाड़ रखी थीं। उसका रोज का काम था--वही उसकी पूजा कहो, आराधना कहा, अर्चना कहो--रोज का काम था: खोदना गड्ढे को, वापिस अपनी ईंटों को देख लेना, फिर गड्ढे को पूर देना। चित्त उसका बड़ा गद्गद हो जाता था। ऐसी उसकी जिंदगी बीती। बूढ़ा हो गया था। एक फकीर यह देखता था; कई बार देख चुका था। एक रात वह फकीर उसकी ईंटें निकालकर ले गया और उसकी जगह रख गया पत्थर की ईंटें। बूढ़े ने खोदा, पत्थर की ईंटें देखीं, एकदम छाती पीटकर चिल्लाने लगा कि लुट गया! मर गया!
वह फकीर भी भीड़ में आकर खड़ा हो गया। उस फकीर ने कहा, लुट गया, मर गया, फायदा क्या है? क्यों चिल्ला रहा है? तेरा क्या गया? गड्ढा ही खोदकर तुझे रोज देखना है, सोने की ईंटें हों कि पत्थर की, क्या फर्क पड़ता है? तू अपनी पूजा जारी रख। उपयोग तो करना नहीं है, तो फर्क क्या है? तू मुझे बता दे कि फर्क क्या है!
अगर तू मुझे फर्क बता दे तो तेरी सोने की ईंटें वापिस लौटवा दूं। यही
तो करना है न तुझे कि रोज खोलेगा, रोज उघाड़ेगा, रोज देखेगा, फिर बंद करेगा। यह तू कर रहा है वर्षों से, यही तुझे करते हुए मर जाना है। ये पत्थर की ईंटों ही से काम चल जाएगा। सोने की ईंटें मेरे हाथ लग गई हैं, उनका हम उपयोग कर लेंगे। तुझे तो उपयोग करना नहीं है। अगर करना हो तो लौटा दूं तेरी ईंटें।
यह फकीर ठीक कह रहा है। धन का अपने में कोई मूल्य नहीं है। और ध्यान का अपने में ही मूल्य है। ध्यान का मूल्य आंतरिक है, उसी में छिपा है। और धन का मूल्य उसके बाहर है। धन का कुछ करो तो मूल्य है। उसे रखे रहो बैठे; तो था या नहीं बराबर हो गया। इस भेद को समझ लो।
संसार में दो तरह की चीजें हैं: एक साधन और एक साध्य। साधन का मूल्य अपने में नहीं होता। साध्य का मूल्य अपने से बाहर नहीं होता। ध्यान साध्य है।

और तुम्हें तो उसका अनुभव हो रहा है राजकिशोर! तुम कहते हो, बड़ा आनंद आता है। फिर भी सवाल उठता है? मन सवाल उठाए चला जाता है क्योंकि मन, बुद्धि घबड़ाती है ऐसी चीजों से जो अपने आप में साध्य हैं। उसका कारण समझ लो। बुद्धि स्वयं साधन है। इसलिए साधन को इकट्ठा करने में बुद्धि को कोई खतरा नहीं है। यह उसी का विस्तार है। बुद्धि स्वयं साधन है, उसका भी उपयोग होना चाहिए कहीं पहुंचने के लिए। अगर कहीं पहुंचने के लिए उपयोग न हो तो बुद्धि विक्षिप्त हो जाती है। अपने ही भीतर चक्कर मारते-मारते-मारते- मारते रुग्ण हो जाती है।
अधिक लोगों की बुद्धि भीतर ही चक्कर मारती रहती है। उसका कोई लक्ष्य नहीं है। दिशाविहीन! दिग्भ्रांत! यही तो विक्षिप्त की दशा है। सोचता विक्षिप्त बहुत है, मगर लाभ, परिणाम, लक्ष्य कुछ भी नहीं है। सोचते ही रहता है, सोचते ही रहता है। सोचते-सोचते पगला बन जाता है।
बुद्धि साधन है। बुद्धि को समर्पित होना होता है कहीं। बुद्धि को प्रतिबद्ध होना होता कहीं। किसी महत कार्य में अपने से बड़े किसी लक्ष्य के लिए समर्पित होना होता है, तब बुद्धि सार्थक होने लगती है। मगर बुद्धि इसमें डरती है क्योंकि वह नंबर दो हो जाती है, दोयम हो जाती है। जहां भी कोई बड़ा लक्ष्य सामने आया, बुद्धि नंबर दो हो जाती है। और बुद्धि में छिपा रहता है हमारा अहंकार, जो नंबर एक रहना चाहता है; नंबर दो नहीं होना चाहता। इसलिए तुम्हारे भीतर जो यह प्रश्न उठता है कि आखिर यह साधना, ध्यान, ईश्वर-प्राप्ति, इसकी जरूरत भी क्या है? यह तुम्हारी बुद्धि उठा रही है। बुद्धि कह रही है, फायदा क्या है?
और तुम्हें आनंद मिल रहा है। आनंद काफी नहीं है? आनंद का भी कुछ फायदा होना चाहिए? आनंद अपने आपमें फायदा नहीं है? आनंद में बहे आंसुओं को किसी चीज का साधन होना चाहिए? आनंद में बहे आंसू गुलाब के फूल नहीं हैं, झील पर तैरता हुआ कमल नहीं है, सुबह उगा हुआ सूरज नहीं है? मस्ती में डोले, उस डोलने में सारी कोयलों की पुकार नहीं आ गई?
सारे जगत का केंद्र क्या है? आनंदमग्न हो जाना। इसलिए हमने परमात्मा
की परिभाषा की है सच्चिदानंद। उसके पार तो कुछ भी नहीं है।
बुद्धि की मत सुनना राजकिशोर, नहीं तो आनंद खो जाएगा। और बुद्धि ने सिवा दुःख के कभी किसी को कुछ भी नहीं दिया है। बुद्धि के पास देने को कुछ है भी नहीं। बुद्धि बांझ है। उसको किसी की सेवा में लगा दो तो सार्थक हो जाती है।
बुद्धि ऐसे है जैसे शब्दकोश। तुम्हारे पास एक डिक्शनरी है, डिक्शनरी में सारे शब्द हैं। सब शब्द जो कालिदास ने उपयोग किए हैं, भवभूति ने उपयोग किए हैं, रवींद्रनाथ ने उपयोग किए हैं, सब शब्द। प्यारे से प्यारे शब्द। तुम डिक्शनरी बगल में लगाए बैठे रहो, जिंदगीभर बैठे रहो; क्या तुम सोचते हो इससे तुम्हारे भीतर कालिदास का जन्म होगा, या रवींद्रनाथ का गीत उठेगा? और शब्द तुम्हारे पास हैं। ऐसा नहीं कि तुम्हारे पास कुछ कमी है। डिक्शनरी तुम्हारे पास है।
इन शब्दों का अपने आपमें कोई उपयोग नहीं है। इन शब्दों को जमाओ, इन शब्दों में से धुन पैदा करो, इन शब्दों को लय दो, इन शब्दों को काव्य का रूप दो, तब ये शब्द बोलेंगे; तब ये शब्द नाचेंगे; तब इन शब्दों में महिमा का आविर्भाव होगा।
ऐसा ही जीवन है। तुम्हारे पास सब साधन हैं। सूफी फकीर कहते हैं कि जीवन ऐसा है जैसे एक आदमी अपने चौके में बैठा हो। पाकशास्त्र की किताब खोले बैठा हो, जिसमें सब लिखा है भोजन कैसे बनाना। आटा भी है और दाल भी है और नमक भी है और जल भी है और घी भी है और चूल्हा भी जला हुआ है, मगर वह बैठा ही है। चूल्हा जल-जलकर बुझता जा रहा है। क्योंकि कब तक जलेगा चूल्हा? आटा पड़ा-पड़ा सड़ जाएगा; कब तक पड़ा रहेगा? जल भी रखा-रखा गंदा हो जाएगा, बासा हो जाएगा। और पाकशास्त्र को पढ़ते-पढ़ते क्या तुम सोचते हो भूख मिटेगी?
सूफी फकीर कहते हैं, इस आदमी को कुछ करना चाहिए। मिलाए जल को आटे में, डाले नमक, चपातियां बनाए, कुछ भोजन तैयार करे। आग जल रही है। सब साधन दे

दिए गए हैं, साध्य तुम्हें खोजना है। जो बना लेगा रोटी, वह परम आनंद से भर जाएगा। इस रोटी सेंकने की कला का नाम ही धर्म है।
कुछ लोग गीता ही पढ़ रहे हैं, वे पाकशास्त्र पढ़ रहे हैं। वे सोचते हैं,
बस रोज सुबह गीता पढ़ लेंगे, काम खत्म हो गया। तोतों की तरह पढ़ रहे हैं। रट गई है गीता।
कहीं से भी पूछ लो, उत्तर दे देंगे। मगर काम बिल्कुल नहीं आयी है।
और जिंदगी में परमात्मा ने सारे साधन देकर तुम्हें भेजे हैं। वह ऊर्जा दी है जो ध्यान बने। वह दीया रख दिया है जो जल जाएगा तो बुद्धत्व का प्रकाश होगा। दीया है, ज्योति है, सब मौजूद है मगर संयोग बिठाना है। संयोग भर नहीं बैठा है। वीणा रखी है, तार छेड़ने हैं।
और तुम्हारे तार छिड़ने शुरू हो गए हैं इसलिए बुद्धि संदेह उठा रही है। बुद्धि संदेह उठाती तब है जब देखती है कि मेरा राज्य गया; जब देखती है कि मुझसे विराट आना शुरू हो रहा है, जल्दी ही मैं फीकी पड़ जाऊंगी। जल्दी ही मेरा कोई उपयोग न रह जाएगा।
बुद्धि का खूब उपयोग है बाजार में, दुकान में; मंदिर में क्या उपयोग है? बुद्धि का खूब उपयोग है राजनीति में; धर्म में क्या उपयोग है? धीरे- धीरे तुम्हें साफ हो जाता है कि धर्म के जगत में प्रवेश करना हो तो बुद्धि की सीढ़ियां बना लेनी होती हैं, बुद्धि के पार चला जाना होता है।
और बुद्धि के पार जो गया वहां कैसा लाभ, कैसी हानि! वे तो सब बुद्धि की
ही बातें थीं, बुद्धि के प्रत्यय थे। लेकिन वहां परम लाभ है; वहां परम पद है; वहां परम धन है।

दूसरा प्रश्न : मैं प्रार्थना करता हूं, जीवनभर से कर रहा हूं लेकिन
फल कुछ हाथ नहीं आता है। प्रभु मेरी पुकार सुनेगा या नहीं? क्या यह परमात्मा का मेरे साथ अन्याय नहीं है?
प्रार्थना करते हो, अभी हुई नहीं है। करने में ही चूक हो रही है। प्रार्थना कृत्य नहीं है, प्रार्थना भाव की दशा है। प्रार्थना करना नहीं है, होना है। कोई प्रार्थना करता थोड़े ही है, प्रार्थनापूर्ण होता है। इस फर्क को समझो।
लेकिन आदमी अक्सर जो होता है उसे भी कृत्य की भाषा में बोलता है। जैसे तुम कहते हो, मैं सांस ले रहा हूं। तुम क्या खाक सांस ले रहे हो! अगर सांस नहीं आएगी, फिर तुम ले सकोगे? सांस चल रही है महाराज, तुम ले नहीं रहे हो। इसको भी तुमने कृत्य बना लिया कि मैं ले रहा हूं। अगर तुम ले रहे हो तो जब सो जाओगे, फिर कौन लेगा? सो क्या जाओ, अगर कोमा में भी पड़ जाओ तो भी सांस चलेगी; तब कौन लेगा? बेहोशी में पड़े रहो, क्लोरोफॉर्म दे दिया गया हो तो भी सांस चलती रहेगी। तुम्हें कुछ भी पता नहीं रहा, अब अपनी देह का भी पता नहीं है। इतना पता नहीं रहा कि कोई तुम्हारे अंग काट डालेगा, डॉक्टर तुम्हारा अपेंडिक्स निकाल लेगा, पेट खोल देगा और तुम्हें पता नहीं चलेगा। मगर सांस चल रही है, सो चलती रहेगी।
तुम क्या खाक सांस ले रहे हो! इसको भी कृत्य बना दिया। कहने लगे, मैं सांस ले रहा हूं। सांस चल रही है।
तुम कहते हो, मैं प्रेम करता हूं। प्रेम कभी किया जाता है? या तो होता
है या नहीं होता। मगर प्रेम को भी कृत्य बना लेते हो। फर्क समझो।
कृत्य के कारण अहंकार पकड़ जाता है कि मैंने किया। कृत्य सभी अहंकार
का भोजन बन जाता है।
प्रार्थना की नहीं जाती। प्रार्थना प्रेम जैसी है: होती है, घटती है।
प्रार्थना एक भाव की दशा है, कर्म की दशा नहीं है। और यहीं भूल हो रही है।
अगर तुमने समझा, मैंने प्रार्थना की तो पहले तो वह प्रार्थना झूठी हो गई। जो की जाती है वह झूठी हो जाती है। उमगनी चाहिए, होनी चाहिए, तुम्हारे भीतर से फलनी चाहिए, प्रकट होनी चाहिए।
मैंने सुना है, उर्दू के महाकवि दाग नमाज पढ़ रहे थे, कि कोई व्यक्ति उनसे मिलने आया और उन्हें नमाज में तल्लीन देखकर लौट गया। कुछ ही देर में दाग जब मुसल्ले पर से उठे तो उनके नौकर ने उस व्यक्ति के बारे में बताया।

दाग ने कहा, भागकर जाओ और उसे बुला लाओ। जब वह व्यक्ति लौटकर आया तो दाग ने पूछा, आप आते ही लौट क्यों गए? उस आदमी ने कहा, क्योंकि आप नमाज पढ़ रहे थे। दाग ने कहा, बड़े मियां, नमाज ही तो पढ़ रहा था, ग.जल तो नहीं कह रहा था!
अब तुम फर्क समझते हो? दाग जो कह रहा है--नमाज ही पढ़ रहा था, ग.जल तो नहीं कह रहा था। जब दाग ग.जल कहता है तो वह एक भाव की दशा होती है। तब वह होता ही नहीं, ग.जल होती है। तब दाग मिट जाता है, ग.जल ही बचती है। प्रार्थना ही तो कर रहा था, उसने कहा, नमाज ही तो पढ़ रहा था। कोई खास बात कर रहा था?
एक कृत्य था। एक औपचारिक कृत्य था। करना चाहिए, कर रहा था। पांच बार मुसलमान को करना चाहिए तो कर रहा था। संयोग की बात है, मुसलमान घर में पैदा हुआ हूं। बचपन से सिखाया गया है, संस्कार है तो कर रहा था। इसमें ऐसे चले जाने की क्या बात थी? और मुझे टोक भी दिया होता बीच में तो क्या बना-बिगड़ा जा रहा था! जिंदगी तो हो गई करते-करते, मिलता तो कुछ है नहीं। तो खो भी क्या जाएगा?
लेकिन एक बात उसने बड़ी महत्त्वपूर्ण कही कि मैं ग.जल तो नहीं कह रहा था! हां, ग.जल कह रहा होऊं तो मुझे मत रोकना। ग.जल कह रहा होऊं तो फिर मुझे पता ही नहीं चलेगा कि तुम आए कि गए। नमाज पढ़ रहा था इसलिए तो पता भी चला कि कोई आया, कोई गया। शायद इसलिए जल्दी खत्म भी की होगी कि पता नहीं, कोई काम से आया हो, जरूरी काम से आया हो। इसीलिए तो नौकर को भगाया। हां, ग.जल कह रहा होता तो बात अलग थी।
दाग जब ग.जल कहता है तभी प्रार्थना है। जब वह नमाज पढ़ता है तब तो फिजूल
का काम कर रहा है, न भी करे तो चलेगा। समय खो रहा है।
तुम्हारी प्रार्थना भी अभी नमाज है, ग.जल नहीं है। अभी तुम्हारे प्राणों का गीत नहीं है। एक कृत्य है, औपचारिक कृत्य है। हिंदू घर में पैदा हुए हो, सिखा दिया: ऐसे-ऐसे पढ़ना, ऐसे पूजा करना, ऐसे पानी चढ़ाओ, ऐसे फूल चढ़ाओ, ऐसे बेल-पत्ते तोड़ लाओ, घंटी बजाओ। मगर ये सब कृत्य हैं, यह तुम्हारी भाव की दशा नहीं है। तुम कर रहे हो कर्तव्यवश। तुम्हारे भीतर प्रेम नहीं उमगा है।
रामकृष्ण के जीवन में उल्लेख है। एक भक्त, एक वैष्णव भक्त रामकृष्ण
के मंदिर में मेहमान हुआ। विवेकानंद तो उससे बड़ा विवाद करने लगे क्योंकि वह बड़ा दीवाना था। उसके पास बालगोपाल की एक प्रतिमा थी। उसकी पूजा बड़ी अजीब थी। पूजा थी इसलिए अजीब लगती थी। विवेकानंद को तो बड़ी हैरानी हुई उसकी पूजा देखकर कि बजाय गंगा से पानी भरकर लाने के गोपालजी को ले जाकर गंगा में डुबकी लगवा देता वह। खुद भी नहाता, उनको भी नहलवाता; खूब रगड़-रगड़कर नहलवाता और बीच-बीच में बोलता जाता, कहो जी, कैसे हाल हैं? आनंद आ रहा है?
उनको तैराता अपने साथ। ले जाता, तैराता बीच गंगा में। और इतना ही नहीं, नहला-धुलाकर, खिला-पिलाकर पास के खेत में चला जाता। वहां दोनों खेलते-कूदते। गोपालजी को खिलाता, कि जरा हवा खा लो खुली। झाड़ के नीचे जरा मजा कर लो। चलो, झाड़ पर चढ़ें। बातचीत भी चलती।
विवेकानंद को तो बहुत हैरानी हुई कि यह क्या, किस तरह की पूजा है! जब रामकृष्ण को पता चला तो रामकृष्ण ने कहा कि मत छेड़ना उस व्यक्ति को। यही पूजा है।
न वह घंटी बजाता, न वह भोग लगाता। उसका ढंग ही और था। खाना बनाता जाता, वहीं गोपालजी को बिठा लेता कि कहो गोपालजी, क्या खाओगे? आज क्या इरादा है? बनाता जाता, चखता भी जाता और गोपालजी को भी चखाता जाता।
रामकृष्ण ने कहा, उसे मत छेड़ो। यह प्रार्थना का सच्चा स्वरूप है। इस आदमी को औपचारिकता नहीं है। इसका वास्तविक संबंध है। और विवेकानंद को रामकृष्ण ने कहा कि तुम अगर कभी. . .छिप जाना जाकर वहां, जहां यह ले जाता है गोपालजी को खिलाने के लिए। किसी झाड़ के पीछे छिपकर बैठ जाना। शांति से वहां देखना, क्या होता है। तुम चकित होओगे अगर तुम्हारे पास आंखें हैं देखने की, तो तुम पाओगे, गोपालजी भी खेल रहे हैं। यह आदमी अकेला नहीं बोलता। यह एकालाप नहीं हो रहा है, यह वार्तालाप है।

जब इतने भाव से कोई पुकारता है, इतनी तन्मयता से, इतनी एकाग्रता से, इतनी तल्लीनता से! इसी भाव से प्राण पड़ जाते हैं पत्थर में। प्रतिमा जीवंत हो जाती है।
तुमने तो प्रार्थना "की" है, इसलिए तुम्हें अड़चन हो रही है। इसलिए यह सवाल उठ रहा है। तुम पूछते हो, मैं प्रार्थना करता हूं। जीवनभर से कर रहा हूं।
देखते हो, थक गए हो! यह आनंद का कृत्य नहीं हो सकता। आनंद से कभी कोई थकता है? कर्तव्य मानकर किए जा रहे हो। एक बोझढो रहे हो सिर पर। थक गए हो। यह बोझ उतार देना चाहते हो। और अभी तक कुछ हाथ भी नहीं लगा है।
और इस कृत्य के पीछे लोभ भी छिपा है, वासना भी छिपी है। कुछ हाथ भी लगना चाहिए। प्रार्थना परम मूल्य है। प्रार्थना से कुछ हाथ नहीं लगता। प्रार्थना ही हाथ लग गई तो सब हाथ लग गया। और बचा क्या? प्रार्थना में ही तो परमात्मा हाथ लग गया। और बचा क्या? इससे ज्यादा और क्या चाहते हो? जरूर प्रार्थना के पीछे तुम्हारे मन में कोई मांग छिपी है कि धन मिल जाए, कि पद मिल जाए। कि देखो बेईमान तो सब पदों पर पहुंच गए हैं और मैं ईमानदार प्रार्थना ही करते रह गया। यह भी भगवान खूब अन्याय कर रहा है। मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि जमाने भर के बेईमान, बदमाश प्रतिष्ठित हो गए और हम जिंदगीभर प्रार्थना ही करने में लगे रह गए। हमें मिला क्या?
इनके मन में भी चाह तो वही है, जो बेईमानों को मिल गया है। चाहते तो ये
भी हैं कि वही हमें भी मिल जाए। बेईमानों ने हिम्मत की और जीवन जोखम में डाला। इन्होंने जीवन भी जोखम में नहीं डाला। फिर बेईमानी तो कोई सस्ती तो पड़ती नहीं। फंसे तो बहुत झंझट की बात है। चोरी करने गए तो धन भी हाथ लगता है, न लगा तो जेलखाना है। जेलखाने की संभावना तो है ही। इन्होंने तो जेलखाने का खतरा भी नहीं लिया है। ये घर में बैठकर घंटी हिलाते रहे और मन में यही सोचते रहे कि चोर को जो मिल रहा है, वही हमको भी मिलना चाहिए। और न मिले तो भगवान अन्याय कर रहा है।
चोर ने कम से कम जोखम तो लिया! कुछ साहस तो किया! अक्सर मैं देखता हूं
कि तुम्हारे तथाकथित धार्मिक आदमी केवल भय के कारण धार्मिक हैं। अगर उनको पक्का पता चल जाए कि प्रार्थना से कुछ नहीं होनेवाला है; आकाश बहरा है, कोई सुननेवाला नहीं है, उनकी प्रार्थना उसी वक्त बंद हो जाएगी। अगर उनको पता चल जाए कि कोई नरक नहीं है; चोरी-बेईमानी का कोई बुरा परिणाम नहीं होता, वे जल्दी से चोरी-बेईमानी की योजना बनाने लगेंगे। वे सोचेंगे इतना जीवन नाहक गंवाया। अगर उनको पता चल जाए कि ये चोर और बदमाश यहीं धोखा नहीं दे रहे हैं, ये स्वर्ग में भी रिश्वतखोरी करके प्रवेश पा जाते हैं।
तब तो बहुत मुश्किल हो जाएगी। तब तो वे भी दौड़ पड़ेंगे दौड़ में। तैयार
ही ख.ड़े हैं, कसे ही खड़े हैं लेकिन भयभीत हैं कि कहीं नरक में न पड़ना पड़े, कहीं स्वर्ग न खो जाए।
और फिर यहां भी भयभीत हैं कि कहीं प्रतिष्ठा न खो जाए, पकड़ न जाएं, चोरी में कहीं गिरफ्त में न आ जाएं। तो अपनी प्रार्थना कर रहे हैं और आशा लगाए हैं कि वही मिल जाएगा जो चोरों को मिल रहा है, बेईमानों को मिल रहा है।
तुम्हारी आशा में ही प्रार्थना झूठी हो गई। प्रार्थना जब वस्तुतः होती है तो उसमें मांग होती ही नहीं। प्रार्थना में अपने को देने का भाव होता है कि हे परमात्मा, मुझे ले ले; कि मुझे अपने चरणों में ले ले। कि मुझे लीन हो जाने दे तेरे चरणों में। और मेरी कोई मांग नहीं है। मैं न बचूं, तू ही बचे। मैं बिल्कुल समाप्त हो जाऊं। मुझे पोंछ दे, मिटा दे।
लेकिन तुम तो कहते हो, कुछ हाथ नहीं लगा। "प्रभु मेरी पुकार सुनेगा या नहीं?"
तुम्हें न तो प्रभु का पता है, न तुम्हें प्रभु पर भरोसा है। तुम्हारे जीवन में श्रद्धा भी नहीं है, थोथा विश्वास है--उधार। दूसरों ने बता दिया कि ईश्वर है, तुमने मान लिया। तुम इतने बेईमान हो कि तुमने ईमानदारी के प्रश्न भी न उठाए और मान लिया। तुमने खोज भी नहीं की है, तुमने अन्वेषण भी

नहीं किया। तुम यात्रा पर भी नहीं गए। दूसरों ने कह दिया और तुमने कहा कि आप जब कहते हैं तो ठीक ही कहते होओगे। कौन झंझट करे! कौन खोजने जाए! हम बिना ही खोजे मान लेते हैं।
यह उधार विश्वास काम नहीं आएगा। इसलिए तुम्हें शक भी पैदा होगा बार-बार कि प्रभु हमारी पुकार सुन रहा है या नहीं? शक तो यही है तुम्हें असल में कि प्रभु है भी या नहीं! जरा खोदो अपने भीतर और तुम इस संदेह को बैठा हुआ पाओगे। तुम्हारी थोथी श्रद्धा के भीतर संदेह के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। और तुम लाख कहो कि मेरी बड़ी प्रगाढ़ श्रद्धा है, मगर तुम जितने जोर से कहते हो, मेरी प्रगाढ़ श्रद्धा है, तुम प्रमाण देते हो कि तुम्हारा उतना ही प्रगाढ़ संदेह है। उस प्रगाढ़ संदेह को दबा देने के लिए तुमने यह प्रगाढ़ श्रद्धा उसकी छाती पर बिठा रखी है। मगर संदेह भीतर है, मौजूद है।
मैंने बड़े से बड़े आस्तिक के भीतर संदेह देखा है उतना ही, जितना किसी नास्तिक के भीतर होता है। नास्तिक कम से कम ईमानदार होता है, आस्तिक बेईमान होते हैं। न तो नास्तिक धार्मिक है, न आस्तिक धार्मिक है। धार्मिक तो एक और ही घटना है; वहां कैसी नास्तिकता, वहां कैसी आस्तिकता! धार्मिक के जीवन में अपने अनुभव की किरण होती है। वह परमात्मा को खोजता है, मानकर नहीं चलता। पहले से स्वीकार नहीं कर लेता है कि परमात्मा है। जब स्वीकार ही कर लिया तो फिर खोज क्या?
तुमसे कहा गया है अब तक कि विश्वास करो तो एक दिन जान लोगे। मैं तुमसे कहना चाहता हूं जान लो तो विश्वास आएगा। जाने बिना कैसे विश्वास करोगे? अंधे ने प्रकाश नहीं देखा है, कैसे विश्वास करेगा कि प्रकाश है? और बहरे ने संगीत नहीं सुना है, कैसे विश्वास करेगा कि ध्वनि है? कैसे? क्या उपाय है? हां, मान ले सकता है, इतने लोग कहते हैं, ठीक ही कहते होंगे। मगर भीतर संदेह की आग जलती ही रहेगी, संदेह का धुआं उठता ही रहेगा और बार-बार विश्वास को डगमगाएगा, बार-बार विश्वास को तोड़ेगा।
यह विश्वास कच्चा है। यह बहुत सतही है। नहीं तो यह सवाल ही न उठे कि मेरी पुकार सुनेगा या नहीं!
पहले तो प्रार्थना में कोई मांग नहीं होती, समर्पण का भाव होता है। फिर वह मेरी पुकार सुने, यह आग्रह नहीं होता, मैं उसकी पुकार सुनूं, यह आग्रह होता है। तुम जरा फर्क समझो।
वह पुकार रहा है, मैं कब उसे सुनूंगा यह भक्त का भाव होता है--कि मैं बहरा हूं। कितने समय से वह पुकार रहा है अनंतकाल से और मैंने नहीं सुना। वह पुकारता जा रहा है और मैंने नहीं सुना। वह कृष्ण से पुकारा, वह क्राइस्ट से पुकारा, वह कबीर से पुकारा, और मैंने नहीं सुना। मैं कब सुनूंगा?
भक्त यह पूछता है कि मैं कब सुनूंगा? तुम पूछते हो कि वह कब सुनेगा? भक्त कहता है, मैं बहरा हूं। तुम कहते हो, भगवान बहरा है। असल में तुम्हें भगवान पर भरोसा नहीं है।
खुद गिरे लेकिन छलकने दी न मै
अपने सर ले लीं बलाएं जाम की
अगर तुम्हारा परमात्मा से प्रेम हो तो तुम यह तो कभी सोच भी न सकोगे
कि वह बहरा है।
खुद गिरे लेकिन छलकने दी न मै
अपने सर ले लीं बलाएं जाम की
प्रेम तो सदा सारी शिकायतें अपने ऊपर ले लेता है। प्रेम तो कहता है, अगर तुम दिखाई नहीं पड़ रहे तो मैंने आंख बंद कर रखी होगी। अगर तुम सुनाई नहीं पड़ रहे तो मेरे कान बंद होंगे। अगर तुम अनुभव में नहीं आ रहे तो मेरे अनुभव के स्रोत सूख गए होंगे। प्रेम तो सारी शिकायतें अपने ऊपर ले लेता है। लोभ सारी शिकायतें दूसरे पर डाल देता है।
तुम्हारी प्रार्थना में लोभ है। तुम किसी तरह प्रार्थना कर रहे हो। उल्लास नहीं है। रोज करते होओगे और सोचते होओगे, एक दिन और बीत गया, एक दफे और प्रार्थना कर ली, अभी भी कुछ नहीं हुआ।

प्रार्थना के बाहर कुछ होने को है? प्रार्थना के भीतर कुछ होने को है, बाहर कुछ होने को नहीं है।
जिंदगी का रास्ता काटना ही था अदब
जाग उठे तो चल दिए, थक गए तो सो लिए
इस तरह तुम प्रार्थना कर रहे हो: जिंदगी का रास्ता काटना ही था अदब। किसी तरह काटना है। प्रार्थना भी कर ही लेनी चाहिए, कौन जाने!
मेरे एक शिक्षक थे; दार्शनिक थे, दर्शन के प्रोफेसर थे। और ईश्वर को कभी माना नहीं। और एक बार बहुत बीमार पड़े। मैं उन्हें देखने गया तो मैं बहुत हैरान हुआ। खूब बुखार चढ़ा था, कोई एक सौ पांच डिग्री बुखार। सन्निपात जैसी दशा थी और वे राम-राम जप रहे थे। मैंने उनका सिर हिलाया जोर से और मैंने कहा, होश में आओ, यह क्या कर रहे हो? ईश्वर तो है ही नहीं। उन्होंने कहा, अभी चुप रहो। अभी मुझे याद मत दिलाओ। यह मरने की घड़ी. . . कौन जाने हो ही!
जिंदगीभर का नास्तिक मरते वक्त डगमगाने लगा। जिंदगीभर के आस्तिक भी मरते वक्त डगमगाते हैं। असल में झूठा जो भी है, ऊपर-ऊपर जो है वह डगमगाएगा। फिर उनका बुखार भी ठीक हो गया। फिर वे कभी अगर मुझसे नास्तिकता की बात करते तो मैं कहता, बंद करो बकवास। तुम नास्तिक नहीं हो। याद करो उस दिन को, जब बुखार तेज चढ़ा था और मौत करीब लगी थी।
तो वे मुझसे कहते कि हां, उस दिन तो डर गया था, भयभीत हो गया था। सोचा, पता नहीं हो ही भगवान। हर्ज भी क्या है? ऐसे ही पड़ा हूं बिस्तर पर, काम भी कुछ नहीं, राम-राम कर लेने में हर्ज क्या है? कम से कम कहने को तो रह जाएगा अगर मिल ही गया मरने के बाद, सामने ही खड़ा हो गया, कि मैंने पुकारा तो था। चलो आखिरी वक्त ही पुकारा था। और तुम तो सदा से ही सुनते रहे हो। आखिरी वक्त की पुकार तो तुम विशेष कर सुनते हो। अजामिल को तुमने मुक्त कर दिया था। और वह तो अपने बेटे नारायण को बुला रहा था। मैं तो तुम्हीं को बुला रहा था।
और नहीं हुआ तो अपना क्या बिगड़ रहा है? यह तुम देखते हो, हिसाब की बात है। नहीं हुआ तो अपना क्या बिगाड़ रहा है? और हुआ तो भी अपना क्या. . .! नाम ले लिया तो लाभ ही लाभ है, हानि तो कुछ है नहीं।
और मैं देखता हूं कि तुम्हारे आस्तिक, जो मंदिरों में पूजा कर रहे हैं, प्रार्थना कर रहे हैं, इनकी आस्तिकता के नीचे भी बस ऐसा ही भय छिपा हुआ है। कर लेनी है। कौन जाने हो! हर्ज भी क्या है! ऐसी जिंदगी जा ही रही है। एक आधा घड़ी इसमें भी गंवा देने में हर्ज क्या है! यह भी सौदा कर लेने जैसा है।
जैसे लोग लॉटरी का टिकट खरीद लेते हैं, कि कौन जाने मिल ही जाए! किसी
को तो मिलती ही है, कौन जाने मिल ही जाए! खुद को मिली भी नहीं है जिंदगीभर से मगर कौन जाने, अब मिल जाए। एक दफा और सही।
ऐसे ही तुम प्रार्थना कर रहे हो लॉटरी के टिकट की तरह। यह भक्त की दशा नहीं है। भक्त की बड़ी और दशा है। भक्त तो कहता है, जैसा प्रेमी कहता है-- तअम्मुल तो था उनको आने में.कासिद
मगर यह बता त.र्ज-ए-इनकार क्या थी
भेजा है पत्रवाहक को प्रेयसी के पास प्रेमी ने। पत्रवाहक वापस लौट आया और कहता है कि प्रेयसी आना नहीं चाहती। लेकिन प्रेमी क्या कहता है? वह कहता है, मैं यह तो समझ गया कि उसे आने में कठिनाई है, मगर मैं तुझसे यह पूछना चाहता हूं, "मगर यह बता, त.र्ज-ए-इनकार क्या थी!" इनकार करने का ढंग क्या था? क्योंकि उसमें भी प्यार हो सकता है। इनकार करने के ढंग में भी प्यार हो सकता है। विवशता हो सकती है, मजबूरी हो सकती है, कठिनाइयां हो सकती हैं, दूसरी बात है। इनकार को इतनी जल्दी स्वीकार नहीं कर लेता प्रेमी एक सागर भी इनायत न हुआ याद रहे
सा.कया जाते हैं महफिल तेरी आबाद रहे
फिर मिले या न मिले। एक प्याली भी न मिले तो भी शिकायत नहीं है प्रेमी
के मन में।

एक सागर भी इनायत न हुआ याद रहे--तेरी मधुशाला में आए और एक प्याली भी पीने को न मिली।
सा.कया जाते हैं महफिल तेरी आबाद रहे--लेकिन तेरी महफिल आबाद रहे। हम
तो जाते हैं खाली, हम तो जाते हैं प्यासे, मगर तेरी महफिल को आशीर्वाद दिए जाते हैं, आशीष दिए जाते हैं, शुभकामना किए जाते हैं। शिकायत का तो सवाल ही नहीं उठता।
तुम कहते हो, "क्या यह परमात्मा का मेरे साथ अन्याय नहीं है?"
परमात्मा ने तुम्हें इतना दिया है उसका तो धन्यवाद नहीं किया तुमने, लेकिन जो नहीं दिया है उसके लिए अन्याय की शिकायत जरूर कर रहे हो। तुम्हें कितना दिया है इसका हिसाब कभी किया है? और तुम पाने के हकदार थे? तुम्हारी कोई पात्रता थी?
अगर तुम गौर से देखोगे तो एक श्वास भी ले लेना इस अस्तित्व में इतना बड़ा सौभाग्य है। और हमने अर्जित तो किया नहीं यह सौभाग्य। उसकी भेंट है, प्रेम की भेंट है। मिला है।
तुमने जीवन अर्जित तो नहीं किया। तुमने जीवन पाने के लिए क्या किया था? कुछ याद पड़ता है जो तुमने किया हो जीवन पाने के लिए? लेकिन जीते हो। और तुम्हारी आंखें फूलों के रंग देखती हैं, इंद्रधनुषों को देखती हैं। और तुम्हारे कान पपीहे की पुकार सुनते हैं। और तुम्हें सौंदर्य का बोध है। और संगीत तुम्हारे हृदय में जाता है और गूंज पैदा होती है। तुम जीवित हो, जीवन जैसा महासौभाग्य तुम्हें मिला है इसके लिए धन्यवाद किया? एक सूफी कहानी तुमसे कहूं। एक आदमी मरने जा रहा था, एक फकीर ने उसे पकड़ लिया और कहा, क्या बात क्या है? क्यों मरने जा रहे हो? कूदने को ही था पहाड़ी पर से। उसने कहा, मत रोको, मेरा जीवन बिल्कुल बेकार है। परमात्मा ने मेरे साथ अन्याय किया है। मैंने जो भी मांगा, नहीं मिला। मुझसे ज्यादा दीन और दुःखी आदमी इस पृथ्वी पर दूसरा नहीं है। मेरे पास एक कौड़ी भी नहीं है। मेरे खीसे खाली हैं, मेरा पेट भूखा है। मैं इस जिंदगी को समाप्त करना चाहता हूं। मैं उसकी यह भेंट उसको वापिस दे देना चाहता हूं--सम्हाल अपनी जिंदगी, मुझे नहीं चाहिए।
फकीर ने कहा, ऐसा करो, तुम तो मर ही जाओगे। इसके पहले अगर मुझको कुछ लाभ हो जाए तो तुम्हें कोई हैरानी है? उसने कहा, मुझे क्या हैरानी है? हो जाए तुम्हें लाभ। उसने कहा, तुम एक दिन और रुक जाओ; बस चौबीस घंटे! चौबीस घंटे के लिए इंतजाम मैं करता हूं। खाना भी मेरे साथ खाओ, सोओ भी मेरे साथ। चौबीस घंटे बाद मर जाना। इस बीच मैं थोड़ा लाभ कर लूं। उसने कहा, लाभ का मतलब क्या है? उसने कहा, मैं कल सुबह तुम्हें बताऊंगा।
सुबह वह उसे लेकर सम्राट के पास गया। सम्राट फकीर का शिष्य था। खबर उसने पहले भेज दी थी। जाकर सम्राट के पास उसने कहा कि आप इस आदमी की आंखें खरीदना चाहते हैं? सम्राट ने कहा, अच्छी बात है। क्या दाम देंगे? सम्राट ने कहा कि एकेक लाख रुपया एकेक आंख का दूंगा।
वह आदमी जो मरने जा रहा था, वह तो भूल ही गया मरने की बात। उसने कहा हद
हो गई! मेरी आंखें क्या तुमने समझ रखा है मैं बेचूंगा? लाख क्या, तुम अगर दस लाख भी एक आंख का दो तो आंख ऐसी चीज है कि कोई बेचता है? होश में हो? सम्राट हो, अपने घर के हो।
वह तो आदमी बड़े गुस्से में आ गया। उस फकीर ने कहा, भाई, तू चुप रहे। चौबीस घंटे ही तूने बात की है। और इसके कान भी बेचने हैं, इसकी नाक भी बेचनी है। जो भी खरीदना हो इसमें से सामान, खरीद लो। वह आदमी तो एकदम नाराज हो गया। उसने फकीर से कहा कि तुम हत्यारे तो नहीं हो? तुम बातें क्या कर रहे हो? करोड़ रुपए में भी कोई मेरे हाथ, पैर, मेरी नाक, मेरी आंख, मेरे कान नहीं खरीद सकता। ये किसी कीमत पर बिकेंगे नहीं।
पर उस फकीर ने कहा, भले आदमी! यह तुम बात क्या कर रहे हो? कल तुम ऐसे ही नदी में कूदे जा रहे थे पहाड़ से। यह सब ऐसे ही चला जाता। मैं इसीलिए तो कह रहा हूं, चौबीस घंटे रुक जाओ, मुझे कुछ कमा लेने दो। तुम तो बेकार समझ रहे हो मगर मुझे इनमें कीमत मालूम होती है। अब तक तुमने कभी सोचा था कि तुम्हारी आंखों की कीमत लाखों रुपए हो सकती है? कोई लाख रुपए भी दे तो तुम

आंख बेचने को राजी नहीं होओगे। इसके लिए तुमने कभी परमात्मा को धन्यवाद दिया था?
वह आदमी चौंका, होश में आया। सच थी बात। उसने कभी परमात्मा को किसी बात के लिए धन्यवाद नहीं दिया था। क्षुद्र बातें जो पूरी नहीं हुई थीं उनकी शिकायत की थी और इतना विराट मिला था इसके लिए धन्यवाद कभी नहीं दिया था।
तुम कहते हो, "क्या मेरे साथ परमात्मा अन्याय नहीं कर रहा है?" परमात्मा ने तुम्हारे साथ कितनी अनुकंपा की है! वह रहीम है, रहमान है। उसकी अनुकंपा प्रतिपल बरस रही है।
और बहुत बार तो ऐसा हो जाता है कि तुम्हें जो लगता है अनुकंपा नहीं है
वह भी अनुकंपा होती है। क्योंकि कई बार आदमी कठिनाइयों से सीखता है। कई बार सूलियों के पीछे ही सिंहासन छिपे होते हैं। कई बार अभिशाप के रूप में वरदान आता है।
एक सूफी फकीर रोज अपनी प्रार्थना में परमात्मा को धन्यवाद देता था:
कि अहा, तू भी खूब है! मुझ नाकुछ को इतना देता है कि मैं कैसे तेरा धन्यवाद करूं? किस जबां से तेरा धन्यवाद करूं?
नंगा फकीर! उसके पास कुछ था भी नहीं। और रोज धन्यवाद दे। उसके शिष्य
भी थक गए थे उसकी बातें सुन-सुनकर। फिर एक दिन तो ऐसा हुआ कि तीन दिन तक खाना न मिला। यात्रा पर निकले थे, तीर्थयात्रा पर। न खाना मिला तीन दिन तक, न किसी गांव में ठहरने की जगह मिली।
लोग उस फकीर के खिलाफ थे, जैसे लोग फकीरों के खिलाफ सदा से रहे हैं। लोग कहते थे, वह फकीर कुछ उपद्रव की बातें कर रहा है, बगावती है। उसकी बातें कुरान से मेल नहीं खातीं। उसकी बातें मुहम्मद के विपरीत पड़ती हैं। वह फकीर अपने शिष्यों के बीच कहता है बैठकर: "अनलहक"--कि मैं परमात्मा हूं। यह बात ठीक नहीं है। यह कुफ्र है।
उसको तीन गांवों में तीन दिन तक ठहरने नहीं दिया गया। भोजन भी नहीं मिला। रेगिस्तान में थके-मांदे तीसरे दिन जब वे सांझ को रुके एक वृक्ष के नीचे, वह फकीर फिर अपने मुसल्ले को बिछाकर बैठ गया। फिर उसने हाथ जोड़े। शिष्य बैठे देख रहे थे, देखें आज क्या यह कहता है! भूखा तीन दिन का, थका- मांदा, धूलि-धूसरित! स्नान भी नहीं कर पाए, कहीं ठहर भी नहीं सके। मगर उसने फिर वही कहा कि हे प्रभु! उसकी आंखें चमक रही हैं आनंद से। उसके चेहरे पर फिर वही आनंद का भाव, फिर वही प्रार्थना: "हे प्रभु! तेरा बड़ा धन्यवाद है। तू सदा मुझे जिस चीज की जरूरत होती है, पहुंचा देता है।"
एक शिष्य ने कहा कि अब बस, ठहरो! अब हद हो गई। जिस चीज की जरूरत होती
है, पहुंचा देता है। और तीन दिन से हम भी तुम्हारे साथ हैं, जिस चीज की जरूरत है, वही नहीं मिली है। रोटी नहीं मिली, पानी नहीं मिला, आवास नहीं मिला। अब और क्या है? मिला क्या है तीन दिन में?
उस फकीर ने कहा, तुम बीच में मत बोलो। तीन दिन तक मुझे इसी बात की जरूरत थी। वह मेरी जरूरत का ख्याल रखता है। तीन दिन तक भूखे रखना, तीन दिन तक भूखे रहना मेरे लिए लाभ का हुआ है। तीन दिन तक भूख और अपमान खाने के बाद भी मैं प्रार्थना कर सकूं, यही मेरी जरूरत थी। उसने अवसर दिया। सुख मिले तब धन्यवाद देना तो बहुत आसान है पागलो! जब दुःख मिले तब धन्यवाद देने की क्षमता प्रार्थना की ही छाती में होती है।
उसने मुझे एक मौका दिया। उसने मुझे एक अवसर दिया। मगर मैं भी समझ गया
कि अवसर क्यों दे रहा है। वह इसलिए दे रहा है कि अब देखूं। एक दिन उसने कुछ भी न दिया, भूखा रखा, फिर भी मैंने प्रार्थना की। दूसरे दिन भी उसने कहा, अच्छा ठीक है, एक दिन तूने कर ली, दूसरे दिन? दूसरा दिन भी बीत गया, अब यह तीसरा दिन भी आ गया। उसने फिर एक मौका दिया कि आज तीसरा दिन फिर आ गया। अब तू बिल्कुल भूखा है, जीर्ण-जर्जर है, गिरा पड़ता है, अब तू धन्यवाद देगा कि नहीं देगा? अब तो रुकेगा न? अब तो बंद कर देगा प्रार्थना। मगर मैंने कहा कि तू मुझे हरा न सकेगा। मैं धन्यवाद देता ही जाऊंगा। अंतिम घड़ी तक धन्यवाद देता चला जाऊंगा। जब तक श्वास है, धन्यवाद उठेगा। श्वास ही न रहे तो फिर

बात और। मरते क्षण तक ओंठ पर धन्यवाद होगा। तू अगर मौत भी देगा तो वह मेरी जरूरत है तो ही देगा; नहीं तो क्यों देगा?
इसका नाम श्रद्धा है। इसका नाम प्रार्थना है। प्रार्थना की नहीं जाती। प्रार्थना बड़े गहरे अनुभव से प्रकट होती है।
तुम यहां हो इस सत्संग में। इस सत्संग के सरोवर में नहाओ, डूबो। और अपनी पुरानी धारणाएं छोड़ो। घंटियां इत्यादि बजाने से कुछ प्रार्थना नहीं होती, न पानी इत्यादि चढ़ाने से कोई प्रार्थना होती है।
मैं तुम्हें प्रार्थना का असली शास्त्र दे रहा हूं। लेकिन शुरुआत से
ही शुरुआत करनी होगी। तुम्हारी आस्तिकता ही झूठी है। तुम्हारा ईश्वर पर विश्वास झूठा है, उधार है। तुम उधार को जाने दो। उधार के हटते ही तुम चकित हो जाओगे। उधार ईश्वर की धारणा ने तुम्हारी आंखों पर पर्दा डाल दिया है। इसलिए ईश्वर, जो कि चारों तरफ मौजूद है--इस हवा में, जो वृक्ष के पत्तों को हिला गई; इन पीले पत्तों में जो वृक्ष से झर-झर नीचे गिर गए; तुममें, मुझमें। इस घड़ी सारा अस्तित्व उसी से व्याप्त है। सदा उसी से व्याप्त है। वह हंसी फिर गई आंखों में जो बिजली चमकी
गुंचा चटका तो मुझे उसका दहन याद आया
और जब कली खिलेगी तो तुम्हें उसका चेहरा दिखाई पड़ेगा। तब तुम समझना
कि परमात्मा से कुछ पहचान हुई। वह हंसी फिर गई आंखों में जो बिजली चमकी। और जब बिजली चमके आकाश में, काले बादलों की पृष्ठभूमि और बिजली चमक जाए तो तुम्हें उसकी हंसी दिखाई पड़ जाए।
गुंचा चटका तो मुझे उसका दहन याद आया--
और जब कली चटकी और फूल बनी तो तुम्हें परमात्मा का चेहरा दिखाई पड़े।
तब तुम जानना। तुम जो घर में मूर्तियां इत्यादि बनाकर बैठे हो वे सब तुम्हारे खेल-खिलौने हैं, उनसे परमात्मा का क्या लेना-देना! परमात्मा व्यापक रूप से मौजूद है, सर्वव्यापी है। प्रतिपल जो तुम उसी से घिरे हो। उसके ही जीवन के साथ जुड़े हो इसलिए जीवित हो। वही तुम्हारी श्वास में डोल रहा है, वही तुम्हारे हृदय में बोल रहा है और तुम खोजने कहां चले हो? तुम प्रार्थना क्या कर रहे हो?
तुम झुकना सीखो। फूलों से भरे वृक्ष के पास झुक जाओ। कभी दोनों हाथ फैलाकर पृथ्वी पर ऐसे लेट जाओ जैसे छोटा बच्चा अपनी मां के स्तन पर लेटा हो। भूल जाओ सब। पड़े रहो पृथ्वी पर। कभी नाचो आकाश के तारों के साथ। और तुम्हें समझ में आने लगेगा--
रात दिन गर्दिश में हैं सात आसमां
हो रहेगा कुछ न कुछ घबराएं क्या
जो इतने विराट को चला रहा है, सात आसमान गर्दिश में हैं, चांद-तारे उग रहे हैं, डूब रहे हैं. . .।
रात दिन गर्दिश में हैं सात आसमां
हो रहेगा कुछ न कुछ घबराएं क्या
फिर जो इतनी फिक्र कर रहा है, इतने विराट की लीला चल रही है, उसमें एक तुम्हारी फिक्र न करेगा? तुम्हारे साथ अन्याय करेगा--खास तुम्हारे साथ! तुम्हारी भर चिंता न लेगा?
नहीं, यह बात ही फिजूल है। तुम अपने को जरूरत से ज्यादा मूल्य दे रहे हो। और तुम्हारी श्रद्धा झूठी है। और तुम्हारी प्रार्थना एक औपचारिक कृत्य है। इसे ग.ज बनाओ, यह नमाज है।

तीसरा प्रश्न : भगवान, मैंने कल एक अजीब-सा सपना देखा: मैं किसी सभा में बोलने गया था संन्यास विषय पर। आप भी मेरे सामने ही उपस्थित थे। पहले तो मुझे भय लगा कि आपके सामने मैं कैसे बोलूं, लेकिन जैसे ही मैंने जाना कि मुझे तो अनुभव की बातें कहनी हैं, सारा भय चला गया और मैं बिना संकोच बोलने लगा। आप भी सिर हिलाते रहे, इससे धैर्य बैठा।
लेकिन बीच में अचानक देखा कि आप सभा में नहीं हैं, तत्क्षण मेरी वाणी बंद हो गई। मैंने सभा त्याग दी और आपको ढूंढने निकला। आप दूर एक बगीचे में मिले। पूछा कि क्या हुआ। मैंने कहा कि आपके जाते ही वाणी बंद हो गई। आप

मेरे साथ सभा-स्थल पर वापस आए, मंच पर चढ़े और बोलने लगे। लेकिन तब मुझे महसूस हुआ कि मैं वहां नहीं हूं। मैं सुनता था लेकिन यह भी जानता था कि वहां नहीं हूं। एक अपूर्व आनंद लेकिन साथ ही साथ एक अजीब-सा भय! और इसी में नींद खुल गई। क्या इसमें मेरे लिए कोई उपदेश है?
अजित, संकेत तो बिल्कुल स्पष्ट है। मेरे प्रत्येक संन्यासी को मेरे लिए बोलना है। मेरे प्रत्येक संन्यासी को मेरी आवाज बनना है। तुम्हारे कंठ मुझे दे दो। तुम्हारे हाथ भी मुझे दे दो। क्योंकि जो मैं कहना चाहता हूं वह हजारों कंठों से कहा जाए तो ही पहुंच सकेगा। और जो मैं करना चाहता हूं वह हजार-हजार हाथ करें तो ही हो सकेगा। तुम्हारे हाथ ही मेरे हाथ होने चाहिए। और तुम्हारे कंठ मेरे कंठ होने चाहिए।
लेकिन इसके लिए जरूरी है कि तुम बीच से हट जाओ। अगर तुम रहे तो मैं नहीं रह सकता। अगर मैं रहूं तो तुम्हें हट जाना होगा। और मजा यही है कि तुम हटकर ही पाओगे कि तुम पहली बार हुए। तुम बीच में बाधा मत बनना।
संकेत बहुत स्पष्ट हैं। सपना प्यारा है। ऐसा सपना संन्यासी ही देख सकता है। संसारी का तो सत्य भी दो कौड़ी का होता है। संन्यासी के सपने भी मूल्यवान होने लगते हैं। संन्यासी के सपने में भी अर्थ प्रकट होने लगते हैं; स्वप्न भी स्वप्न नहीं रह जाता। जैसे-जैसे ध्यान की गहराई बढ़ती है वैसे-वैसे स्वप्न भी तुम्हारे अंतरतम से आनेवाले संदेशों का एक स्रोत मात्र, एक वाहन मात्र हो जाता है।
सुंदर सपना है। और अनुभव से ही बोलना है इसलिए भय लेने की कोई जरूरत नहीं है। जहां अनुभव है वहां भय नहीं है। उतना ही कहना जितना तुम्हें अनुभव हुआ है। उससे ज्यादा कहोगे तो भय लगेगा। और लगना ही चाहिए भय। उससे ज्यादा जो बोलता है वही पंडित हो जाता है।
पंडित का अर्थ है: जिसका अनुभव नहीं है वह भी बोले जा रहे हैं। उसने अपने साथ भी बेईमानी की, उसने सुननेवाले के साथ भी बेईमानी की। पंडितों की बेईमानी का परिणाम है कि पृथ्वी पर इतना अधर्म फैला है। अधर्म नास्तिकों के कारण नहीं है, पंडितों के कारण है। नास्तिक क्या करेगा बेचारा! नास्तिक के पास कोई भी तर्क नहीं है कि ईश्वर को असिद्ध कर सके। न तो ईश्वर को कोई सिद्ध कर सकता है, न कोई असिद्ध कर सकता है। बात ही तर्कातीत है। लेकिन पंडित ने सब खराब कर दिया है।
पंडित ने अनुभव के आगे की बातें कहनी शुरू कर दीं जिसका उसे अनुभव नहीं है। और जब तुम ऐसे कोई बात कहते हो जिसका तुम्हें अनुभव नहीं है तो तुमने अपने और परमात्मा के बीच निष्ठा का संबंध तोड़ा। उतना ही कहना जितना अनुभव है। वहीं रुक जाना, चाहे आधा ही वाक्य क्यों न हो। पर उतना ही कहना जितना अनुभव हो, फिर कोई भय नहीं है। क्योंकि सत्य के साथ कैसा भय! सत्य अभय है।
और तुम अगर उतना ही कहोगे जितना अनुभव है तो मैं जरूर सिर हिलाऊंगा, मैं जरूर हामी भरूंगा। मैं हटूंगा उसी वक्त, मेरी हामी उसी वक्त बंद हो जाएगी जहां तुम अनुभव से कुछ ज्यादा कह दोगे।
अजित, सपने की तुम्हें याद नहीं रही है, तुमने जरूर कुछ अनुभव से ज्यादा बात कह दी होगी। जोश में आदमी कह जाता है। जोश के अपने मार्ग हैं। तुम्हें याद भी नहीं होता। तुम कहना भी नहीं चाहते थे। लेकिन जब कोई कहने बैठता है और जोश में आ जाता है तो बात बढ़ जाती है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक संन्यासी की प्रशंसा कर रहा था। प्रशंसा में जो बातें कहनी चाहिए, कह रहा था कि आप परम ब्रह्मचारी हैं। आप जैसा कोई ब्रह्मचारी नहीं। और संन्यासी भी मस्त हो रहा था। पुराने ढब का संन्यासी था, मेरा संन्यासी नहीं था। वह बड़ा प्रसन्न हो रहा था कि आप बालब्रह्मचारी हैं। और भी प्रसन्न हो रहा था। उसकी प्रसन्नता देखकर मुल्ला को भी जोश चढ़ गया। जोश इतना चढ़ गया कि उसने कहा कि आप ही नहीं, आपके बाप भी बालब्रह्मचारी थे। अब जरा बात ज्यादा हो गई। मगर अक्सर ऐसा हो जाता है। तुम जब कुछ कहने चलते हो तो हर शब्द की अपनी प्रक्रिया है। तुमने एक शब्द कहा, वह शब्द तुम्हारे भीतर दूसरे शब्द की श्रृंखला को पैदा करवा देता है। एक श्रृंखला पैदा हो जाती है। फिर तुम्हें पता ही नहीं रहता कहां

अनुभव पूरा हो गया! कितने पर अनुभव पूरा हो गया! भाषा का जोश, शब्दों की पकड़, शब्दों का काव्य तुम्हें खींचे लिए जाता है।
लोग अतिशयोक्ति जानकर नहीं करते, हो जाती है। होश नहीं है इसलिए हो जाती है। तो जरूर अजित, कहीं अतिशयोक्ति हो गई होगी इसीलिए तुमने मुझे पाया कि मैं सपने से नदारद हो गया हूं।
और सपना बड़ा प्यारा है। तुम्हारी वाणी बंद हो गई। ऐसा ही होना चाहिए। जिस घड़ी मैं तुम्हारे भीतर न बोलूं उस घड़ी तुम्हारी वाणी बंद हो जानी चाहिए। जब तक मैं बोलूं तब तक ठीक, जब तुम बोलने लगो तो वाणी बंद हो जानी चाहिए, ठिठक जाना चाहिए। अच्छा हुआ कि तुमने बोलना बंद कर दिया और तुम मेरी तलाश में निकल गए।
और दूसरा अनुभव भी प्यारा है कि फिर तुम सुनने बैठे, मैंने बोलना शुरू किया और तब तुम्हें महसूस हुआ कि मैं वहां नहीं हूं। हूं भी और नहीं भी, ऐसी तुम्हें प्रतीति हुई।
यह प्रतीति प्यारी है। यह प्रतीति तुम्हें रोज हो रही है, जागते भी यही हो रही है। सुनते समय तुम होते भी हो, नहीं भी होते हो; नहीं भी होते हो, होते भी हो। एक विरोधाभास घटता है। एक रहस्यपूर्ण दशा पैदा हो जाती है। वही सत्संगी की दशा है। अहंकार तो चला जाता है इसलिए अब यह नहीं कह सकते कि मैं हूं। लेकिन अहंकार के जाते ही तुम्हारा होना प्रगाढ़ हो जाता है इसीलिए यह भी नहीं कह सकते कि मैं नहीं हूं।
इसलिए एक विरोधाभासी स्थिति पैदा हो जाती है। एक तरफ मिट जाते हो, दूसरी तरफ हो जाते हो। बूंद गिरी सागर में, बूंद की तरह मिट गई, सागर की तरह प्रकट हो गई। क्षुद्र चला जाता है, विराट आ जाता है।
इसलिए अपूर्व आनंद हुआ। यही अनुभूति तो आनंद की अनुभूति है। जहां शून्य पैदा होता है अहंकार की दृष्टि से और जहां पूर्ण का आगमन होता है। वही तो आनंद की दृष्टि है। वही तो आनंद की अवस्था है जहां तुम्हारे भीतर का शून्य परमात्मा के पूर्ण से मिलता है, आलिंगनबद्ध होता है। शून्य और पूर्ण का संभोग ही तो आनंद है।
"अपूर्व आनंद हुआ"--स्वप्न में भी हो जाएगा। "लेकिन साथ ही साथ अजीब-
सा भय भी हुआ"--भय भी होगा क्योंकि वह महामृत्यु भी है। महाजीवन भी, महामृत्यु भी। अब डर लगेगा कि मैं लौट भी सकूंगा या नहीं? अब डर लगेगा कि मैं बच भी सकूंगा? आनंद इतना ज्यादा होगा कि मुझे ले जाएगा अपने बाढ़ में। किनारा छूट जाएगा। जाना-परिचित, पहचाना, सब छूट जाएगा।
इसलिए समाधि के कगार पर जाकर बड़ा भय पकड़ता है। बड़े आनंद की पुलक आती
है और बड़ा भय भी पकड़ता है। दोनों एक साथ हो जाते हैं। भय इसलिए कि अतीत छूट रहा है, आनंद इसलिए कि भविष्य आ रहा है।
"और इसी में नींद खुल गई।" इसी में तो नींद खुलनी ही है। ऐसे ही पशोपेश में पड़े-पड़े, आनंद और भय के बीच डोलते-डोलते असली नींद भी टूट जाएगी। यह नींद तो टूटी ही। सपने में जो नींद थी शरीर की, वह टूटी। ऐसे ही बैठते- बैठते, उठते-उठते, सुनते-सुनते, मिटते-बनते, आनंद अनुभव करते, भय से कंपते एक दिन आध्यात्मिक नींद भी टूट जाएगी। यह मूर्च्छा, जिसे तुमने अब तक जागृति समझा है यह भी टूट जाएगी।
और जिस दिन यह मूर्च्छा टूट जाती है उस दिन प्रबुद्धता का दीया जलता है। उसी दिन आ गए अपने घर वापस, अपने मूलस्रोत को पाया। उसे मोक्ष कहो, कैवल्य कहो, निर्वाण कहो।

पांचवां प्रश्न: मैं आपके पदचिह्नों पर चलना चाहता हूं। आपका आशीर्वाद चाहिए।
मुझे समझे नहीं। पदचिह्नों पर चलना नहीं है। पदचिह्नों पर चलोगे, उधार हो जाओगे, नकली हो जाओगे, कार्बन कॉपी हो जाओगे। मेरी सुनो, मुझे समझो, मुझे देखो, मुझे पहचानो लेकिन मेरा अनुकरण मत करना। मेरी पुकार सुनो और जागो लेकिन जब तुम जागोगे, तो तुम जैसे तुम्हीं होओगे। तुम किसी की कॉपी नहीं होओगे, तुम किसी की नकल नहीं होओगे। और तुम जिस रास्ते पर चलोगे

वह तुम्हारा ही होगा। न तो पहले कोई उस ढंग से चला है और न फिर कभी कोई उस ढंग से चलेगा।
जीवन के वास्तविक रास्ते चलने से बनते हैं, पहले से बने-बनाए नहीं होते। सीमेंट के बने हुए रोड नहीं हैं जीवन के रास्ते। जीवन के रास्ते तो पहाड़ों में बनी पगडंडियां हैं। और पगडंडियां भी ऐसी नहीं कि कोई और चला हो और तुम उन पर चल जाओ। परमात्मा इतनी भी उधारी का मौका नहीं देता। परमात्मा मौलिक को प्रेम करता है और तुम्हें चाहता है कि तुम अपने मौलिक स्वरूप को उपलब्ध होओ। इसलिए तुम अगर बुद्ध के चरणचिह्नों पर चलकर पहुंचोगे तो तुम बुद्धू होकर पहुंचोगे, बुद्ध होकर नहीं पहुंच सकते। तुम चूक गए। तुम्हें तो अपने ही चरणचिह्न छोड़ जाने हैं। हां, समझो बुद्धों से, सीखो बुद्धों से। आत्मसात कर लो उनकी शिक्षा को, उनके प्रेम को, उनकी करुणा को। उनके ध्यान की तरंग में डूबे ताकि तुम्हारी अपनी तरंग पैदा हो सके। मगर जैसे ही तुम्हारी अपनी तरंग पैदा हो जाए, उसी का अनुसरण करो।
मेरे पदचिह्नों पर चलने का आशीर्वाद मत मांगो। इतना ही मुझसे मांगो
कि तुम अपने पथ को पा सको। ऐसा आशीर्वाद मुझसे मांगो।
मेरा संन्यासी किसी भीड़ का हिस्सा नहीं है। मेरा प्रत्येक संन्यासी अद्वितीय है, अनूठा है, अपना है, अपने जैसा है। मैं तुम्हें भीड़ के हिस्से नहीं बनाना चाहता। वह तो अपमान होगा तुम्हारे भीतर छिपे परमात्मा का। मैं तुम्हें तुम्हारी निजता देना चाहता हूं।
छोड़ते पदचिह्न जो मैं आ रहा हूं
यदि बने भी वे रहे तो कुछ नहीं उपयोग उनका
अब रहा मेरे लिए है
मैं मुसाफिर वह नहीं
जिस राह आया हूं उसी से लौट जाऊं
एड़ियों के चिह्न पर धरता अंगूठा
कभी मुड़कर पीठ-पीछे देखने का लोभ था
यह लोभ स्वाभाविक बड़ा है
किंतु अब पीछे अंधेरा ढल रहा है
और तम को चीरकर देखने की
शक्ति यदि कुछ शेष है मेरे दृगों में तो उन्हें करना नियोजित सामने है सामने से भी उजाला हट रहा है झुटपुटा, आता-उतरता
झिलमिलाते उदय होते तारकों से
और मंजिल पर अभी पहुंचा नहीं हूं रात को भी तो मुझे रुकना नहीं है होड़ सांसों और पांवों में लगी है हो चुके अयस्त इतने पांव चलने के नहीं निर्देश नयनों का जरूरी कौन बाधाएं मिलेंगी
जो न अब तक मिल चुकी हैं,
झिल चुकी हैं
और पीछे आ रहे जो गर्भ
इस पर कुछ करूं क्या!
चली राहों पर नहीं चलना उन्हें है देखकर पदचिह्न मेरे
यह सफर ऐसा कि जिस पर हर मुसाफिर
है बनाता पथ नया अपने पदों से
एक ही संदेश उस पर छोड़ जाता
सिंह, शायर, और सपूत चले पथों पर
नहीं अपना पग बढ़ाता
--तुम्हें किसी लकीर के फकीर नहीं बनना है। यह सफर ऐसा कि जिस पर हर मुसाफिर

है बनाता पथ नया अपने पदों से
--आकाश जैसा है सत्य मार्ग, पृथ्वी जैसा नहीं है। आकाश में पक्षी उड़ते हैं, पदचिह्न नहीं छूट जाते। आकाश जैसा ही है सत्य का मार्ग।
बुद्ध चलते हैं, पदचिह्न नहीं छूट जाते। इसलिए तुम किसी के पदचिह्नों
को पकड़कर चलने के लिए बैठे रहे तो बैठे ही बैठे सड़ जाओगे। तुम कभी चल ही न पाओगे। उड़ो! अपने पगों पर भरोसा करो। बुद्धों को चलते देखकर इतना ही स्मरण लाओ कि तुम्हारे पास भी पग हैं। बुद्धों को उड़ते देखकर इतना ही भरोसा लाओ कि तुम्हारे भी पंख हैं, फड़फड़ाओ! शायद सदियां बीत गई हैं, जनम-जनम बीत गए, तुमने अपने पंखों की सुध भी नहीं ली है। किसी बुद्ध को उड़ते देखकर तुम अपने पंखों को फैलाओ, अपने डैनों को फैलाओ। किसी बुद्ध को उड़ते देखकर तुम भी थोड़े उड़ो।
पहले-पहल घबड़ाहट होगी, भय होगा, डर होगा: यह मैं क्या कर रहा हूं? जल्दी ही भरोसा आ जाएगा। जैसे कोई तैरना सीखता है न! बस वैसे ही।
तैरने की कला क्या है? तैरना सिखानेवाला सीखनेवाले को क्या सिखाता है? आज तक कोई भी तो बता नहीं सका कि तैरने की कला क्या है! अगर तुम किसी तैरनेवाले से पूछो कि क्या है तुम्हारी कला? कैसे साधते हो अपने को जल में? तो वह कभी कंधे बिचकाकर रह जाएगा। वह कहेगा, यह. . .यह कैसे बताऊं? साइकिल चलानेवाले से पूछो, कि तुम कैसे साधते हो अपने को? क्या है तुम्हारी तरकीब, राज क्या है? दो पहियों पर सधे चले जाते हो, हद हो गई! मैं तो जैसे ही चढ़ने की कोशिश करता हूं, फौरन गिरता हूं। क्या है तुम्हारा राज?
साइकिल चलानेवाला भी राज बता न सकेगा। ये छोटे-छोटे राज भी बताए नहीं
जा सकते, जरा देखो तो! और लोग परमात्मा का राज तक पूछने चलते हैं। और न बताओ तो वे कहते हैं कि फिर हम मानेंगे नहीं।
साइकिल चलानेवाला कहेगा: भाई, इतना ही कर सकता हूं कि तुम्हारी साइकिल पकड़ लूंगा। तुम जरा बैठ जाओ, तुम्हें थोड़ी दूर पकड़कर चला दूंगा, फिर छोड़ दूंगा। फिर तुम देख लेना। एकाध-दो बार गिरोगे, फिर गिरते-गिरते समझ में आ जाएगा। गिर-गिरकर सम्हलोगे। और एक बार समझ में आ गया कि कैसे सधता है यह भीतर का संतुलन, कि बस समझ में आ गया।
ऐसा ही तैरनेवाला भी बता नहीं सकता है कि कैसे अपने को पानी में साधता है। हां, सिखा सकता है तुम्हें। लेकिन तैरनेवाले को देखकर इतना तो भरोसा आ जाता है कि एक आदमी तैर रहा है हड्डी-मांस-मज्जा का मुझ जैसा ही, तो मैं भी तैर सकता हूं। बस, यही श्रद्धा बीजारोपण है।
इतना ही तुम मुझसे सीखो कि तुम भी तैर सकते हो; कि तुम भी उड़ सकते हो। मेरे पगचिह्नों पर चलना नहीं है।
यह सफर ऐसा कि जिस पर हर मुसाफिर
है बनाता पथ नया अपने पदों से
एक ही संदेश उस पर छोड़ जाता
सिंह, शायर और सपूत चले पथों पर
नहीं अपना पग बढ़ाता
भेड़ें भीड़ में चलती हैं। शायद इसीलिए भेड़ें कहलाती हैं--भीड़ में चलती हैं। भेड़ मत बनो, सिंह बनो। सींहों के नहीं लेहड़े! सिंहों की भीड़ नहीं होती। सिंह अकेला चलता है। लेकिन कभी-कभी सिंह को भी भूल जाता है कि मैं सिंह हूं। ऐसा हुआ एक बार।
एक सिंहनी ने जन्म दिया बच्चे को। छलांग लगा रही थी एक पहाड़ी से कि बीच में ही बच्चे का जन्म हो गया। वह तो छलांग लगाकर चली भी गई। बच्चा भेड़ों की एक भीड़ में गिर गया। भेड़ें गुजरती थीं नीचे से। बच्चा उन्हीं में बड़ा हुआ। ऊंचा उठ गया भेड़ों से बहुत। सिंह ही था लेकिन घास-पात चरता। शाकाहारी! शुद्ध शाकाहारी! भेड़ों जैसा ही मिमियाता, रोता। जिनके साथ रहा वैसा ही हो गया। हिंदू घर में पैदा हुए हिंदू हो गए। मुसलमान घर में पैदा हुए, मुसलमान हो गए। अब सिंह का बच्चा भी क्या करे बेचारा! भेड़ों के घर में पड़ गया, उन्हीं का धर्म सीखा। उन्हीं की किताब पढ़ी, उन्हीं की भाषा सीखा। उन्हीं का डर भी सीख गया। अगर कोई सिंह की गर्जना होती, भेड़ें भागतीं वह भी

भागता; जान लेकर भागता। उसे याद ही न आयी कभी कि मैं सिंह हूं। आती भी कैसे? किसी सिंह का कभी सामना भी न हुआ।
एक दिन अड़चन ऐसी हो गई। एक बूढ़े सिंह ने हमला किया भेड़ों पर। वह तो हमला करके चकित हो गया। जब उसने देखा कि एक सिंह भेड़ों के बीच में घरस-पसर भागा जा रहा है मिमियाता, रिरियाता, रोता। बूढ़े सिंह को तो भूल ही गई अपनी भूख। भेड़ों को पकड़ने की तो बात ही छोड़ दी उसने। उसको तो यह चमत्कार समझ में नहीं आया कि यह हो क्या रहा है। भेड़ें भी उससे घसर-पसर चल रही हैं। कोई डरा हुआ नहीं है। वह अलग ऊपर उठा दिख रहा है। सिंह सिंह है।
बूढ़ा सिंह भागा, बामुश्किल पकड़ पाया उस सिंह को। जवान सिंह था लेकिन पकड़ ही लिया बूढ़े ने। रोने लगा, रिरियाने लगा जवान सिंह। माफी मांगने लगा: मुझे छोड़ दो, मुझे जाने दो। मुझे मेरे साथियों के साथ जाने दो।
मगर बूढ़े ने भी जिद की। उसे पकड़कर नदी के किनारे ले गया। कहा, झांक! देख अपने दोनों चेहरे। दोनों झुके, एक क्षण में क्रांति हो गई। जवान सिंह ने नीचे देखा कि मैं तो सिंह हूं। ठीक बूढ़े सिंह जैसा मेरा भी चेहरा है। वही मेरा रूप, वही मेरा ढंग। एक क्षण में हुंकार निकल गई। पहाड़ कंप गए ऐसी हुंकार! क्योंकि जन्म भर की दबी हुई हुंकार थी; प्रगाढ़ होकर निकली होगी। बूढ़े सिंह ने कहा, अब तू जान। मेरा काम पूरा हो गया।
इतना ही काम गुरु का है, इससे ज्यादा नहीं। कि तुम्हें झुकाकर दिखा दे
कि जैसे हो वैसा ही मैं हूं, मैं जैसा हूं वैसे ही तुम हो। स्वरूपतः हम भिन्न नहीं हैं। तुम सिंह हो और तुम्हारी हुंकार पैदा हो जाए, बस काम पूरा हो गया। फिर तुम चलोगे अपनी राह। फिर तुम अपने ही पगों से अपनी राह बनाओगे।
परमात्मा मौलिक को प्रेम करता है। नकल बनना मत। नकल का कोई समादर नहीं है।
बुद्ध मर रहे थे। आनंद रोने लगा था कि अब मेरा क्या होगा? चालीस साल तो आपके चरणचिह्नों पर चला, फिर भी पहुंच नहीं पाया हूं अभी। अभी मेरी सम्यक संबोधि फली नहीं। अभी मेरा बुद्धत्व जगा नहीं और आप चले! अब मेरा क्या होगा? अब तक तो आप थे, आपकी छाया की तरह मैं चलता था। निश्चिंत था। आपके रहते भी नहीं मिल पाया, अब क्या होगा?
बुद्ध ने पता है क्या कहा? बुद्ध ने कहा, आनंद, शायद मेरे रहने के कारण
ही तुझे नहीं मिल पाया। तू मेरी छाया बनने में लगा रहा। तू मेरे पग पर पग रखकर चलता रहा। और मैंने तुझे लाख समझाया: "अप्पदीपो भव"। अपना दीया खुद बन। मेरे जलते हुए दीये को देखकर इतना समझ कि तेरे भीतर भी दीया है और जल सकता है। एक दिन मेरे भीतर अंधेरा था, आज उजाला है। आज तेरे भीतर अंधेरा है, कल तेरे भीतर उजाला हो सकता है। मगर यह न समझकर तू मेरे पगचिह्नों पर चलने की कोशिश करता रहा।
बुद्ध जैसे उठते, आनंद वैसा उठता। बुद्ध जैसे बैठते, आनंद वैसा बैठता। जो बुद्ध खाते वही आनंद खाता। जो बुद्ध पहनते वही आनंद पहनता। जैसा बुद्ध बोलते वैसा ही आनंद बोलता--वही भावभंगिमा, वही मुद्रा! सब नकल थी।
बुद्ध ने कहा, अब शायद मेरे जाने से तुझे होगा। मेरे रहते नहीं हो सकता। मैं तो चालीस साल कह-कहकर थक गया कि नकल मत बन; मगर तू सुनता नहीं। मैं भी समझता हूं, तुम भी समझोगे। आनंद की भी तकलीफ है। बुद्ध जैसा प्यारा आदमी हो पास में तो कौन नकल न बनना चाहेगा? बुद्ध जैसा संगीत उठ रहा हो, कौन फिक्र करेगा अपना मौलिक संगीत? अपना मौलिक संगीत तो सुना नहीं है। उसका तो कुछ पता नहीं है। और इतना अपूर्व संगीत यहां उठ रहा है, क्यों न हम भी यही संगीत सीख लें। क्यों न हम भी यही गीत गा लें। क्यों हम भी न इसी नाच को नाच लें।
अपने नाच का तो कुछ पता ही नहीं है इसलिए तुलना भी नहीं कर सकते, सोच
भी नहीं सकते। वह तो अभी नाचा नहीं गया है। अपना गीत तो अभी जन्मा नहीं है। लेकिन इस संसार में जो सर्वाधिक सुंदरतम गीत है वह यहां गाया जा रहा है बुद्ध के पास। हम भी इन्हीं कड़ियों को दोहरा लें।

यह बिल्कुल स्वाभाविक है। बुद्ध जैसा प्यारा आदमी सामने हो तो नकल बिल्कुल स्वाभाविक है। इसलिए बुद्ध जैसे महत्त्वपूर्ण लोगों ने सदा कहा है, "नकल से सावधान!" उनको कहना पड़ा है क्योंकि उनके आसपास लोग नकल करने में पड़ जाते हैं।
और यही हुआ। बुद्ध के मरने के चौबीस घंटे के भीतर आनंद को बुद्धत्व प्राप्त हुआ। सिर्फ चौबीस घंटे के भीतर! बुद्ध की मृत्यु की चोट ऐसी लगी कि अब मेरा क्या होगा? अब किसके चरणचिह्नों को मानकर चलूंगा? सब तो अब अंधकार हो गया। और बुद्ध के जाने की चोट, बुद्ध की मृत्यु की चोट संघातक थी कि उसने न भोजन लिया, न खाना खाया। वह तो जो बैठा समाधि में ही रहा। उसने कहा, अब तो उठूंगा ही तब, जब जाग जाऊंगा। नहीं तो उठने से भी क्या सार है! और अब इस जिंदगी में देखने योग्य भी क्या रहा? जो देखने योग्य था, देख लिया। जो पाने योग्य था उसके पास रह लिया। सुंदरतम का अनुभव कर लिया। महिमामंडित परमात्मा का अवतरण देख लिया। अब और देखने को है भी क्या? मरूंगा तो भी अब कुछ खोता नहीं। अब जीने में सार क्या है!
आंख जो बंद की आनंद ने और बैठ जो रहा तो चौबीस घंटे के भीतर घटना घट गई। और जब घटी घटना तो उसे समझ में आया कि बुद्ध के पदों पर चलने के कारण ही बाधा पड़ रही थी। बुद्ध ठीक कहते थे।
तब धन्यवाद में उनके चरणों में झुका। अज्ञात चरण थे अब तो। अब तो शरीर
जल चुका था, राख हो चुका था। अज्ञात चरणों में झुका धन्यवाद में। रोया आनंद के आंसू कि तुमने कितनी बार कहा और मैंने न सुना। एक बार भी सुन लेता तो तुम्हारे रहते-रहते भी बुद्धत्व को उपलब्ध हो सकता था। अब हुआ! तुम ठीक ही कहते थे कि तुमसे मेरा मोह ऐसा है कि जब तक तुम्हारी मौजूदगी है, शायद मैं अपनी सुध लूंगा नहीं। तुम पर ही नजर अटकी है।
नकल मत करना। मेरे पदचिह्नों पर चलना नहीं, नहीं तो चूकोगो। मेरी सुनो, मेरी गुनो, मुझे पियो, मगर मेरी नकल मत बनना। मेरे प्रत्येक संन्यासी को मौलिक होना है, निज होना है।
और फिर परमात्मा प्रतिपल बदलता है, जैसे प्रकृति प्रतिपल बदलती है। बुद्ध जिस रास्ते पर चले वह रास्ता भी अब नहीं है। बुद्ध जैसे व्यक्ति थे वह व्यक्ति भी अब नहीं है। बुद्ध ने जो साधन किए वे साधन भी अब काम के नहीं हैं। यहां रोज सब बदल जाता है। मौसम प्रतिपल बदल रहा है। परमात्मा प्रवाह है, सतत धारा है; जैसे गंगा का जल बहता जाता है।
तुम अगर पुरानी लकीरों को पकड़कर चलोगे तो परमात्मा से चूकते रहोगे क्योंकि परमात्मा कभी पुराना होता ही नहीं। परमात्मा सदा नया है, उसके साथ संबंध जोड़ना हो तो तुमको भी नए होने की कला और कीमिया सीखनी पड़ेगी। तेरा आंचल रंग-रंगीला रंग-रंग में बास नयी
मेरे मन की आस पुरानी तेरे तन की प्यास नयी
तू बगिया की तितली बनकर फूल-फूल पर झूले
कली-कली से प्यार बढ़ाए ऋत-ऋत के दुःख भूले
एक समां है तुझको सावन हो या सरसों फूले
तेरा जोबन एक पहेली तेरी आस निरास नयी तेरा आंचल रंग-रंगीला रंग-रंग में बास नयी रूप-रंग में तेरी मुंहफट चंचलता इतराए अंग-अंग में सजी-सजायी सुंदरता बल खाए संग-संग अनदेखे सपनों की शोभा लहराए जीवन के हर मोड़ पे तेरी आस रचाए रास नयी तेरा आंचल रंग-रंगीला रंग-रंग में बास नयी
एक उड़ान से तू उकताए बार-बार पर तौले
एक चाल न भाए तुझको कदम-कदम पर डोले
इस पर भी मन मूरख मेरा तेरी ही जय बोल
मेरे साथ पुरानी छाया, काया तेरे पास नयी
तेरा आंचल रंग-रंगीला रंग-रंग में बास नयी
जरा देखो तो प्रकृति को! यह प्रकृति परमात्मा का प्रतीक है। यहां हर चीज नयी होती रहती है। वही सूरज दुबारा थोड़े ही उगता है। वही चांद फिर

थोड़े ही आकाश में उठता है। वे ही बादल फिर थोड़े ही घिरते हैं। वही पक्षी फिर कहां? वही फूल फिर कहां खिलते हैं! उन जैसे ही, पर हर बार नए। सब नया है। यहां कोई चीज पुनरुक्त नहीं होती। यहां प्रतिपल सब कुछ इतना नया है कि जो जरा भी पुराना है और बासा है, वह पिछड़ जाएगा। उसका परमात्मा से संबंध टूट जाएगा।
इसलिए मैं कहता हूं, परंपरा धर्म नहीं है। परंपरा पुरानी लकीर को पीटना है और धर्म नित नया है। धर्म विद्रोह है, बगावत है, क्रांति है। परंपरा जड़ होती है, सदियों पुरानी होती है। हर परंपरा पुराने होने का दावा करती है कि मैं दूसरी परंपराओं से ज्यादा पुरानी हूं क्योंकि जितनी पुरानी उतनी मूल्यवान।
लेकिन परमात्मा प्रतिपल नया है। तुम वेदों में उलझे रहते हो, वह आता
है और नए वेद गाकर चला जाता है। तुम सुनते ही नहीं। तुम उपनिषदों में आंखें गड़ाए बैठे रहते हो, उसने नए उपनिषद्भ रच लिए। वह रोज नए उपनिषद्भ रचता है। तुम कुरान की आयतें दोहराते रहते हो। तुम मुहम्मद में उलझे बैठे हो, उसने दूसरे पैगंबर भेज दिए, उसने दूसरी आयतें रच लीं।
चूक नहीं गया है परमात्मा किसी पर। न महावीर पर, न बुद्ध पर, न मुहम्मद पर, न कृष्ण पर, न क्राइस्ट पर। परमात्मा कभी चुकेगा ही नहीं। चूक जाए तो परमात्मा नहीं। इसीलिए तो हम कहते हैं, वह अनंत है, शाश्वत है। उसमें से पूर्ण को भी निकाल लो तो भी पीछे पूर्ण शेष रह जाता है। उसको हम चुका नहीं पाएंगे। उसमें से नए उपनिषद्भ जन्मेंगे, नए गीत उठेंगे।
तुम भी नए रहे तो ही परमात्मा से संबंध जुड़ेगा। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं अतीत को जाने दो, वर्तमान में जियो। जो वर्तमान में जीता है वह परमात्मा में जीता है।
एक उड़ान से तू उकताए बार-बार पर तौले
एक चाल न भाए तुझको कदम-कदम पर डोले
इस पर भी मन मूरख मेरा तेरी ही जय बोले
मेरे साथ पुरानी छाया, काया तेरे पास नयी
तेरा आंचल रंग-रंगीला रंग-रंग में बास नयी
नहीं, ऐसा आशीर्वाद मुझसे मत मांगो। ऐसा आशीर्वाद मैं तुम्हें दे भी नहीं सकता क्योंकि ऐसा आशीर्वाद आशीर्वाद होगा ही नहीं, अभिशाप भी हो जाएगा।
मेरे पदचिह्नों पर तुम्हें नहीं चलना है। किसी के पदचिह्नों पर तुम्हें नही चलना है। तुम्हें अपना मार्ग खोजना है। तुम्हें अपने ही पदचिह्नों से परमात्मा के मंदिर तक पगडंडी बनानी है। और तभी खोज में आनंद होता है, उल्लास होता है, अभियान होता है।

आज इतना ही।